UNIVERSAL LIBRARY
OU_186173
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 364.9 V 28 P

Accession No. H 3439

Author वर्मा, परिपूर्णानन्द

Title पतन की परिभाषा 1960.

This book should be returned on or before the date last marked below

पतन की परिभाषा

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला——३७

पतन की परिभाषा

लेखक
परिपूर्णानन्द वर्म्मा

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण
१९६०

मूल्य ७)

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

"पतन की परिभाषा" हिन्दी समिति ग्रन्थमाला की ३७वीं पुस्तक है। इसके रचयिता श्री परिपूर्णानन्द वर्म्मा हिन्दी के सुख्यात लेखकों में से हैं जो गत ३०-३५ वर्षों से किसी न किसी रूप में बराबर हिन्दी की सेवा करते रहे हैं। आपने विविध विषयों पर ३८ पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं। अपराध-विज्ञान का आपने गहरा अध्ययन किया है और तत्संबंधी प्रश्नों पर लम्बे अरसे से अनुसंधान, विचार-विमर्श एवं मनन करते रहे हैं। इसका एक परिणाम यह बहुमूल्य पुस्तक ही है जो हिन्दी में अपने ढंग की अद्वितीय रचना है।

विश्व के अन्य कितने ही देशों की तरह आज हमारे यहाँ भी किशोरों और नव-युवकों में अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता एवं अपराध की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह प्रश्न देश के समाज-सुधारकों, विचारकों और अभिभावकों के सम्मुख है। वर्म्माजी ने इस पुस्तक में जो विचार प्रकट किये हैं, जो आँकड़े और अवतरण दिये हैं, उनसे इस समस्या के तथा उससे सम्बद्ध अन्य प्रश्नों के समाधान में विशेष सहायता मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं। जैसा कि वर्म्माजी ने लिखा है—"आज पुरुष अपने अधिकार के लिए लड़ते हैं, स्त्री अपने अधिकार के लिए। हम चाहते हैं कि लोग परिवार के अधिकार के लिए लड़ें।" समाज परिवारों से ही बनता है। अतः समाज की स्थिति सुदृढ़ तथा पुष्ट बनाने के लिए परिवारों की दृढ़ता और मर्यादा बनाये रखने का प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। अपराध करनेवाले युवक-युवतियों को या अन्य लोगों को केवल जेल भेज देने या दंड दे देने से स्थिति नहीं सुधर सकती।

अपराध क्या है, पतन क्या है और आज जिसे हम पतित कहते हैं, अपराधी समझते हैं, वह अपनी स्थिति या प्रवृत्तियों के लिए कहाँ तक जिम्मेदार है, इस पर सम्यक् विचार किये बिना हम किसी को दोषी नहीं ठहरा सकते। फिर मुख्य प्रश्न अपराधी को दंड देने या जेल भेज देने का ही नहीं बल्कि यह है कि वह कुमार्ग से विमुख होकर पुनः सुमार्ग पर आ जाय। जेल से वह "समाज के लिए उपयोगी तथा अधिक उपयुक्त नागरिक होकर घर लौटे।" इन्हीं सब प्रश्नों का सुन्दर विवेचन इसमें किया गया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक नितान्त उपयोगी है। हमें आशा है कि समाज में बढ़ती

हुई अपराध-प्रवृत्तियों से चिन्तित प्रत्येक पाठक इस पुस्तक को पढ़कर लाभान्वित हुए बिना न रहेगा। इसमें उसे अध्ययन और मनन की, विचार और हृदय-मंथन की प्रचुर सामग्री मिलेगी।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

एक बात

आदिकाल से ही धार्मिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों अथवा अनुशासनों से विमुख होनेवाले को पतनशील तथा पतित कहते हैं। किन्तु हर एक समाज का अनुशासन समान नहीं है, हर एक धर्म की तात्त्विक एकता अवश्य है पर अध्यादेश समान नहीं हैं। अतएव जो एक के लिए पतन का कारण है वह दूसरे के लिए प्रशंसा की वस्तु बन सकता है।

जबसे समाज की रचना हुई, उसके आदेशों की अवज्ञा करनेवाले भी पैदा हो गये। समाज ने ऐसी अवज्ञा करनेवालों को अपराध का दोषी, अर्थात् अपराधी कहा। जिस कार्य में कर्त्तव्य से पतन हो, वह अपराध है, पतन का कार्य करनेवाला अपराधी है।

किन्तु, अपराध तथा अपराधी की व्याख्या आज तक पूर्णरूपेण नहीं हो पायी है। हर एक अपने-अपने दृष्टिकोण से उसकी व्याख्या करता है। चूंकि अपराध का मौलिक आधार समाज तथा धर्म की दृष्टि में अपने "कर्त्तव्य से पतन" है, इसी लिए मैंने भी "पतन की परिभाषा" में अपराध तथा अपराधी की व्याख्या करने का प्रयास किया है।

मेरे विचार से पश्चिम तथा पूर्व, प्राचीन तथा अर्वाचीन विचारधाराओं का समन्वय करने का सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है, सम्भवतः अपने विषय की यह अकेली पुष्पांजलि हिन्दी साहित्य में है, यद्यपि दंडशास्त्र आदि पर दो एक ग्रन्थ हमारी भाषा में भी हैं।

मैंने इसे तीन खंडों में विभाजित किया है, स्यात् अपराधशास्त्र का यह सही विभाजन है; कामवासना और अपराध, बाल-अपराध, वयस्क अपराधी और पुनर्वास। जो कुछ, जैसा भी, सात वर्ष के अध्ययन के बाद बन पड़ा, पाठकों की सेवा में अर्पित है। पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ होंगी। उनके लिए पहले से ही क्षमा माँग लेता हूँ।

परिपूर्णानन्द वर्म्मा

विषय-सूची

प्रथम भाग

कामवासना और अपराध

विषय	पृष्ठ
१. धर्म और नीति	१
२. अपराध क्या है ?	८
३. कामवासना का मौलिक आधार	१३
४. अन्य पुरानी सभ्यताओं की स्थिति	५०
५. मध्ययुग और ईसाई धर्म के आगमन के बाद	६२
६. जंगली जातियों की कामवासना	७३
७. वासना के अपराध पर दंड	८७
८. हत्या सम्बन्धी परम्पराएँ या नियम	१०१
९. प्राचीन दंडविधान	१०७
१०. आधुनिक दंडविधान	११२
(१) भारत में——११२	
(२) ग्रेट ब्रिटेन में——११६	
(३) संयुक्त राज्य अमेरिका में——१२७	
(४) अन्य देशों की स्थिति——१३८	
११. वासना और अपराध का सम्बन्ध	१४३
१२. असाधारण कामुकता	१५३
१३. वासना के अपराधों की व्यापकता	१५९
१४. चुम्बन	१६९
१५. विवाह और तलाक	१७२
१६. आज की कृत्रिम सभ्यता	१८२

द्वितीय भाग

बाल अपराध की व्याख्या

१७.	बाल अपराधी की समस्या	१९७
१८.	बाल अपराधी कौन है ?	२०६
१९.	दोषी कौन है ?	२२३
२०.	भिन्न देशों में भिन्न उपाय	२४८
२१.	एशियाई देशों में बाल-अपराध-निरोध	२५७
२२.	बाल अदालतें	२७०
२३.	तुर्की तथा अरब देशों में बाल अपराधी	२८७
२४.	यूरोपीय देशों में बाल-अपराध-निरोध	२९२
२५.	अमेरिका में बाल-अपराध-निरोध	२९८
२६.	बाल-अपराध की समस्या का निदान	३०१
२७.	मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में	३०८

तृतीय भाग

वयस्क अपराधी और पुनर्वास

२८.	अपराध और वयस्क अपराधी	३१३
२९.	विकृतमना	३२३
३०.	क्या मानसिक रोगी अपराधी है ?	३५०
३१.	दंड का सिद्धान्त	३५८
३२.	कारागार का विकास	३७१
३३.	प्राणदंड	३९१
३४.	बन्दी की समस्या	४०५
३५.	खुली संस्थाएँ	४२०
३६.	स्त्री तथा परिवार से वियोग	४२९
३७.	पुनर्वास की समस्या	४३४
३८.	मनुष्य और धर्म	४३६
	सहायक पुस्तकों की सूची	४३९
	अनुक्रमणिका	४४५

प्रथम भाग

कामवासना और अपराध

अध्याय १

धर्म और नीति

प्राचीन भारत में जनता के लिए दो प्रकार के आदेश थे—धार्मिक तथा नैतिक। धार्मिक आदेशों की अवज्ञा, धर्म के विपरीत कार्य करना "पाप" समझा जाता था और नैतिक अर्थात् सामाजिक आदेशों की अवज्ञा "अपराध" कहा जाता था। धार्मिक तथा नैतिक-सामाजिक, दोनों ही दृष्टि से अपने कर्त्तव्य को न निभानेवाला या उनके विपरीत चलनेवाला "पतित" कहा जाता था। साधारणतः यही कहा जाता था कि उस व्यक्ति का पतन हो गया है। कर्त्तव्य से च्युत होना ही पतन है।

किन्तु, कर्त्तव्य क्या है? धर्म क्या है? धर्म का आदेश किसे तथा कैसे समझें और सामाजिक तथा नैतिक नियम क्या हैं जिनके विरुद्ध जाना अनुचित है? जब तक यह निश्चित न हो जाय, पतन तथा पतित की मीमांसा भी नहीं हो सकती। प्राचीन भारत में धार्मिक पतन होने पर "प्रायश्चित्त" करना पड़ता था। नैतिक तथा सामाजिक पतन पर दंड मिलता था। मानव प्रायश्चित्त तथा दंड की सकरी गली के बीच में चलता हुआ जीवन-निर्वाह कर रहा था।

तब और अब के मनुष्य और उसके स्वभाव में कोई अन्तर नहीं है। अनन्त काल हो गया, मानव-स्वभाव तथा उसकी वास्तविक समस्या नहीं बदली। जब सृष्टि की, इस विश्व की रचना नहीं हुई थी, उस समय क्या था, यह जानने योग्य भी नहीं है।[1] किन्तु जबसे जीव ने, प्राणयुक्त प्राणी ने जन्म लिया,[2] पशु-पक्षी से लेकर मनुष्य की

१. "सृष्टि के पहले प्रकृति जानने के अयोग्य (तुच्छ) होकर अंधकार में थी। (ऋग्वेद, अधि० ८, मं० १०, अ० ११, सू० १२९)

२. Dr. Cook और Prof. Geikie के कथनानुसार यह दुनिया ८०,००० वर्ष पुरानी है। पर अपने अनुसंधानों के आधार पर प्रो० औसबर्न इसे ६० लाख वर्ष पुरानी सिद्ध करते हैं। पर पुरानी कितनी भी हो, मन तथा बुद्धि का अनुमान अंधेरे में है।

प्रकृति, उसका स्वभाव, उसकी आन्तरिक प्रेरणा ज्यों की त्यों है। वह इतनी गूढ़, इतनी गम्भीर तथा गहरी है कि वैदिक काल से लेकर आज तक उसको जानने और समझने का प्रयास किया जा रहा है। पर जितना अध्ययन हो रहा है, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, भौतिक तथा कोरा वैज्ञानिक, उतना ही ऐसा लगता है कि हम अभी तक मानव-प्रकृति तथा स्वभाव को पहचानने या समझ पाने के स्थान से काफी दूर हैं।

तर्क की बात

हिन्दू-विश्वास के अनुसार इस सृष्टि के चार युग हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। हर युग में "युगधर्म" के अनुसार मानव प्रकृति बदलती रहती है। आजकल कलियुग है।[१] इसमें हर एक मनुष्य तथा जीव-जन्तु का स्वभाव तामसिक यानी काम और वासनामय हो जाना चाहिए। तात्पर्य यह हुआ कि आज जो पतित है, वह प्रायः अपने कारण नहीं, युग के कारण ही पतित हो रहा है। शायद इसी प्रकार के धार्मिक विश्वास का खंडन करने के लिए कार्ल मार्क्स ने लिखा था कि "धर्म ने मनुष्य को नहीं उत्पन्न किया है; मनुष्य ने धर्म को जन्म दिया है। धर्म मानव के लिए अफ़ीम की तरह है।"[२] यह कोई दलील नहीं है। काफ़ी लचर कथन है। पर यह मानना ही पड़ेगा कि धर्म मनुष्य के लिए है। अतएव जब तक वह अपने धर्म को ठीक से समझेगा नहीं, केवल धर्म-धर्म पुकारने से कदापि कल्याण न होगा।

एक युग था जब हम धर्म तथा कर्त्तव्य को ठीक से समझना अपना कर्त्तव्य समझते थे और जहाँ कहीं समझ में नहीं आता था, मंत्र-द्रष्टा तथा धर्म-द्रष्टा ऋषियों से पूछते थे, समझने की चेष्टा करते थे। जब कलियुग आया और ऋषि लोग पृथ्वी पर से जाने लगे तो मनुष्यों ने घबड़ाकर देवताओं से पूछा कि अब हम क्या करेंगे? उन्हें उत्तर मिला कि "तर्क" से, समझदारी से काम लेना। अतएव तर्क की प्रतिष्ठा आज से ३००० वर्ष पूर्व यास्क अपने "निरुक्त" में कर गये हैं। उसी तर्क के सहारे हम

१. प्राचीन मत है कि १७,२८,००० वर्ष तक सतयुग था। १२,९६,००० वर्ष तक त्रेतायुग और ८,४६,००० वर्ष तक द्वापर था। कलियुग ४,३८,००० वर्ष तक रहेगा। इसका प्रारम्भ १८ फरवरी, ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व, शुक्रवार से हुआ। अर्थात् अपराध शास्त्र को अभी लाखों वर्ष तक पैदा होनेवाले प्राणी का अध्ययन करना है।

२. Carl Marx—"Critique of Hegal's Philosophy of Law"

यह समझना चाहते हैं कि पतित या अपराधी कौन है, क्यों है। उसके साथ क्या और कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका निर्णय तर्क[1] से ही हो सकता है। उसी तर्क के सहारे हम "पतन की परिभाषा" करना चाहते हैं।

पाप और अपराध के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय विधान में जो आदेश हैं, वे अंशतः धार्मिक है, अंशतः नैतिक हैं और अंशतः न्याय के अंग हैं। इनका ऐसा सम्मिश्रण है कि बिना तीनों को मिलाये कोई व्याख्या नहीं हो सकती।[2] धर्म को अलग कर देने पर कोरी नैतिकता अधूरी रह जाती है। न्याय को धर्म का रूप न देने पर न्याय-धर्म ही समाप्त हो जाता है। आदि आर्य सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है कि उन्होंने मानव प्रकृति को ऊपर लिखे तीन क्षेत्रों में बाँटकर ऐसा मिला दिया है कि आज तक पश्चिमी अपराध-विज्ञान उनके दृष्टिकोण तथा सिद्धान्त के दायरे के बाहर नहीं जा सका है। वेदों से प्राचीन ग्रन्थ संसार में कोई नहीं है। हम उन्हें आदि-ग्रंथ तथा मंत्र-द्रष्टा ऋषियों की रचना मानते हैं। यदि पश्चिमी हिसाब ही माना जाय तो वे कम से कम ईसा से १२०० वर्ष पूर्व के हैं।[3] लोकमान्य तिलक ने उनको ईसा के पूर्व ४००० वर्ष का माना है।

प्राचीन भारतीय मत

ऋग्वेद के अनुसार रुद्र और वरुण दंड देते। वरुण पाप-पुण्य देखते हैं, यानी मानव के पाप-पुण्य के साक्षी वरुण देवता हैं।[4] पाप का प्रतिशोध बृहस्पति (गुरु) के ज़िम्मे किया गया था। गुरु ही प्रतिशोध के देवता हुए।[5] झूठ सबसे बड़ा पाप है।[6]

१. "ऋषिसु उत्क्रामत्सु मनुष्या देवान् अब्रुवन् को नः ऋषिः स्यादिति। ते तर्कं ऋषि प्रायच्छन्"—यास्क (निरुक्त)।

२. P. K. Sen—Penology—Old & New, Pub. Longman Green & Co., Calcutta, 1943, Page 81.

३. जोन्स के अनुसार वेद ई० पूर्व १२०० वर्ष के हैं। हैंग के अनुसार २४०० वर्ष ई० पूर्व के तथा महेंजोदारो-हड़प्पा की खुदाई के बाद प्राप्त प्रमाण से ५००० वर्ष पुराने प्रतीत होते हैं।

४. ऋक्० १-२३-५

५. ऋक्० २-२३-१७

६. ऋक्० ७-१०-४०

पितरों का पाप भी भोगना होगा।[१] इसी पाप या पतन के कारण कर्मानुसार जन्म होता है। कीट पतंग आदि कर्मानुसार पैदा होते हैं।[२] जन्म में किये गये पापों का भोग इसी प्रकार भोगा जाता है। ईश्वरीय दंड की यही प्रथा है, प्रणाली है।

ऊपर लिखे वैदिक विधान से यह स्पष्ट है कि मानव के स्वभाव की दुर्बलताओं को समझकर उसकी रक्षा करने के लिए और दंड को धार्मिक, नैतिक तथा न्यायसंगत बनाने के लिए तीनों दृष्टि से व्यवस्था दे दी गयी और उसी व्यवस्था के अंतर्गत समूचे समाज की रक्षा होती थी। झूठ बोलना, धोखा देना या दूसरे का धन अपहरण करना, ये ऐसे मोटे नैतिक नियम हैं जो मन तथा बुद्धि के साथ हर समाज में व्याप्त हैं अतएव हर समाज तथा हर देश के लिए समान रूप से लागू हैं। इनकी अवज्ञा करनेवाला समाज का शत्रु है, उसे दंड मिलना चाहिए। दंड देना भी एक धर्म समझा गया है। समाज और उसकी रक्षा का वड़े सुन्दर रूप में वर्णन करते हुए कौटिल्य ने आज से २२०० वर्ष पूर्व लिखा था[३]––

"कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता पशु (१)। धान्य हिरण्य कुप्यविष्टि प्रदानादौ-पकारिकी (२)। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् (३)। आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेम साधनो दण्डः (४)। तस्य नीति दण्डनीतिः (५)। न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा-दण्डः इत्याचार्याः (९)।"

अर्थात् "कृषि, पशुपालन और वाणिज्य, यही वार्त्ता है। यह वार्त्ताविद्या धान्य, पशु, हिरण्य, ताँबा आदि अनेक प्रकार की धातु और नौकर चाकर आदि के देने से राजा-प्रजा का अत्यन्त उपकार करनेवाली होती है। इस विद्या से उत्पन्न हुए कोष और सेना से, अपने और पराये सबको राजा वश में कर लेता है। आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्त्ता इन सबके योग और क्षेम का साधन दंड ही है। दंडनीति का प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र ही दंडनीति कहलाता है। क्योंकि दंड के अतिरिक्त इस प्रकार का और कोई भी साधन नहीं है जिससे सब ही प्राणी झट अपने वश में हो सकें। यह आचार्यों का मत है।"

१. ऋक्० ७-८६-५

२. कौशीतकी उपनिषद् १-२ स इ "ह कीटो वा पतंगो वा मत्स्यो वा शकुनिर्वा सिंह :"

३. कोटलीय अर्थशास्त्र, प्रकाशक संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर, सन् १९२५–– १ अधि० ४ अध्याय, पृष्ठ १२-१३।

पर, आगे चलकर कौटिल्य लिखते हैं—

"नेति कौटिल्यः (१०)। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः (११)। मृदुदण्ड परिभूयते (१२)। यथार्हदण्ड : पूज्यः (१३)।"

"परन्तु, कौटिल्य ऐसा नहीं मानते। निष्ठुरतापूर्वक दंड देनेवाले राजा से सब ही प्राणी खिन्न हो जाते हैं; तथा जो दंड देने में कमी करता है, उसका तिरस्कार भी करते हैं। इसलिए उचित दंड देनेवाला राजा ही पूजनीय होता है।"

कौटिल्य पतित को क्षमा नहीं करना चाहते पर निष्ठुरता भी नहीं चाहते। दंड हो, पर मुलायम हो। आधुनिक अपराध-शास्त्र भी घूम फिरकर यही कहता है। हाँ, भारतीय नीति धर्म की भावना से भी युक्त है, इसी लिए—

"सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति (१४)"

"क्योंकि विधिपूर्वक शास्त्र से जानकर प्रयक्त किया हुआ दंड प्रजाओं को धर्म, अर्थ और काम से युक्त करता है।"

मनुस्मृति ने भी मानव की रक्षा के लिए दंड की महत्ता प्रतिपादित की है। मनु[1] के अनुसार—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बुधाः॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥[2]

"दंड सब प्रजाओं का शासन करता है। दंड ही सबकी रक्षा करता है। रक्षक जब सोते हैं, दंड जागता रहता है। पंडितों ने दंड को ही धर्म बतलाया है। विचार-पूर्वक दिया हुआ वह दंड सब प्रजाओं को प्रसन्न करता है। किन्तु, बिना विचार किये दंड का विधान राजा का सर्वनाश करता है।"

१. "संस्कृत साहित्येतिहास"—ले० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, प्रकाशक—श्री संकटा प्रकाशन मंडल, वाराणसी—के अनुसार कौटिल्य का समय ई० पूर्व ४०० वर्ष था, यानी आज से २३०० वर्ष पूर्व, मनुस्मृति का ई० पूर्व ३०० वर्ष था तथा याज्ञवल्क्य स्मृति का समय ईसा से १०० वर्ष पूर्व था।

२. मनुस्मृति—अध्याय ७ श्लोक १८ तथा १९

पतित को दंड देना धर्म है पर वह दंड निष्ठुर न हो, यही मनु का मत है। याज्ञ-वल्क्य ऋषि इसे अपनी स्मृति में और भी स्पष्ट कर देते हैं—

तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत्।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।।[१]

"उस राज्य को इस प्रकार प्राप्त करके राजा वंचक, शठ आदि दुराचारियों को दंड दे, क्योंकि पूर्व समय में ब्रह्मा ने धर्म को ही दंडरूप में रचा है।" दंड नाम यौगिक है क्योंकि गौतम ने कहा है कि दमन करने को दंड कहते हैं, इसलिए जो दमन के योग्य हो, उसका दमन करे।

किन्तु प्राचीन भारतीय सभ्यता में धर्म, नैतिकता तथा न्याय को एक साथ मिलाकर चलने चलाने से समाज की जो रक्षा हुई थी, क्या वही करने से आज भी अपराध की समस्या हल की जा सकेगी? इसमें कोई संदेह नहीं कि धार्मिक भावना बढ़ने से, पुण्य-पाप की भावना में वृद्धि होने से मनुष्य ग़लत रास्ते पर चलने से काफ़ी रोका जा सकता है। पर आज का अनुभव यह कहता है कि धार्मिक शिक्षा प्राप्त या धार्मिक वातावरण में पले हुए अपराधियों की संख्या भी कम नहीं है। पश्चिम के जेलों में बहुतों में यह नियम है कि सप्ताह में एक बार धर्मशिक्षा होती है। पादरियों का कहना है कि क़ैदी उनका उपदेश बड़े ध्यानपूर्वक सुनता है पर उसके दिल में बात कम बैठती है। प्रायः ऐसे अस्थिर चित्त के व्यक्ति देखे गये हैं जिनमें धार्मिक भावना के साथ ही साथ अपराध की प्रवृत्ति होती है।[२] श्री हीली लिखते हैं कि "मैं यह नहीं कहता कि नशेबाज़ी, ग़रीबी, कुसंगति आदि के प्रलोभनों से रक्षा करने में धार्मिक वातावरण सहायक नहीं होता या दुर्गुणों के चंगुल में फँसने से बचाव में धर्म से सहायता नहीं मिलती, पर अपराध की अन्य पृष्ठ-भूमि को ध्यान में रखने पर यह प्रकट होगा कि धर्म ने विशेष रक्षा भी नहीं की है।"[३]

हीली यह भी नहीं मानते कि अशिक्षा से अपराध बढ़ता है या घरेलू दूषित वाता-वरण से ही अपराध होता है। उन्होंने १००० बंदियों की जाँच पड़ताल की तो उससे

१. याज्ञ० स्मृति–आचाराध्याय श्लोक ३५४

२. William Healy—The Individual Delinquent, Pub. Little Brown and Company, Boston, 1927, Page 114.

३. वही–अध्याय ७, पृष्ठ ११४

पता चला कि उनमें से केवल ३११ ऐसे अपराधी थे जिनके माता-पिता शराबी थे। इनमें से १२९ ऐसे पिता थे जो कभी-कभी नशे में हो जाते थे तथा ऐसी ९ माताएँ थीं। ११८ पिता प्रायः नशे में रहते थे तथा ५ माताएँ भी; और २५ पिता तथा ८ माताएँ हमेशा नशे में चूर रहती थीं; पर ३११ एक तिहाई ही हुआ।" यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि पहले यह समझना चाहिए कि जिसे हम पतित तथा अपराधी समझते हैं वह कौन व्यक्ति है। उसकी परिभाषा क्या है। वेद तथा शास्त्र ने दंड को समाज की रक्षा के लिए आवश्यक धर्म माना है। धर्म का उल्लंघन करनेवाला अपराधी है। पर, क्या नियमों का उल्लंघन करना ही अपराध है? अपराध क्या है? धर्म-विरुद्ध क्या है? समाज-विरुद्ध क्या है?

अध्याय २

अपराध क्या है ?

धर्म के विरुद्ध किया गया कार्य पाप है। पाप भी अपराध है। पाप का इस लोक और परलोक में दंड मिलता है। समाज के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। नैतिकता के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। न्याय के विरुद्ध किया गया कार्य अपराध है। किन्तु, हर एक मनुष्य एक ही धर्म का माननेवाला नहीं होता। हर एक मनुष्य एक ही देश का नहीं होता। हर एक के समाज का ढाँचा भी एक समान नहीं होता। अतएव देश, काल, धर्म के अनुसार पाप तथा अपराध की व्याख्या भी भिन्न होती होगी। इसीलिए हर देश का अपराध-शास्त्र भिन्न होना चाहिए, हर एक का नैतिक विधान भिन्न होता ही है।

मोटे तौर पर सच बोलना, चोरी न करना, दूसरे का धन अपहरण न करना, हत्या न करना, पिता-माता का आदर करना तथा पर-स्त्री गमन न करना, पुण्य, सदाचार तथा नैतिकता समझा जाता है। पर, व्यवहार में भी ऐसा नहीं है। अपराध तथा पाप की व्याख्या इतनी बड़ी है कि हममें से कौन कह सकता है कि उसने सदैव धर्म, समाज तथा नैतिकता और फिर न्याय के भीतर काम किया है। न्याय के विषय में इंग्लैण्ड के प्रधान विचारपति ने कहा है कि "देश में इतने अधिक क़ानून बन गये हैं कि बिना उनका उल्लंघन किये जीना कठिन है।"

धर्म इतनी व्यापक वस्तु है कि बड़े-बड़े पंडित तथा मुल्ला नित्य उसकी व्याख्या करते रहते हैं, फिर भी शंका-समाधान की गुंजायश बनी रहती है। न्याय उस विधान का नाम है जिसे उस समय का शासक वर्ग यानी बहुमत "उचित" समझता है और "अल्पमत" उचित नहीं भी समझ सकता। आज जो विधान है, कल उसे बदला जा सकता है।[१] किसी देश में उपभोग की सामग्री को वाजिब मूल्य पर बेचना अनिवार्य

१. हैरल्ड लास्की--"राजनीति प्रवेशिका" (Introduction to Politics) **में लास्की के अनुसार विधान अस्थिर अतएव चंचल वस्तु है।**

है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो "चोरबाज़ारी" का अभियोग लग सकता है। अनेक देशों में जितना दाम चढ़ाकर माल बेचा जाय, वैध है, न्यायसंगत है। फिर, न्याय और समय की आवश्यकता में भी अन्तर हो सकता है। सन् १९४५ से १९५० तक फ्रांस में "राशन कंट्रोल" था, किन्तु सरकार चोरबाज़ारी को इसलिए स्वयं प्रोत्साहन देती थी कि लोगों को आवश्यक खाद्य सामग्री मिल जाती थी।[1] क़ानून बदलते रहते हैं, अतएव आज जो अपराध है, कल वही वैध बात होगी।

नैतिकता तथा धर्म

नैतिकता तथा धर्म को भी समझना बड़ा कठिन है। ईरान के इतिहास में लिखा है कि जब तक जमशेद राजा ईश्वर के अनुकूल काम करता रहा, वहाँ (ईरान में) सुख-शान्ति थी। "पवित्र कार्य करने पर ईश्वर की ओर से पारितोषिक मिलता है। अवगुण करने पर दंड मिलता है।"[2] पर पवित्र कार्य क्या है ? चोरी करना अपवित्र कार्य है, किन्तु पुराने सभ्य देश स्पार्टा में वही चोरी "चोरी" समझी जाती थी जिसमें चोरी करते समय देख लिया जाय। वरना, चुपचाप माल चुराकर घर में रख लेना कोई अपराध नहीं था। ईरान के नरेश जहहाक ने एक प्रेत की आज्ञा से दो मनुष्यों को रोज मारकर उनका भेजा साँपों को खिलाने का आदेश दे रखा था। वह कोई अपवित्र कार्य नहीं था। पवित्रता और अपवित्रता अपनी-अपनी व्याख्या पर निर्भर करती है।

नैतिकता तथा सदाचार की हर देश में भिन्न व्याख्या देखकर ही कुछ लोग धर्म को कामशास्त्र का अंग मान बैठे थे। ब्लेक ने तो यहाँ तक लिख दिया था कि "काम-भाव का ही विकृत रूप धर्म है।" आगे चलकर वे लिखते है—"न्याय के पत्थरों से कारागार की दीवारें बनीं, धर्म के पत्थरों से वेश्यालय बने।"[3] लेखक कटनर इसके बहुत आगे बढ़ गये। उन्होंने तो यहाँ तक लिख

१. उन दिनों फ्रेन्च पार्लमेण्ट में एक मंत्री ने कहा था—"चोर बाजार वालों को धन्यवाद है कि हमारा राष्ट्र भूखों नहीं मर रहा है।"

२. शाहनामा—फिरदौसी

३. "Religion was actually the corruption of sex. Prisons were built with stones of law, brothels with stones of religion"—Poet William Blake—**(१८ वीं सदी के अंत में)**

दिया कि "बहुत अधिक धार्मिक भक्ति दबी हुई कामुक वासना का परिणाम हो सकती है।"[१]

बड़ों का अवगुण गुण होता है

पवित्रता तथा अपवित्रता बड़े-छोटे पर भी निर्भर करती है। जूलियस सीज़र (रोम साम्राज्य के प्रथम सम्राट्) तथा फ्रेडरिक महान् ऐसे नरेश, सुकरात ऐसे दार्शनिक, मिकायल एंजेलो तथा सैफ्रो ऐसे कलाकार—ये सब पुरुष-पुरुष के साथ सम्भोग के शौकीन कहे जाते हैं।[२] यहूदी इतिहास में जूदा (यहोवा) के पुत्र ओनान अपना वीर्य पृथ्वी पर गिराते थे, यानी हस्तक्रिया करते थे, पर यह कोई अपराध न था। पुराने जापानी इतिहास में पुरुष-पुरुष-सम्भोग की चर्चा मिलती है। यूनानी कथाओं में जीउस और गेनीमेदो पुरुषों के परस्पर संभोग का वर्णन है। यूनानियों के अनुसार चिन नामक देवता ने यूकेतान में इस प्रकार के सम्भोग को प्रारम्भ कराया। यानी, यह काम भी देवता का था। ताहिती में धार्मिक कार्यों में स्त्री-स्त्री के साथ तथा पुरुष-पुरुष के साथ प्रसंग करता था। यह सब बड़ा पवित्र कार्य समझा जाता था।

कामदेवी की उपासना

भारतवर्ष में देवदासी प्रथा, यानी मंदिरों में देवताओं की सेवा के लिए समर्पित कन्याओं की (अर्थात् मंदिर की वेश्याओं की) प्रथा थी, जो भारत के स्वाधीन होने पर समाप्त हुई है। प्राचीन यूनान की राजधानी एथेंस में सरकारी तौर पर वेश्याएँ रखी जाती थी, सरकार को उनसे काफी कर मिलता था। यूनान की प्रसिद्ध "कामदेवी" के मंदिर में वार्षिक पर्व पर वेश्याएँ अपनी सब आय मंदिर में चढ़ा देती थी। विवाहिता स्त्रियों को जीवन में एक बार कामदेवी के मंदिर में जाकर अपना शरीर अर्पित करना पड़ता था और कोई भी पुरुष उनसे भोग कर सकता था। उस पुरुष से जो पैसा विवाहिता स्त्री को मिलता था, उसे वह मंदिर में चढ़ा देती थी। जिस प्रकार भारत में "सखीभाव" से उपासना चल पड़ी थी, यूनान में पुरुष लोग हिजड़े बनकर सखीभाव ग्रहण कर आजन्म कामदेवी की सेवा करते थे।

१. H. Cutner—"A short History of Sex Worship"—1940, Page 198.

२. वही—(Cutner की पुस्तक)

कोरिंथ में कामदेवी के मंदिर में १००० वेश्याएँ भक्तों की "सेवा" के लिए रहती थीं। यूनानी देवता प्रियापस मंदिर में नग्न खड़े रहते थे। वसंत ऋतु में उनके लिंग को गुलाब की माला पहनायी जाती थी। ठीक इन्हीं के समान रोमन देवता म्यूटिमस थे। दार्शनिक जैमब्लियस ऐसी उपासना की बड़ी प्रशंसा करते थे।

आजकल ऐसी बातें बड़े पतन की, निन्दनीय तथा हेय समझी जायँगी। पर कल के और आज के मानव में कोई अन्तर नही हुआ है। उसका स्वभाव, उसका विकार, उसकी वासना ज्यों की त्यों है। मानव की वासना तब और अब समान रूपेण निन्दनीय है। १३वीं सदी के बोक्कासियो[१] की एक स्त्री नायिका यदि सात पुरुषों से भी संतुष्ट नहीं हो सकती तो ब्रेंटम की वीर महिलाओं[२] की वासना की भट्ठी में कौन नहीं झुलस जायेगा ? नियम बदले हैं, नैतिकता की भावना बदली है, पर मनुष्य नहीं बदला है। १६वीं सदी में एक पादरी ने जो शब्द कहे थे, वे आज भी पूरी तरह से लागू हो सकते हैं। पादरी ने कहा था—

"इस शताब्दी के आदमियों में शालीनता कितनी दुर्लभ है। किसी प्रकार की बदनामी से, जुआ खेलने, डाका डालने या पैसा लेकर झूठ बोलने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता। उनकी स्त्रियाँ अपना हाथ तथा छाती विवस्त्र किये हुए व्यभिचार, बलात्कार, भष्टाचार तथा अप्राकृतिक संभोग आदि को प्रोत्साहन दे रही हैं।"

पर-पुरुष सेवन

इसलिए धर्म के व्यापक दायरे में अपराध किसे कहें ? रोम की कामदेवी वेनस का वर्णन हम कर आये हैं। बैबीलोन की कामदेवी मिलिता को प्रसन्न करने के लिए वहाँ की हर एक स्त्री को सरकारी क़ानून के अनुसार साल में एक वार पर-पुरुष-सेवन करना होता था। जिस परिवार पर ऋण हो जाता था, उसकी स्त्री मंदिर में भेज दी जाती थी। मंदिर में वेश्यावृत्ति से उसे रुपया कमाकर ऋण चुकाकर तब मंदिर के बाहर जाने की इजाज़त मिलती थी। जो जितनी जवान होती थी वह उतनी ही जल्दी कर्ज़ा चुकाकर वाहर आ जाती थी। अधेड़ और बुढ़ियों को काफ़ी समय लग जाता था। आर्मिनिया की कामदेवी "अनाइतीज" के मंदिर में लोग अपनी अविवाहिता कन्या चढ़ा देते थे। इस कन्या का उपभोग विदेशी यात्री करते थे। जिस कन्या का

१. De Cameron by Boccacio.

२. Brantome's "Gallant Ladies."

जितना अधिक उपयोग हो जाता था, वह विवाह के लिए उतनी ही "पवित्र" समझी जाती थी। स्पष्ट है कि बैबीलोन में हर एक स्त्री एक बार की वेश्या थी। आर्मिनिया में हर एक विवाहिता स्त्री दर्जनों विदेशियों के उपभोग से "पवित्र" बनती थी। यह सब "दुराचार" वैध था, जायज़ था, पुण्य था, धर्म के नाम पर था, देवी-देवता का वरदान था।

हत्या क्या है?

इस प्रसंग को हम यहीं छोड़ते हैं। यह कहा जा सकता है कि डाका, हत्या, चोरी आदि हर जगह "अपराध" होंगे; पर बात ऐसी नहीं है। रोम में हर पिता को अधिकार था कि अपनी विवाहिता कन्या को "पतित" होते देखे तो मार डाले। पति यदि ऐसा करे तो उसे प्राणदंड मिलता था। पिता यदि ऐसा करे तो वैध था। अफ्रीका में कई जातियों में शत्रु को मारकर देवता को चढ़ा देते हैं। दूसरी जाति के आदमी को पकड़कर बलिदान करना धर्म में शामिल है। अपनी जाति के आदमी को मार डालने पर प्राणदंड मिलता है। यहूदी लोग पहले अपने देवता को बालकों की बलि चढ़ाते थे। बाद में उसके स्थान पर लोग अपने शिश्न का ऊपर का चमड़ा काटकर चढ़ाने लगे। तभी से ख़तना का रिवाज़ चला। हैने का कथन है कि ख़तना केवल ऐन्द्रियिक सुख, स्त्री-सम्भोग सुख के लिए है। जो हो, बाल-बलि यहूदी सभ्यता में पुराने काल में अपराध नहीं थी।

चोरी, डाका आदि के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। हम इस सम्बन्ध में जितना अधिक विचार करेंगे, उतना ही प्रकट होगा कि अपराध की व्याख्या करना कठिन है। पतन और पतित या अपराधी किसे कहा जाय, यह निर्णय आसानी से नहीं हो सकता। हम अपराध के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर अलग-अलग विचार करें तो शायद कुछ परिणाम निकल सके।

अध्याय ३

काम-वासना का मौलिक आधार

अपराध-शास्त्र के अनेक पंडितों का कथन है कि कामवासना या कामुक प्रेरणा ही समूचे अपराधों की जननी है। फ्रायड ऐसे विद्वान् मनोवैज्ञानिक या हैवलाक एलिस ऐसे काम-शास्त्र-पंडित बच्चे का अपनी माता के स्तन से खेलना भी कामभावना का प्रतीक समझते हैं। हैवलाक एलिस तो लिखते हैं कि "जिस प्रकार हज़रत मूसा ने होरेह पर्वत की चोटी पर वहाँ की झाड़ियों को जलाने की निरर्थक चेष्टा करती हुई अग्नि को देखा था, वैसे ही यह वासना की आग है जो कभी नहीं बुझती, उसे कोई नहीं बुझा सकता।"[१] जो कुछ अनर्थ इस संसार में होते हैं, सब इस वासना के कारण। जी० सिम्पसन मार के अनुसार "हमारे स्वभाव में जो कुछ उदार तथा उच्च बातें हैं उनका आधार हमारी कामवासना है।"[२] करीब करीब यही मत सन् १९२९ में "विश्व कामुक सुधार समिति" द्वारा आयोजित "कामुक सुधार कांग्रेस" में प्रकट किया गया था। इस सम्मेलन में बर्ट्रेंड रसेल, जार्ज बर्नर्ड शा, सी० ई० एम० जोड ऐसी विभूतियाँ उपस्थित थीं।[३]

काम-वासना यदि मनुष्य के जीवन में एक पूर्णतः स्वाभाविक वस्तु है तो उस वासना की तृप्ति के लिए किया गया "अपराध" क्या वास्तव में अपराध है? अभी कल तक भारतवर्ष में वेश्याएँ खुले आम सड़कों पर या मकान की खिड़कियों पर खड़ी होकर ग्राहक तलाश किया करती थीं। कोई उन्हें अपराधी नहीं कहता था। सन् १९५८ में भारत सरकार ने वेश्यावृत्ति के विरुद्ध कानून बना दिया और अब कानून की दृष्टि

१. Havelock Ellis **अपने "कामशास्त्र" में**

२. G. Simpson Marr—Sex in Religion, Pub. George Allen & Unwin Ltd., 1936, Page 16.

३. Sexual Reform Congress, London—1929—Organised by World League for Sexual Reform.

में वही भारी अपराध हो गया। किन्तु आज भी हमारे ऐसे अनेक व्यक्ति मिलेंगे जिनका विश्वास है कि जिस प्रकार सार्वजनिक शौचालय तथा मूत्रागार होना ज़रूरी है उसी प्रकार समाज में वेश्याएँ भी एक बड़ी भारी कमी पूरा करती है। हम आगे चलकर इस सम्बंध में भी विचार करेंगे। यहाँ तो हम केवल यही कहना चाहते हैं कि न्याय के बदलते ही नैतिकता बदल गयी। अन्यथा वेश्यावृत्ति अपराध नहीं था।

मानव-स्वभाव

कामवासना मानव के स्वभाव के साथ लगी हुई है। पुरुष-स्त्री का एक दूसरे के प्रति आकर्षण अनन्त काल से चला आ रहा है। यह सृष्टि भी पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से बनी है। परब्रह्म यदि सत्य है तो महामाया भी सत्य है। मायामय जगत् में माया का, स्त्री का अनोखा स्थान है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना तो कर ली पर इस रचना में, सृष्टि में वह अपने ही बंधन में बँध गया। अपनी ही माया में जकड़ गया। माया में जकड़े हुए का नाम ही मनुष्य है। जिस प्रकार मकड़ा अपनी ही सर्जनात्मक शक्ति से जाल बनाकर अपने को घेर लेता है,[१] वैसे ही मानव की दशा है। जीवन के दो रूप हैं—एक तटस्थ द्रष्टा है जो अलग बैठा सब कुछ देख रहा है तथा दूसरा जीवन का भोग करनेवाला है।[२] पहले को आत्मा मान लेना चाहिए। दूसरा मन तथा बुद्धि वाला प्राणी है। बिना भोग के जीवन कैसा—और बिना स्त्री के भोग का, संसार का सुख नहीं हो सकता। इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने काम का अर्थ "सुख" माना है। जब सुख मिलेगा तो अर्थ की, धन की प्राप्ति करने की प्रेरणा तथा प्रवृत्ति मिलेगी। काम के बाद अर्थ—और इन दोनों की प्राप्ति के बाद धर्म का साधन होगा। धर्म से ही मोक्ष प्राप्त होगा। इसी लिए जीवन की चार सीढ़ियाँ हैं—

काम—अर्थ—धर्म—मोक्ष।

पुरुष तथा माया

सबसे बड़ी भोग्य वस्तु स्त्री है। बिना उसके जीवन अधूरा है। यह सभी सभ्यताओं तथा धर्मों का उपदेश है। हम जिस प्रकार परमात्मा की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन चीन में ताओ-वाद के प्रवर्तक लाओत्से ताओ को ब्रह्म मानते थे।

१. श्वेताश्वतरोपनिषद्—६, १०

२. मुण्डकोपनिषद् ३-१

प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस भी ताओ की उपासना की सलाह देते थे। वे कहते थे "अपना हृदय ताओ को अर्पित करो।" प्राचीन चीन का यह भी मत था कि स्वर्ग यानी भगवान् के दो प्रतिनिधि "जैन" तथा "जिन" (पुरुष तथा प्रकृति या पुरुष तथा माया) के द्वारा मानव-सदाचार संचालित तथा नियंत्रित होता है। इसी लिए पूर्णता को प्राप्त करने के लिए, लाओत्से का उपदेश था कि मानव को "ताओ के साथ जैन-जिन द्वारा संचालित सदाचार का विवाह कर देना चाहिए।"

पुरुष-माया के इस भाव को चीनी धर्म में, अर्थात् प्राचीन चीन के शास्त्रकारों ने बड़ा स्पष्ट रूप दिया है। उनके कथनानुसार इस सृष्टि में पुरुष तथा प्रकृति में निरन्तर अंतर्द्वन्द्व तथा खेल हो रहा है। पुरुषरूपी, आध्यात्मिक शक्तिवाला **यांग** है और प्राकृतिक शक्ति तथा स्त्री-रूपी यिन है। यांग और यिन ही मानव के समूचे आचार के आधार हैं। सदाचार तथा नैतिकता का सिद्धान्त तथा मूल आधार इनके संयोग से ही पैदा होता है। यांग और यिन के संयोग का प्रतीक चीन "यी" मंत्र तथा संकेत है।[१] चीनी जिसे स्त्री जातिवाली "यिन" कहते हैं, उसी को बहुत से दार्शनिक "वास्तविकता को छिपानेवाली कल्पना" कहते हैं। किसी न किसी रूप में यूनानी दार्शनिक प्लेटो भी माया को मानते हैं। वे लिखते हैं कि "हम संसार को छायारूप में देखते हैं। वास्तविकता हमको दिखाई नही पड़ती।"[२]

यूनानी प्रेम

यूनानी पुराण के अनुसार प्रारम्भ में जो मनुष्य था वह महान् शक्तिशाली था। इसलिए कि वह अर्द्धनारीश्वर था यानी पुरुष-स्त्री साथ साथ था। उसका आधा शरीर पुरुष का तथा आधा स्त्री का था। देवों को इतने शक्तिशाली मानव को दुर्बल करना था इसी लिए अपोलो नामक देवता ने उसे काट कर दो टुकड़े कर दिये। पुरुष तथा स्त्री अलग अलग हो गये। तभी से आज तक दोनों टुकड़े एक साथ मिलने के लिए, एक होने के लिए बेचैन रहते हैं, बेचैन हैं और लगातार एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसी प्रयत्न तथा चेष्टा का नाम "प्रेम" है। यह प्रेम ही सृष्टि का सबसे बड़ा रहस्य है। प्लेटो ने लिखा है कि एक गोष्ठी में एरिसिमाचूस[३] ने प्रस्ताव

१. The Spirit of Chinese Philosophy—By Fung-Yu-lan, Page 89.

२. Plato—Republiqe.

३. Erissymachus.

किया कि लोग "प्रेम" पर विचार करें। उस समय एरिस्तोफेनीज[1] ने एक "सुन्दर व्याख्यान" में ऊपर लिखी अपोलो की कथा बतलाकर स्त्री और पुरुष के अनन्त प्रेम का वर्णन किया था। यही प्रेम जब दूषित रूप धारण कर लेता है तो मानव समाज में बड़ी गड़बड़ी पैदा करता है। इसीलिए सुकरात ने मानव की आत्मा की महत्ता पर ज़ोर दिया था। यूनान में, सुकरात के समय में "प्रेम" ने वासना का ऐसा रूप धारण कर लिया था कि आज हम जिसे भ्रष्टाचार या दुराचार कहते हैं, स्त्री-पुरुष के जिस बंधन-रहित सम्बन्ध को बुरा समझते हैं, वहाँ पर सब कुछ जायज़ था। आज जिसे अपराध समझा जाता है, पिछले दिनों वही सर्वथा उचित था। किसी चीज़ के उचित और अनुचित होने की परिभाषा हम देते हैं—"जिस समय की जो नीति होती है, जो व्यवहार होता है, उस समय का क़ानून उसी के अनुरूप होता है। जिस समय जो नीति होती है, वह तत्कालीन न्याय की भावना पर निर्भर करती है।"—यूनानी दार्शनिक अरिस्तू[2] के शिष्य टामस एक्विनास[3] का यह मत आज भी अकाट्य है। इसी लिए अरिस्तू ने लिखा था कि कोई व्यक्ति जो भी काम करता है, यदि उसकी भावना बुरी नहीं है तो उसके कार्यों को नैतिक अवगुण कहना उचित नहीं है। "देवता में बुरी भावना हो ही नहीं सकती।"[4]

देवता में यदि बुरी भावना नही हो सकती तो मनुष्य में क्यों हो? दोनों में अन्तर ही क्या है। प्रेम के भूखे स्त्री-पुरुष यदि कामवासना के प्रसंग में कुछ ऊँचा नीचा कर बैठते हैं तो वह अपराध क्यों समझा जाय? वासना की इसी स्वाभाविकता को सिद्ध करने के लिए बेंजामिन ने लिखा है कि वासना न तो पूर्णतः "पुरुष" है और न "स्त्री"। यह पुरुष-स्त्री के अंशों का विचित्र सम्मिश्रण है।[5]

फ्रायड का मत

स्त्री-पुरुष की स्वाभाविक कामुकता को क़ाबू में रखने के लिए ही विवाह-बंधन

१. Aristophenes.

२. Aristotle.

३. Thomas Aquinas.

४. Harry V. Jaffa—Thomism and Aristotalism–Page 59

५. Hanry Benjamin, M. D. New York.

की रचना हुई।[१] पर आदिकाल से ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार के सम्बन्ध से, जिस प्रकार का वीर्य होता है, उसी प्रकार का बच्चे का स्वभाव तथा जीवन के प्रति रुख़ बनता है। फ्रायड (मनोविज्ञान के प्रकाण्ड पंडित) के अनुसार स्वभाव का अध्ययन कामशास्त्र से सम्बंध रखता है। "इसी लिए इतिहास के व्यवस्थित अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले काम सम्बंधी प्रवृत्तियों का तथा उनमें परिवर्त्तन का अध्ययन किया जाय।"[२] फ्रायड के अनुसार मानवस्वभाव में दोनों चीज़ें मिलती हुई है। दोनों वस्तुएँ उसके स्वभाव में अन्तर्निहित है—प्रेम[३] तथा घृणा और विनाश की भावना।[४] प्रेम स्त्री का प्रतीक है। घृणा और विनाश पुरुष का। हमारे शास्त्रकारों ने इसी को राग-द्वेष कहा है। मन का राग और द्वेष ही सब अपराधों का कारण होता है। इसलिए असली अपराधी मनुष्य नहीं, मन है और वही बंधन तथा मोक्ष का कारण होता है।[५]

यह मन तरह-तरह से अपने को सन्तुष्ट करने के उपाय किया करता है। मध्ययुग में यूरोप में एक विशिष्ट सम्प्रदाय था जिसका नाम "मनिकान" था। इसके माननेवाले जानवरों के साथ प्रसंग करते थे और अपनी स्त्री से स्वाभाविक प्रसंग न कर अप्राकृतिक संभोग करते थे। वह सब धर्म के अंतर्गत था। यहूदी विधान के अंतर्गत वेश्यावृत्ति अवैध थी, पर पैसा देकर परायी स्त्री को फुसलाना तथा उसके साथ शय्यागत होना सर्वथा वैध और उचित था।[६]

स्त्री का कर्त्तव्य

हिन्दू धर्म में पुरुष तथा प्रकृति, ब्रह्म तथा माया को जैसे ऊँचे रूप में दर्शाया गया है तथा उनका निरूपण किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। हम अपने

१. Westermarck—Origin and Development of Moral ideas.

२. G. Raltray Taylor—Sex in History—Pub. Thomas and Henderson, London--Page 3.

३. Eros = प्रेम

४. Thanatos = घृणा की तथा विनाश की भावना

५. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः—मनु

६. अंग्रेजी में इसके लिए Harlot शब्द का प्रयोग किया गया है पर Oxford Dictionary में Harlot का अर्थ Prostitute यानी वेश्या दिया है।

धर्म के विषय में विशेष नहीं लिखना चाहते। स्त्री को माता का जो महान् रूप हिन्दू शास्त्रकारों ने दिया है, देवी, भगवती, माता की उपासना का जो उज्ज्वलतम रूप है, वह हमारी एक ख़ास देन है। बार-बार स्त्री को "माता" "माता" कहकर मन में यह बिठा दिया गया है कि स्त्री भोग की नहीं, वासना की नहीं, उपासना की वस्तु है। बाबा विश्वनाथ और माई अन्नपूर्णा की कल्पना से किसे रोमांच न हो आयेगा। विश्व के स्वामी का महत्त्व इसी के कारण बतलाया गया है कि उनकी शादी माई अन्नपूर्णा से हो गयी है।[1] परम कल्याणकारी "शिव" में से यदि "इ" निकाल दिया जाय तो "शव" (मुर्दा) हो जायेगा। भागवत तथा विष्णुपुराण[2] में स्त्री संसार के समूचे गुण तथा सौन्दर्य का आधार और पुरुष की अपूर्णता को पूर्ण करनेवाली मानी गयी है।

विष्णुपुराण में जिस सुन्दर ढंग से स्त्री की मर्यादा स्थापित की गयी है, वैसी शायद ही संसार की अन्य किसी भाषा में मिलेगी। पराशर ऋषि ने लक्ष्मीजी का वर्णन करते हुए कहा है[3] कि जिस प्रकार विष्णु भगवान् सर्वव्यापक हैं, वैसे ही लक्ष्मी भी। विष्णु अर्थ हैं, ये वाणी हैं। हरि न्याय हैं, ये नीति हैं। भगवान् विष्णु बोध हैं, ये बुद्धि हैं। वे धर्म हैं, ये सत् क्रिया हैं। हे मैत्रेय, विष्णु जगत् के स्रष्टा हैं और लक्ष्मी सृष्टि हैं। वे भूधर, ये भूमि हैं। विष्णु संतोष हैं, ये सर्वतुष्टि हैं। भगवान् काम हैं, लक्ष्मीजी इच्छा हैं। वे यज्ञ हैं, ये दक्षिणा हैं। जनार्दन पुरोडाश हैं, ये घृत की आहुति हैं। वासुदेव हुताशन हैं, लक्ष्मीजी स्वाहा है। विष्णु शंकर है, ये गौरी हैं। वे सूर्य हैं, ये प्रभा हैं। वे चन्द्रमा हैं, ये उसकी अक्षय कान्ति हैं। वे सर्वगामी वायु हैं, ये जगत् की गति तथा आधार हैं। वे आकाश हैं, ये स्वर्गलोक हैं। विष्णु समुद्र हैं, ये तरंग हैं। विष्णु आश्रय हैं, लक्ष्मीजी शक्ति हैं। वे मुहूर्त्त हैं, ये कला हैं। वे दीपक हैं, ये ज्योति हैं।[4] विष्णु वृक्षरूप हैं, ये लता हैं। वे नद हैं, ये नदी हैं। वे ध्वज हैं, ये पताका हैं। रति और राग भी विष्णु और लक्ष्मी स्वरूप है।[5]

इससे और अधिक सुन्दर ढंग से पुरुष-स्त्री का महत्त्व और क्या कहा जा सकता है? जिस स्त्री का सृष्टि में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान हो, वह केवल भोग तथा वासना

१. भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्—देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम्।
२. विष्णुपुराण—श्लोक २०७
३. विष्णुपुराण, प्रथम अंश, अध्याय ८, श्लोक १७ से ३५ तक
४. ज्योत्स्ना लक्ष्मी प्रदीपो सौ—श्लोक ३०, अ० ८
५. रती रागश्च मैत्रेय—श्लोक ३३, अ० ८

की वस्तु नहीं हो सकती। उसका उससे ऊपर उठकर जो रूप है, वह मानव को वासना में गिरने से काफ़ी रोकता है। फिर भी, स्त्री भोग की तथा वासना की वस्तु है, यह अस्वीकार नही किया गया है। महाभारत में दुर्योधन की सेना के साथ गुप्तचर, गवैये तथा गणिकाएँ भी काफ़ी संख्या में थीं।[१] धर्मराज युधिष्ठिर ने भी युद्ध के पूर्व हस्तिनापुर के जिन लोगों के पास अपना अभिवादन भेजा था उनमें "मेरे मित्र, सुन्दर वस्त्र तथा सुन्दर आभूषणों से युक्त, सुगंधित, प्रसन्न, आनन्द देनेवाली वेश्या स्त्रियों का भी कल्याण पूछ लेना।"[२]

पर माता की भावना से स्त्री जहाँ नीचे उतरी, वह घोर उपद्रव तथा कलंक का कारण बन सकती है। उर्दू में कहावत ही है कि दुनिया का सब झगड़ा "ज़र-ज़मीन-ज़न" (धन, पृथ्वी तथा स्त्री) का है। हमारे शास्त्रकारों ने स्त्री से सावधान रहने की सख्त हिदायतें दी हैं। पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से ही मानव की उत्पत्ति हुई। परमात्मा ने अपने को दो टुकड़ों में विभाजित कर दिया, एक पुरुष हुआ, दूसरा स्त्री। इनके संयोग से विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वही मनु हैं।[३] मनु ने पर-स्त्री से बातें करने का तरीक़ा भी बतला दिया है। वे लिखते हैं—

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः।
तां ब्रूयाद् भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च॥ २-१२९

अर्थात् जो पराई स्त्री हो, जिससे योनि-सम्बंध न हो यानी बहिन आदि न हो, उससे बोलने के समय "भवति", "सुभगे" आदि से सम्बोधन करे। पर, स्त्री कितनी अविश्वसनीय है—

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः॥

(अपने श्रृंगार आदि से पुरुषों को मोहित कर उनमें दूषण उत्पन्न करना स्त्रियों का स्वभाव है। अतएव पंडित लोग उनमें प्रवृत्त नहीं होते।)

१. महाभारत, १९५, १८, १९

२. महाभारत, ३०-३८

३. मनुस्मृति, टीकाकार पं० केशवप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास १९४८, "विराजमसृजत्प्रभुः", अ० १-३२

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(माता, वहिन, पुत्री, इनके साथ एकान्त में न बैठे, क्योंकि इन्द्रियों का समूह वलवान् है, शास्त्र की रीति से चलनेवालों को भी वश में कर लेता है।)

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
पर्ववर्ज व्रजेच्चैनां तत्त्वतो रति काम्यया॥ ३-४५

(रुधिर के दर्शन समय से जाने गये समय को ऋतुकाल कहते हैं—उस समय से अपनी स्त्री में ही सदा सन्तुष्ट रहे।)

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम्।
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः॥ ४-४४

(तेज की इच्छा करनेवाला पुरुष अपनी स्त्री को आँख में अंजन लगाते समय, तेल लगाते हुए, छाती खोले हुए तथा बच्चा पैदा करते समय न देखे।)

अपने शृंगार शतक मे भर्तृहरि लिखते है —

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङमुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः॥

(मन्द मुसकान, लज्जा करना, मुख फेर लेना, तिरछी दृष्टि से देखना, मीठी बातें करना, ईर्ष्या करना, कलह करना, और अनेक प्रकार के भाव प्रकट करना इत्यादि सब बातों से स्त्री पुरुष के लिए बंधनस्वरूप ही है (यानी उसे बाँधे रहती है)।

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेम-प्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्रव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तद्वपुः
ध्येयं किं नवयौवनं सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥७॥

(रसिकों के देखने योग्य उत्तम वस्तु क्या है? मृगनयनी स्त्रियों का प्रेम से प्रसन्न मुख। सूँघने योग्य उत्तम पदार्थ क्या है? स्त्रियों के मुख की भाफ। सुनने योग्य क्या है? स्त्रियों की वाणी। स्वाद के योग्य क्या है? स्त्रियों के ओष्ठ-पल्लव का रस।

स्पर्श करने योग्य क्या है ? स्त्रियों का शरीर। ध्यान करने योग्य क्या है? स्त्री का नवयौवन और उसका विलास।)

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां,
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानाम्।
सुरतजनितस्वेद खिन्नगंडस्थलीनाम्,
अधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति॥२६॥

(छाती पर लेटी हुई, केश जिनके खुल रहे हैं, आधे नेत्र मुँद रहे है, जो कुछ-कुछ हिल रही है, मैथुन के परिश्रम से जिनके कपोलों पर पसीना झलक रहा है, ऐसी स्त्रियों के अधरामृत को भाग्यवान् पुरुष ही पान कर सकते है।)

स्त्री की मादकता

प्राचीन भारत की रसिकता तथा कामोपासना के अनेक उदाहरण यहाँ दिये जा सकते हैं, पर यह विषय काफी बड़ा है। ऐसे अनेक काव्य हैं जो काम-शास्त्र का उत्कट उपदेश तथा जीवन का असली मंत्र भी देते हैं। अश्वघोष ने अपने सौन्दरानन्द काव्य[1] में नन्द द्वारा अप्सराओं का, इन्द्र के वन में विहार करते समय का, सुन्दर वर्णन कराया है। देवताओं के यहाँ भी वेश्याएं रहती थीं। वे लिखते है —

सदा युवत्यो मदनैककार्याः।

"वे सदा युवती रहती हैं। काम-क्रीड़ा ही उनका एकमात्र कार्य है।"[2]

१. सौन्दरानन्द काव्य—अश्वघोषकृत, सम्पादक और अनुवादक श्री सूर्यनारायण चौधरी, प्रकाशक संस्कृत भवन, कठौलिया, पो० काझा, जि० पूर्णिया, बिहार, सन् १९४८।

२. सर्ग १०, श्लोक ३६। सिद्धार्थ के मौसेरे तथा सौतेले भाई नन्द थे, बड़े विलासी थे। उनका चरित्र बौद्ध संन्यासी अश्वघोष ने लिखा है। स्व० डा० बरुआ के अनुसार अश्वघोष सौत्रान्तिक भिक्षु थे। डा० लाहा के अनुसार इनका समय प्रथम ईसवी सदी में है। इन्हीं का लिखा बुद्धचरित्र पाँचवीं शताब्दी में चीनी भाषा में अनूदित किया गया था।

स जाततर्षोऽप्सरसः पिपासुस्तत्प्राप्तयेऽधिष्ठितविक्लवार्तः ॥१०, ४१॥

प्यास उत्पन्न होने पर वह अप्सराओं को (भोग करने) पीने की इच्छा करने लगा।

किन्तु, ऐसा नहीं है कि स्त्रियों की ही निन्दा हो या वर्णन हो। अश्वघोष ने पुरुषों की भी निन्दा करते हुए लिखा है—

नेच्छन्ति याः शोकमवाप्तुमेवं श्रद्धातुमर्हन्ति न ता नराणाम् ॥६-१९॥

"जो स्त्रियां इस प्रकार का शोक नहीं करना चाहतीं उन्हें पुरुषों का विश्वास नहीं करना चाहिए।"

कामवासना को कौटिल्य भी पुरुष का शत्रु मानते हैं। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि "स्त्री तथा पुरुष में कभी मेल नहीं खा सकता।"[१] लैकी के कथनानुसार "प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि स्त्री नरक का द्वार तथा सब बुराइयों की जननी है।"[२] पुराने ज़माने के लोगों का ख्याल था कि स्त्री का दर्जा पुरुष से कहीं नीचा है, क्योंकि वह कामुक वासना पैदा करती है। उसके चंगुल से बचाने के लिए ही विवाह की प्रथा चली।[३]

कामुक वासना पैदा करनेवाली स्त्री के विषय में "कुट्टनीमतम्"[४] में बड़ा भावुक वर्णन मिलता है।

महाभारत में

महाभारत के अरण्य पर्व की कथा है कि शंकर भगवान् से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के बाद देवों के राजा इन्द्र के यहाँ अर्जुन ठहरे हुए थे।[५] इन्द्र ने अपनी अप्सरा

१. G. K. Chesterton,

२. Lacky—The History of European Morals.

३. G. Sampson Marr—Sex in Religion—Page–42

४. कुट्टनीमतम् या शाम्भमलीमतम्, ले० दामोदर गुप्त; कश्मीरनरेश जयापीड़ के प्रधान मंत्री। रचनाकाल ईसवी सन् ७२५ से ७८६ के बीच, सम्पादक, श्री तनसुख राय मनसुखराय त्रिपाठी, बम्बई, संस्करण १९२४

५. महाभारत, सम्पादक पी० पी० शास्त्री, प्रकाशक वी० रामस्वामी शास्त्रुलर एंड संस, २९२, इस्प्लानेड, मद्रास, संस्करण १९३३

उर्वशी को अर्जुन के पास भेजने का आदेश अपने दरवार के "स्त्री संसर्ग विशारद"[१] चित्रसेन को दिया। रात्रि में उर्वशी जब अर्जुन के पास चली तो उसके रूप-लावण्य का वर्णन महर्षि व्यास ने ऐसे कामुक ढंग से किया है कि उसकी कल्पना नहीं होती। बहुत कम कपड़ा पहने हुए वह सुन्दरी ऐसे चली कि मुनियों का मन भी डोल जाय—

ऋषीणामपि दिव्यानां मनोव्याघात कारणम्।
सूक्ष्मवस्त्रधरं भाति जघनं चानवद्यया॥

जब अर्जुन उर्वशी का भोग करने पर राज़ी न हुए और उनको धर्मशंका हुई तो उर्वशी ने उन्हें समझाया कि हम तो देवताओं की वारांगना (वेश्याएँ) हैं। तपस्या से ही हमारा रमण हो सकता है। वह कहती है—

अनावृता वयं सर्वा देवदारा वराङ्गनाः।
तपसा रमयन्त्यस्मान् न चास्त्येषां व्यतिक्रमः॥[२]

वन में द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर जयद्रथ ने कोटिक को द्रौपदी के पास अपनी वासना का प्रस्ताव लेकर भेजा और कोटिक से कहा—

कस्य कैषानवद्यांगी यदि वापि न मानुषी।
विवाहेच्छा न मे काचिद् इमां दृष्ट्वातिसुन्दरीम्॥[३]

पराधीन स्त्री

कामवासना उत्पन्न करनेवाली स्त्री स्वयं कितनी कामुक है, इसकी कथा ऋग्वेद में भी है।[४] शाश्वती पत्नी को बड़ा हर्ष हुआ कि उसकी तपस्या से उसके पति असंग का शिश्न स्थूल हो गया, यानी तपस्या ऐसे कामों के लिए भी हो सकती थी। काम-वासना से भरी स्त्री को इसी लिए इतनी बड़ी विपत्ति मानकर भर्तृहरि ने अपने श्रृंगार

१. वही भाग, अरण्य पर्व, अध्याय ४१, श्लोक ३, पृष्ठ २३१

२. श्लोक ५९, पृष्ठ २३८

३. वही भाग २, अध्याय २१८, श्लोक १२, पृष्ठ १२८१

४. यह कथा "The Development of Hindu Iconography—By Jitendranath Bannerjee, Pub.—University Press, Calcutta—संस्करण १९४१, में पृष्ठ ७०, ७५ पर उद्धृत की गयी है।

शतक में लिखा है कि संसार से छुटकारा पाना कठिन न होता यदि मदिरा समान नेत्रवाली स्त्रियां बीच मे बाधा न डालतीं"—

संसार तव निस्तारपदवी न दवीयसी।
अन्तरा दुस्तरा न स्यु र्यदि ते मदिरेक्षणा॥

ऐसी विपत्ति से बचाने के लिए ही हमारे शास्त्रकार चाहते थे कि किसी न किसी प्रकार एक स्त्री एक पुरुष से बँध जाय। इसीलिये शास्त्रीय विवाह के आठ प्रकार रखे गये। इनमें से किसी प्रकार से भी स्त्री ग्रहण करने पर वह पूर्णतः विवाहिता मान ली जाती थी—

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच।[1]

कन्या भगा ले जाकर आसुर विवाह हो जाता था। प्रेम-वश सम्बंध हो जाय तो गांधर्व विवाह हो गया (केवल प्रेम करने से ही, पुरुष स्त्री को या स्त्री पुरुष को प्रेम करे तो विवाह मान लेना चाहिए)। किसी प्रकार शरीर-सम्बंध हो जाय तो राक्षस विवाह हो गया, पर पैशाच विवाह बलात्कार को कहते हैं, जिसके लिए अंग्रेजी में "रेप" शब्द है। ऊपर लिखे किसी भी ढंग के संसर्ग को विवाह मान लेने का यह अनोखा तरीका भारतवर्ष का है, जिससे दुराचार तथा योनि सम्बन्धी अपराध पर बड़ी रोक रहती थी।

चूँकि काम को उत्तेजित करनेवाली स्त्री ही मानी जाती थी, इसी लिए प्राचीन यूनान में स्त्री का दर्जा शाक-भाजी की तरह माना जाता था।[2] स्त्री को कभी स्वतंत्र नही रहने देना चाहिए, यह मत मनु आदि का भी है। कौमार में पिता रक्षा करे, जवानी में पति तथा बुढ़ापे में बेटा—"न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।" कनफ्यूसियस का भी यही मत था—"स्त्री सदैव परतंत्र रहती है।" उसको चाहिए कि अपने पति या श्वशुर के प्रति समुचित रीति से विनीत रहे।[3] स्त्री को इतना परवश मानते थे कि उसे अपने मन से विवाह करने की अनुमति नही थी। अबूहरैरा कहते हैं कि स्त्री यदि अपने से अपने को किसी पुरुष को सौपे तो व्यभिचारिणी कहना चाहिए। किन्तु, इब्न-अब्बासा बतलाते है कि हज़रत मुहम्मद साहब से एक स्त्री ने कहा कि "मेरे पिता

१. कन्यादान, ले० डा० सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, संस्करण १९५४, पृष्ठ २५

२. Dayers—A Short History of Women

३. ये उद्धरण डा० सम्पूर्णानन्द की "कन्यादान" नामक पुस्तक के हैं।

ने मेरी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ शादी की।" हज़रत ने उसे अपनी इच्छा से विवाह करने की अनुमति दी। मेन के अनुसार[1] पुराने ज़माने में पिता या पति स्त्री को प्राणदंड दे सकते थे। उत्तरी यूरोप में विवाह के समय कन्या का मूल्य उसके पिता को दे देते थे।

स्त्री की महत्ता

किन्तु प्राचीन भारत के शास्त्रकारों ने जहाँ स्त्री की बुराइयों की तथा कामुकता की मूर्ति चित्रित किया है, वहीं उसकी महत्ता या मर्यादा में किसी प्रकार की कमी नही आने दी है। उसके मातृत्व को, उसकी महानता को कूट कूटकर हमारे दिमाग़ में भर दिया गया है और यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक योनि सम्बन्धी अपराध सबसे कम भारत में होते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि भारत में अतिथि-सेवा की भावना ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि मेहमान की ख़ातिर के लिए अपनी पत्नी तक को भेज देते थे और वह मेहमान के साथ संभोग करने को बुरा नहीं मानती थी। कुछ लोग द्रौपदी का उदाहरण देते हैं कि उनके पाँच पति थे। तराई भाभर में अब भी ऐसे परिवार है जिनमें समूचे घर में—या सब भाइयों में एक स्त्री होती है। पर, द्रौपदी की कथा तो यह है कि जब अर्जुन द्रौपदी को बरकर लाये थे उन्होंने कुटिया के बाहर से माता को आवाज लगायी कि "माँ भिक्षा ले आया हूँ।" उन्होंने आदेश दिया कि पांचों भाई बाँटकर खा लो। द्रौपदी बड़े संकट में पड़ी तो कृष्ण ने स्त्री के पाँचों गुणों को एक एक भाई को बाँट दिया। कार्येषु दासी—भीम की सेवा करना, करणेषु मंत्री—युधिष्ठिर को परामर्श देना, भोज्येषु माता—नकुल को भोजन कराना, क्षमया धरित्री (पृथ्वी के समान क्षमाशील)—सहदेव ऐसे क्रोधी को क्षमा करना तथा शयनेषु रम्भा—अर्जुन की पर्यंकशायिनी बनना—इस प्रकार गुण बाँटे गये। "स्वयंवर" की प्रथा के द्वारा रोज़ रोज़ की "कोर्टशिप" की झंझट समाप्त कर दी गयी तथा "पैशाच" विवाह के विधान से बलात्कारी को भी "पति" स्वीकार कर समाज में योनि सम्बंधी अपराधों से बड़ी रक्षा की गयी। और फिर जिस देश में वेद को मनुष्यों में पहुँचानेवाली स्त्रियाँ हों, जहाँ मैत्रेयी (याज्ञवल्क्य की पत्नी) ऐसी प्रकाण्ड पंडिता रही हों या याज्ञवल्क्य से तर्क करनेवाली गार्गी ऐसी विदुषी पैदा हों, वहाँ स्त्री केवल वासना की वस्तु बन ही नहीं सकती। जिस देश में स्त्री का इतना बड़ा स्थान हो कि —

१. Maine—Ancient Law

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननन्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

(ऋग्वेद–१०, ८५, ४६)

ऋग्वेद का यह मंत्र स्त्री को घर में सम्राज्ञी का स्थान देता है। मनु ने अपनी स्मृति में स्त्री को बड़ा ऊँचा स्थान दिया है। वे लिखते हैं—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥ ५७–३

जिस घर में स्त्रियों को कष्ट मिलता है, वह कुल ही नष्ट हो जाता है। यही विचार प्रायः सभी स्मृतियों तथा पुराणों में है। स्त्री की, देवी की, माता की पूजा का हज़ारों वर्ष पूर्व इसी लिए प्रचार हुआ था और हज़ारों वर्षों से हम मातृ-पूजन कर रहे हैं। महेंजोदड़ो तथा हरप्पा की खुदाई में, जिससे आज के ४००० वर्ष पहले की सभ्यता का अनुमान लगता है—देवी की प्रतिमा मिली है तथा एक ऐसे देवता की प्रतिमा मिली है जो तीन चेहरेवाला है। उसके सींग हैं, उसके पास शेर, हाथी व गैंडा बैठा हुआ है तथा बैठा है नन्दी बैल।[1] स्पष्ट है कि यह देवता शंकर थे। शंकर-पार्वती की इतनी प्राचीन पूजा से, जिसमें पिता तथा माता की भावना हो, स्त्री सम्बंधी अपराध कम होंगे ही।

स्त्री के लिए नियम

इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुष दोनों के लिए भी कठोर आदेश हैं। स्त्री को कर्म, वचन, मन से, हर प्रकार से पति की सेवा का आदेश है। उसे पति की सेवा में सदैव रत रहना चाहिए। मार्कण्डेय ऋषि ने युधिष्ठिर को पतिव्रता का लक्षण बतलाते हुए कहा था—[2]

न कर्मणा न मनसा नात्यश्नाति न चापिबत्।
ते सर्वभावोपगता पतिशुश्रूषणे रता॥

१. R. E. M. Wheeler—"Five Thousand Years of Pakistan"–Pub. Christopher Jhonson Ltd., London, Edition 1950, Page 28,

२. महाभारत, १७० वाँ अध्याय, श्लोक १४, मद्रास संस्करण, पृष्ठ १०४१

कृष्ण की पत्नी सत्यभामा ने द्रौपदी से पतिव्रता के लक्षण पूछे तथा पति को वश में रखने का उपाय पूछा, तो द्रौपदी ने यहाँ तक कह दिया कि पति जो वस्तु न खाय और न पीये, वह सब पत्नी को वर्जित हैं।[1]

सब कुछ उपदेश पत्नी के लिए ही नही है। हम ऊपर सौन्दरानन्द काव्य का उद्धरण दे आये हैं। अश्वघोष ने नन्द के मुख से कहलाया है कि —

आस्था यथा पूर्वमभून्न काचिदन्यासु यां स्त्रीषु निशाम्य भार्याम्।
तस्यां ततः सम्प्रति काचिदास्थां न मे निशाम्यैव हि रूपमासाम्।। १०–५१

(जिस प्रकार पूर्व में अपनी पत्नी को देखकर दूसरी स्त्रियों की ओर मेरा झुकाव नहीं हुआ, उसी प्रकार इन (अप्सराओं) का रूप देखकर अब उनकी मुझे कुछ चाह नहीं रही।)

वेश्यावृत्ति तथा वेश्यासेवन की निन्दा करते हुए भर्तृहरि अपने शतक में लिखते हैं कि "वेश्या का अधरपल्लव यदि सुन्दर है तो भी उसको कुलीन पुरुष नहीं चूमता, क्योंकि वह तो ठग, योद्धा, चोर, दास, नट तथा चारों (दूतों) के थूकने का पात्र है।"(९१)

प्रेम की निन्दा करते हुए वे लिखते हैं कि "स्त्री बातें किसी और पुरुष से करती है, विलास सहित देखती किसी और को है और हृदय में किसी और की ही चिंता करती है। फिर कहो स्त्रियों का प्यारा कौन है?" (८१)[2]

कामवासना के अनेक रूपों का विवेचन करनेवाले कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र

१. वही, संवाद पर्व, अध्याय १८९, पृष्ठ ११६७ सत्यभामा का प्रश्न—

कथं च वशगास्तुभ्यं न कुप्यन्ति च ते शुभे।
तव वश्या हि सुभृशं पाण्डवाः प्रियदर्शने।।

द्रौपदी का उत्तर—

प्रणयं प्रति संगृह्य निधायात्मानमात्मनि।
शुश्रूषुर्निरभिमाना पतीनां चित्तरक्षिणी।। २१।।
यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्ता न खादति।
यच्च नाश्नाति मे भर्ता सर्वं तद् वर्जयाम्यहम्।। ३३।।

२. **जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।**
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम्।।

में काम आदि छः शत्रुओं के त्याग तथा इन्द्रियजय पर बड़ा जोर दिया है।[1] काम, क्रोध, लोभ, मन, मद तथा हर्ष सब का त्याग सिखाया है। उन्होंने इन्द्रियजय के लिए शास्त्रों में प्रतिपादित कर्त्तव्यों का अनुष्ठान करने की शिक्षा दी है।[2] इन्द्रिय-परायण राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का अधिपति होते हुए भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।[3]

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबंधुराष्ट्रो विननाश ॥६॥ मानाद्रावणः परदारान् प्रयच्छन् ॥१०॥

जैसे कि भोज वंश का दाण्डक्य नामक राजा काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण-कन्या का अपहरण करके उसके पिता के शाप से बंधु-बांधव और राष्ट्र के सहित नाश को प्राप्त हो गया। अभिमान के वशीभूत होकर रावण पर-स्त्री को छीनकर नाश को प्राप्त हुआ।[4]

हमारे शास्त्रकारों ने वासना की रोकथाम के लिए कोई चीज बाकी नही रखी। वात्स्यायन के कामसूत्र में इन्द्रिय-निग्रह के अनेक उपाय कहे गये है, पर मनु ने तो स्त्री-प्रसंग का समय तथा पुत्र की प्राप्ति का उपाय भी लिख दिया है। ऋतुकाल में स्त्री के पास जाना मना है।

बिना धन के भी मनुष्य ऐश्वर्यशाली हो सकता है, यदि उसमें आरोग्य हो, विद्वत्ता हो, सज्जनों से मित्रता हो, अच्छे कुल में जन्म हुआ हो तथा स्वाधीन हो।[5] महाभारत ने जिस मनुष्य के सामने इतना बड़ा आदर्श रखा हो, वह कैसे पतित हो सकता है ?

आचरण का मन्त्र

पर, मनुष्य तो मनुष्य ही है। इस मानव शरीर को सँभालकर ले चलना बड़ा कठिन है। भर्तृहरि ने सत्य ही लिखा है कि "कंदर्प-दर्प-दलने विरला मनुष्याः" (शृंगार-

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र का सबसे अच्छा संस्करण श्री र० शामा शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा संशोधित है जिसे गवर्नमेन्ट प्रेस, मैसूर ने १९२६ में प्रकाशित किया था।

२. वही, छठा अध्याय, "विनयाधिकारिक"—१

३. वही, ६

४. वही अध्याय

५. आरोग्यं, विद्वत्ता, सज्जनमैत्री, महाकुले जन्म, स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः।—महाभारत, शान्ति पर्व, श्लोक ३१७

५८) कामदेव का घमंड नष्ट करने की सामर्थ्य विरले ही मनुष्यों में होती है। मानव प्रकृति को समझकर ही प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस ने लिखा था कि—"पिता को वास्तव में पिता बनना चाहिए। पुत्र को वास्तव में पुत्र बनना चाहिए। बड़े भाई को सचमुच का बड़ा भाई तथा छोटे भाई को छोटा भाई होना चाहिए। पति वास्तव में पति बनकर तथा स्त्री वास्तव में स्त्री बनकर रहे।[1] तभी परिवार अपने वास्तविक ढंग से चल सकता है। कौटिल्य ने "एवं वश्येन्द्रियः परस्त्री द्रव्य हिंसाश्च वर्जयेत्" की सलाह दी है।[2]

प्रत्येक प्रकार की वासना मन से उत्पन्न होती है। जैसा मन होगा, मन का जैसा संस्कार होगा, जिस वातावरण में मन पलता है, वैसे ही संकल्प उसमें उठते है। और हर प्रकार की वासना इसी संकल्प का परिणाम है। व्रत, धर्म, तप, काम, सभी कुछ इस संकल्प के कारण होते हैं।[3] इसलिए संकल्प ही समूचे कार्यो का, पाप, पुण्य, पतन या उत्थान का, कारण होता है।

देश-काल की बात

किन्तु संकल्प मन के संस्कार से बनता है, यह तो सिद्ध ही है। शरीर का राजा मन है। यदि यह मत सही है कि इस शरीर में ७२,००० नाड़ियाँ हैं जिनमें ७२ मुख्य हैं तथा १० प्राणवायु वहन करनेवाली हैं और ३०० हड्डियाँ है, तो मन को इन सबको सँभालकर ले चलने तथा दसों इन्द्रियों पर शासन करने में काफ़ी काम करना पड़ता होगा। यदि मन ही विकृत हो गया तो कुछ बनाये नही बनेगा। प्रेरणा ही सब कुछ है, यह मत प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टीन का भी है।[4] पर प्रेरणा तथा संकल्प के उत्पन्न होने का दोषी या अपराधी मनुष्य कैसे हुआ ? कामवासना तो ईश्वर ने मनुष्य को प्रदान की है। यह मत ईसा मसीह का भी है। उस वासना में जो विकार की अधिकता समझ में आती है या दिखाई पड़ती है वह समय, काल, समाज तथा परिपाटी

१. Texts of Confucianism—Translated by James Legge, Clarendon Press, London–Edition 1899—Page 242.

२. विनयाधिकारिक

३. संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥ मनु अ० २, श्लो० ३०

४. Einstein in Preface to Planch's—"Where is Science going".

का भी परिणाम हो सकती है। हम जिसे बुरा कहते हैं वह हमारे लिए बुरा हो सकता है, पर बुरा न भी हो। बर्टन[1] का कथन है कि "यह नहीं भूलना चाहिए कि अभद्रता या अशिष्टता समय तथा स्थान पर निर्भर करती है। इंग्लैंड में जो बुरा समझा जाता है वह मिस्र के लिए बुरा न होगा। आज जिसे देख, सुनकर हम बहुत बुरा मानते हैं, वह किसी समय एक साधारण मज़ाक़ रहा होगा।"

गणिकाध्यक्ष

इसलिए अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी को मानव स्वभाव के इतिहास को भी समझना होगा। जिस कामवासना को अपराध का आधार माना गया है, उसका किंचित् रूप भी समझ लेना चाहिए, तब निर्णय करना चाहिए। हमने पहले ही लिखा है कि अपराध तो समाज के नियम बनाते हैं। आज हमारे देश में वेश्यावृत्ति अपराध है, पर आज के २३०० वर्ष पूर्व, जब कि हमारा आचरण आज से कहीं अधिक शुद्ध था, वेश्या यानी गणिका राज्य के लिए आवश्यक समझी जाती थी। कौटिल्य ने "गणिकाध्यक्ष" कर्मचारी की नियुक्ति का आदेश दिया है।

कौटिल्य ने बड़े विस्तार के साथ गणिका (वेश्या या वाराङ्गना) कैसी हो, किस प्रकार का व्यवहार करे, कितना कमाये, सब कुछ लिख दिया है। उनके अनुसार वेश्या को अपना शरीर पुरुषों के हाथ बेचते रहना चाहिए, पर राजा की सेवा में वह सदैव उपलब्ध रहे, जब जरूरत हो। चँवर आदि डुलाने का तथा छत्र ले चलने का काम वही करे।

कौटिल्य के टीकाकार विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री के अनुसार "अपने रूप-सौन्दर्य से जीविका करनेवाली स्त्रियों को गणिका कहते हैं।" उनकी व्यवस्था के लिए नियुक्त राजकीय कर्मचारी को "गणिकाध्यक्ष" कहते थे। यह अधिकारी रूप, यौवन तथा गाने बजाने की कलाओं से युक्त लड़की को, चाहे वह वेश्या के वंश में उत्पन्न हुई हो या न हो, नियुक्त करे। वेश्या की तीन श्रेणियाँ होती थी, कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। सौन्दर्य आदि सजावटों में जो सबसे कम हो, उसे कनिष्ठ समझा जाय तथा उसे १००० पण एक मुश्त देकर गणिका के कार्य पर नियुक्त किया जाय। सौन्दर्य आदि में जो इससे अधिक हो उसे मध्यम समझ दो हज़ार पण दिये जायें। सबसे सुन्दरी को

१. भूमिका में Sir Richard F. Burton's Translation of Arabian Nights—Vol. 1 Page XXV–Pub. H. S. Nichols Ltd. London

उत्तम कहते हैं। उसे तीन हज़ार पण मिलें। जिसे यह धन मिले उसे आधा अपने कुटुम्ब को दे देना चाहिए तथा आधा अपने पास रखना चाहिए। राजा की परिचर्या के कार्य को ये गणिकाएँ अपने में बाँट लें। इसके बाद जो अवकाश मिले, वे पुरुषों का सेवन करें और उनसे फ़ीस लें।

यदि कोई गणिका अपना स्थान छोड़कर दूसरी जगह चली जाय या मर जाय तो उसके स्थान पर उसकी लड़की या बहिन को पहला अधिकार है, जो कि उसकी सम्पत्ति की स्वामिनी भी बन जावेगी। या फिर उस वेश्या की माता किसी दूसरे को उसके स्थान पर नियुक्त करे। यदि किसी की नियुक्ति न हो तो वेश्या की सम्पत्ति का स्वामी राजा होगा। इनकी जवानी ढल जाने पर इनको नयी नियुक्त की गयी वेश्याओं की माता तथा शिक्षक बना दिया जाय। जो गणिका अपने को राजा की सेवा से मुक्त करना चाहे, उसे २४,००० पण देकर ही छुटकारा मिल सकता है। जब उसकी उम्र भोग के योग्य न रहे तो उसे रसोई (महानस) या भंडार (कोष्ठानस) में काम करने को भेज देना चाहिए। अगर वह काम न करे और किसी एक पुरुष की स्त्री बनकर रहे तो उस पुरुष से प्रति मास सवा पण सेवा के लिए मिलेगा।

गणिका को जो आमदनी होती थी और उसका जो खर्च होता था उसका हिसाब गणिकाध्यक्ष रखता था। "अतिव्ययकर्म च वारयेत्" उसे अधिक व्यय करने से गणिकाध्यक्ष रोकता रहे। वेश्या को किसी के साथ कठोरता का व्यवहार करने का अधिकार नहीं था। ऐसा करने पर उसे २४ पण दंड मिलता था। यदि वह किसी का कान, नाक काट ले तो पौने बावन पण दंड होता था। यदि पुरुष को मार डाले तो उस पुरुष की चिता के साथ रखकर उसे जला देना चाहिए या गले में पत्थर बाँधकर पानी में डुबा देना चाहिए। "गणिका भोगमायतिं पुरुषं च निवेदयेत्" गणिका अपने भोग, आमदनी तथा अपने साथ सहवास करनेवाले पुरुषों की सूची या सूचना गणिकाध्यक्ष को बराबर देती रहे। यदि कोई गणिका किसी पुरुष से अपने भोग का वेतन लेकर फिर उसके साथ द्वेष करे, अर्थात् उसके पास न जाय, तो उसके लिए दिये हुए वेतन का दुगना दंड दे। पहले अपराध पर निर्दिष्ट दंड, दूसरे पर उसका दुगना, इस प्रकार मात्रा बढ़ती जायगी।

यदि कोई पुरुष कामनारहित कुमारी पर बलात्कार करे तो उसे उत्तम साहस दंड दे तथा, जो कामना करनेवाली कुमारी के साथ भी भोग करे, उसे प्रथम साहस दंड दे, यानी बिना वेश्या बने किसी कुमारी कन्या का सेवन नहीं हो सकता था। जो पुरुष किसी कामना-रहित गणिका को बलपूर्वक रोककर अपने घर में डाल ले या उसके

शरीर पर कोई चोट या घाव लगाकर उसका रूप नष्ट करना चाहे, उसे १००० पण दंड दिया जाय।

प्राचीन भारत की यही विशेषता थी कि व्यसन तथा वासना को भी आचार-शास्त्र के बंधन में बाँध देते थे। आज तक दुनिया के किसी देश में भी वेश्या तथा वेश्यावृत्ति के सम्बंध में ऐसे आदर्श नियम नहीं बने, जैसे कौटिल्य ने बनाये थे तथा जिनमें इस सम्बंध की सभी बुराइयों की पूरी रोकथाम थी।[1] वेश्या के लिए भी गुणवती तथा कलावती होना आवश्यक था। पुरुष को वश में करने की भी एक विशेष कला समझी जाती थी। उसका एक विशेष विज्ञान होता था।

वेश्या-विज्ञान

कश्मीरनरेश जयापीड के प्रधान मंत्री दामोदर गुप्त ने अपने "कुट्टनीमतम्" में वेश्याविज्ञान को बहुत ऊँचे पहुँचा दिया है। आज से १३०० वर्ष पूर्व[2] एक बड़े शास्त्र की रचना उन्होंने की थी। काशी में मालती नामक एक नर्त्तकी थी जिसका रूप साधारण श्रेणी का था। पर वह सम्पन्न पुरुषों को आकर्षित कर उनका प्रेम प्राप्त कर धन कमाना चाहती थी। इसलिए इस कला को सीखने के लिए वह एक वृद्ध कुटनी के पास गयी। वह कुटनी जिसका नाम विकराला था,[3] एक ऊँचे सिंहासन पर बैठी हुई थी और एक से एक सुन्दरी युवतियाँ उसकी सेवा में लगी हुई थीं, उससे गुरु-मंत्र प्राप्त करने के लिए।

विकराला ने मालती को पुरन्दर तथा हरलता की कहानी सुनायी। फिर राजा सिंहभट के पुत्र समरभट की कथा बतलायी। समरभट काशी में विश्वेश्वर

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र—२ अधिकरण "अध्यक्ष प्रचार"—२७ वाँ अध्याय, ४४ प्रकरण, गणिकाध्यक्ष

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूप-यौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत्॥

इत्यादि, युवती गणिका को सौभाग्यवती भी कहते थे—

सौभाग्यभङ्गे मातृकां कुर्यात्।

२. कल्हण की "राजतरंगिणी" में जयापीड का शासन-काल ई० सन् ७५१ से ७८२ बतलाया है। "कुट्टनीमतम्" का रचना-काल यही रहा होगा।

३. श्लोक ३ से श्लोक ४३ तक उसका वर्णन है।

का दर्शन करने गये थे। वहाँ मंदिर में उनको नाचनेवाली लड़कियाँ मिलीं। समरभट को कामपीड़ा हुई तो उन्होंने मंदिर में नर्तकियों का पता लगाया। उत्तर मिला कि पेशेवाली तो कोई न कोई पुरुष लिये पड़ीं होंगी। पुजारियों ने मंजरी से परिचय कराया। उसने समरभट के साथ जाना स्वीकार किया। वह उसके साथ राजधानी गयी और वहाँ उसने उसको खूब चूसा।[१] पुरुष को फुसलाकर उसका धन किस प्रकार छीना जाय, इसकी कला विकराला ने खूब समझायी थी। मालती को उसने उपदेश दिया कि चिंतामणि को किन हाव-भाव आदि से मोहित कर वह उसका द्रव्य खूब चूसे और जब वह कंगाल हो जाय तो उसको त्याग देने में कोई नैतिक संकोच न करे। वह दूसरे पुरुष के पास चली जाय और फिर उसका सब कुछ अपहरण करे।[२] चिन्तामणि कश्मीर नरेश का एक बड़ा सरदार था। इस प्रकार गुरु से उपदेश लेकर मालती घर गयी। इतना सब कुछ लिखने के बाद लेखक ने अपनी पुस्तक का उद्देश्य स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं कि "कुट्टनीमतम्" को पढ़नेवाला बदमाशों या दुष्टा स्त्रियों का शिकार नहीं होगा।[३]

वासना की वास्तविकता को पहचानकर उसका किसी प्रकार मुकाबला किया जाय, प्राचीन विद्वानों ने सदैव इस पर विचार किया तथा उसका भी एक आचार-शास्त्र बना दिया। समय पाकर उसी आचार ने भ्रष्ट रूप धारण कर लिया। पद्मपुराण के अनुसार सुन्दर कन्याएँ खरीदकर मंदिरों में समर्पित कर देना स्वर्ग में स्थान प्राप्त करने का बीमा था। भविष्यपुराण में लिखा है कि सूर्यलोक में स्थान पाने के लिए श्रेष्ठ उपाय है कि कुछ वेश्याएँ खरीदकर सूर्य के मंदिर को समर्पित कर दी जायँ। फिर भी वेश्यावृत्ति की एक नियमित परम्परा थी। पर समय की गति से ऐसे दलाल पैदा हो गये जो लड़कियों को भगाने का, बेचने का, वेश्यालय या भठियारखाना चलाने का पेशा करने लगे।[४] इस प्रकार समाज में एक अनर्थ उत्पन्न हो गया।

१. सन् १९२४ का तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी द्वारा सम्पादित संस्करण, श्लोक ७३७ से १०५६ तक यह कथा है।

२. कुट्टनीमतम्, श्लोक ४९८-७३५ तक यह कथा तथा उपदेश है।

३. श्लोक १०५९

४. Prostitution requires Prohibition—By G. R. Bannerjee in "Indian Journal of Sociology", 19th June, 1958–Page–11-17.

आजकल तीन प्रकार की वेश्याएँ हैं—एक वे जिनकी वेश्यावृत्ति से दूसरे लाभ उठाते हैं, दूसरी वे जो स्वतंत्र रूप से पेशा करती हैं तथा तीसरी वे जो लुका-छिपी ढंग से निजी आनन्द के लिए या कुछ आमदनी करने के लिए यह पेशा करती हैं। यद्यपि प्राचीन भारत में गणिका का पद पूर्णतः वैध था पर ईसा के १००-२०० वर्ष बाद से भारत में इस संस्था का पूर्ण विकास प्रारम्भ हुआ और होते-होते आज का गंदा रूप प्राप्त हो गया। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में लिखा है कि (कामसूत्र की रचना के दिनों में) "गणिका" की उपाधि उसी को मिल सकती थी जो बड़ी बुद्धिमती हो, विद्या के साथ संगीत नृत्य आदि कलाओं में गुणी हो। केवल शरीर का सौदा करनेवाली वेश्या नहीं। ईसवी सन् ३०० के लगभग भरत मुनि का "नाट्यशास्त्र" रचा गया था। उसमें सर्व-गुणसम्पन्ना गणिका की बड़ी प्रशंसा है। इसी काल में लिखे गये ग्रन्थ "ललित-विस्तर"[१] में राजा शुद्धोदन की कथा है कि उनको अपने लड़के के लिए एक ऐसी दूल्हन की तलाश थी जो "गणिका" के समान सर्वगुण-सम्पन्न हो।

तीन प्रकार की वेश्याएँ यूनान में होती थीं। एक तो दासकन्याएँ जिनको विशेष प्रकार की पोशाक पहननी पड़ती थी। दूसरी वे जो यूनानी थीं तथा जिनको गाना, नाचना आदि आता था। इसे मध्यम श्रेणी समझिए। तीसरी उत्तम श्रेणी की वे महिलाएँ थीं जो सड़क पर मुख खोले घूम सकती थीं, बहुत ऊँचे तबके में चलती थीं तथा इनको सभी नागरिक अधिकार प्राप्त थे।[२] मध्यम तथा उत्तम श्रेणी की महिलाओं को अपनी आय को अपने पास रखने का अधिकार था, पर उन्हें सरकारी कर देना पड़ता था।

तीन हज़ार वर्ष से भी अधिक हुए कि फोयेनिशियन लोगों ने साइप्रस टापू में कामदेवी अस्तार्ती का मंदिर बनवाया था। पहले इस मंदिर में स्त्रियों को जाने की मनाही थी। बाद में वहाँ घूमने तथा दर्शन करने की अनुमति मिल गयी और ईसवी सन् २०० तक वहाँ तट के किनारे स्त्रियाँ खुले आम घूमती थी और अपने शरीर का सौदा किया करती थीं। रोम में अडोनिस देवता का त्यौहार मनाया जाता था। इस देवता को सूअर ने मार डाला था। अतएव त्यौहार पहले मुहर्रम के ढंग पर रोने पीटने

१. वही, बैनर्जी १२-१३

२. यूनान में वेश्याओं में निम्न तथा मध्यम श्रेणी को सड़क पर मुँह खोलकर चलने की अनुमति नहीं थी, प्रथम, मध्यम तथा उत्तम श्रेणी की वेश्याओं का नाम था— Dicteriades, Antatrides, और Hetaires.

से शुरू होता था। स्त्रियों को देवता के सामने अपने केशों की तथा सतीत्व की भेंट चढ़ानी होती थी। पुजारियों के विश्वास के अनुसार देवता अडोनिस मृत्यु के बाद पुनः सजीव प्रकट हुए और जब उनके प्रकट होने की खुशी मनाने का अवसर आता, रोनेवाला त्यौहार अत्यधिक व्यभिचार में बदल जाता। रोम में वेश्या-गमन एक धार्मिक कृत्य बन गया था।

धर्मगुरु का आदेश

फ्रान्स में भठियारखानों को अबाये[1] कहते थे। फ्रान्स के नरेश चार्ल्स छठे[2] और सातवें[3] ने, इटली की उस समय की सबसे बड़ी रियासत या राज्य नेपुल्स के नरेश जीन प्रथम ने ऐसे वेश्यालयों को विशेष अधिकार दिये थे। ईसाइयों के सबसे बड़े धर्मगुरु पोप जूलियस द्वितीय ने २ जुलाई १५१० को एक विशेष आदेश जारी करके पेरिस में एक वेश्यालय खोलने का अधिकार प्रदान किया था। उस ज़माने में भी फ्रान्स में नंगा होकर नाचना बुरा नहीं समझा जाता था। यूरोप के कई देशों में यह प्रणाली थी कि जब कोई विजेता किसी देश में नाम कमाकर और उसे जीतकर अपने देश वापस आता था तो उसके स्वागत के जलूस में सबसे आगे युवती अविवाहिता नंगी लड़कियाँ चला करती थीं। यूरोप में उन दिनों सृष्टि में मानव के विकास के सम्बंध में जो नाटक खेले जाते थे, जिनमें आदम और हौवा का ज़िक्र होता था, ऐसे नाटकों में पुराने इतिहास के अनुसार आदम और हौवा को मंच पर एकदम नंगा लाते थे।

फ़्रान्स में वेश्यावृत्ति इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि वेश्याओं का उद्धार कर उनके सुधार के लिए पहला "सुधारगृह" सन् १२२६ में पेरिस में खुला था और उसके ख़र्च के लिए सम्राट् "लुई पवित्र" ने काफी रुपया दिया था।[4] पर, उसके बाद वैसे नरेश फ्रांस में सैकड़ों साल तक नही पैदा हुए जो वेश्या के उद्धार की ओर भी ध्यान दे सकें।

१. Abbayes यह शब्द—Abbeys या ईसाई मठ से बहुत निकट है।

२. चार्ल्स ६—ई० सन् १३६८ से १४२२ तक

३. ई० १४०३ से १४६१ तक

४. Sexual Life in England—Past & Present–By Ivon Block—Trans. William Forstern, Pub. Francis Aldor–1938–Page–212.

धार्मिक अनुशासन

यद्यपि भारतीय शास्त्रकारों ने वासना को नियंत्रण में रखने का बहुत प्रबंध किया, फिर भी वे उसे धर्म के दायरे के बाहर न कर सके। स्यात् यह उचित भी था। जब स्त्री मासिक धर्म में हो, उसके साथ सम्भोग करना भयंकर अपराध समझा जाता था। इससे नरक मिलता था।[१] जिन सात कारणों से दीर्घ जीवन अथवा जीवन का सुख नष्ट होता था उनमें रजस्वला स्त्री के साथ भोग भी था। ऐसी अगम्या स्त्री के[२] पास जाने का दंड था गीला वस्त्र पहनकर छः महीने तक धूल में सोना[३]। ऐसे विधानों से वासना के अपराधों की काफ़ी रोकथाम हो जाती थी। रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने वाले को ब्रह्महत्या लगती थी।[४] रजस्वला के हाथ का छुआ भोजन भी निषिद्ध था।[५]

ऋतुमती स्त्री के साथ विषय करना भी धर्म के अन्तर्गत था। ऋतुकाल में सम्भोग से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[६] महाभारत में ही ऋषि धौम्य की कथा है कि वे किसी कार्यवश जब घर छोड़कर गये तो अपनी गृहस्थी अपने शिष्य उत्तंक के सुपुर्द कर गये। ऋषि की पत्नी ऋतुमती हुई। उसकी कामवासना को शान्त करने के लिए उत्तंक बुलाये गये। उनसे कहा गया कि तुम उसका उपभोग करो, अन्यथा उसका ऋतुकाल निरर्थक होगा, "उसे निराश न करो।" उत्तंक ने गुरु-पत्नी के साथ सोना अस्वीकार कर दिया। जब गुरु वापस आये और उनको यह घटना मालूम हुई तो उन्होंने प्रसन्न होकर उत्तंक को इनाम दिया पर उनकी पत्नी ने कुछ समय में उत्तंक से बदला ले ही लिया।

स्त्री को विवाह काल में व्यभिचार करने पर भी दोष नही लगने पाता, क्योंकि जब उसे मासिक धर्म होता है, उसका सब कुछ योनि-पाप बह जाता है।[७] मासिक धर्म से उसका कायिक, मानसिक पाप धुल जाता है।[८] बोधायन के अनुसार स्त्री का

१. महाभारत १३, ७३, ४२
२. महा० १३–१०४–१५०
३. महा० ७–७३–३८
४. वही १२. २८३–४३
५. १३–१०४–४०
६. वही १३–१४४–१३–१४
७. याज्ञवल्क्य स्मृति–१–७२
८. मनु० अ० ५, श्लो० १०८. विष्णुपुराण १२–९१, पाराशर स्मृ० ७–२, १०–१२

पाप उसके मासिक धर्म के साथ वह जाता है।[१] ऋतुमती स्त्री के लिए तो यहाँ तक लिख दिया है कि "जिस प्रकार हवन के समय अग्नि आहुति की प्रतीक्षा में रहती है, उसी प्रकार ऋतुकाल में स्त्री ऋतु-संसर्ग की प्रतीक्षा करती है। मासिक धर्म के समय स्त्री अपने पति से कहती है "ऋतुं देहि"। मासिक प्रवाह समाप्त होने पर स्त्री का रज निरर्थक जाना उचित नहीं है। उसे संसर्ग प्राप्त होना चाहिए। कामातुर स्त्री के बीच में अडंगा डालना भी बड़ा अपराध था। इस सम्बन्ध में राजा कल्मषपाद का उपाख्यान दृष्टव्य है (महा० आदिपर्व)।

प्राचीन भारत में कामवासना शान्त करनेवाली वेश्या को शुभ मानते थे। यदि मार्ग में वेश्या मिल जाय तो बड़ा शकुन समझते थे। पर यह सब द्वापर युग की बातें हैं। महाभारत के अनुसार सतयुग में बिना विषय किये ही, केवल इच्छा से सन्तान पैदा हो जाती थी। त्रेतायुग में केवल "स्पर्श" मात्र से संतान उत्पन्न होती थी। द्वापर युग में संभोग का तरीका निकला पर कलियुग में इसका वास्तविक नियमित रूप बना। कभी खुले में यह कार्य नहीं करना चाहिए, गुप्त रूप से करना चाहिए।[२] अपनी स्त्री के साथ ही करना चाहिए, इत्यादि।[३]

बहुप्रजा ह्रस्वदेहाः शीलाचारविवर्जिताः।
मुखेभगाः स्त्रियो राजन्, भविष्यन्ति युगक्षये ॥[४]

वंग देश में,[५] पुराने ज़माने में पुरुष को कामोत्तेजित करने के लिए मुखसंभोग का वर्णन कहीं कहीं मिलता है। पशु के साथ प्रसंग,[६] पुरुष-पुरुष के साथ प्रसंग,[७] स्त्री-स्त्री

१. बोधायन. (२)–२–४–४

२. महा० १३–१६२–४७ तथा १२–१९३–१७

३. महा० ७, ७३–४३

४. कलियुग के लक्षणों में यह भी है कि स्त्रियाँ मुख मैथुन करेंगी, हजारों वर्ष पूर्व जो लिखा गया था, आज वही दुर्गुण पश्चिमी देशों में बहुत पाया जाता है।

५. वंगेषु।

६. महा० १३–१४५–५५

७. Sodomy वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र के अधिकरण २, अ० ६ में इसका वर्णन किया है—अधोरतं पायावपि दाक्षिणत्यानाम्। ४९ ॥ यानी दाक्षिणात्यों में 'अप्राकृतिक संभोग' भी करते हैं।

के साथ प्रसंग,[1] यह सब घोर पाप गिनाया गया है। पितरों के श्राद्ध के दिनों में भोग करनेवाला घोर पापी है। इस कलियुग की महिमा में महाभारत में ही लिखा है कि जब संसार का सर्वनाश होने का समय आयेगा, पति अपनी पत्नी से तथा पत्नी अपने पति के साथ प्रसंग से सन्तुष्ट न होगी।[2]

हिन्दू आदेश

स्त्री की इतनी महिमा तथा वासना की ऐसी आग बतलानेवाले प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारों ने उसे समाज में छोटा स्थान भी दिया है। नारद-स्मृति (अध्याय १–१९०) के अनुसार स्त्री कभी सच नहीं बोल सकती, अतएव उसका साक्ष्य नही स्वीकार करना चाहिए। जहाँ स्त्री-स्त्री का झगड़ा हो, वहाँ स्त्री साक्षी हो सकती है।[3] इस विषय में काफी प्रसंग मिलेंगे। इसका कारण यह है कि स्त्री की मर्यादा को काफी मानते हुए भी उसे हमारे यहाँ एक "चल सम्पत्ति" समझते थे जिस पर पुरुष का अधिकार था। प्राचीन जर्मन जाति में भी यही नियम था। वहाँ भी पति को अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को दंड देने का अधिकार था। व्यभिचार के लिए सार्वजनिक दंड, प्राणदंड का भी विधान है। किन्तु यहाँ पर हम व्यभिचार के दंडों का वर्णन नही कर रहे हैं। वह विषय बाद में आयेगा।

अभी तो हमें केवल कामवासना का रूप समझना है, तभी उसको शान्त करने का उपाय हो सकेगा। हमारे देश में स्त्री का सब गुण वर्णन करने पर भी उसे "इन्द्रियार्थ" तथा भोग्या (भोग के लिए) भी माना गया है। जीवन में उसकी उसी प्रकार आवश्यकता है जिस प्रकार खाट की, सवारी की, मकान की तथा अन्न की।[4] मकान, खेत, स्त्री तथा सुहृदय, ये सब जीवन की "अतिरिक्त" सामग्रियाँ है— उपाहित हैं। इनको कहीं भी प्राप्त किया जा सकता है।[5] जब राम सीता-हरण पर घोर विलाप करने लगे तो सुग्रीव ने उनको समझाया कि औरत के लिए क्या रोना। वह तो कहीं भी मिल सकती है। आखिर मेरी बीबी भी तो भगा ली गयी

१. वही
२. महा० १२–२२८–७३
३. इस विषय में मनुस्मृति ८–६८ तथा वशिष्ट १६–३० देखिए
४. महा० अ० १३—१४५–४
५. महा० १२–१०३९–८५८६

थी।[1] लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम ने स्वयं कहा था कि "हर जगह औरत मिल सकती है, रिश्तेदार भी मिल सकते हैं पर सहोदर भ्राता नहीं मिलता।"[2]

यदि पुरुष सोचता है कि स्त्री इतनी साधारण वस्तु है तो स्त्री भी यही सोच सकती है। जातक कथा[3] है कि एक स्त्री के पति, पुत्र तथा भाई को प्राणदंड मिला। उसे आदेश मिला कि इन तीनों में से जिसका चाहे प्राण बचा ले। उसने कहा—"मेरे गर्भ में बच्चा है, अतएव मुझे लड़का नहीं चाहिए। मेरे पीछे राह चलते दौड़ने वाले मर्द बहुत मिलेंगे, पर सहोदर भाई मुझे कभी नहीं मिल सकता।" और उसने अपने भाई को छुड़ा लिया। इसी प्रकार का एक जर्मन गाना है कि एक स्त्री के सामने समस्या थी कि अपने भाई या अपने प्रेमी को मृत्यु से बचा ले। उसने तय किया कि प्रेमी तो राह चलते मिलेंगे, भाई नहीं मिलेगा। स्विनबर्न लिखित "कैलिडांग में अतलोता" नामक प्रसिद्ध रचना में अतलान्ता अपने भाई के हत्यारे अपने लड़के को इसलिए मार डालती है कि "दुनिया में बच्चे तो बहुत पैदा हो सकते है पर भाई बहन नहीं मिल सकते।"[4]

कुमारी कन्या

स्त्री की बड़ी शक्ति है। यह वासना में भी मानव का कल्याण ही करती है। यह इतनी पवित्र है कि इसे भ्रष्ट कहना ही कठिन है। कुमारी का कौमार्य नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता। कुमारी कुन्ती पर सूर्य रीझ गये। उससे उनका सम्पर्क हुआ। उन्होंने कुन्ती को वर दिया कि "मेरे समान तेजस्वी पुत्र (कर्ण) पैदा होगा और तुम अक्षत कुमारी ही कहलाओगी।"

डाकुओं से भी समाज में यही आशा की जाती थी कि वे डाका डालने के समय भी पर-स्त्री हरण नहीं करेंगे। पर शिशुपाल के सौ पापों में एक कुमारी कन्या का हरण भी था। अग्नि देवता राजा नील की सुन्दरी कुमारी कन्या महिष्मती के साथ

१. वाल्मीकि रामायण ४–७–५

२. वाल्मीकि ६–१०१–१४

३. जातक कथा—सं० ६७

४. "For all things else man may renew,
Yea, son for son the Gods may give or take.
But never a brother or sister any more
—"Swineburne's "Atlanta in Calydon"

एक ब्राह्मण के रूप में संभोग करते पकड़े गये। महिष्मती निर्दोष मानी गयी। ऐसी दशा में यदि तोब्रियांद जाति में कुमारी कन्या को खुलकर भोग-विलास करने का अधिकार है तो क्या आश्चर्य है। उत्तरी अराकान में कौमार जीवन में विलास की खुली इजाज़त है। बाकम्बा जाति में बिना गर्भवती हुए लड़की विवाह योग्य नहीं समझी जाती। जिस कुमारी के कई बच्चे पैदा हो चुके हों, वह विवाह के उतना ही उपयुक्त समझी जाती है। कुछ जर्मन-भाषी ज़िलों में वही कुमारी पत्नी बनने के योग्य समझी जायगी जो अपने प्रेमी द्वारा गर्भवती बन चुकी हो। अल्जियर्स में कई ऐसी जातियाँ हैं जिनमें लड़की बड़ी होते ही उसका पिता उसे वेश्यावृत्ति द्वारा कमाने के लिए भेज देता है। जो जितनी ही रकम अधिक कमाकर लायेगी, उसका विवाह जल्दी होगा। कमायी हुई रकम दहेज़ का काम देती है। पिछड़ी जातियों की बात जाने दीजिए। हमारी स्मृतियों में ऐसे लोगों का भी ज़िक्र है जो अपनी पत्नी से वेश्या का काम लेते हैं।[१]

वेश्या का प्रारम्भ

वेश्या, दासी, निष्कासिनी आदि से विषय में तभी दोष है, जब इनमें से किसी को किसी ने रखेल बना लिया हो।[२] मेहमानों की ख़ातिरदारी के लिए औरतों का प्रबंध रखना पड़ता था। धर्मराज युधिष्ठिर ने ऐसी कई हज़ार दासियाँ रख छोड़ी थीं जो ६४ कलाओं में निपुण थीं। दुर्योधन के साथ जूआ खेलने में उन्होंने इन दासियों को भी बाज़ी पर लगा दिया और हार गये।[३] बहुत देशों में मेहमानों की इस प्रकार खातिर करने का रिवाज था।[४] किन्तु, स्त्री वेश्या कैसे बनी इसकी बड़ी रोचक कथा हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है।

प्राचीन काल में दीर्घतमस नामक एक अंधे साधु थे। जब वे अपनी माता के पेट में थे, उनको इसलिए बड़ा कष्ट मिला कि उनकी माता के साथ गर्भकाल में उनका चाचा, (माता का देवर) प्रसंग करता रहा। ऐसे बालक पेट से ही वासना सीखकर आते हैं। गर्भवती स्त्री के साथ प्रसंग करना अपनी सन्तान से, पुत्र हो या

१. देखिए बोधायन (२) २४–३; मनु अ० ८–३६२; याज्ञवल्क्य २–४८।
२. नारद स्मृति–१२–७८
३. महा० २–६१–८
४. Molennan—Primitive Marriage—Page 96.

पुत्री, प्रसंग करना है।[१] दीर्घतमस का विवाह एक परम सुन्दरी स्त्री प्रद्वेषी से हो गया। वेद-वेदांग में पारंगत इन साधु ने कामधेनु[२] के पुत्र सौरभेय से पशुओं के समान खुले आम प्रसंग करना सीखा और वे निर्लज्ज होकर प्रद्वेषी के साथ ऐसा करने लगे। उनका यह व्यवहार अन्य मुनियों को बुरा लगा। उन्होंने कहा कि इस साधु ने "नैतिक नियम" का उल्लंघन किया है। अतएव इसे आश्रम से निकाल देना चाहिए। इधर मुनियों ने यह निश्चय किया और उधर प्रद्वेषी ने अपने पति से कहा कि "मुझे तुमसे कई बच्चे हो चुके। पर पति का जो धर्म है कि स्त्री को घर और भोजन देना, वह दोनों तुम नहीं कर सकते। मैं तुम्हारे जैसे जन्म के अंधे का पालन नहीं कर सकती। मैं तुमको अब अपने पास नहीं रखूँगी।" यह सुनकर साधु दीर्घतमस ने कहा—

"आज से मैं संसार के लिए नियम बनाता हूँ कि जो पत्नी आमरण केवल एक पति की बनकर रहती है, चाहे पति मर ही क्यों न जाय, वह कभी पराये पुरुष का मुँह नहीं देखेगी। किन्तु विवाहिता हो या कुमारी, जो भी दूसरे पुरुष के पास गयी, वह अपराधिनी होगी, जाति से च्युत होगी। पर यदि ऐसी स्त्री किसी पुरुष के पास जाय तो उसे (पुरुष को) चाहिए कि विषय के लिए मूल्य चुकाये।"[३]

यह सुनकर प्रद्वेषिका ने क्रुद्ध होकर अपने लड़कों को आदेश दिया कि अपने पिता को एक खम्भे में बाँधकर गंगा में फेंक दें, लड़कों ने वही किया। उसी दिन से धन लेकर प्रसंग कराने की प्रथा चल निकली।[४]

प्राचीन भारत में ऐसे भी लोग थे, जिनमें काम-वासना ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। उत्तर-पश्चिमी भारत में मद्रा नामक जाति में तथा सिन्धु नदी के किनारे के "सिन्धु सौवीरक" लोगों में और पंजाब में ऐसे लोग रहते थे जो मांस खाते थे, गोमांस तक खाते थे और संभोग की इच्छा होने पर मां, बहन, बेटी, पिता, चाचा, भतीजा किसी का बिना विचार किये, जिससे चाहते उससे सम्बंध करते, और मदिरा पीकर नंगे होकर नाचते थे। ये गोरे लोग गन्दे थे, तथा वासना से

१. Marie Stopes—Married Love.

२. मनोवांछित भोजन देनेवाली इन्द्र की गौ।

३. Johann J. Meyer—Sexual life in Ancient India—Pub. Standard Literature Co., Calcutta—1952, Page–127.

४. वही, Sexual Life in Ancient India Page–126.

भरे रहते थे।[१] ये स्त्री, पुरुष खड़े होकर पेशाब करते थे, जैसे ऊँट, गधा आदि करते हैं।[२]

स्त्री की शक्ति

किन्तु जिस स्त्री की इतनी भर्त्सना है—और जिसका पाँच हजार वर्ष पूर्व वह मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है जिससे अधिक आज भी नहीं कहा जा सकता—उसकी बड़ी प्रशंसा भी है। पुराणों में लिखा है कि स्त्री की सबसे बड़ी शक्ति उसके आँसू है। वह आँसू गिराकर सबको पिघला देती है।[३] भृगु की पत्नी सुन्दरी पुलोमा से जब राक्षस पुलोमन ने ज़बर्दस्ती प्रसंग किया तो वह इतना रोयी कि उसके नेत्रों से निकले पानी से वधूसारा नामक नदी बन गयी। महाभारत के अनुसार स्त्रियों के अश्रु से ही[४] गंगाजी में कमल का फूल बनता-खिलता गया।

अश्रु के अतिरिक्त स्त्री की दूसरी महान् शक्ति है "आज्ञाकारिता, धैर्य तथा सहिष्णुता।" द्रौपदी ने सत्यभामा से कहा था कि मैं पति की सेवा में क्रोध, कामना तथा अहंभाव को छोड़कर जुटी रहती हूँ।"[५] "राजा की शक्ति उसके राज्य में, शास्त्री की शक्ति पांडित्य में तथा स्त्री की शक्ति उसके सौन्दर्य, जवानी तथा लावण्य में अपरिमेय है।"[६] सुन्द उपसुन्द दैत्यों की कथा में स्त्री के रूप की शक्ति का बड़ा रोचक वर्णन है। ऐसी अनेक कथाएँ दी गयी हैं कि अनजाना, पवित्र युवक प्रेम की लीला से अनभिज्ञ होते हुए भी एक सुन्दरी युवती को देखकर मानो "सब कुछ जान जाता है।"

किन्तु वासना का यह सब रूप देने के बाद हमारे शास्त्रकार वह मंत्र देते हैं जिससे वासना अपराध का रूप न धारण कर सके। जिस महाभारत में स्त्री का बुरा से बुरा रूप सामने रख दिया गया है उसी में हर जगह यही ध्वनि निकलती है कि स्त्री के प्रति उदार भाव होना चाहिए। उसकी भूलों के प्रति क्षमाशील होना चाहिए।

१. वही, पृष्ठ १२७
२. वही, महाभारत में कर्ण द्वारा वर्णित जाति।
३. वाल्मीकि रामायण ४–३३–२८
४. महा० १–१९७–९
५. क्षेमेन्द्र ने "दशावतारचरित" में भी यही गुण बतलाये हैं।
६. महाभारत–१२–३२०–७३

उसके प्रति उपेक्षा की भावना नहीं होनी चाहिए।[१] पवित्रता तथा चरित्र की इतनी मर्यादा है कि सुभद्रा ने अभिमन्यु की मृत्यु पर विलाप करते समय कहा—"जाओ बेटा, उस लोक में जाओ जहाँ तप, व्रत, नियम आदि का पालन करनेवाले तथा एक स्त्री से सन्तुष्ट रहनेवाले लोग जाते हैं।"[२] स्वर्ग लोक में वही लोग जाते हैं जो केवल अपनी धर्मपत्नी से संतुष्ट रहते हैं, परायी स्त्री को मां, बहन या बेटी समझते हैं, उसे किसी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाते।"[३] "काम से अंधा होकर जो अपनी स्त्री को छोड़कर परायी स्त्री में रमण करने का नियमविरुद्ध कार्य करता है...[४] ऐसा परायी स्त्री से भोग करनेवाला व्यक्ति भेंड़िया, कुत्ता, स्यार, गिद्ध, सर्प, बक आदि होकर पैदा होता है। जो अपने मित्र,[५] गुरु या राजा की पत्नी को ग्रहण करता है वह सूअर बनकर पैदा होता है, वह पांच वर्ष तक सूअर, दस वर्ष तक साही (काँटेदार जानवर), पाँच वर्ष तक बिल्ली, दस वर्ष तक मुर्गा, तीन महीने तक चींटी, एक महीने कीट-पतंग और इन संस्कारों से गुज़रकर १४ महीने कृमि योनि में तथा इतना प्रायश्चित्त करने के बाद फिर मनुष्य योनि में प्राप्त होगा।"[६] पाँच कुकर्म करनेवाले की निष्कृति नहीं होती। वह सदा के लिए जाति-च्युत तथा असम्भाष्य रहता है, नरक में वह मछली की तरह से भूना जाता है। वे पांच कुकर्म हैं—ब्रह्म-हत्या, गो-हत्या, अधार्मिकता (धर्म में अविश्वास), पर-पत्नी-सेवन तथा बीबी की कमाई खाना।[७] बाल्मीकि का उपदेश है कि "पर-पत्नी को छूने से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है।"[८] जो दूसरे की पत्नी को फुसलाता है या दूसरे के लिए प्राप्त करता है, वह नरक में जाता है।[९]

१. Johann J. Meyer—Sexual life in Ancient India—Pub. Standard Literature Co., Calcutta—1952, पृष्ठ ५२३

२. महा० ७–७८–२४

३. महा० १३–१४४–१०–१५

४. वाल्मीकि रामायण–२–७५–५२–५५

५. महा० १३–१०१–१६

६. महा० १३–१११–७५

७. वही–१३–१३०–३७–४०

८. वाल्मीकि ३–३८–३०

९. महा० १३–२३–६१

महाभारत में कथा है कि पांडवों के पिता पांडु ने अपनी पत्नी कुन्ती को स्त्री-धर्म समझाते हुए बतलाया[1] कि पहले कुमारी तथा विवाहिता जैसा चाहें वासना को शान्त किया करती थीं। उस समय कोई नैतिक विधान नहीं था। एक बार ऋषि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु के सामने उसकी माता को एक ब्राह्मण हाथ पकड़कर ले जाने लगा। श्वेतकेतु को बड़ा क्रोध आया। ऋषि उद्दालक ने उन्हें समझाते हुए कहा—"यह तो होता ही रहता है।" इस पर श्वेतकेतु ने कहा कि आज से नैतिक विधान में बदल रहा हूँ। आज से यह नियम होगा कि "यदि कोई पत्नी अपने पति से विश्वासघात करती है तो उसको जातिच्युत समझना चाहिए और वह भ्रूण-हत्या जैसे अपराध के समान दोषी होगी। यदि पुरुष अपनी अक्षतयोनि पत्नी के प्रति अविश्वसनीय साबित हुआ तो उसे भी यही दोष लगेगा।" श्वेतकेतु ने तब से नैतिकता का जो नियम बनाया है वही आज तक लागू है। तब से मनुष्य को आदेश है कि वह एक स्त्री से ही संतुष्ट रहे। एक स्त्री से सन्तुष्ट रहनेवाले को सहस्र अश्व-मेध यज्ञ का फल मिलेगा।[2]

वासना तथा कामना का नंगा रूप, उसका बीभत्स रूप, बतलाकर उस वासना से बचने का जैसा सुन्दर आदेश हिन्दू शास्त्रों में मिलता है, वैसा अन्य किसी भी देश के शास्त्र में नहीं। यही कारण है कि कामुक-अपराधों की दृष्टि से भारत सबसे पिछड़ा हुआ है यानी यहाँ के लोगों का चरित्र अन्य देशों की तुलना में कहीं अच्छा है। धर्म के साथ नैतिकता का मेल ही अपराध की सबसे बड़ी रोकथाम है। हम इसे आगे चलकर सिद्ध करेंगे। भारतीय समाजशास्त्र तथा धर्मशास्त्र की इसी महिमा को मायर ने अपनी पुस्तक में सिद्ध किया है। वे लिखते हैं कि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में जो गहरी कर्त्तव्य-शील भावना तथा सम्पूर्ण प्रौढ़ता मिलती है वह अन्य साहित्यों के गंदेपन, अश्लीलता तथा थोथी वासनाशीलता की तुलना में हमको एक रोचक संस्कृति का परिचय देती है।[3]

वात्स्यायन का कामसूत्र

कामशास्त्र तथा कामवासना[4] पर भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण

१. महा० १–१२२
२. महा० १३–१०७–१०
३. Sexual Life in Ancient India Page–5.
४. अंग्रेजी में जिसे Sex (सेक्स) तथा जिस शास्त्र को Sexuology

तथा विश्व में अपने विषय का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ वात्स्यायन का कामसूत्र है। इसके प्रणेता महर्षि वात्स्यायन ने "उत्कृष्ट कोटि के ब्रह्मचर्य के साथ ग्रन्थ का प्रणयन करने के लिए निर्विकल्प समाधि से साक्षात् देखकर सूत्रों की रचना की है।"[१] एक विद्वान् व्याख्याकार ने इसकी टीका की भूमिका में लिखा है कि "कामशास्त्र अर्थ और धर्मशास्त्र से कम नहीं है। अन्य पुरुषार्थों की तरह काम भी एक पुरुषार्थ है।" व्याकरण महाभाष्यकार ने कहा है "खेदात् स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति", काम से स्त्रियों में प्रवृत्ति होती है। गम्या और अगम्या दोनों के भोग से एक प्रकार की शान्ति मिलती है पर कामशास्त्र यह बतला देता है कि किसके साथ गमन करे और किसके साथ न करे। कामशास्त्र यह निश्चय करता है और धर्मशास्त्र उसमें पाप-पुण्य का नियमन कर देता है।

साहित्य भी कामशास्त्र का अंग है। महात्मा निश्चलदास ने स्पष्ट लिखा है कि "श्रृंगार रस के साहित्य कामशास्त्र के अंग है।" कोई चाहे कुछ कहे, इस विषय को जानना सभी चाहते हैं। वात्स्यायन ने "विद्या-समुद्देश्य" प्रकरण में लिखा है कि "जिन्होंने विवाह के बाद अनुभव कर लिया है, ऐसी साथ पली हुई धाय की लड़की, बराबर की मौसी, बूढ़ी नौकरानी, भोग-विलास कर चुकी भिखारिन, या अपने सामने रंगरेली तक करनेवाली बड़ी बहन—ये कन्याओं को काम-कला सिखानेवाले आचार्य हैं।" कामकला का शास्त्र भी बड़ा गूढ़ है। अखंड ब्रह्म-चारी वात्स्यायन ने पशु-पक्षी के साथ भी प्रसंग करने का तरीका बतलाया है। काम से उन्मत्त पुरुष बकरी या गधी के साथ तथा स्त्री घोड़ा-कुत्ता के साथ भी प्रसंग करती है। आज भी समाज के सामने इस प्रकार के प्रसंग की जटिल समस्या है। जरा-सी होशियारी से स्त्री को कैसे वश मे कर लिया जाय या फिर प्रसंग के समय चुम्बन कैसे हो, स्त्री किस तरह शयन करे, इत्यादि यह सब उन्होंने साफ़-साफ़ लिख दिया

(सेक्सुओलॉजी) कहते है उसका एकदम समानार्थक शब्द मिलना कठिन है। Sex का अर्थ व्याकरणाचार्यों के अनुसार लिंग, स्त्री-पुरुषात्मक लिंग, द्वन्द्व, मैथुन तथा काम हुआ। Sexuology का अर्थ लिंगविज्ञान, कामविज्ञान या कामशास्त्र हुआ। पर यह रूढ़ अर्थ में है।

१. वात्स्यायन के कामसूत्र के यहाँ दिये गये उद्धरण उसके "नितान्त गोपनीय संस्करण," श्री यशोधर विरचित, जयमंगला व्याख्या सहित, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई से संवत् १९९१ में प्रकाशित ग्रन्थ से हैं।

है। नायिका या वेश्या का भी बड़ा रोचक वर्णन है। वेश्या कैसे फँसाती है, कैसे चूसती है, इसका दिग्दर्शन है। वेश्या को यहाँ तक आदेश है कि उसे अपनी असली मां या व्यवहार में वैसा ही काम करनेवाली बूढ़ी मां का कहना जरूर मानना चाहिए।[१] यदि लड़की एक मिलनेवाले के साथ मिल रही हो, अधिक समय लग गया हो, दूसरा मिलनेवाला आ गया हो, यदि वह अधिक लाभवाला हो तो पहले को धता बतलाकर माता उस लड़की को दूसरे स्थान में ले जाकर छोड़ आये।[२] वात्स्यायन ने जिन स्त्रियों के साथ प्रसंग नहीं करना चाहिए, उनको इस प्रकार गिनाया है—

भिक्षुकी-श्रमणा-क्षपणा-कुलटा-कुहकेक्षणिकामूलकारिकाभिर्न संसृजेत् ॥
(अधि० ४–अ० १–सूत्र, ९)

भिखारिन, बौद्ध व जैन संन्यासिन, तमाशा करनेवाली (नटी), शकुन परखनेवाली, व्यभिचारिणी और जादू-टोना करनेवाली स्त्रियों के साथ संसर्ग न करे। अधिकरण १, अध्याय २ में पशु-पक्षी आदि के प्रसंग तथा मनुष्य के प्रसंग में भेद समझाया गया है।

वात्स्यायन के अनुसार शंकर महादेव के परम भक्त नन्दिकेश्वर (नन्दी बैल) ने एक हज़ार अध्याय में कामशास्त्र की रचना की। महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने उसका संक्षेप ५०० अध्यायों में किया।[३] बभ्रु के पुत्र पांचाल ने उसे १५० अध्याय तथा सात अधिकरणों में संक्षिप्त किया। बाभ्रव्य के संक्षिप्त संस्करण में से पटना की वेश्याओं ने छठें वैशिक (वेश्याओं के) अधिकरण को दत्तकाचार्य से पृथक् कराया।[४] इस प्रकार बहुत से आचार्यों ने इसे टुकड़े टुकड़े किया जिससे यह शास्त्र नष्टप्राय हो गया। अत. सब भावों का संक्षिप्त रूप करके वात्स्यायन ने अपना कामसूत्र बनाया।[५] पर क्यों बनाया—इसलिए कि धर्म अर्थ काम—तीनों जीवन के प्रधान सहचर हैं। ऋषि ने इन तीनों को प्रणाम करके अपना ग्रन्थ शुरू किया है। वे कहते

१. कामशास्त्र, न त्वेव शासनातिवृत्तिः।—कान्तानुवृत्तम्–अधि० ६, अ० २– सूत्र ८
२. प्रसह्य च दुहितरमानयेत्—वही, सूत्र ६
३. अधिकरण १, अध्याय १–सूत्र ९
४. वही ११
५. वही १३–१४

हैं—"धर्मार्थकामेभ्यो नमः।" यह तीनों एक साथ मिले जुले हैं। इनको बनानेवाले आचार्यों को नमस्कार है, "तत्समयावबोधकेभ्यश्चाचार्येभ्यः"। इस काम के दस भेद हैं, उसके दस स्थान हैं—दश तु कामस्य स्थानानि।[1] वे हैं "आँखों में प्रेम की झलक, चित्त की आसक्ति, संकल्प का पैदा होना, नींद का न आना, दुर्बल होना, अन्य विषयों से चित्त का हट जाना, लाज का मिट जाना, दीवानगी, बेहोशी और मौत।"

यह सब भी लिखा और सुख-भोग के बड़े-बड़े नुस्खे भी दिये। इतना सब लिखने का तात्पर्य क्या है? कामशास्त्र जानने से होगा क्या? क्या विषय-सुख के लिए कामशास्त्र है? ऐसी बात नहीं है। स्थान-स्थान पर वात्स्यायन ने वासना से बचने का उपाय बतलाया है और मनुष्य को सबसे बड़ी शिक्षा दी है कि तुम अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो। वे लिखते हैं—

रक्षन्धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः॥
(अधि० ७. अ० २, श्लोक, ५६)

धर्म, अर्थ, काम की स्थिति व अपनी दुनियादारी की स्थिति की रक्षा करता हुआ इस शास्त्र के तत्त्व को जाननेवाला व्यक्ति जितेन्द्रिय ही होता है।

इसमें कुशल होकर विद्वान् धर्म और अर्थ की ओर पूरी दृष्टि रख उचित काम में इसका प्रयोग करता है उसे अवश्य सिद्धि मिलती है—

तदेतत्कुशलो विद्वान्धर्मार्थाविव लोकयन्।

किन्तु जितेन्द्रियता तथा ब्रह्मचर्य का ऐसा उपदेशक मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं से पूरी तरह परिचित था। पश्चिम के देशों में अपराध-शास्त्रियों के सामने सम-योनि वालों के व्यभिचार की बड़ी समस्या है। पशु-संसर्ग की बड़ी समस्या है। "कमर में बनावटी........बाँधकर"[2] विषय के अपराध बढ़ते जा रहे हैं। वात्स्यायन ने इसका भी ज़िक्र किया है। अभिप्राय की शान्ति के लिए भेड़, बकरी और घोड़ी आदि के प्रयोग का भी ज़िक्र है।[3] पश्चिम में इस बात पर बहस चल रही

१. वही–अधिकरण ५ अ० १–सूत्र ४
२. कामसूत्र–अधि० ५ अध्याय ६–अन्तःपुरिकावृत्तम्–सूत्र–४
३. तथा ५

है कि किस श्रेणी का चुम्बन अपराध न माना जाय। वात्स्यायन ने चुम्बन पर अधिकरण २, अध्याय ३ में "चुम्बनविकल्पाः" पूरा विश्लेषण ही लिख डाला है। उसे मानने से अपराध का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। प्रेम को जिस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए इसका वर्णन करके मादकता को संयत किया गया है। जिससे प्रेम करे उसे पहले पान खिलाये, यदि ताम्बूल न खाय, तो कसम दिलाकर खिलाये—यह वात्स्यायन का मत है। शरीर की रक्षा का, अंग-अंग के स्वास्थ्य का उपदेश है। यहाँ तक कि दाँतों का भी गुण दे दिया है। "दाँत बराबर हों, सुन्दर चमकने वाले हों, जिनके ऊपर पान का रंग चढ़ जाता हो, जितने लम्बे चौड़े होने चाहिए वैसे ही हों, उनके बीच में जगह या दरार न हों, नुकीले हों—ये दाँतों के गुण हैं।" (अधि० २, अ० ५—दशनच्छेदविधि—सूत्र २)[१]

जायज़ उम्र

अपराध शास्त्र के सामने एक बड़ी भारी समस्या है कि किस उम्र के पुरुष-स्त्री-संसर्ग को वैध तथा किसे अवैध या नाजायज़ माने। वैध उम्र के पूर्व का संसर्ग "बलात्कार"[२] समझा जाय या नहीं। चिकित्साविशेषज्ञ अपराधशास्त्री अब धीरे-धीरे इस निर्णय पर पहुँचते जा रहे हैं कि बलात्कार नामक कोई चीज़ ही नहीं है। उसे दंडविधान से हटा दिया जाय। हम इस विषय पर आगे चलकर समुचित विचार करेंगे। "बलात्कार" उसे कहते हैं जिसमें कन्या के साथ, बिना उसकी इच्छा के, संसर्ग किया जाय। वात्स्यायन ने बलात्कार की ऐसी प्रणाली बतला दी है कि बलात्कार रह नहीं जाता। "बलात्कारेण नियुक्ता" में ऐसी जबर्दस्ती की ही भावना है।[३] पश्चिमी विद्वान् भी इसी नतीजे पर पहुँचते जा रहे हैं कि कन्या की संभोग के योग्य उम्र का अन्दाज़ा लगाना कठिन है। यह अपने-अपने गठन तथा रहन-सहन पर निर्भर करता है। हमारे देश में भी इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। स्मृतिकारों के अनुसार तीस वर्ष का वर, १२ वर्ष की कन्या तथा २४ वर्ष का वर और ८ वर्ष की कन्या, यानी कम से कम, पति-पत्नी में १६-१८ वर्ष का अंतर बतलाया

१. वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचि कौमुदी, हरति दरतिमिरमति घोरम्। गीतगोविन्द—१०.१. (जब आप कुछ कहती हैं तो आपके दाँतों की स्वच्छ, चमकरूपी चांदनी मेरे भयरूपी अंधकार को एकदम दूर कर देती है।)

२. Rape

है।[1] आयुर्वेद के आचार्य सुश्रुत ने २५ वर्ष के वर तथा १२ वर्ष की लड़की का विधान किया है।[2] वाग्भट ने तो २० वर्ष के वर तथा १६ वर्ष की लड़की के संभोग को सही माना है। यदि १६ वर्ष की लड़की का गर्भाशय शुद्ध हो, वीर्य, रज, और मन शुद्ध हो तो बलवान् सुन्दर पुत्र पैदा होता है।[3] पराशर ऋषि ने रजस्वला होने के बाद ही (चाहे वह ८ की हो या १२ की) सहवास करने का आदेश दिया है।[4] वैद्यक शास्त्र में तो यहाँ तक कह दिया है कि "नित्यं बाला सेव्य-माना नित्यं वर्धयते बलम्।" माधवाचार्य के अनुसार रोयें भी न निकले हों—विलोम योनि का सेवन करना चाहिए।[5] इस प्रकार इतने मत–मतान्तरों ने वही कहा है जो आज पश्चिम के अपराधशास्त्री सोच रहे हैं—बलात्कार कब माना जाय? कौन-सी उम्र "कच्ची" कही जाय? वात्स्यायन ने तो स्त्री की स्वीकृति पर इतना ज़ोर दिया है कि सुहागरात में भी ज़बर्दस्ती मना की है।

उपक्रममाणश्च न प्रसह्य किंचिदाचरेत्।

अधि० ३, अ० २, ५

लड़कियाँ बड़ी बुद्धिमान् होती हैं। वे पुरुषों के कहे वचनों को अच्छी तरह सह (समझ) लेती हैं।

सर्वा एव हि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते। (३, २, २७)।

इसलिए बलात्कार स्वयं एक निरर्थक, भद्दी तथा गन्दी बात है। पर किस उम्र मे "बलात्कार" मानें यह शंका की बात हो गयी। इस विषय में हमको आगे चलकर फिर विचार करना पड़ेगा। यहाँ पर केवल आर्य दृष्टि से उस पर विचार जान लेना चाहिए।

१. बलात्कारेण नियुक्ता मुखे मुखमाधत्ते न तु विचेष्ठत इति निमितकम्। अधि० २ अ० ३–सूत्र ८।

२. अस्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् पित्र्य–धर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति। (सुश्रुत संहिता, शरीर स्थान) अध्याय १०

३. शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनले हृदि॥ वा० शा० अध्याय ९

४. ऋतुस्नातां तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति।

५. अलोमकाः सतिलका नित्यं सेव्यास्तु योनयः।

अध्याय ४

अन्य पुरानी सभ्यताओं की स्थिति

वेश्या का स्थान

अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह विषय इतना व्यापक है कि संक्षेप में भी वर्णन करते-करते काफ़ी बातें सामने आ जाती हैं। उदाहरण के लिए वेश्यावृत्ति प्रायः सभी देशों में वैध चीज़ थी और रखेल या व्यभिचार या कभी-कभी के दुराचार से उसका दर्जा सदैव ऊँचा रहा है। जब से सभ्यता का इतिहास है, तभी से वेश्या-वृत्ति भी है, पश्चिमीय पंडितों के अनुसार इन आठ कारणों से स्त्री वेश्या बनती है—

(१) जीविका के लिए, (२) कम मजदूरी और अत्यधिक परिश्रम के कार्य से बचने के लिए, (३) घर पर होनेवाले बुरे व्यवहार के कारण, (४) गरीबों की बस्ती में खुले ढंग से रहने और अशिष्ट रहन-सहन के कारण, (५) बड़े समुदायों तथा कल-कारखानों में रहने से जिसमें भले-बुरे का खुलकर साथ होता है, (६) धनी वर्ग की आरामतलबी, भोगविलास तथा आनन्द देखकर उसके लालच से, (७) भ्रष्ट साहित्य या भ्रष्ट मनोरंजनों से तथा (८) पुरुषों के प्रलोभन एवं दलालों के कारण।

पर हमारे देश में ही नहीं, प्राचीन रोम, यूनान ऐसे देशों में भी मानव की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इसे धार्मिक रूप भी दे दिया गया था। जिस प्रकार मंदिर में कन्यादान दे देना, देवदासी बना देना भारतवर्ष में पुण्य माना जाता था, उसी प्रकार अनेक प्राचीन देशों में भी यह कार्य करना पुण्य समझा जाता था। अतः ऊपर लिखे हुए आठ कारणों में से सब जगह एक भी लागू नहीं होता था।

भारतवर्ष की तथा अन्य प्राचीन देशों की सभ्यता में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि हमारे यहाँ उपासना के लिए स्त्री को देवी के रूप में केवल मां माना गया है। कामवासना के लिए आराध्य देव कामदेव हैं। रति तो उनकी पत्नी है। उनकी पूजा नहीं होती। पर मिस्र, फ्रोयेनीशिया, असीरिया, चाल्डिया, कनान, ईरान, रोम,

यूनान[१], सभी देशों में वे वासना की देवी बना दी गयी हैं—देवी आइसिस, देवी मोलोश, देवी बाल, देवी आस्तार्ती, देवी मिलिता (मालती) इत्यादि—और वासना का गंदे से गन्दा अभिनय "इनकी सेवा में अर्पित" था। इसी लिए जहाँ भारत ऐसे देशों में चरित्र की मर्यादा बहुत कुछ बनी रही, वहाँ पश्चिम के देशों में वह बहुत कुछ समाप्त भी हो गयी है। केवल यहूदियों को छोड़कर—यद्यपि वहाँ भी किसी रूप में यह प्रथा वैध थी—अन्य सभी प्राचीन देशों में वेश्या का समाज में अच्छा स्थान था। मिस्र तथा कनान में घोर वेश्याचार था। यहूदी भी वेश्याएँ रखने लगे। पर वे विदेशी होती थीं। बैबीलोन में वेश्या बनना अनिवार्य सा था—हर स्त्री को पराये पुरुष के साथ एक बार सोना पड़ता था। वहाँ की देवी मिलिता के सामने सबसे बड़ी भेंट थी अपना सतीत्व खो देना, चढ़ा देना। यहूदियों ने वेश्यावृत्ति को जायज नहीं माना, पर पर-पुरुष सेवन और उससे पैसा कमाने के लिए उनके यहाँ कोई सजा भी नहीं थी। किन्तु यदि पुरोहित की कन्या व्यभिचारिणी हो तो उसे जिन्दा जला देते थे। कुमारी के व्यभिचार को कुछ छूट थी पर विवाहिता के व्यभिचार पर उसे पत्थर मारकर मार डालते थे। यरूशलेम नगर तथा यहूदी मंदिरों में स्त्रियों का जाना मना था। पर धीरे-धीरे फिलिस्तीन में वेश्याएँ फैल गयी। हजरत मूसा को सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए तथा ऐन्द्रियिक बीमारियाँ रोकने के लिए जो नियम प्रचारित करने पड़े वे इस बात के परिचायक हैं कि वहाँ दुराचार कितना बढ़ गया था। चीन में व्यभिचार इतना अधिक फैला था कि लाओत्से तथा कनफ्यूसियस ऐसे दार्शनिकों को बड़ी हिदायतें देनी पड़ी थीं। यूनान में तीन हज़ार वर्ष पूर्व वह कार्य हुआ जो बीसवीं सदी में हमने किया—यानी वेश्याओं के लिए अलग मुहल्ले बसाये गये। सरकारी वेश्यालय भी खुले तथा वेश्याओं की आमदनी सरकार को धनी बनाती रही। वेश्याओं की श्रेणियाँ बनायी गयी। उनकी पोशाक भिन्न रखी गयी। बड़े-

१. अति प्राचीन सभ्यताओं में देवी की उपासना बहुत प्रचलित थी। सभी देवियाँ वासना की मूर्ति नहीं थीं। कुछ प्रमुख देवियों तथा उसकी उपासक जातियों के नाम निम्नलिखित है—

१. फोयेनिशियन–अस्तार्ती। २. फेजियन–सिवेली। ३. थ्रेसियन–बन्दीस (बन्दी देवी)। ४. क्रेटन–रीं (हीं) ५. एफ़ेसियन–आर्टोमिस ६. कैपोडिसियन–मा (माता) ये सभी यूनानी राज्यों के लोग तथा देवियां हैं—
L. R. Farnell—Cults of the Greek States, Clarendon Press 1896

बड़े यूनानी शासकों, राजनीतिक नेताओं, विद्वानों के पास वेश्या होती थी जिसका बड़ा प्रभाव होता था। कोरिथम् नामक यूनानी नगर तथा प्रदेश में कामदेवी अफ्रोडाइट की उपासना में गन्दा-से-गन्दा व्यभिचार होता था। मंदिर की तरफ से वेश्याएँ नियुक्त थीं। मंदिर की सेविकाएँ वेश्या होती थी। अथेंस, यूनान की राजधानी, में धीरे-धीरे यह नियम हो गया कि जो भी चाहे, सरकारी कर देकर अपने यहां वेश्यालय खोल सकता था। रोम में परिस्थिति भिन्न थी। वहाँ पर शरीफ आदमी का वेश्या के साथ चलना, घूमना, इत्यादि वर्जित था। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो ने अपने राजनीतिक विरोधियों को "वेश्यागामी" कहकर उनकी भर्त्सना की थी। रोम का राज्य संसार का पहला राज्य है जिसने वह कार्य किया जिसे बीसवीं सदी में हमने—सभ्य जगत् ने—किया। वहाँ पुलिस द्वारा वेश्या की रजिस्ट्री होती थी।[१] नागरिकों को वेश्या की पुत्री या पुत्र से विवाह करने की मनाही थी, वेश्याओं पर प्रतिबंध लगाने के लिए वहा बहुत से कानून बनाये गये, पर रोम प्रजातन्त्र के पिछले दिनों में भ्रष्टाचार तथा वेश्यागमन बहुत बढ़ गया था।[२]

रोम में वेश्याओं पर जो कर लगता था, उसे सम्राट् थियोडोसियस ने चौथी शताब्दी में बहुत कुछ माफ कर दिया था। सम्राट् कालीगुला ने उसे समाप्त कर दिया। वास्तव में इस कर को एकदम समाप्त करने का श्रेय सम्राट् अनस्तासियस प्रथम को है। सम्राट् जस्टीनियम ने छठी शताब्दी में वेश्याओं को कुछ और अधिकार दिये।[३] ईसाई धर्मविरोधी लोग ईसाई कुमारी कन्याओं का अपहरण कर उनके साथ व्यभिचार कराना धर्म समझते थे। ईसाइयों ने अनेक कारणों से भ्रष्ट तथा पतिता स्त्री के साथ नर्मी के बर्ताव की सलाह शुरू से दी है। यदि गिरजा में जाकर मन से पछतावा किया जाय, तो सब पाप धुल जाते हैं—यह नसीहत थी। वेश्या के उद्धार के लिए बहुत कार्य हुए। पोप इनोसेंट तृतीय (११९८–१२१६) ने आदेश दिया कि वेश्या के साथ विवाह कर लेना बड़ी प्रशंसनीय बात है।[४] पोप ग्रेगरी ९वें ने जर्मनी में भठियारखाना बन्द कराने का आदेश दिया था। पादरियों को आदेश दिया गया कि

१. W. F. Amos—State Regulatiou of Vice

२. Gibbon—Decline and fall of Roman Empire

३. Flexner—Prostitution in Europe

४. W. W. Sanger—"The History of Prostitution"—The Medical Publishing Co., 1910.

"कुमारों से, अविवाहितों से कहो कि पतिता कन्याओं से विवाह कर लें या ऐसी लड़कियों को ईसाई महिला-आश्रमों में भेज दें।" पर वेश्यावृत्ति रुकी नहीं, बढ़ती गयी। गर्भपात, ऐन्द्रियिक बीमारी आदि के कारण १३वीं सदी में ही इनकी चिकित्सा के लिए अस्पताल खुल गये थे। गर्मी (आतशक) की भयंकर बीमारी चारों ओर फैल गयी। एक स्त्री का अनेक पुरुषों के साथ संबंध होने पर यही होगा। यूरोप में एक-न-एक महायुद्ध लगा ही रहता था। सेना अपनी वासना की तृप्ति के लिए कहीं भी लड़कियों पर टूट पड़ती थी। इससे सेना में बीमारी भी खूब फैलती थी। सेना के द्वारा ही सन् १४९६ में गर्मी की बीमारी इंग्लैंड पहुँची। उसे (बीमारी को) वहाँ पर फ्रेंच या स्पेनी शीतला कहते थे।

वेश्या कभी समाप्त न हुई। जब उसे समाप्त करना असंभव हो गया तो उस पर कानूनी प्रतिबंध लगाये जाने लगे। पुराने रोमन कानूनों से इसमें बड़ी सहायता मिली। वेश्याओं की रजिस्ट्री (पुलिस के रजिस्टर में उनका नामांकन आदि) रोम के बाद सबसे पहले सन् १७७८ में फ्रान्स में शुरू हुआ। इंग्लैण्ड में आज तक यह रजिस्ट्री का कानून नहीं है। वहाँ सन् १८८५, १९१२ तथा १९२२ के कानून के अनुसार लड़की भगाना, उसे व्यभिचार के काम में लगाना या किसी को भी व्यभिचार के लिए फुसलाना गुनाह है। १३ से १६ वर्ष की कन्या के साथ भोग करना अपराध है ; पर यह सब एकतरफा है—वेश्या अपने काम में लगी हुई है। बर्लिन (जर्मनी की राजधानी) के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने सन् १७९२ में "वेश्या के प्रति उदार भाव" बरतने की सलाह दी, क्योंकि "यह बुरी चीज होते हुए भी आवश्यक है।" "मानव की कामवासना की स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति करने के लिए इसका होना ज़रूरी है। अन्यथा समाज में और गड़बड़ पैदा हो सकती है।"

बर्लिन सम्मेलन ने लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जो कहा था, आज भी वह सत्य है। आज के मानव में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है। उसकी वासना तथा समस्या में कोई भी अन्तर नही है। वासना तथा उससे उत्पन्न समस्याएँ इतनी स्वाभाविक तथा निरन्तर की हैं कि मनुष्य लाख प्रयत्न करने पर भी उनके दायरे से बाहर नहीं निकल सकता। इसी लिए अपराधशास्त्र कहता है कि पहले मानव की समस्या को समझ लो, फिर उसे अपराधी कहो या दंड दो।

वासना के अनेक रूप

हज़ारों वर्ष पहले की बात है कि मिस्र की एक रानी ने अपने पति नरेश ओसिरिस की हत्या हो जाने पर उसके शरीर का पता लगवाया। उसके ४० टुकड़े करके एक

वर्त्तन मे रखकर नदी में बहा दिये गये थे। जब लाश मिली तो रानी ने प्रत्येक अंग को अलग-अलग दफ़ना कर उस पर स्मारक बनवा दिया पर नरेश का लिंग नहीं मिला। रानी ने अंजीर के पेड़ की लकड़ी का विशाल लिंग बनवाकर खड़ा कर दिया और आदेश दिया कि हर एक नर-नारी उस लिंग का पूजन करे—और लिंग के उस पूजन ने मिस्रवालों में जो कामुकता भर दी उसका क्या वर्णन किया जाय ?

मिस्र मे आइसिस के मंदिर में पुजारी को ब्रह्मचर्य की शपथ लेनी पड़ती थी। रोम में अग्निपूजा में अग्नि को सदैव प्रज्वलित रखने के लिए कुमारी कन्याएँ नियुक्त की जाती थीं। यदि इनमें से कोई भी पथ-भ्रष्ट हो जाती तो अग्नि को अशुद्ध करने के दोष में उसको प्राणदंड मिलता था।[१] किन्तु, मिस्र और रोम बड़े विलासी देश थे।

विलासी कौन नहीं था, यह कहना बड़ा कठिन है। जिन यहूदियों ने वेश्यावृत्ति को निन्दनीय समझा था उनके देश में विलासिता बहुत अधिक बढ़ गयी थी और वे हर प्रकार का कामुक उत्पात करते थे।[२] उन दिनों के यहूदी कानूनों में अधिकांश कामवासना तथा उससे उत्पन्न होने वाली बीमारियों के सम्बंध में है। उनकी देवी "बाल पीयूर" का अर्थ ही था "अक्षत योनि की स्वामिनी"।[३] यहोवा ने इसकी उपासना की मनाही कर दी थी और इस आज्ञा को न मानने पर २४,००० नर-नारियों का क़त्ल किया गया था। हिब्रू लोगों की देवी "आशिरा" तथा फोयेनीशिया की देवी आशलोरी केवल स्त्री की योनि के रूप में पूजी जाती थी। पुरुष के लिंग का इतना महत्त्व था कि यहूदी ईसाई धर्म में प्रसिद्ध व्यक्ति अब्राहम ने अपने नौकर से शपथ दिलाते हुए कहा—"मैं तुझसे अनुरोध करूँगा कि मेरे जंघे के नीचे हाथ रखकर (शपथ ले)।"[४] खतना कराने की प्रथा यहूदियों ने शुरू की। वे इसलिए ऐसा करते थे कि विवाह का सुख मिले।[५]

मिस्र में राजकुल मे भी विलासिता भर गयी थी। जिस प्रकार लम्बे बालों को छंटवाकर छोटे रखने की प्रथा महमूद गजनवी के समय से शुरू हुई, उसी प्रकार

१. Marr पृष्ठ ९५

२. H. Cutner—A Short History of Sex-Worship-1940 का संस्करण. पृष्ठ २०

३. Inman—"Ancient Faith embodied in Ancient names".

४. Old Testment. "Put, I pray thee, thy hands under my thigh"

५ Cutner—Page 23-Ecliot Smith का मत

बालों में मोती पिरोने की प्रथा प्राचीन मिस्र ने प्रारम्भ की। शराब में मोती घोलकर पीने की रीति मिस्र की सुन्दरी रानी क्लिओपाट्रा ने शुरू की। उसकी बहिन ज़रीना का शृंगार उसकी भारतीय बाँदी करती थी। शुतुरमुर्ग के पर से, सिगराफ की स्याही से आँखों के भीतर सफेद हिस्सों पर नित्य बेलबूटे बनाती थी। नेत्रों के भीतर इतना बारीक शृगार एक भारतीय महिला करती थी।[1]

रोमन लोगों के कामदेवता का नाम प्रियापस था और कामदेवी का नाम वेनस। फोयेनीशिया मे कामदेवी को अस्तार्ती कहते थे। यह देवी उभयलिगी यानी पुरुष तथा स्त्री दोनों ही थी। इसके उपासक पुरुष स्त्री वेष धारण कर लेते थे।[2] रोमन लोग कामदेवी की पूजा का उत्सव मार्च के महीने में मनाते थे। मिस्र की तरह यहाँ भी रथ पर एक विशाल लिंग रखकर नगर की परिक्रमा कराते थे। पुरुष-स्त्री समान रूप मे उसकी पूजा करते थे। स्त्रियाँ अपने हाथों में लकड़ी या धातु का बना लिंग लेकर चलती थी। पर अक्टूबर के महीने में जब बक्कानालियन त्यौहार मनाया जाता था, उस समय स्त्री-पुरुष गन्दे-से-गंदा तथा भद्दे-से-भद्दा काम खुले आम करते थे। इस उत्सव के समय की गन्दगी की इतनी बदनामी बढ़ी कि सरकार को इसे क़ानूनन बन्द करना पड़ा।[3] रोम में मंदिरों की दीवारों पर और सार्वजनिक स्नानागार आदि में "भोग प्रसंग" के चित्र बने रहते थे। सार्वजनिक स्नानागारों में हर प्रकार के प्रसंग खुले आम होते थे। नंगे स्त्री-पुरुष एक साथ स्नान करते थे। नंगे युवक सड़कों पर भागते हुए दिखाई पड़ते थे। वे लड़कियों को खुले आम डंडों से पीट दिया करते थे। नाटकों, अभिनयों में पात्र नंगे होकर अभिनय किया करते थे। पुरुष-संसर्ग का भी बड़ा रिवाज चल गया था। बड़े लोग स्त्री रखेली ही नहीं, पुरुष रखेल भी रखते थे। फिलस्तीन से मिस्र तक की यात्रा करनेवाले नरेश हैड्रियन का एक सुन्दर यूनानी लड़के से बड़ा प्रेम था। यह लड़का नील नदी में गिरकर मर गया। इसका नाम था ऐंतो-

१. Eafradeote के Narration उपन्यास में वर्णित कन्या जरीना या क्लिओपाट्रा ३००० वर्ष पूर्व की स्त्रियां हैं।

२. Cutner ने सन् १९१० में कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाइयों में सखी भाव (प्रभु ईसा की दुल्हनें) के लोग पेरिस में देखे थे, पृष्ठ ६१।

३. बक्कस देवता के पुजारियों का एक गुप्त सम्प्रदाय दक्षिण इटली में था। लगभग आधी जनता इस पर श्रद्धा रखती थी। इस सम्प्रदाय में युवक तथा युवतियों की ही ज्यादातर दीक्षा होती थी। एक रखेल ने इसका रहस्योद्घाटन किया था।

नियो। इसके मरने का नरेश को इतना शोक हुआ कि उसके मृत्युस्थान पर उसी के नाम का नगर बसा दिया। उसकी प्रतिमाएँ साम्राज्य के हर नगर में बिठा दी गयीं। यह झूठ भी गढ़ दिया कि मरकर अन्तोनियो आकाश में एक नवीन तारा बन गया है।[१] यों तो रोम की सबसे प्रिय देवी कामदेवी वेनसके यूनान और रोम में मिलाकर ही १८५ मन्दिर थे।[२] रोम का सबसे प्रसिद्ध मंदिर देवी "आइसिस" का था। यह भ्रष्टाचार या व्यभिचार का केन्द्र था। "यह मंदिर वेश्याओं से भरा हुआ था।"[३] रोमन सम्राट् नीरो अपनी बर्बरता तथा क्रूरता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पर इसमें उसका क्या दोष है?

नीरो की कथा

रोम के सम्राटों में नीरो का नाम लेने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पर अपराध-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए वह एक आदर्श अध्ययन है।[४] नीरो के बाबा बड़े निर्दय तथा हृदयहीन व्यक्ति थे। राह चलते जानवरों के प्राण लेना उनका खिलवाड़ था। उनके समय के तलवार के खेल इतने निर्दय थे कि सम्राट् आगस्टस ने उन्हें (खेलों को) बंद करवा दिया। नीरो के पिता भी बड़े निर्दय व्यक्ति थे। अपने साथ पूरी तरह से शराब न पीने पर क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने साथी को मार डाला था। एक लड़के को कुचल दिया था। वे बड़े विलासी व्यक्ति थे। कई औरतें रखेल थीं। इनकी पत्नी अग्रिप्पिना बड़ी महत्त्वाकांक्षी, विलासी, बदचलन स्त्री थी। जब इस स्त्री को बच्चा पैदा होने की सूचना नीरो के पिता को मिली तो उन्होंने कहा—"उसकी सन्तान पिशाच होगी तथा संसार के लिए अभिशाप।"

अग्रिप्पिना नीरो को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती थी। उसने नीरो की सौतेली बहिन ओक्टाविया से उसकी शादी करा दी। नीरो की वासना सन्तुष्ट न हुई। फ्रायड नामक महान् मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि जिस लड़के की माता "मर्दानी" होती है, वह लड़का अप्राकृतिक संभोग का शौक़ीन तथा पुरुष-पुरुष विलासी होता है। नीरो

१. **ईसवी सन् १४०–१५० की घटना, देखिए**—Otto Kiefer—"Sexual Life in Ancient Rome"—1951–Page, 336-337

२. Cutner **पृष्ठ ४९.**

३. Otto Kiefer **पृष्ठ १२९.**

४. **वही, पृष्ठ ३१८ से ३२१ तक**

बचपन से ही ऐसा था। फिर वह अनेकों स्त्रियों का भी शौक़ीन हो गया और कहते तो यहाँ तक हैं कि उसका अपनी ही माता से, जिसके पेट से पैदा हुआ था—उसी अग्रिप्पिना से प्रसंग हो गया था। ऐसा व्यक्ति संसार का सबसे क्रूर तथा कठोर नरेश न होगा तो और क्या होगा ?

वासना, स्वभाव तथा परिवार के सम्मिलित प्रभाव का यह बड़ा महत्त्वपूर्ण अध्ययन है।

यूनानी सभ्यता में

यूनान तथा रोम की सभ्यता में बड़ा भारी अन्तर यह था कि रोम विश्वविजयी साम्राज्य था अतएव वहाँ के लोगों में भौतिक, दुनियाबी चीज़ों के प्रति अधिक रुचि थी। पर चाहे कला हो या साहित्य, राजनीति हो या कामवासना, हर एक के साथ यूनानी सभ्यता ने एक विचित्र दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता का, धर्म तथा नैतिकता का मिश्रण किया है। किन्तु जिस कामुक कल्पना से उन्होने रचना का रूप समझा, उसी की लपेट में, काम तथा भोग में वे कामुकता की सीमा को भी पहुँच गये थे। यूनानी लोग आकाश को यूरानस[१] कहते थे—वह पुरुषलिंगी था, उसमें पैदा करने की शक्ति थी। जब पृथ्वी में भोग की इच्छा होती थी तो वह पृथ्वी का रमण वर्षा के जल द्वारा करता था। पृथ्वी के गर्भ में भी गर्मी और नर्मी का प्रवेश कराकर अन्न आदि का उत्पादन करता था, आकाश पिता था, पृथ्वी माता थी। जब पृथ्वी माता ही भोग तथा वासना की शिकार हो सकती थी, तो उसकी संतान मनुष्य का क्या कहना है। यूनान में "प्रेम तथा सौन्दर्य"[२] की देवी अफ्रोदोइत थी। इसकी, रोम में वेनस की पूजा तथा मिस्र में आइसिस देवी की पूजा में कुछ ऐसी विधियाँ बरती जाती थी जिनसे पता चलता था कि प्राचीन काल में तंत्रशास्त्र तथा वाममार्ग का काफ़ी प्रचार था। पर इस देवी द्वारा, जो कि "सुन्दर नितम्बोंवाली"[३] थी, एक शिक्षा यह मिलती थी कि स्त्री ही प्रेम का आधार है। पृथ्वी को भोग की इच्छा हुई तो सृष्टि में सब कुछ पैदा हुआ। इसी प्रकार पहले वासना का स्रोत स्त्री से प्रारम्भ होता है। देवी की

१. Otto Kiefer —पृष्ठ ३१८ से ३२१ तक

२. Hans Licht—Sexual life in Ancient Greece—1952 Edition—Page 181

३. वही, पृष्ठ २०१

पूजा में तरह तरह के नियम थे। विभिन्न यूनानी नगरों का भिन्न-भिन्न चलन था। साइप्रस ऐसे सुन्दर टापू में अफ्रोदाइत की मूर्ति का जलूस निकालकर सुन्दरी कन्याएँ स्नान कराती थीं और फिर वे स्वयं स्नान कर "खुले भोग-विलास" के लिए तैयार हो जाती थी। किसी नगर में देवी की पूजा के लिए स्त्रियों तथा कुमारियों को पूजा के नौ दिन पहले से पुरुष-प्रसंग करने की मनाही थी। नौ दिनों तक बिना संभोग के रहन बड़ा कठिन था।[१] इसलिए ये औरतें पत्तों पर सोती थी तथा ठण्डी जड़ें अपने पास रखती थीं ताकि कामवासना दबी रहे। फ़ोतियस[२] का कहना है कि इन दिनों पुरुषों को अपने पास आने से बचाने के लिए औरतें खूब प्याज खा लेती थी ताकि मुँह की बदबू से मर्द भाग जाय।[३] पर यह व्रत उनसे इसलिए कराया जाता था कि नौ दिन की छुटी-छुटाई वे समारोह तथा उत्सव के समय काफ़ी कामोत्तेजित रहें। इसलिए उनके द्वारा पुरुषों को अधिक आनन्द मिलेगा। दायोनीसियस देवी की पूजा में स्त्रियाँ तथा पुरुष एक विशाल लिंग लेकर चारों तरफ नाचते-घूमते थे और फिर दूसरे दिन एकदम नंगे लड़के एक पैर पर सड़क पर नाचते थे। फिर तो खुला विलास होता था।

देवताओं में भी बड़ा भोग-विलास था। यूनान के प्रसिद्ध देवता प्रियापस एक दिन लजीली, शर्मीली लोटिस नामक कुमारी पर लट्टू हो गये। जब वह सुन्दरी दायो-निसियस देवी के त्यौहार में दिन भर खेलने, कूदने से थककर, शराब के नशे में चूर, अपनी सहेलियों के साथ मैदान में घास पर सो रही थी, देवता प्रियापस पैर दबाये चुपके से आये और लोटिस की जंघों पर का कपड़ा उठाने लगे। उसी समय सालेनस देव का गधा रेंकने लगा। उसकी रेंकने की आवाज़ से लोटिस जाग उठी। उसकी सहेलिनें जाग उठी। प्रियापस की मनोकामना पूरी न हो सकी। क्रोधवश उन्होंने उस बेगुनाह गधे को मार डाला। तब से यूनान मे देवता प्रियापस की संतुष्टि के लिए गधे का बलिदान होता है।[४] यूनानी देवताओं मे यह देवता कामवासना की मूर्त्ति है।

पर, पुरुष—पुरुष का सम्बंध करनेवाले भी देवता थे। यूनानी हियासिंथस नामक फूल की सुन्दरता विश्वविख्यात है। संसार के कोने-कोने में यह फूल मिलता है। इसकी भी एक कथा है।[५] बलशाली देवता अपोलो को सुन्दर बालक हियासिंथस से बड़ा प्रेम था। एक दिन वे इस सुन्दर लड़के के साथ एक खेल खेल रहे थे। लोहे का

१. वही, पृष्ठ १११
२. Photius (ii, 228–Editor–Naber)
३. पृष्ठ १११ (हांस लिखित)
४. Sexual life in Greece—पृष्ठ २२१
५. वही, पृष्ठ ११४

गोल पहिया फेंकने का खेल था।[१] वायु देवता जेफ्राइस भी इस लड़के से प्रेम करते थे और उसका अपोलो के प्रति प्रेम उन्हें बहुत बुरा लगा। उन्होंने वायु के बेग से लोहे का भारी पहिया हियासिंथस के सिर पर गिरा दिया। वह मर गया। जहाँ पर उसके सिर से रक्त गिरा था, पृथ्वी माता ने उसी के समान सुन्दर फूल उत्पन्न किये। इसी फूल का नाम हियासिंथस है। इस हत्या का त्यौहार तीन दिन तक स्पार्टा में मनाया जाता था। स्पार्टा में नंगे लड़कों का नाच बहुत प्रचलित था। ईसा से ६७० वर्ष पूर्व इस प्रकार का नृत्य बहुत प्रचलित था।[२]

यूनानियों ने भोग-विलास को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। उनके यहाँ विवाह के बाद सुहागरात के बड़े रोचक तरीके थे।[३] नववधू को किस प्रकार संकोच का प्रदर्शन करना चाहिए, यह भी सिखाया गया है। विवाह के विचित्र तरीकों से यूनानी इतिहास भरा पड़ा है। आबादी बढ़ाने के लिए स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार से हीन तथा दासता से मुक्त ग़ैर-यूनानियों से भी विवाह करने का अधिकार था। पर ऐसे पति के पास जाने के समय, पहली रात को, बराबरी का दावा कायम रखने के लिए पत्नी नक़ली दाढ़ी लगाकर पति के पास जाती थी।

यूनान में स्त्री को पुरुष के ढंग से तथा पुरुष को स्त्री के ढंग से प्रयोग में लाने की शुरूआत भी धार्मिक रूप से शुरू हुई।[४] हर्माफ्रोदाइतोस बड़ा ही सुन्दर युवक था। जब उसकी उम्र १५ वर्ष की हुई, कारिया झरने में रहनेवाली जलदेवी सल्मासिस उस पर लट्टू हो गयी, उस बालक को बहकाकर पानी में ले गयी। वहीं ज़बर्दस्ती उससे रमण करने लगी। उसका ऐसा प्रेम देखकर देवताओं ने दोनों के शरीर को जोड़ दिया। नर-नारी एक में हो गये। उस तालाब को यह वरदान मिल गया कि जो भी उसमें स्नान करेगा, आधा पुरुष, आधा स्त्री हो जायगा। हर्माफ्रोदाइतोस के साथ पान तथा सैटिर्न नामक देवों के प्रसंग के चित्र या मूर्त्तियाँ संसार में सबसे भद्दी कामुक मूर्त्तियां है और यूनान में ऐसी मूर्त्तियाँ या चित्र चारों ओर बिखरे पड़े हैं। नेपुल्स के अजायबघर में पान देव एक बकरी के साथ प्रसंग कर रहे है—इसकी मूर्त्ति रखी है। देखने में वह मूर्त्ति, जिसमें बकरी स्त्री की तरह लेट रही है, बड़ी भद्दी मालूम होती है। नर-नारी रूप का इतना रिवाज़ बढ़ा कि यूनानी नगर कोस में हरोक्लीज देवता को बलि चढ़ाते समय पुरोहित तथा पुजारी स्त्री का वेष बनाते थे। स्पार्टा में दूल्हन सुहागरात

१. वही, पृष्ठ ११४ २. वही, पृष्ठ ११५
३. वही, पृष्ठ ५३ ४. वही, पृष्ठ १२५

के दिन मर्दाने कपड़े पहनकर बैठती और उसका पति ज़नाने कपड़े पहन कर आता। यूनान में वेश्यावृत्ति भी काफ़ी बढ़ गयी थी।

यूनानी वेश्या

धन के लिए सड़क-सड़क पर, राह चलते सौदा करनेवाली वेश्याएँ उस समय भी थीं, आज भी हैं। ठीक वही प्रथा है—अन्तर तीन हज़ार वर्ष का है। ऐसी वेश्याओं के साथ एक कुटनी या दलाल भी होता था। ऐसी दलाली ज्यादातर औरतें ही करती थीं। एक प्राचीन ग्रन्थ में एक वार्त्तालाप दिया हुआ है।[१] उससे उस समय की तथा आज की सभ्यता की समानता का अनुमान लग जायगा। एक सुन्दरी एक स्त्री के साथ सड़क पर जा रही थी। एक आदमी ने सुन्दरी की कुटनी को रोककर पूछा—

पुरुष—नमस्ते, प्रिये।

स्त्री—नमस्ते।

पुरुष—तुम्हारे आगे आगे कौन जा रही है?

स्त्री—तुमसे मतलब?

पुरुष—पूछने का कारण है।

स्त्री—मेरी मालकिन हैं।

पुरुष—मैं कुछ आशा करूँ?

स्त्री—क्या चाहते हो?

पुरुष—एक रात।

स्त्री—कितना दोगे?

पुरुष—सुवर्ण।

स्त्री—तब दिल मत छोटा करो।

पुरुष—(मुद्रा दिखाकर)—इतना दूँगा।

स्त्री—इतने से न होगा।

प्रसिद्ध दार्शनिक केटो की कथा है कि वे एक भठियारखाने के पास खड़े थे कि एक नवयुवक ने, जो वहाँ गया था, उनसे आँखें बचाकर भागना चाहा। केटो ने उसे देख लिया और बोले—"घबड़ाओ नहीं, यह कोई बुरा काम नहीं है।" कुछ दिनों बाद केटो ने देखा कि वह युवक बराबर वहाँ जाता था। तब उन्होंने उससे

१. वही, पृष्ठ ३२७

कहा—"देखो कभी-कभी यहाँ आना बुरा नही है। पर यही घर बना लेना बुरा है।" भटियारखानों में लड़कियाँ अर्द्धनग्न अवस्था में सड़क पर खड़ी रहती थीं ताकि लोग उनके शरीर का ऊपर से मुआयना कर पसन्द कर लें। असलेपियादीज़ का कथन है कि उन्होंने एक ऐसी लड़की के साथ रमण किया था जिसका नाम हर्मियोन था। वह फूलों की कर्धनी पहने हुए थी। उस पर यह वाक्य भी लिखा हुआ था—

"मुझसे सदा प्रेम करना पर यदि दूसरों द्वारा भी मेरा सेवन हो तो डाह मत करना।"

(यूनान में दुराचार बहुत बढ गया था। आजकल की सब समस्याएँ वर्त्तमान थीं। हस्तक्रिया बहुत प्रचलित थी।[१] लड़कियों के लिए हस्तक्रिया के निमित्त लिंग बनते थे और बाजार में बिकते थे।) कामुक अंध-विश्वास बहुत बढ़ गये थे। जो लड़की पहली बार रजस्वला हुई हो, उसके रक्त को लेकर यदि खेत में गाड़ दिया जाय तो पाला नहीं पड़ेगा। रजस्वला के रक्त में कपडा भिगाकर यदि किसी भी नारियल या सुपाड़ी के पेड़ के नीचे गाड दे तो पेड़ सूख जायगा। यदि उसी रक्त को दरवाज़े के सामने छिड़क दिया जाय तो कभी घर में भूत-प्रेत की बाधा न होगी। रजस्वला लड़की यदि पेशाब करे तो उस पेशाव से घोड़ों की बीमारी अच्छी हो सकती थी। पुरुष के पेशाब का भी बड़ा महत्त्व था। साँप काटने पर या तो अपनी या नाबालिग़ लड़के की पेशाब पी लेने से ज़हर उतर जाता था। पेशाब से बहुत कुछ जादू-टोना हो सकता था पर "उसकी ताक़त बढ़ाने के लिए स्त्री-पुरुष को चाहिए कि लघुशंका करते समय उस पर थूंक दिया करें।"

यह थी परम सभ्य तथा दार्शनिक यूनानियों की कामुकता तथा विलासिता! प्लेटो ऐसे दार्शनिक ने भी लिखा है[२] कि "युवक तथा युवतियों को अबाधित रूप से एक-दूसरे से मिलना चाहिए, ताकि वे एक-दूसरे को अधिक निकट से जान लें।" स्त्री-पुरुष की समानता यहाँ तक बढ गयी थी कि स्पार्टा में सार्वजनिक दंगलों में स्त्री-पुरुष की कुश्ती होती थी।[३] अतएव आज की रहन-सहन तथा सभ्यता में और तीन हज़ार वर्ष पूर्व की यूनानी सभ्यता और उसकी कल्पना में क्या अंतर था? (रोम तथा यूनान में पुरुष तथा स्त्री की योनि के रूप की मिठाइयाँ बाजार में बिकती थीं।) इटली के बाजारों में १८वी सदी तक मोम के बने लिंग तथा योनि खुले आम बिका करते थे।[४]

१. वही पृष्ठ ३१४, १५ २. प्लेटो—Laws

३. अरिस्तू ने इसे पसन्द नहीं किया है।

४. Cutner—A short History of Sex Worship.

अध्याय ५

मध्ययुग तथा ईसाई धर्म के आगमन के बाद

यूरोप को नया प्रकाश मिला

बीसवीं सदी की सभ्यता में इतिहास, राजनीति तथा नैतिक शास्त्र के अध्ययन का प्रारम्भ पश्चिमीय देशों से माना जाता है और निस्सन्देह अपनी पराधीनता तथा दारिद्र्य के कारण इन सब विषयों में पूर्वी देशों का नेतृत्व समाप्त हो गया था। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि हम अपने ही प्राचीन शास्त्र तथा ग्रन्थों को भूल गये और शिक्षा तथा आदर्श, अध्ययन एवं निर्देश के लिए पश्चिम का मुँह देखने लगे। रोम, यूनान आदि की सभ्यता के पतन के बाद अर्द्ध असभ्य, जंगली तथा अपढ़ यूरोप को ईसाई धर्म और ईसाई प्रचारकों से एक नयी सभ्यता, नयी संस्कृति तथा नया प्रकाश मिला।

ईसाई धर्म भी एशिया में ही पैदा हुआ। एशिया के हज़ारों वर्षों की सभ्यता के गुणों को लेकर तथा समय (काल) द्वारा अवगुणों का परिष्कार कर एक नवीन ज्योति उसने प्रदान की। जिस प्रकार मुसलिम धर्म के प्रवर्त्तक हज़रत पैग़म्बर साहब ने एक नया प्रकाश, एक नया नेतृत्व संसार को ईसा के लगभग ६०० वर्ष बाद दिया, वही कार्य उनसे काफ़ी पहले हज़रत ईसा ने किया था। किसी धर्म या मज़हब या उसके नेता का तुलनात्मक अध्ययन करने से कोई लाभ नहीं होता। देश, काल तथा पात्र के अनुसार सभ्यताएँ पनपती और बनती हैं। जो चीज़ एक देश में अच्छी समझी जाती है, वही दूसरे देशों में बुरी समझी जाती है। पूर्वी गाइना (अफ्रीका महाद्वीप) के तट पर तोब्रियांद जाति रहती थी। इस जाति में दो प्रेमियों ने हाथ में हाथ मिलाकर बैठना शुरू किया तो उसे ईसाई धर्म का बुरा प्रभाव कहकर वहां के बुज़ुर्ग बुरा मानते थे[1], जबकि उस जाति में विवाह के पहले कुमारी कन्या

१. Dr. Bronislaw Malinowski—The Sexual life of Savages —तृतीय संस्करण १९३१, चतुर्थ संस्करण १९५२—पृष्ठ ४०३

का अधिक से अधिक संसर्ग बहुत श्लाघनीय समझा जाता है। यह उदाहरण देने से हमारा तात्पर्य यह है कि नैतिक आचार की सीमा या मर्यादा निर्धारित करना असम्भव है।

अस्तु, ईसाई राज्यों के द्वारा आधुनिक सभ्यता का विकास हुआ अतएव वे ईसाई धर्म के प्रचार के बाद के समय को बड़ा महत्त्व देते हैं। किन्तु हमको यह देखना है कि क्या उनका यह दावा सही है। या इतिहास के मध्य युग में—ईसवी सन् १६०० या १७०० तक—क्या ईसाई देशों में भी धर्म के नाम पर दुराचार बहुत नहीं बढ़ गया था? हर एक देश का अलग-अलग उदाहरण देने से कोई लाभ नहीं है। काम चलाने के लिए कुछ थोड़ी सी बातें बतला देना पर्याप्त होगा। भारतवर्ष को दो सौ वर्ष तक पराधीन रखनेवाले अंग्रेज लोग सभ्यता का तथा नैतिकता का सबसे अधिक दावा करते हैं। कुछ हमारे मन पर भी यही प्रभाव है कि उनके यहाँ नैतिकता तथा सदाचार काफ़ी उन्नति पर रहा होगा, यद्यपि आजकल "पश्चिमी सभ्यता की चमक में उनका चरित्र गिर गया है।" पर दोनों ही धारणाएँ ग़लत हैं। न तो वे बहुत ऊँचे थे और न बहुत गिरे ही हैं। यह सब हमारे दृष्टिकोण की बात है।

मध्य युग के भ्रष्टाचार

ईसाई धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं—रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट। कैथोलिकों को मोटे तौर पर सनातनी या मूर्त्तिपूजक तथा प्रोटेस्टेंटों को सुधारवादी तथा कुछ-कुछ आर्यसमाजी जैसा समझिए। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय वालों का दावा है कि उनके प्रभाव से ही विवाह-बंधन सदा के लिए दृढ़ हो गया और विवाह-विच्छेद असंभव कर दिया गया।[1] स्वयं रोमन कैथोलिक देशों में यह दावा ग़लत साबित हुआ। मध्य काल में फ्रान्स में यह नियम था कि यदि पति या पत्नी विवाह के बाद यह साबित कर दें कि उनका सम्बंध नही हुआ है तो विवाह टूट जाता था। इस बात का निर्णय करने के लिए कि उनका सम्बंध हुआ है या नहीं, रोमन कैथोलिक पादरी पुरुष तथा स्त्री को अपने तथा डाक्टरों के सामने एकदम नंगा करके खड़ा कराते और तब तरह-तरह से जाँच करते कि सम्बंध हुआ है या नहीं। सन् १६७७ में फ्रेंच महासभा ने इस नियम को ही समाप्त कर दिया वरना इससे बड़ा भ्रष्टाचार फैल गया था।

१. भारत, रोम, यूनान किसी भी सभ्यता का जानकार इस दावे को झूठा कहेगा।

पर-पुरुष तथा पर-स्त्री प्रसंग करनेवाले नर-नारी को एकदम नंगा करके गधे पर घुमाते थे। सजा के साथ साथ इससे समाज को कामुक आनन्द मिलता था। सम्राट् लूई तेरहवें के भाई ड्यूक आव और्लीन की ग्वेल को भी इसी प्रकार सड़क पर नंगा करके घुमाया गया था[१]। ईसाइयों मे ही एक "आदम-वादी"[२] सम्प्रदाय था। आदम सर्वप्रथम पुरुष थे। इस सम्प्रदाय के लोग (स्त्री, पुरुष) नंगे रहा करते थे। एक सम्प्रदाय अनाबप्तिस्तों[३] का था। ये लोग अर्द्धनग्न रहते थे तथा जितनी स्त्रियाँ चाहें रख सकते थे। इन "सभ्य पर अर्द्धनग्न बहु-स्त्री वाले" ईसाई सम्प्रदाय वालों में तथा मैक्सिको के "असभ्य" कहे जानेवाले लोगो मे क्या अन्तर था? जब स्पेन ने पहली बार मैक्सिको पर हमला किया,[४] तत्कालीन मैक्सिको नरेश मांटेजुमा की ३००० पत्नियाँ थीं। मार्कोपोलो नामक प्रसिद्ध यात्री ने अपनी यात्रा के वर्णन में तार्तारी देश का वर्णन किया है जहाँ पर मेहमान के आने पर लोग उसकी ख़ातिर में अपनी पत्नी भेंट कर देते थे या स्वयं घर छोड़कर चले जाते थे और मेहमान के जिम्मे अपना घर और अपनी बीवी कर जाते थे।

स्त्री से घृणा

इन प्राचीन रीति-रिवाजों पर नाक-भौं सिकोड़ने से काम न चलेगा। जिस समाज मे ये प्रचलित थे, उनका अपना महत्त्व था। यहूदियों में "दुराचार" की बातें हम ऊपर लिख आये है, पर उनके समाज में स्त्रियों का बड़ा नीचा स्थान था। सड़क पर किसी स्त्री से बाते करना, चाहे वह अपनी पत्नी ही क्यों न हो, असभ्यता समझी जाती थी। यहूदी पुरुष अपनी प्रार्थना में भगवान् को धन्यवाद देते थे कि उसने उनको औरत नही बनाया।[५] इसका परिणाम यही न हुआ कि स्त्री केवल भोग की

१. Cutner—A Short History of Sex Worship, पृ० १२०

२. Cult of Adamites

३. Anabaptists

४. मेक्सिको के स्वतंत्र साम्राज्य का वास्तविक पतन १५१९ से १५२१ के बीच मे हुआ, हरनान्दो कोर्टीज की सेना ने मेक्सिको के "आजतेक साम्राज्य" को नष्ट कर दिया और अंतिम आजतेक नरेश काहुतेयाक को कत्ल कर दिया गया.।

५. Marr—Sex in Religion (1936 edition) पृष्ठ ७२

वस्तु ही बन गयी। फारिंगी[१] जाति में एक सम्प्रदाय था जो सड़क पर इसलिए आँखें बन्द करके चलता था कि कहीं कोई औरत न दिखाई पड़ जाय। मोची लोग जूता बनाते समय निगाहें नीचे किये रहते थे और यदि वेश्या भी सामने आ जाती थी तो इसलिए नेत्र नहीं उठाते थे कि कहीं किसी अन्य स्त्री पर आँख न पड़ जाय। "मृत सागर" (डेडमी) के निकट इसेनी[२] नामक सम्प्रदाय के लोग, स्त्री तथा पुरुष एकदम ब्रह्मचारी रहते थे। पुरुष अपने पास स्त्री को फटकने तक नहीं देता था। निस्सन्देह ईसा मसीह ने स्त्रियों के पद को काफी ऊँचा उठाया। यूरोप में तथा एशिया के कतिपय भागों मे वे भोग तथा आनन्द की वस्तु से ऊँचे उठकर पुरुष के समान अधिकार वाली बनी। पर, ईसा के ही अनुयायी साधु पाल स्त्रियों के प्रति अच्छा भाव नहीं रखते थे। उनका कहना था कि "कभी भी विवाह न करना अच्छा है। पर अगर कामवासना सताती हो तो उस आग में झुलसने से बेहतर है कि शादी कर लो।"

तीसरी सदी में स्त्रियों के प्रति विरक्ति का एक वेग ईसाइयो मे आया।[३] साधु सायमन ३० वर्ष तक एक खम्भे के ऊपर रहते थे, वही बैठे तपस्या करते थे। रोम छोड़कर जेरोमी बेथेलहम में रहते थे। वे कहते थे—"वासना निहायत गन्दी चीज़ है।" ईसाई संन्यासिनी स्त्रियों को, जिनको लोग "प्यारी बहनें" कहते थे, जेरोमी ने रखेलियाँ तथा दुराचारिणी तक कह डाला। पादरियों को अनिवार्य रूप से सच्चरित्र रहने का आदेश तथा तत्संबंधी क़ानून दूसरी या तीसरी शताब्दी से शुरू हुआ।[४]

इसलिए किसी सभ्यता या नियम को अपने ही दृष्टिकोण से बुरा भला नही कहा जा सकता। शेपर्ड ने सही लिखा है कि "कुछ ऐसी सामाजिक बुराइयाँ है जिनके बारे में बातें करने में बहुत बुरा लगता है पर वे इतनी बुरी नही हैं कि उनको भुला दिया जाय।"[५]

यूनानियों में सगी बहिन से व्याह करने का रिवाज चल पड़ा था। उन्हीं की कथा है कि जिऊस ने हेरा से शादी की। हाइपरियन ने थेरिया से शादी की। दोनों उनकी बहिनें थीं। यदि प्राचीन प्रसिद्ध सभ्य राज्य कार्थेज के देवता "मोलोश" का पुजारी

१. Pharisees
२. Essenes sect near Dead Sea
३. Marr—Sex in Religion पृष्ठ ८०
४. वही—मार की पुस्तक, पृष्ठ ९५
५. H. R. L. Sheppard—Some of my Religion
पृ० ५—१०

और पुरोहित केवल हिजड़ा ही हो सकता था तो इसमें कोई न कोई तथ्य था। जन्म से पैदा हिजड़ा होने की ज़रूरत नहीं थी। जो अपना लिंग काटकर फेंक दे, वही पुजारी बन सकता था। पर, ब्रह्मचर्य की इतनी विकट भावना के भूखे मोलोश देवता की तृप्ति बाल-बलि से होती थी। छोटी उम्र के लड़के-लड़कियों का बलिदान चढ़ाया जाता था।

मानव-स्वभाव बड़ा विचित्र है। उसकी मर्यादा बड़ी विचित्र है। लाखों वर्षों में ज़मीन बदल गयी, हवा-पानी बदल गया, तब इंसान क्यों न बदले। ईसा से २५०० से १५०० वर्ष पूर्व अरब सागर के निकट के नगर सुतकजिन-दोर से अरब सागर के ३०० मील लम्बे वर्त्तमान पानी पर उस समय सूखी भूमि थी। उस से पैदल चलकर १००० मील दूर शिमला की पहाड़ियों की तराई में बसे हुए ऊपर गाँव तक अगर चले आते तो चारों ओर आदमी, उसकी बस्तियाँ और चहल-पहल दिखाई देतीं।[१] कल जहाँ पानी था, आज वहाँ बस्ती है, ज़मीन है और कल जहाँ बस्ती थी, आज वहाँ वीरान है। पर मानव-स्वभाव की अन्तरतम बातें ज्यों की त्यों हैं। उसकी इच्छाओं और वासनाओं का रूप या प्रकार या ढंग बदल गया है पर चीज़ वही है।

आज के २ से ४ लाख पहले के जो औज़ार मिले हैं उनमें एक कुल्हाड़ी[२] भी है, जिससे लकड़ी और सिर, दोनों ही आज कटते है। औजार बदल गया है। स्त्रियों के साथ जबरन प्रसंग यानी बलात्कार तब भी होता था, आज भी होता है। वर्त्तमान पाकिस्तान में मर्दान से १७ मील पूर्व (उत्तर-पूर्व) व नौशेरा से २४ मील उत्तर-पूर्व, हजारों वर्ष पूर्व, बहुत सी स्त्रियाँ खेतों पर काम कर रही थीं। पुरुषों ने उनके साथ बलात्कार किया। स्त्रियों ने भगवान् से प्रार्थना की कि पुरुषों को श्राप दे। भगवान् ने भ्रष्ट तथा भ्रष्टा दोनों को पत्थर कर दिया और इस मैदान में १० फुट ऊंची ये मूर्त्तियां दो या चार फुट के फासले पर आज तक खड़ी हैं।[३] ३२ मूर्त्तियां हैं—इनकी यही कथा बतलायी जाती है। बलात्कार आज भी होता है पर पत्थर न बनकर उन्हें पत्थर की दीवालों के भीतर, जेल में रहना पड़ता है।

१. R. E. M. Wheeler—Five Thousand Years of Pakistan

२. Chopper कुल्हाडी, देखिए व्हीलर की पुस्तक, पृष्ठ १५

३. Colonel D. H. Gordon के अनुसार व्हीलर की पुस्तक में उद्धृत, पृष्ठ ३५

इंगलैण्ड की वासना

सभ्यता का डंका पीटनेवाला इंगलैंड मध्ययुग में दुराचार की सीमा भी लांघ गया था। आइवन ब्लाक कहते हैं कि "अंग्रेज़ पैदायशी पशु है...अक्षतयोनि कुमारी कन्याओं के पीछे दीवाना रहता है।"[१] अंग्रेज़ इतना विलासी था कि बड़ी जल्दी अपनी स्त्री से इसकी तबियत भर जाती थी और तब वह उसे भरे बाज़ार में जाकर नीलाम कर देता था। १९वीं सदी तक वहां ऐसा होता रहा।[२] सन् १८२३ में लन्दन में एक पैसे में एक औरत बिकी थी। एक लेखक के अनुसार संसार में सबसे सुन्दर पशु अंग्रेज़ हैं।[३] और दूसरे लेखक के अनुसार बर्बरता तथा पशुता इस सुन्दर पशु के स्वभाव में है। यह पशुता उसके भिन्न आचरणों से प्रकट हो जाती है।[४] दुराचारी अंग्रेज आगा-पीछा नहीं सोचते। लंदन के निकट एक ग्राम में जेम्स टाटर नामक एक मूर्ख रहता था। यह इतना कामुक था कि किसी भी लड़की को पकड़ लेता था और बलात्कार कर बैठता था। जब यह किसी प्रकार नहीं सुधरा तो सन् १७९० में उसका शिश्न ही काट दिया गया।

ईसाई सम्प्रदाय में, रोमन कैथोलिकों में—"प्रभु ईसा की दुल्हनें"[५] आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर गिरजाघर को आत्मसमर्पण कर देनेवाली महिला संन्यासियों की प्रथा है। इनको "नन" कहते हैं। ये स्त्रियां गिरजाघरों का तथा समाजसेवा का काम करती थीं और दिन रात पूजा-पाठ में बिताती थीं। ऐसे ही पुरुष साधु[६] भी होते थे। इनके अलग आश्रम[७] होते हैं। गिल्वर्ट ने सन् ११४८ में ऐसे १३ आश्रम इंग्लैंड में खोले जिनमें पुरुष तथा स्त्री साधु तथा साध्वियां एक ही मकान में रहतीं थीं। दोनों

१. "Inborn brute—best for virgins"–Page 12–Ivan Bolck **अनुवादक** William H. Forstern—"Sexual life in England"–Pub. Francis Aldor–London–1938

२. वही, पृष्ठ १२

३. H. R. Finch—"Romantic love and personal beauty"–Pub. Breslan, 1890–Vol. II–Page 538

४. Ivan Block

५. Bride of Jesus

६. Monks

७. Cloisters

के बीच में केवल एक मोटी दीवार होती थी। ७०० साधु तथा ११०० साध्वियाँ[१] इन आश्रमों में रहती थीं। थोड़े ही दिनों में सभी औरतें गर्भवती हो गयीं। उस समय की एक कविता है कि "अगर कोई स्त्री गर्भवती नही हुई तो उसकी उम्र का दोष होगा, उसकी इच्छा का नही।"[२] यानी भोग सबने ही किया था।

मध्ययुग के ईसाई पादरियों की नारकीय लीलाओं से इतिहास भरा पड़ा है। यह प्रथा थी कि लोग (स्त्री, पुरुष) अपना पाप पादरियों से आकर कहते थे और ईश्वर की तरफ से इस "पाप के स्वीकार" करने पर, वह उनको पाप से मुक्त करता था। पादरी ऐसे अवसर पर सुन्दरी कुमारियों का उपभोग भी करता था। उनसे कहता था कि तुम लेट जाओ। "अपने शरीर में स्वर्ग का फाटक खोलो। मैं स्वर्ग की कुंजी से फाटक में ताली लगाऊँगा।" स्पेन मे अधार्मिकता के लिए आग में जला देने का दंड मिलता था। अधार्मिकता के अभियोग से वचने के लिए, आग मे भस्म होने से वचने के लिए, कोई भी सुन्दरी पादरी की वासना का शिकार वन जाती थी।

इंग्लैड में अछूती कुमारियों के सेवन का बड़ा शौक चला। अछूती (अक्षतयोनि) कुमारी से भोग करना तथा जब वह दर्द से चिल्लाये तो उसके चीत्कार से सुख का अनुभव करना—इसका बड़ा शौक़ था। अक्षतयोनि का "चीत्कार" कामशास्त्र में विशेष स्थान रखता है।[३]

जानसन[४] का एक बुज़ुर्ग विलासी के सम्बंध में वर्णन है कि उसे छोटी उम्र की लड़कियों का बड़ा शौक़ था। उसका नौकर उससे कहता है—

"एक वड़ी बढ़िया लड़की है। क्या श्रीमान् देखेंगे?"

१. Nuns

२. If any she proves barren still,
Age is at fault, not her will.— Ivan Block Page-33

३. वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में सीत्कार को इस प्रकार लिखा है— "अम्बार्था शब्दा वारणार्था मोक्षणार्था श्चालमार्थास्ते ते चार्थभोगात्"—(अरी मां इत्यादि शब्द, ऐसा न करो–ऐसे शब्द तथा मर गयी, मर गयी आदि भी दर्द के शब्द होते हैं.) ऐसे चीत्कार के प्रति अंग्रेजी शौक को "In the Battle of Venice" (1760) **में लिखा है**—"The taste and craze to de-flower a woman, the charm of victim's struggle and cries of pain".

४. Johnston's "Chrysal"

"क्या उम्र है?"

"लगभग १६ वर्ष की है।"

"छिः, मुलायम नाशपाती है। मुझे ऐसी रद्दी चीज़ देखने से नफरत है।"

"अच्छा, तो श्रीमान् ज़रा प्रतीक्षा करें। मेरी निगाह एक ऐसी लड़की पर है जो ठीक आपके काम की है। इंग्लैंड भर में ऐसी प्यारी लड़की नहीं मिलेगी श्रीमान्!"

"लेकिन उसकी उम्र क्या है?"

"यही दस वर्ष की होगी और जवान हो चली है।"

"ठीक, ठीक, मुझे यही उम्र चाहिए।"

ऐसी अछूती लड़की का मूल्य इंग्लैंड में ५ पौंड (पचहत्तर रुपए) से लेकर ५० पौंड यानी ७५० रुपए, एक बार के प्रसंग का होता था।[१] एक रचना में, आज के दो सौ वर्ष पहले, बलात्कार से भोगी हुई, पीड़ा से कराहती हुई छोटी उम्र की लड़कियों के समूह का जिक्र है।[२]

जब अछूती कुमारियों का इतना शौक था तो पेशेवर "अछूती" कुमारियाँ भी पैदा हो गयी थीं। ऐसे डाक्टर थे जो हर प्रसंग के बाद ऐसी दवा लगा देते थे कि वे ताज़ी हो जाती थी। चिल्लाने वगैरह का काम वे जानती थी। जार्ज सिलवन ने शार्लोते हाये नामक एक भ्रष्टा कुमारी से बातचीत में पता लगाया कि ५०० बार भोगी जाने पर भी एक लड़की अछूती की अछूती बनी रहती है। उस कुमारी ने आगे चलकर कहा—"मैं कम से कम एक हज़ार बार अपना उपभोग करा चुकी हूँ, फिर भी डा० ओ० पैट्रिक ने मुझे पहले की तरह ताज़ी बना रखा है।"[३] ऐसे पेशेवर नाई इत्यादि भी थे जो भ्रष्ट स्त्री की योनि में मछली का पेट, रक्त से भरा स्पंज आदि रखकर उसे अछूती बनाने का पेशा करते थे।[४]

इंगलैंड में भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया था। वहां की सभ्यता के उदय से लेकर १९वीं सदी तक औरत को ख़रीदकर या ज़बर्दस्ती उसका उपभोग कर विवाह की परिपाटी थी।[५] स्त्री का समाज में भोग के अलावा कोई स्थान नहीं था। अख़बारों

१. Ivan Block १९३८ का संस्करण
२. Satan's Harvest Home–1749
३. ब्लाश, पृष्ठ १९०
४. वही, पृष्ठ १८९
५. वही, पृष्ठ ५२

में औरतों को ख़रीदने के विज्ञापन निकला करते थे। ऐसा अंतिम विज्ञापन २० दिसम्बर १८८४ को प्रकाशित हुआ था। स्त्री का मूल्य कितना कम था, इसका अन्दाज़ा एक विज्ञापन से लगता है। एक किसान का घोड़ा खो गया और बीबी भी खो गयी। उसने घोड़ा ढूंढ़कर लाने वाले को ५ गिन्नी इनाम तथा औरत ढूंढ़कर लाने वाले को ४ शिलिंग यानी ३ रुपया इनाम घोषित किया था।[१] राजा एथेलवर्ट ने यह क़ानून बना दिया था कि जो व्यक्ति अपनी ख़रीदी हुई पत्नी से सन्तुष्ट न हो वह उसे पिता के यहाँ पहुँचा कर अपना रुपया वापस ले ले।[२] विधवा को पत्नी बनाने के लिए कुमारी के दाम का आधा देना पड़ता था। एक नियम द्वारा[३] पति के मरने के १२ महीने बाद तक पत्नी यानी विधवा को विवाह करने की अनुमति नहीं थी। लड़की के कराहने से, चिल्लाने से सुख उठाने की कामुक भावना से ही अनेक बर्ब्बर दंड निकले। (दूसरे को पीड़ा पहुंचा कर सुखी होने की भावना का आधार मानव की कामुक वासना ही है।) दूसरे को कोड़ा मारने में भी आनन्द इसी कारण मिलता है।[४]

विलासिता के कारण बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लन्दन में वेश्याओं की संख्या पेरिस से अधिक थी। पेरिस में १८,००० वेश्याएँ थीं, लन्दन में ५०,००० के लगभग।[५] वेश्याओं की संख्या बढ़ाने में पादरियों का भी हाथ था। यदि कोई पुरुष किसी स्त्री के साथ अपने पाप की कहानी "स्वीकार" करने पादरी के पास जाता तो वह उससे नाम पता पूछ लेता और फिर स्वयं उसके पास पहुँचता। नाम बताने की यह प्रथा १७ वीं सदी में समाप्त हुई।[६] ऐसी विलासिता के अनेक दुष्परिणाम हुए। विलासी सम्राट् हेनरी अष्टम को भी गर्मी की बीमारी थी। सोलहवी सदी में लगभग एक तिहाई अंग्रेज़ स्त्री, पुरुष गर्मी की बीमारी से मर गये। आचार का भाव ही समाप्त हो गया था। केल्ट वालों का देहाती गाना था कि कौंडूरा रात में पर्सिवल से

१. ब्लाश–पृष्ठ ५६.

२. वही, पृष्ठ ५३

३. Law of Canute

४. ब्लाश–पृष्ठ ३२०

५. W. W. Sanger—The History of Prostitution, Medical Publishing Co., 1910.

६. G. Rattray Taylor—"Sex in History" Pub. Thomas & Hudson, London—Page-37

किसी कार्य में सहायता माँगने गयी। उन्होंने उससे कहाँ कि जाड़े में कहां बाहर खड़ी रहोगी। आओ लेट रहें—और वह उनके साथ लेट रही।[१] राज्य के वीर पुरुष, यानी सरदार (नाइट) इतने विलासी हो गये थे कि अपना गुप्तांग खोलकर चलते थे। सम्राट् एडवर्ड चतुर्थ ने फरमान निकाल कर आदेश दिया कि ऐसा कपड़ा पहना करें कि गुप्तांग ढँका रहे।

पुरुष-पुरुष का व्यभिचार भी वहां बहुत फैल गया। यह दुराचार संसार में हर जगह था और है भी। यहूदी लोग अप्राकृतिक संभोग के कट्टर विरोधी थे पर ग़ैर-यहूदी देवताओं की उपासना में इसके धार्मिक प्रयोग को वे भी स्वीकार करते थे। ब्रिटिश इतिहास के अनुसार सन् १६९८ में इंगलैंड में अप्राकृतिक संभोग (सोडोमी) का बड़ा प्रचार था। ईसाई साध्वियां भी दुराचार का अड्डा बन गयी थीं। सन् ११८६ का वर्णन करते हुए एक लेखक कहता है कि "ये आदमियों की तलाश में घूमा करती थीं।"[२]

वेश्या या देवी

किन्तु ये सब दुराचार या तत्कालीन आचार उस समय की तथा पूर्व काल की धार्मिक भावना से ही पैदा हुए थे। अक्षत-योनि, अछूती कुमारी की परिभाषा भी भिन्न थी। कुमारियाँ बलवान् सन्तान प्राप्त करने के लिए देवताओं से गर्भ धारण को बुरा नही समझती थीं। पुराने ज़माने में कुमारियाँ नदी में खड़ी होकर नदी के देवता से प्रार्थना करती थीं कि उनके साथ प्रसंग कर वे उनको गर्भवती बनायें। कर्ण के जन्म की कथा हमें मालूम है।[३] पर उसमें एक सौष्ठव है। हज़रत ईसा भी देव-पुत्र थे, पर चंगेज़ खाँ ऐसे पराक्रमी नरेश भी अपने को देवपुत्र मानते थे।[४] अंग्रेज़ी में अक्षतयोनि कन्या को "वर्जिन" कहते हैं। रोम में "अविवाहिता तथा पुरुष से" सम्पर्क न करने वाली को "वर्गो" कहते थे। यूनान में "पुरुष से अपने को अछूता रखनेवाली"

१. टेलर—पृष्ठ ५.

२. Andrew the Chaplain—1186–at the court of Queen Alienor—in the "Treatise on love"–"Nuns were prying for men". **ईसा की इन दूल्हनों के लिए लिखा है—**"Nor ever chase, except thou ravish wee".

३. महाभारत, कुण्डलहरण पर्व—अ० २६१—श्लोक १०, ११

४. M. E. Harding—"Women,s Mysteries,, Pub. Longman Green and Co., Edition 1935·

की महिमा थी पर प्लेटो तथा प्लुटार्क के अनुसार, जिसकी यह स्थिति न हो, वह लड़की भी देवताओं से भोगी जाने पर एकदम कुमारी बन जाती थी। देवता न भी मिले तो क्या, यूनानी रीति के अनुसार मंदिर में जो भी पुरुष हो, उसे ही देवता का प्रतिनिधि माना जाता था। अतएव मंदिरों में पुजारी तथा पुजारिनें हर एक दर्शनार्थी की काम-वासना शान्त करने के लिए थे। कोई धार्मिक आशंका तब भी न रह जाय, इसलिए देवी माता इष्टार ने अपने भक्तों से कहा—

"मैं माता हूँ। मैं दयाशील हूँ। मैं वेश्या भी हूँ। मैं दयावान् वेश्या हूँ।"

सब कुछ धर्म की आड़ में हो गया। यूनानी लोग हर एक चीज को, चाहे मृगी की बीमारी ही क्यों न हो, दैव-दत्त मानते थे। उनका विश्वास था कि देवता उभरी हुई छाती तथा उठा हुआ नितम्ब पसंद करता था। इसलिए ऐसी स्त्री की बड़ी मर्यादा थी। एक बार सुन्दरी फ्राइन अदालत में न्यायाधीशों के सामने किसी अपराध मे पेश की गयी। उसने अदालत को अपनी उभरी हुई छाती दिखा दी। अदालत ने उसे छोड़ दिया। ऊंचे स्तन का बड़ा प्रभाव था।[१] स्त्रियों ने इन्हीं सब भावनाओं से यूनानी सभ्यता के पुजारी इंग्लैंड में जादू डाल रखा था। वासना के लिए उनका इतना मान था कि १८वीं सदी में महिलाएं घोड़ागाड़ी पर चलते-चलते गाड़ी रोक लेती और कोचवान की बिना परवाह किये उसके सामने ही लघुशंका के लिए बैठ जातीं।[२]

इस प्रकार के विलासी इंगलैंड ने ही आजकल के "कोर्टशिप" द्वारा विवाह, खुला विवाह, प्रेम, कामुक हास-विलास का वह रूप प्रारम्भ कर दिया था जिससे सभ्यता कराह रही है। जब राष्ट्र के जीवन का आधार केवल विलास ही हो, तो यही परिणाम होता है। उस देश में कामुकता बढ़ती ही गयी। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के कुछ ही पहले के दिनों के इंगलैंड का वर्णन करते हुए एक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने लिखा है—"उन दिनों चाल-चलन पर इतना जोर नहीं था। यदि कोई युवक अपनी उभड़ती हुई वासना को बेलगाम छोड़ देता तो जब तक वह अपने मित्र की बहन से सम्पर्क न करे, कोई बुरा नहीं मानता था। ऐसी बहुत थोड़ी देहाती लड़कियां मिलेंगी जो इसे इज्ज़त की बात न समझें कि किसी बड़े आदमी से उनका सम्बंध हो गया है।"[३]

१. टेलर, पृष्ठ २४०

२. Taylor—Sex in History—Page 214.

३. Dennis Wheatley—The Launching of Roger Brook—Pub-Arrow Books पृ० १७,१८

अध्याय ६

जंगली जातियों की कामवासना

पाठकों के सामने हमने सभ्य जगत की वासना का संक्षिप्त चित्र उपस्थित कर दिया। केवल भारतीय शास्त्रकारों के निर्देश के अतिरिक्त उन्हें और किसी देश के चरित्र-वर्णन से यह स्पष्ट भाव नहीं मिलेगा कि किस वासना को अपराध कहें। प्रायः सभी प्रकार की निन्द्य वासनाएँ किसी न किसी रूप में दुनिया में चारों ओर फैली हैं और फैली थीं अभी तक हम उनके ऊपर उठे नहीं हैं। सभ्य तथा असभ्य का बहुत डंका पीटनेवाले लोग पिछली तथा वर्तमान जंगली जातियों को कई दृष्टियों से वासना के विचार से सभ्यों से ऊँचा तथा महान् पायेंगे। नीचे हम जंगली जातियों का कुछ वर्णन करेंगे—जहाँ तक उनकी कामवासना का सम्बंध है।

किन्तु बहुत कुछ जानने और समझने पर भी चीज़ अधूरी रह जायगी। इसका कारण यह है कि हर एक देश तथा समाज की ही नहीं, हर एक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न समस्याएँ हैं। प्रो० रेमंड तथा कान ने अपनी पुस्तक में यह साबित कर दिया है कि जितने व्यक्ति हैं, उतनी ही विभिन्नताएँ भी हैं।[१] फिर, यदि केवल एक ही श्रेणी पर विचार करना हो, यदि केवल स्त्री या पुरुष पर विचार करना हो, तो भी कुछ काम सरल हो। जब दोनों पर मिला-जुला विचार करना है तो और भी कठिन है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव में, प्रकृति में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। दोनों "बे-मेल" हैं।[२] बे-मेल से मेल का सिद्धान्त कैसे निकले—ऐसा नियम क्या हो, जो सब पर लागू हो।

१. Prof. Raymond Dodge and Eugene Kahn "The Craving for superiority" —Chapt. II Pub. 1937—"The number of variations is equal to the number of invidivuals"

२. "For man and women, as such are incompatables"—G. K. Chesterton in "What is wrong with the world"–Page 54

विवाह क्यों ?

स्पार्टा में यह नियम था कि साल में एक बार विवाह के योग्य सभी कन्याएं तथा लड़के एक पूर्ण अँधेरे कमरे में बन्द कर दिये जाते थे। किसी की सूरत दिखाई नहीं देती थी। अँधेरे में लड़की या लड़के में जिसका हाथ दूसरे पक्ष से छू गया, या शरीर छू गया, वही जीवन की संगिनी या साथी बन जाता था। इस प्रकार जोड़ा मिलाने का काम भाग्य तथा भगवान् पर छोड़ दिया जाता है। किन्तु केसरलिंग के कथनानुसार ऐसे विवाह बहुत सफल होते थे।[१] इसके विपरीत पूर्वी गाइना (अफ्रीका) के तट पर रहनेवाली तोब्रियांद जाति में यदि आर्थिक कारण न होता तो कोई विवाह क्यों करता ? विवाह में जीवन का जो कुछ सुख है, वह असली विवाह के पहले काफ़ी उठा लिया जाता था। उस जाति में ४-५ वर्ष की उम्र से ही लड़के-लड़कियां प्रेमलीला शुरू कर देते हैं। इतनी कच्ची अवस्था से ही घर के बाहर (घर में कदापि नहीं) झाड़ पर, पेड़ के नीचे, जहाँ भी कहीं जगह मिली लड़के-लड़की अब्रह्मचर्य का खेल खेलते हैं। उनके पिता-माता आपस में मनोरंजन करते है कि आज उनके लड़के या लड़की ने अमुक के साथ झाड़ी में "कायता" किया। ६-८ वर्ष की उम्र से लड़कियों को तथा १०-१२ वर्ष की उम्र से लड़कों को भोग का वास्तविक सुख मिलने लगता है।[२] लड़की जवान तब समझी जायगी जब उसका "सीना उभर आये, तथा चन्द्रमा की गति के साथ मासिक धर्म होने लगे।"[३] बस, इसी समय से भाई बहिन अलग कर दिये जाते हैं। लड़के विशेषतः, और लड़कियां भी, जवान होते ही अपना घर छोड़ देते हैं, जिससे उनके रहने से उनके पिता-माता के भोग-विलास में बाधा न पड़े। लड़के प्रायः अपने किसी विधुर रिश्तेदार या कुमार मित्र के घर चले जाते हैं। लड़कियां भी यदि घर छोड़ती है तो विधवा या कुमारी मित्र के घर चली जाती है। कुमार या विधुर मर्दों का घर "बुकुमातुला"[४] कहलाता है। इसमें ऐसे कमरे बने रहते हैं जिनमें एक कमरे में कई युवक-युवती एक साथ रमण कर सकते हैं। इस प्रकार

१. Keyserling—"The Book of Marriage"

२. Dr. B. Malinowski—The Sexual life of Savages—Edition 1952–Page 48-49

३. वही, पृष्ठ ५३

४. विवाह के पूर्व लड़कियों को तीन श्रेणियों में रखते हैं, Bukumatula में केवल युवतियाँ ही नहीं जातीं, हर उम्र की औरतें वहाँ ले जायी जाती हैं।

युवक-युवतियों का अनेकों के साथ अबाध सम्बंध वर्षों तक चलता रहता है। गर्भवती हो जाना तथा विवाह के पहले कई बच्चे पैदा हो जाना कोई अचम्भे की बात नहीं थी, यद्यपि कुमारी के बच्चा होने पर यह ताना मिलता था कि "इसे गोद में कौन खिलायेगा।"[१] इसी जाति में कुछ ऐसे भी वर्ग हैं जिनमें विवाह के पहले कन्या का अपने पिता के साथ वर्षों तक सम्बंध रहता है। यदि कई लड़कियाँ हुई तो पिता को अलग अलग उन्हें सन्तुष्ट करना पड़ता है। प्रश्न यह हो सकता है कि जीवन का यह सब सुख भोगने पर भी विवाह क्यों होता है। विवाह होते ही स्त्री की कामुक स्वाधीनता समाप्त हो जाती है। ऐसी स्वाधीनता या तो कुमारी को, या विधवा को, या तलाक़ दी गयी स्त्री को होती है। फिर भी विवाह क्यों होते हैं—इसका मुख्य कारण है बिना विवाह हुए किसी को सामाजिक महत्ता नही मिलती। समाज की मर्यादा विवाह कराती है। दूसरे, विवाह के बाद पति को अपने ससुराल से साल में भोजन आदि भेंट मिलती है। इससे आर्थिक लाभ होता है। तीसरी तथा सबसे बड़ी बात यह है कि जवानी का भूत कम होते-होते हर एक स्त्री-पुरुष यही चाहता है कि उसका स्थिर जीवन हो, अपना मकान हो, अपनी गृहस्थी हो।[२] ये तीन बातें हमको एक बड़ा भारी उपदेश देती है। वासना सब कुछ है पर मनुष्य की सामाजिक स्थिरता तथा शान्ति एक व्यवस्थित जीवन में ही है। **इसी लिए आज यदि वासना के अपराध बढ़ रहे हैं तो उनकी रोकथाम का एक मात्र उपाय है पारिवारिक जीवन की मर्यादा को पुनः स्थापित किया जाय।**

समाज का प्रभाव

तोब्रियांद जाति के कुछ वर्गो में खुले आम संभोग करने का भी रिवाज़ है।[३] वे आपस में गुप्तांगों का नाम लेकर गन्दी गालियाँ भी खूब बकते हैं। पर समाज का अंकुश भी ऐसा है जो इनको हमारी दृष्टि में बड़ा ऊँचा उठा देता है। मां के नाम पर गाली तो मज़ाक समझी जाती है। उस पर कोई आपत्ति नहीं होती पर "बहिन" को गाली देना बहुत बुरा समझा जाता है। ऐसी गाली पर भारी उपद्रव खड़ा हो

१. Raymond Firth—Human Types पृष्ठ ११३, ११४

२. डा० मैलिनोस्की, पृष्ठ ६९

३. दक्षिणी भाग में "कयात।"—सार्वजनिक मेले में, सबके सामने दर्जनों लोग संभोग करते हैं।

सकता है। "स्त्री" के नाम पर गाली बकने की लोग कल्पना भी नहीं करते।[1] दूसरे की पत्नी या बहिन के प्रति इस जाति में अपार आदर बरता जाता है। कुमारी कन्या तो भोग के लिए शिक्षा प्राप्त करने की सामग्री है, उसमें कोई आपत्ति नहीं। जाति में जादू टोना बहुत है। कुमारी को वश में करने के लिए भद्दे से भद्दा प्रयोग होता है।[2] पर पिता-माता के सामने, सास के सामने, मामा के सामने, जाति के बुजुर्गों के सामने हर एक व्यक्ति की ज़बान, हर एक का कार्य, रहन-चलन—सब कुछ इतना संयमित, संतुलित तथा नियंत्रित मालूम होता है[3] कि आश्चर्य होता है। इस प्रकार का बुज़ुर्गों का आदर इस समाज में हर प्रकार की सुव्यवस्था क़ायम रखे हुए है। इस जाति की काम-वासना को देखकर पर साथ ही इसका संयमित तथा व्यवस्थित जीवन देखकर यह धारणा होती है कि समाज में गुरुजनों का आदर होने से उसकी मर्यादा क़ायम रहती है। आज पश्चिमी देशों में नैतिक पतन तथा उच्छृखलता का बहुत बड़ा कारण बुजुर्गों की अवज्ञा तथा अनादर है।

जंगली जातियों को हेय दृष्टि से देखनेवालों के लिए पश्चिम के सबसे प्रकाण्ड कामशास्त्री हैवलाक एलिस[4] ने डा० मैलिनोस्की की पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका में लिखा है—

"तोब्रियांद द्वीप-निवासी का एक छोटा-सा वर्ग है जो थोड़ी सी जगह में रहता है। उनके जीवन में जंगली जीवन का एक नमूना ज्ञात होता है, यद्यपि यह नमूना काफ़ी व्यापक ढंग का हो सकता है। जब हम इनका अध्ययन करते है तो हमको ज्ञात होता है कि ये जंगली लोग सभ्य लोगों के समान ही गुण तथा अवगुण से युक्त हैं। गुण-अवगुण में आकार-भेद हो सकता है। पर कई दृष्टियों से इन असभ्यों में सभ्यों की तुलना में सभ्यता अधिक अच्छे रूप में व्याप्त है। इन तुलनाओं में हमको अपने सामाजिक जीवन की तीक्ष्ण मीमांसा करने का अवसर मिलता है।"

विचित्र मानव

प्रो० रेमंड फर्थ ने मानव की विभिन्नता तथा वैचित्र्य पर एक सुन्दर पुस्तक लिखी

१. वही, पृष्ठ ४०९
२. वही, ४०४
३. वही, पृष्ठ ४०२
४. Havelock Ellis—वही पुस्तक, पृष्ठ XII

है।[१] हम उसमें से कुछ रोचक बातें देना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि "हर जगह भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग हैं, उनकी भिन्न-भिन्न प्रथाएं हैं। एक-दूसरे की अभ्यर्थना में अंग्रेज हाथ मिलाता है। फ्रेंच कभी चूमते और कभी आलिंगन करते हैं। विनम्र आस्ट्रेलियन महिला का हाथ लेकर होठों से लगाता है। पोलेनीसिया के लोग एक-दूसरे से नाक रगड़ते है।" इनमें से जिसके यहाँ जो प्रथा है, उसे वह अच्छा समझता है और दूसरे की प्रथा का मजाक उड़ाता है। इसी प्रकार पोशाक की बात है। अफ्रीका में बहुत जगह सारा शरीर कपड़े से ढँक लेते है, केवल कुच खुला रखते है।

अमेरिका की सभी आदिम जातियों मे बहु-विवाह यानी बहु-पत्नी की प्रथा थी। जूकस जाति में केवल अपनी सगी बहन से विवाह का तरीका था। हां, रखेली रखने की इजाजत थी।[२] पेरुवियन लोगों में विवाह की प्रणाली ही नही थी। जो जब चाहता किसी औरत के साथ सो जाता। ब्रैजिलियन लोगों में भी यही प्रथा थी।[३] साल्टा लेक, ऊटा में बहुपत्नी की रीति थी। बहुत सी आदिम जातियों में विवाह के पहले कामवासना की पूरी शान्ति कर लेना अच्छा समझा जाता है। "इससे अनुभव हो जाता है जो वैवाहिक जीवन में काम देता है।"[४] कुछ आदिम जातियों में लोग अपने वर्ग के मुखिया का शिश्न मुख में रखकर वीर्य चूसते थे। यह बड़ी श्रद्धा का कार्य समझा जाता था।[५] तोब्रियांद लोगों का विश्वास है कि स्त्री-संसर्ग केवल आनन्द के लिए है। स्त्री के गर्भ में बच्चा तो इसलिए आ जाता है कि बुज़ुर्गों की आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है। पुरुष का काम केवल इतना ही है कि इस गर्भाशय के "दरवाज़े को खोल दे"।[६] सब कुछ विलासिता होते हुए भी तोब्रियांद लोगों में कुमारी को बच्चा पैदा होना अच्छा नही समझा जाता था। वहाँ बहिन का बेटा ज़ायदाद का मालिक होता है। अस्तु, बहुत से पुरुषों के बीच में एक औरत का रिवाज़ भारत में भी, तराई भाभर में, तथा नीलगिरि पहाड़ियों पर टोडा जाति में मिलता है।

१. Raymond Firth, F. B. A. "Human Types" Pub.–Thomas Nelson & Sons Ltd. 36 Park Street, London I–1957

२. Cutner—A Short History of Sex Worship

३. वही, कटनर

४. रेमंड फर्थ (Raymond Firth) की पुस्तक, पृष्ठ ८

५. Dr. Otto Wall—"Sex and Sex Worship"

६. रेमंड फ़र्थ, पृष्ठ ११३

टांगानायिका (अफ्रीका) में नियाकियूस तथा हेडे नामक दो जातियाँ हैं। सन् १९३६ की गणना के अनुसार वहाँ पर एक क्षेत्र के ३००० लोगों में ३४ फ़ीसदी कुँआरे थे। ३७ फ़ीसदी को एक पत्नी थी तथा २९ फ़ीसदी को एक से अधिक पत्नियाँ थीं। यह तो नियाकियूसू जाति का हाल था। हेडे जाति में एक क्षेत्र में ४००० की बस्ती में २५ फीसदी कुँआरे, ४६ फ़ीसदी एक पत्नीवाले तथा २८ फ़ीसदी बहु-पत्नी वाले थे। औसतन १०० विवाहित पुरुषों पर १५३ विवाहित स्त्रियाँ थीं।[१] नियाकियूसू जाति वाले दूसरी या तीसरी बीबी को "सोरो राती" कहते थे। यह शब्द हिन्दी के "सुरैतिन" से मिलता-जुलता है। केनिया में नंदी जाति में "योद्धाओं" के लिए भोग, विलास की बड़ी छूट थी।[२] पश्चिमी अफ्रीका की कुछ जातियों में, विशेष कर न्यू हेब्राइडीज में पुरुष तथा स्त्रियों की अपनी अपनी गुप्त समितियाँ होती थीं जो अपने वर्ग के हितों की रक्षा करती थीं।[३] तिकोपिया की औरतें बहुत छोटे-छोटे केश रखती थीं और मर्द लम्बे-लम्बे बाल रखते थे, औरतों की तरह।[४]

पर ये सब बातें अपने रीति-रिवाज़ों पर निर्भर करती हैं। थर्नवाल्ड ने ठीक कहा है कि पुरुष-स्त्री के परस्पर सम्पर्क तथा आदान-प्रदान के सिद्धान्त पर मानव-सम्बंध निर्धारित होता है। लंका के बहुत से ज़िलों में ग़रीब लोग अपनी गाय को इसलिए नहीं दुहते थे कि बैलगाड़ी के लिए मोटा बैल तैयार हो, तब, यह तो आवश्यकतानुसार निकाली प्रणाली हुई। मध्य आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी गर्मी के सूखा के दिनों में नदी के सूखे मैदान में या कीचड़ों में दबे पड़े हुए मेंढकों को निकालते थे और उनका पेट दबाकर उसके भीतर एकत्रित जल को निकालकर उसे पी जाते थे। मध्य अमेरिका में, दक्षिण-पूर्वी पापुआ तथा कोंगो मे तथा पूर्वी अफ्रीका के कुछ भागों में स्त्रियाँ सबेरे उठकर नुनखार मिट्टी खोदकर ले आती हैं, और पुरुष बड़े प्रेम से उसका जलपान करते हैं। यह सब क्या है—आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकता से उत्पन्न रीतियाँ हैं। इनको बुरा भी नहीं कह सकते। यह विभिन्न समुदाय का अपना गुण है। "जाति" मनुष्यों के उस समुदाय को कहते हैं जिनमें आपस में एक पैतृक, शारीरिक

१. वही, पृष्ठ ११०
२. वही, पृष्ठ १०३
३. वही, पृष्ठ १००
४. वही, अध्याय ४, पृष्ठ १००

विशिष्टता समान रूप से पायी जाती हो।[1] पर राष्ट्र मनुष्यों के उस समुदाय को कहते हैं जिसमें सामाजिक विशिष्टताएं समान रूप से पायी जाती हों। आज हमारे सामने जाति का नहीं, राष्ट्र का प्रश्न है। पर सोचना यह है कि मानव की सामाजिक विशिष्टता क्या है? वह क्या चाहता है और उसकी कौन सी इच्छा सही है?

दोषी कौन है?

मानव भी एक पशु है। पर, पशुओं के विपरीत, उसे यह निश्चय करने का अवसर है कि एक निश्चित परिस्थिति में वह भिन्न प्रकार के आचरणों में से किस आचरण को अपनाये। यदि किसी शत्रु को रास्ते से हटा देना हो तो पशु के सामने उसे मार डालने के सिवा और कोई चारा नहीं। मनुष्य पचास तरीक़े निकालकर अपने शत्रु को समाप्त भी कर देगा और प्राण भी नही लेगा, वह जो भी उपाय अपनायेगा, उसका सामाजिक कारण होगा, तथा वह अपने उपाय और परिणाम का मूल्यांकन करके तब निर्णय करेगा कि क्या करें।[2] बस, इस निश्चय या कार्यविधि का चुनाव अथवा फ़ैसला ही मानव-जीवन की, समाज की, सभ्यता की सबसे बड़ी समस्या है। कार्यविधि के चुनाव में शत्रु को रास्ते से हटाने के लिए उसके प्राण भी लिये जा सकते है या प्रेमभरी वाणी की चोट से भी उसे घायल किया जा सकता है। आज इन दो उपायों के बीच में चुनाव करने की कमज़ोरी के कारण ही मनुष्य अपराधी बनता जा रहा है। वह "ईमानदारी से कमाना" या "चोरी करके खाना" इन दो के निर्णय में भूल कर बैठता है। इसलिए अपराधशास्त्री मनुष्य को दोषी न ठहराकर समाज को दोषी ठहराता है, जिसने उसे उचित निर्णय करने में सहायता नहीं दी या, हम व्यक्ति को नहीं उसके निर्णय को दोषी ठहरा सकते हैं। दण्ड उस निर्णय को मिले, को निर्णायक को नहीं। क्या यह विचार सही है?

वासना का व्यापक प्रभाव

काम-भाव तथा वासना पर, चाहे संक्षेप में ही सही, हमने प्रकाश डालने का प्रयास किया है। कुछ लोगों को भ्रम भी हो गया होगा कि यह पुस्तक अपराध शास्त्र पर है कि कामशास्त्र पर। पर, ऐसे भ्रम का निवारण आगे चलकर होगा। कामशास्त्र

१. वही, पृष्ठ २०
२. रेमंड फर्थ, पृष्ठ १२९, अध्याय ५

तथा अपराधशास्त्र का इतना घना सम्बंध है कि ऐसा भ्रम होता ही है। किन्तु, जिस शास्त्र का विषय मानव हो, उसके लिए वासना को ठीक तरह से समझे विना तथा उसका व्यापक रूप पहचाने विना काम नहीं चल सकता। हम उस मनुष्य का अध्ययन करने बैठे है जिसकी संख्या आज ढाई अरब से अधिक है। संसार के ११५ देशों में बड़ी तेज़ी से आबादी बढ़ती चली जा रही है। हर मिनट ५००० बच्चे पैदा हो रहे है। बहुत जगह प्रति सेकेन्ड डेढ़ बच्चे यानी एक मिनट में ७५ का औसत है।

इतने बच्चों के पैदा होने में कितने शुक्र (वीर्य) तथा रज (स्त्री का वीर्य) ख़र्च हो रहा है यह सोचने की बात है। स्त्री की योनि में जो बिन्दुरूपी अण्डाकार रज होता है उसमें पुरुष का वीर्य प्रवेश करने से ही गर्भ रहता है। रज को "ओवम" तथा शुक्र (वीर्य) को "स्पर्म" अंग्रेजी में कहते हैं। प्रकृति की विचित्रता की बात यह है कि संसार में मा के स्तन का दूध पीनेवाले प्राणियों में, चाहे पशु हो या मनुष्य हो, चाहे कुत्ता हो, या सूअर, बन्दर हो या भालू—सभी की स्त्री जाति के रज का अंड आकार में शून्य ० के बराबर होता है। केवल एक बिन्दु के बराबर, और विज्ञान द्वारा यह सिद्ध है कि केवल एक ही बिन्दु में पुरुषशुक्र के प्रवेश करने से सन्तान की भूमिका बन गयी—गर्भाधान हो गया। जो एक बिन्दु के बराबर है, उसमें ही माता-पिता का गुण, स्वभाव, रूप, रंग, संस्कार सब कुछ आ जाता है। इतनी छोटी सी चीज़ कितना बड़ा प्राणी पैदा करती है! तो फिर इस बिन्दु का कितना बड़ा महत्त्व है।

हमने कहा है कि केवल एक बिन्दु-अण्ड ही गर्भाधान के लिए पर्याप्त है। इसी एक बिन्दु में पिता के वीर्य का कुल, परिवार, स्वभाव, शिष्टता, अच्छाई, बुराई इन सब चीज़ों का योग ३०,००० कणों में होता है। कितना छोटा कण होगा वह? एक बार के प्रसंग में स्त्री को जो रज-अण्ड पैदा होते हैं वे कम से कम चाय के एक चम्मच बराबर मात्रा में होते हैं और उनमें २० लाख रज-अण्ड होते हैं। पुरुष के एक बार के प्रसंग में लगभग पचास करोड़ वीर्य-कण पैदा होते हैं।[१] इतनी उत्पत्ति में से काम करता है स्त्री का एक रज-अण्ड तथा पुरुष का एक छोटा बिन्दु जिसमें ऊपर लिखे गुण-कण होंगे। शेष रज-वीर्य गिरकर बह जाता है। यदि कई अण्डे एक ही समय खुल जायँ तो कई बच्चे एक साथ पैदा होंगे। कई बच्चे एक साथ पैदा होते भी हैं। पर यह मार्के की बात है कि यदि जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए तो या तो दोनों लड़की होंगी या लड़के। कभी-कभी एक लड़का, एक लड़की भी होती है। पर कुछ को छोड़कर

१. Literary Digest, January, 1958

विज्ञान का कहना है कि "एक लड़की एक लड़का" वाले जुड़वाँ में यह भी सम्भावना होती है कि उस स्त्री के साथ एक के बाद दूसरे, दो पुरुषों ने प्रसंग किया हो। पर यह कोई नियम नहीं है।

प्रकृति ने कुछ ऐसी रचना की है कि प्रसंग चाहे कितनी ही बार क्यों न हो, गर्भ कभी-कभी ही रह जाता है। उसे रोकने के सहज तरीके भी हैं। एक बात यह कि विषय-प्रसंग में पुरुष को तभी आनन्द आता है जब उसका वीर्यपात हो। स्त्री को शुरू से ही आनन्द आता है।[1] इसी लिए प्रायः स्त्रियों का पात विलम्ब से होता है और पुरुष पहले ही खाली हो जाता है, अतः गर्भाधान नही हो पाता। कुछ इन्ही कारणों से स्त्री को अधिक कामातुर, कामेच्छुक तथा एक बार रसास्वादन के बाद अधिक प्रबल वेगवाली कहा है। इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने स्त्री को बार-बार ब्रह्मचर्य तथा मन को वश मे रखने की शिक्षा दी है। इसी लिए मनु ने भी उसे पति के मरने पर शुद्ध मन से ब्रह्मचारिणी रहने का उपदेश दिया है।[2] और यही कारण भी है कि पुरुष वीर्यपात के लिए जितना उच्छृंखल हो सकता है, स्त्री उतना ही अपने मन को दबाकर काबू में रख सकती है। उसमें इच्छा को दबाने की बड़ी शक्ति होती है।

अस्तु, तो जिस बिन्दु पर जाति तथा राष्ट्र की रचना, उसकी सन्तान, उसका समाज निर्भर करता है, उसकी रक्षा बड़ा भारी काम है। यदि उस बिन्दु का दुरु-पयोग न रोका गया तो समाज ही नष्ट हो जाता है। कामशास्त्र ऐसे मामलों में बड़ा सहायक होता है। यदि संसार में पुरुष तथा स्त्री की संख्या बराबर होती तो शायद दुराचार की समस्या कम होती या यदि स्त्रियाँ ज्यादा होतीं, जैसा कि प्रथम महायुद्ध के बाद से तथा दूसरे महायुद्ध के बाद और भी अधिक इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि में हो गया है, तो समाज की समस्या और ही कुछ होती। पर कुछ ही देशों को छोड़-कर, विश्व का औसत यह है कि माता के स्तन का दूध पीनेवाले प्राणियों में पुरुषों की

१. इस वैज्ञानिक खोज को वात्स्यायन अपने कामसूत्र में बहुत पहले लिख गये हैं—

"सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणां तु सततं सुखम्।"

(पुरुष को स्खलन पर तथा स्त्री को बराबर आनन्द मिलता है)—"वात्सायन, अधि० २, अ० १—श्लोक २२.

२. "मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥" (अ० ५ श्लो० १६०)

पैदावार अधिक है। मानव योनि में हमारे भारतवर्ष में ही देखिए कि सन् १९५१ में १५ से २४ वर्ष की उम्र के बीच में ३.६ करोड़ पुरुष तथा ३ करोड़ स्त्रियाँ थी।[1] लड़कियों की शादी जल्दी होती है। अतएव १५–२४ वर्ष के १.३६ करोड़ लड़के तथा २.४० करोड़ लड़कियाँ विवाहिता थीं—बहुतों में शादी २४ वर्ष से ऊपर उम्र वालों की हुई होगी। उत्तर भारत में फ़ी १००० पुरुष पीछे ८२० स्त्रियाँ तथा पूर्वी भारत में केवल ७१९ स्त्रियाँ हैं। यह भी नगरों का औसत है। स्मरण रहे कि दुनिया भर का हिसाब है कि नगरों से ज्यादा बच्चे देहातों में पैदा होते है। सन् १९२६ का औसत था कि नगर में जब १०३८ बच्चे पैदा होते थे तो देहातों में १०४३।

अस्तु, स्तन से दूध पीनेवाले प्राणियों में पुरुष-लिंगी ज्यादा पैदा होते हैं।[2] तीस वर्ष पूर्व का हिसाब है कि प्रति १०० स्त्री पीछे—

मनुष्यों में	१०३ से १०७ पुलिंग (पुरुष) हैं,
घोड़ों में	९८.३ (घोड़ियाँ अधिक हैं)
कुत्तों में	११८.५,
गाय बैल आदि में	१०७.३,
भेड़ों में	९७.७ (भेड़ें अधिक हैं)
सूअरों में	१११.८,
खरगोशों में	१०४.६,
चूहों में	१०१ से ११८ पुलिंग हैं।

गर्भ में लड़का या लड़की कैसे आते हैं, इसका एक लम्बा विज्ञान है। पर अब यह तय हो चुका है कि यदि स्त्री के रज का लड़की का कण पुरुष के रज के लड़की के कण के साथ ही अंड में आता है तो लड़की होती है। यदि स्त्री का लड़की का कण

१. देखिए Govrnment of India Census Report–1957
भारतवर्ष में आबादी बड़ी तेजी से बढ़ रही है, ५ बच्चे प्रति मिनट. सन् १९५२ में ३६ करोड आबादी थी पर सन् १९५६ में ३९ करोड़ हो गयी।

२. F. A. E. Crew "Animal Genetics" Edition 1925. **यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पुरुष मरते ज्यादा हैं, स्त्रियाँ कम, इसलिए विधुर पुरुषों से विधवाएँ अधिक हैं। हमारे देश में सन् १९५१ में १०·५२ लाख विधुर तथा २१·१९ लाख विधवाएँ थीं।**

पुरुष के वीर्य के लड़के के कण के साथ जाता है तो लड़का होता है।[1] किस समय के संभोग से लड़का होगा, वह तो भारतीय शास्त्रकारों ने लिखा है। हम यहाँ नये विज्ञान की बात लिख रहे हैं। प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री में एक दूसरे के अंश वर्तमान हैं। इस सम्बंध में यूनानी पुराण की कथा हम दे चुके हैं।[2] उस कथा में भी दम है। यह तो प्रायः सुनने में आता है कि पैदायशी लड़के बड़े होकर लड़की बन जाते हैं तथा लड़की लड़का बन जाती हैं। नित्य के स्वभाव में भी देखा जाता है कि कोई पुरुष स्त्री की तरह से कोमल, डरपोक और दबकर चलनेवाला होता है। अपराधशास्त्र ने अप्राकृतिक संभोग करानेवाले पुरुष या पुरुष के ऊपर चढ़नेवाली स्त्री को क्रमशः स्त्री तथा पुरुष-स्वभाव का बतलाया है। इन सब बातों से यही निचोड़ निकलता है कि समाज की तथा राष्ट्र की रक्षा के लिए स्त्री-पुरुष सम्बंध को नियंत्रित करना, उसे क़ायदे के दायरे में लाना ज़रूरी है।

वासना का मंदिर

पर ऐसे क़ायदे के हिमायती को यह नहीं भूलना चाहिए कि वासना भावना से ही उत्पन्न होती है। वासना स्वाभाविक है। अप्राकृतिक नहीं है। संगम की इच्छा स्वाभाविक है। यह इच्छा मन, मस्तिष्क तथा हृदय से सम्बंध रखती है। जिसका दिल मज़बूत होगा, उसका दिमाग़ भी मज़बूत होगा। पर आजकल की सभ्यता में साधारण स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। यदि तन्दुरुस्त तथा कसरती आदमी हुआ तो उसका हृदय एक मिनट में ६० बार धड़कता है, सोने के समय ५० बार प्रति मिनट। इस प्रकार उसके हृदय को वर्ष भर में १८ दिन की छुट्टी (अवकाश, विश्राम) मिल जाता है। जब कि साधारण व्यक्ति का हृदय ८० बार प्रति क्षण धड़कता है। उसे आराम नहीं मिलता।[3] अक्सर यह भी देखा गया है कि बहुत तन्दुरुस्त लोग, बड़े-बड़े योद्धा लोग नपुंसक होते हैं। उनका मन मर गया रहता है। दुबले-पतले व्यक्ति कामुक अधिक होते हैं। मस्तिष्क को रक्त का भोजन हृदय से मिलता है। मस्तिष्क के केन्द्र में ही वह

१. W. Bateson Mendel's Principles of Heredity (3rd Edition 1913)

२. Hermaphrodites

३. English Digest Feb., 1959

स्थान है[१] जहाँ से भावना तथा निद्रा पैदा होती है। इसी लिए दिल का बीमार, प्रेम का बीमार रात को सो भी नही सकता।

इन्ही सब बातों को समझकर भारतवर्ष में सदाचार के प्राकृतिक नियम बनाये गये थे। जहाँ तक छूट दे सकते थे, दे दी—जहाँ कड़ाई करनी थी, कर दी। पर मूर्ख विदेशी लेखकों ने हमारे शास्त्र को समझा ही नही है। डा० शेवर्स ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि "भारत ऐसे देशों में, जहाँ असली नैतिकता लोग जानते ही नही–"।[२] ऐसे पढ़े-लिखे पर वास्तव में अपढ मूर्खो का कोई भी इलाज नही है।

नैतिकता कहते किसे है। वेस्टरमार्क ने ठीक ही लिखा है कि जिस वस्तु के प्रति हमारी जैसी भावना बन जाय, वह वैसी हो जाती है। जिसे हम पसंद करें या नापसंद करें, वही उसके सम्बंध में नैतिक विचार होता है।[३] मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में अन्तर यही है कि वह अपनी कामुक वासना या वासना को रोक सकता है,[४] दबा सकता है, मन मार सकता है, पर जानवर तो ऐसा नही करेगा। इसी नियंत्रण के दबाव या रोकथाम के लिए उसने (मानव) ने विवाह-नियम बनाया। विवाह और कुछ नही तो केवल कामुक वासना के लिए एक सामाजिक नियंत्रण मात्र है।[५] यह भावना केवल पुरुषों मे ही नही है, स्त्रियों में ही नहीं है, दोनो मे मिली-जुली वर्तमान है।[६] मानव के दोनों अंगों को सन्तुष्ट रखते हुए भी जाति की वृद्धि तथा पवित्रता क़ायम रखने के लिए ही सुकरात ऐसे पंडित ने बड़े वैज्ञानिक विचार तथा ध्यान देने की सलाह दी थी। पर सब बातों को देखते हुए कटनर ने अपनी पुस्तक में बड़ा कटु सत्य लिखा है कि विवाह का असली मतलब ही यह है कि पुरुष संतुष्ट रहे, एक से संतुष्ट रहे। पर "स्वभाव से ही पुरुष बहु-स्त्री-प्रेमी पशु है। यदि उसकी भागती हुई इच्छाओं

१. Central Thermostat–in a region called Hypothalamus

२. Dr. Chevers–Page 712

३. Edward Westermarck—"The Origin and Development of the Moral ideas"—Macmillan & Co., London. Edition 1921 Vol. I–Page 4

४. Taylor-Sex in History

५. Westermarck **की पुस्तक**

६. Harry Benjamin **(न्यूयार्क)**

की पूर्ति का साधन सीधे-सीधे न प्राप्त होगा तो वह गुप्त रूप से उन्हें पूरा करेगा।"[१]

ऐसे कठिन पुरुष को सम्हालकर कैसे चला जाय? पर स्त्री भी देखने में जैसी लगती है, वह वैसी नहीं है। एक बड़े मनोवैज्ञानिक का कथन है कि "प्रत्येक स्त्री पैदायशी नखरेबाज है। वह दूसरों की निगाहों में जँचना चाहती है।" यह भी सही है कि सतीत्व आदि की भावना उसमें भरकर उसके स्वभाव को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। पर, वह अपने मन का जोड़ा जरूर ढूँढ़ने का प्रयास करती है। "मानव के विकास" तथा "बन्दर से मनुष्य" बनने के सिद्धान्त को प्रतिपादित करनेवाले विद्वान् डारविन का कथन है कि जाति की वृद्धि तथा विकास के लिए प्राणी अपने समनुकूल जोड़ा ढूँढ लेता है और ऐसे जोड़े "स्वभावतः" मिलकर, उनके संयोग से नयी पैदावार होती है।[२] पर कुछ प्राणियों में, जैसे एक प्रकार के हिरन या मोर-मोरनी में केवल कामुक आकर्षण की भावना ही काम देती है—यह भी वे मानते हैं। नये विज्ञान ने इस सिद्धान्त में भी काफ़ी उलट-पुलट किया है पर वह इस नतीजे पर ही पहुँचा है कि प्रसंग तो अन्ततोगत्वा किसी भी दशा में हो जाय पर जिस नर में अधिक आकर्षण-शक्ति होती है, मादा उसकी ओर ज़्यादा झुकती है और उसके साथ रति में उसे विशेष आनन्द मिलता है। इसका प्रयोग ड्रोसोफिला[३] नामक छोटी मक्खी पर किया गया। नर मक्खी अपने डैनों को विचित्र ढंग से उभाड़कर मादा की ओर बढ़ती है। मादा इससे बड़ी आकृष्ट होती है। प्रयोग में एक नर के डैने काटकर मादा के साथ रखा गया। उसी मादा ने इसकी तुलना में डैनेवाले के साथ अधिक आनन्द किया।[४] यही दशा पुरुष-स्त्री की भी है। डैने कटे भी हों तो क्या, आकर्षण न होते हुए भी काम चलता ही है। प्रश्न केवल संतोष तथा आनन्द का है। इसी सन्तोष तथा आनन्द की तलाश में "व्यभिचार" कहिए या "स्वाभाविक संसर्ग" कहिए, होता ही है। क्या ऐसा स्वाभाविक काम अपराध है? हाँ। यह सवाल हो सकता है कि आज के ज़माने में आदमी ने अपने संतोष तथा आनन्द के भाव को ही इतना विकृत कर दिया है कि

१. Cutner—A Short History of Sex Worship पृष्ठ २१३

२. C. Darwin—The Descent of Man

३. Drosophila

४. J. T. Cunminghan—Sexual Dimorphism in the animal kingdom (Edition 1900)

उसे किसी प्रकार सन्तुष्टि नहीं मिल सकती। अतएव यदि थोड़ी रोक-थाम भी हो तथा स्वाभाविक वासना को दबाने का प्रयत्न भी न किया जाय तो समाज का कल्याण अधिक होगा तथा अपराधशास्त्र की समस्या हल हो जायगी।

वासना की महत्ता को स्वीकार करके ही मानव-समाज ने एक ओर सदाचार का मंत्र दिया, दूसरी ओर वेश्या की भी रचना कर दी। उसे समाज में वास्तविक आदर नही दिया। बहुत कुछ अपमानजनक शब्द उसके लिए थे। उसे पैसे की स्त्री—पण्यङ्गना, भोग्या, भुजिष्या आदि नामों से सम्बोधित करते थे।[१] किन्तु, इच्छा की तृप्ति अगर उससे हो जाय तो फिर उतना बुरा भी नहीं था। काम का दूसरा नाम इच्छा भी है।[२] अपराध हमारे यहाँ उसी को मानते थे जो "अकार्य" हो, न करने योग्य हो।[३] दंड का अर्थ दमन है। जो न करने योग्य कार्य है उसको करने पर दमन करना चाहिए, यही राजधर्म है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि जिस समाज की काम-वासना का ऊपर के पन्नों में दिया हुआ रूप हो, वहाँ दमन का, दंड का भी विधान था—और यदि था तो किसलिए ?

१. वेश्या—गणिका, अभिसारका भी, देखिए श्लोक—

पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता।
तृतीये वृषली ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली स्मृता॥
वेश्या च पञ्चमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या सास्पृश्यासर्वजातिषु॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण ४९०

(वह सब जातियों के लिए अस्पृश्य थी)।

२. हलायुध कोश – सम्पादक– जयशंकर जोशी, प्रकाशक सरस्वती भवन, वाराणसी १९५५–पृष्ठ २१९

३. वही पृष्ठ १२३–"अकार्यादि दोषः।"

अध्याय ७

वासना के अपराध पर दंड

भारतीय शास्त्रकारों की व्यवस्था

भारतीय शास्त्रकारों ने लौकिक तथा पारलौकिक, दोनों प्रकार के दंड बतलाये हैं। इस लोक में भी दंड मिलता है और उस लोक में भी। मरने के बाद का दंड मनुष्य को काफ़ी रोकथाम में रखता है। पाप-पुण्य की इसी भावना से समाज में बड़ा नियंत्रण रहता था। आज के समाज से यह भावना लुप्त हो गयी है। इसी लिए आज अपराध, अपराधी दोनों ही बढ़ गये हैं। स्त्री को पतिव्रत की शिक्षा दी जाती थी और पति को "भार्याव्रत" की।[१] महाभारत में कपिल ने उपदेश दिया है कि अपनी पत्नी में ही संतुष्ट रहे।[२] जो सदाचारी है, उसका प्राण अन्त समय में सिर की ओर से, उसे फोड़कर निकलेगा; जो पापी है, उसका नीचे से,[३] पाखाने के मार्ग से।[४] दुराचारी अल्पायु होगा, वह रौरव नरक में जायगा।[५] यदि दुराचारी ब्राह्मण जाति का नहीं है तो उसे प्राणदंड मिलना चाहिए।[६] दुराचारी (व्यभिचारी) ने यदि किसी कुमारी कन्या को भ्रष्ट किया है तो उसकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ले, उसका शिश्न तथा अण्डकोष काट ले तथा यदि वह कन्या प्रायश्चित्त करने का वचन दे तो उसके अभिभावक के ज़िम्मे कर दे।[७] व्यभिचारी को चोर की सज़ा मिलनी चाहिए।[८]

१. मनु ९–१०१
२. महाभारत अधि० १२, अ० २६९ श्लोक २७
३. अग्निपुराण ३७१––३
४. गरुड़ पुराण ९–३६
५. मार्कण्डेय पुराण ३४–६२
६. बोधायन २–२–४–१
७. आपस्तम्ब–अधि० २–२६–२०–२१
८. याज्ञवल्क्य २–३०१

परायी स्त्री के साथ व्यभिचार में सम्पत्ति-हरण, देशनिकाला, शरीर दाग देना, शिश्न आदि काट लेना तथा प्राणदंड की भी सज़ा मिलनी चाहिए।[१] सात प्रकार के "आततायियों" में व्यभिचारी भी है। महानिर्वाण तंत्र के अनुसार[२] यदि कोई व्यक्ति अपनी स्त्री को पराये की गोद में देखे तो दोनों को मार डाले। इस हत्या से उस पर कोई आँच नही आयेगी। किसी की दासी या रखेली (परिग्रह) के साथ व्यभिचार भी मना है। जिसकी दासी के साथ भोग करे उसका दास बनकर रहना पड़ेगा।[३] याज्ञवल्क्य के अनुसार[४] इस अपराध मे ५० पण दंड देना होगा। प्रसंग (व्यभिचार) केवल वास्तविक कार्य को ही नही कहते। पर-स्त्री गमन के अपराधों में नारद तथा बृहस्पति ने[५] नदी के संगम पर, बाग में, नहानेवाले घाट पर या जंगल में, कही भी परायी स्त्री से बोलना, खेलना, तोहफ़ा भेजना, चूमना, आँखें मारना, कपड़ा, गहना या शरीर छू लेना या उसे अपने को छूने देना, उसकी खाट पर बैठ जाना, हाथ पकड़ लेना, केश पकड़ लेना—यह सब व्यभिचार माना है। शास्त्रकारों ने अब्रह्मचर्य के ८ प्रकार माने है—

१. स्मरण करना, २. कीर्त्तन करना (उसके बारे में बातचीत करना), ३. केलि (छेड़छाड़), ४. प्रेक्षण (घूरना), ५. गुह्य भाषण, ६. संकल्प (विषय का इरादा करना), ७. अध्यवसाय (प्रसंग का निश्चय करना) तथा ८. क्रिया-निष्पत्ति—वास्तविक प्रसंग करना।

इतनी विशद व्याख्या में हमारे समाज मे लोग अपना दिल टटोलकर देखें कि कौन अपराधी नही है। स्त्रियां भी चार प्रकार की "स्त्रैरिणी" मानी गयी है और ये दंडनीय है—(१) अपने पति को छोड़कर दूसरे के साथ रहनेवाली, (२) पति की मृत्यु पर अपने देवर या अन्य रिश्तेदार को छोड़कर किसी अजनबी से सम्बंध करनेवाली, (३) पैसे के लिए अपने को पराये को सौपनेवाली तथा (४) वैध विवाह के बाद ज़बर्दस्ती दूसरे की पत्नी बनाये जाने पर। ये दंडनीय हैं।[६] स्त्री के

१. नारद स्मृति–१६–२ तथा बृहस्पति २२–१

२. ११–५३

३. बृहस्पति–१५.७

४. याज्ञ० २–२९०

५. नारद, १२ श्लो० ६२–६९, बृह० २३–२

६. नारद १२–४९। स्त्री के लिए शास्त्रकारों ने कठोर दंड की व्यवस्था बिरले ही की है, व्यभिचार का दोषी पुरुष अधिक माना गया है।

लिए पुरुषों की तुलना में दंड कहीं कोमल है। प्रायश्चित्त, व्रतोपवास से भी उसका पाप धुल जाता है। गुरुपत्नी के साथ संभोग करनेवाले को स्त्री की लौह-प्रतिमा बनाकर उसे खूब गर्म कर, उसी से चिपटा देना चाहिए[1] या वह अपना शिश्न तथा अण्ड-कोष काटकर अपने हाथों में लेकर दक्षिण-पूर्व की दिशा में चलता रहे और तब तक चलता रहे जब तक मरकर गिर न पड़े। हाँ, यदि किसी ब्राह्मण[2] की रक्षा के लिए उसने प्राण दे दिये तो उसका पाप धुल जाता है। ऐसे अपराधों के लिए गो-सेवा, अश्वमेध या अग्निष्टोम आदि प्रायश्चित्त भी है। पर अपने से उच्च वर्णवाली स्त्री के साथ भोग पर, अपनी संरक्षकता में रहनेवाली कन्या से, कुमारी (अक्षतयोनि) से, मित्र-पत्नी से, बहन की सखी से, सगोत्रा से, परिव्राजिका से—प्रसंग करने पर कठोर दंड दिये जाते थे।[3] उच्च वर्ण की स्त्री यदि नीच वर्ण के साथ प्रसंग करे तो उसे कुत्तों से नुचवा देना चाहिए (अर्दयेत्)। विप्रदुष्टा स्त्रियों के लिए—जो किसी की रोकथाम की नहीं हैं, बड़ा कठोर दंड था। दस्युकन्या से प्रसंग करनेवाला ब्राह्मण नरक जाता था।[4] शूद्रा से प्रसंग करने वाला देश निकाला पाता था।[5] अन्त्यज कन्या से संभोग करनेवाले को प्राणदंड मिलना चाहिए।[6] जाति तथा कुल की मर्यादा क़ायम रखने के लिए ऊँच-नीच के प्रसंग का बड़ा निषेध था। शूद्र यदि वैश्य या क्षत्रिय कन्या से प्रसंग करे तो उसका शिश्न काट लेते थे या ज़िन्दा जला देते थे। ब्राह्मण कन्या को भ्रष्ट करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को नारद, मनु, गौतम, याज्ञवल्क्य आदि स्मृति-कारों के अनुसार मार डालना चाहिए या जला देना चाहिए। यदि ब्राह्मण स्त्री स्वेच्छा से क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के साथ रमण करे तो सर घुटाकर उस पर दही मलकर तीनों जातियों के अनुसार क्रमशः सफेद, पीले या काले गधे पर नंगी बिठाकर शहर में घुमा

१. मनु, आपस्तम्ब, गौतम, याज्ञवल्क्य मे गुरुपत्नी-सम्भोग पर ऊपर लिखे कठिन दंड हैं।

२. ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण स्मृतिकारों ने पक्षपात किया है पर ब्राह्मणों में भी पतित होते थे। आपस्तम्ब (अधि० २–६, १४–१३) के अनुसार "बकरा और वेदपाठी ब्राह्मण बड़े विलासी होते हैं।"

३ विष्णुपुराण, ३६–४, याज्ञवल्क्य, ३–२३१

४. गरुड़पुराण, ४–३७

५. आप० २–१०–२७

६. विष्णु, ५–४३

दिया जाय। भ्रूणहत्या करनेवाली या "निहिन वर्णानाम्"—नीच-रति करनेवाली स्त्री के नाक-कान काट ले, या स्तन काट ले या कूएं में डालकर प्रायश्चित्त कराये। इस सम्बंध में मनु, याज्ञवल्क्य, अग्निपुराण आदि में भिन्न-भिन्न दंड हैं।[१] भिन्न देशों में बाल-हत्या पर भिन्न प्रकार के दंड थे।[२] जो स्त्री स्वयं पर-पुरुष के घर जाय, उसमें पुरुष को कम दोषी समझा गया था तथा स्त्री को प्राणदंड या अंगच्छेद का दंड होना चाहिए।[३] घोर व्यभिचारिणी स्त्री को तो अवश्य मार डालना चाहिए।[४] स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के विरुद्ध अदालत में अभियोग नहीं लाना चाहिए (नारद १२—८९)। आजकल तलाक़ के मामले में रोज़ स्त्री-पुरुष अदालत दौड़ते हैं। ब्रह्मचारी यदि स्त्री के पास जाय तो छः महीने तक बैल की खाल पहनकर प्रायश्चित्त करे। (महाभारत—१२, २४)। पति अपनी व्यभिचारिणी स्त्री को अनेक प्रकार के दंड दे सकता है। वशिष्ठ के अनुसार उसे साल भर घी में भीगे कपड़े पहनकर कुशा, घास या गोबर पर सोना चाहिए। नारद के अनुसार वह जमीन पर सोय, कु-वास (ख़राब स्थान) में रखी जाय, मुट्ठी भर भोजन मिले, इत्यादि। पुरानी जर्मन सभ्यता की तरह, भारत में भी पत्नी पति की सम्पत्ति थी। अतएव पत्नी के पापों का दंड पति को भी देने का अधिकार था।

पत्नी पर पुरुष के अधिकार का सब निचोड़ मनु के इन दो श्लोकों से मिल जाता है—

१. याज्ञवल्क्य २—२८६, अग्निपुराण—२५८—५९

२. Westermarck के The Origin and Development of Moral ideas में पृष्ठ ४१२—१३ में दिया है कि चीन में तथा भारत में राजपूतों में कन्या पैदा होते ही तुरत मार डालना वैध था। बच्चों को मार डालने की प्रथा की ईसाई प्रचारकों ने बड़ी निन्दा की है। सन् ८५२ में मेंज (Mentz) की सभा में यह निश्चय हुआ कि यदि माता बिना वपतिस्मा (ईसाई धर्म दीक्षा) किये बच्चे को मारे तो वपतिस्मा किये बच्चे को मारने पर दंड से अधिक दंड दिया जाय, रोमन नरेश वेलेंटिनियन प्रथम बच्चे की हत्या करनेवाली माता को जिन्दा जला देते थे। सन् १५५६ में फ्रेंच नरेश हेनरी द्वितीय ने गर्भ छिपानेवाली, सन्तानोत्पत्ति छिपानेवाली या मरा बच्चा पैदा करनेवाली को प्राणदंड की सजा घोषित की थी।

३. बृह० २३—१५

४. विष्णुपुराण—५—१८

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्त्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम्॥
सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता।
कृच्छं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम्॥

मनुस्मृति के ११ वें अध्याय के ये १७६ तथा १७७ वें श्लोक पुरुष के अधिकार को अक्षुण्ण बना देते हैं। मनु कहते हैं कि अपनी इच्छा से व्यभिचार करनेवाली स्त्री को उसका पति एक घर में बन्द कर रखे और पर-स्त्री गमन में पुरुष के लिए जो प्रायश्चित्त कहा है, वही उससे कराये। रोकी जाने पर भी यदि वह स्त्री सजातीय पुरुष के साथ व्यभिचार करे तो उसकी शुद्धि के लिए उससे कृच्छ चान्द्रायण व्रत कराना चाहिए।

अस्तु, प्रायश्चित्त तथा शारीरिक दंड दोनों को मिला देने से नैतिकता केवल लोकाचार की या सरकारी क़ायदे क़ानून की नहीं, बल्कि आत्मा तथा मानवता की वस्तु बन जाती है। अन्य किसी भी देश ने अपराधशास्त्र को ऐसा रूप नहीं दिया। आज भी, इन्हीं कारणों से भारत में और देशों की तुलना में, नैतिकता के विरुद्ध अपराध कम होते हैं।

रोम में दंड

रोम का साम्राज्य उसके वीर पुत्रों के भुजबल से स्थापित हुआ था। उसे योद्धाओं की, युवकों की, पुत्रों की ज़रूरत थी। इसलिए वहाँ के पंडितों ने साम्राज्य के आरम्भ के दिनों में विवाह की पवित्रता पर बड़ा ज़ोर दिया था। चूँकि वहाँ की राजनीति में पुरुषों का ही हाथ था, अतएव स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं प्राप्त था। दंड देने का काम पति या पिता का था। यदि पुरुष लम्पटता की ओर जाता था तो स्त्री को कुछ बोलने का हक़ भी नही था। प्लाटस नामक लेखक ने एक कथा[१] दी है कि एक लड़की ने अपने पिता से अपने पति की लम्पटता की शिकायत की। पिता ने उत्तर दिया कि "मैंने तुमसे कह दिया कि अपने पति की इज्ज़त करो, वह कहाँ जाता है, क्या करता है, क्या सोचता है, इससे तुमसे कोई मतलब नहीं।" जब उस लड़की ने और भी शिकायत की तो पिता ने कहा—"अच्छा, तुम अपने पति पर इतनी कड़ी

१. Plautus—Menaechim—787

निगाह रखती हो? यदि ऐसा है तो मैं उसकी लम्पटता में उसकी सहायता करूँगा। वह तुमको गहने, कपड़े, भोजन तथा नौकरानियाँ देता है, अब तुमको और क्या चाहिए।"

स्त्री को लोग विपत्ति भी समझते थे। दार्शनिक यानी विद्वान् को स्त्री से दूर रहना ही ठीक समझा जाता था। प्रसिद्ध विद्वान् सिसरो ने जब अपनी पत्नी तेरेंतिया को त्याग दिया तो हिरतियस ने उसे अपनी बहिन ब्याह देना चाहा। सिसरो ने कहा कि "दर्शन शास्त्र तथा स्त्री दोनों एक साथ नहीं चल सकते।" अपने एक ग्रन्थ[1] में उन्होंने लिखा है—"जिसके पास औरत है, वह कभी स्वतंत्र नहीं रह सकता। जिस व्यक्ति पर स्त्री शासन करती हो, नियंत्रण रखती हो, 'यह करो—वह न करो' कहती रहती हो, वह आदमी कहीं स्वतन्त्र रह सकता है?" किन्तु ऐसे विचार रोमन सभ्यता में तब आये जब साम्राज्य स्थिर हो चुका था, विजय के लिए योद्धाओं की ज़रूरत नहीं थी। लोगों में विलासिता आ गयी थी। स्त्री विवाह-बंधन के लिए, भोग की सामग्री बन गयी थी। प्रसिद्ध रोमन विचारक सेनेक्का (द्वितीय) ने तो यहाँ तक लिख दिया कि "संसार में सबसे मूर्खता की बात है कि अपनी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए, बुढ़ापे में पोषण के लिए या अपना नाम चलाने के लोभ से, संतान उत्पन्न करने के लिए विवाह करना।"[2] रोमन इतिहास इस बात का साक्षी है कि रोम के लोग शुरू से ही विवाह करने के हिमायती नहीं थे। वे खुला प्रेम ज्यादा पसंद करते थे। लोगों को विवाह के लिए बाध्य करने की नीयत से ही रोमन क़ानून मे अविवाहितों को अधिक सरकारी कर देना पड़ता था। इसी लिए चिढ़कर सिसरो ने कहा है कि "सरकारी क़ानून आदमी को ब्रह्मचारी नहीं रहने देते।" वेलेरियस मैक्सियस के कथनानुसार ईसा से ४०३ वर्ष पूर्व रोम में अविवाहितों के विरुद्ध क़ानून थे।[3] ईसा से १३१ वर्ष पूर्व, विधायक मेटेलस ने एक प्रसिद्ध व्याख्यान दिया था—

"यदि हम बिना पत्नी के रह सकें तो यह सब कष्ट उठाने की ज़रूरत नहीं है। पर प्रकृति ने हमें ऐसा बनाया है कि बिना उसके रह नहीं सकते और उसके साथ चैन

१. Paradoxa

२. **किन्तु रोम में सन्तानोत्पत्ति को प्रोत्साहन दिया जाता था और पुत्रवान् पिता पर सरकारी कर नहीं लगता था**—Lecky "History of European Morals"—II, 27

३. Kiefer—Sexual life in Ancient Rome—Page 34

से भी नहीं रह सकते। इसलिए अस्थायी सुख के स्थान पर स्थायी सुख के विचार से रहने का नियम होना चाहिए।"

यह बात उस व्यक्ति ने कही है जिसकी स्त्री सुन्दर थी, सुशील थी, जिससे उसको चार लड़के, दो लड़कियाँ और ११ पौत्र-पौत्रियाँ थीं। मैटेलस की बात आज भी काटी नही जा सकती। (सामान्यतः विवाह तो करना ही होगा; चेष्टा यह करनी चाहिए कि उससे अधिक से अधिक संतोष प्राप्त हो सके।)

लोगों की विलासिता तथा उन्मुक्त प्रेम की बढ़ती भावना को देखकर उसे रोकने का प्रयत्न किया जाने लगा। सम्राट् आगस्टस ने ईसा के पूर्व १८ वर्ष से ईसा के बाद ९ वर्ष के बीच में कई नियम[1] बनाकर २० से ६० वर्ष की उम्र के बीच के अविवाहित पुरुष तथा २० से ५० वर्ष की उम्र से ऊपर के पुरुष तथा बीस वर्ष के ऊपर की सन्तान-हीन स्त्री को सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया। तीन या उससे अधिक सन्तान वालों के लिए राजकीय सुविधाएँ दी। राज्यपरिषद् ने सदस्यों के लिए उपयुक्त विवाह का नियम बनाया तथा तलाक़ की प्रथा में सुधार किया। आगस्टस ने उपदेश दिया कि "संसार में पत्नी तथा सन्तान के साथ सुखमय जीवन बिताने मे बढ़कर और कोई सुख नही है।"

किन्तु रोमन वीरों की दिग्विजय का एक परिणाम यह भी हुआ कि उनमें विलासिता आने लगी। ईसा से १८६ वर्ष पूर्व जब रोमन सिपाहियों ने एशिया के प्राचीन धनी राज्यों को जीता तो वहाँ के वैभव तथा विलास की सामग्री से रोम का जीवन बदल गया। शासन की कुर्सियां, गद्दे, कालीन, गलीचे, दीवार के परदे तथा सिल्क के कपड़ों से समाज मे नया जीवन आ गया। जीते हुए राज्यों से इतना कच्चा माल तथा गल्ला इटली आने लगा कि किसानों की खेती समाप्त होने लगी—विदेशी गल्ला सस्ता पड़ने लगा। रोमन लोगों में धनी तथा समृद्ध सरदारों का, ज़मीदार तथा रईसों का वर्ग पैदा हो गया। लोगों में एक नया दूषण पैदा हो गया। "लालच उत्पन्न हो गया। लालचवश बर्बरता, क्रूरता होने लगी. . .जिस काम से लाभ हो, उसे करने में कोई हिचक नही होती थी।"[2] ऐसे काल मे स्त्रियों ने भी सिर उठाया। वे बंधन तोड़कर बाहर निकलने लगीं। सालस्त[3] ने एक ऐसी महिला का जिक्र किया है जो

१. वही, पृष्ठ ३६

२ Kiefer—Velleius quoted, Page 43

३. Sallust—Bellum Catilinea, Kiefer पृष्ठ ४५

बड़ी सुन्दर थी, धनी थी, सम्पन्न थी, कई बच्चों की माता थी, कवि थी, लेखिका थी, कई भाषाओं की जानकार थी। पर वह घोर विलासिनी थी। उसे ऐसी हवस थी कि मर्द उसे तलाशें, इसमें अधिक वह स्वयं मर्दो को तलाश करती थी। इस का नाम सेम्प्रोनिया था। ऐसी विलासिनी औरतों की संख्या रोम में बहुत बढ़ गयी थी। ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व के मध्यकाल में रोम साम्राज्य में "पुरुष में अप्राकृतिक व्यभिचार तथा स्त्रियों में खुले आम अपने को बेच देने का रिवाज़ बहुत बढ़ गया था।"[१] होरेस ने लिखा है कि "वह युग चला गया जब शुद्ध विवाह होते थे तथा शुद्ध सन्तान उत्पन्न होती थी। अब तो ऐसी कोई कुमारी नही मिलेगी जो जवान हो और प्रेम करना और काम की संतुष्टि करना न जानती हो। ब्याहता स्त्री जब उसका पति शराब पीता रहता है, किसी जवान आवारे का इशारा पाकर अंधेरे कमरे में चली जाती है, पति देखता रहता है और वह किसी स्पेनी मल्लाह के हाथ शरीर बेच आती है।" प्रापर्टियस ने अपनी एक कविता में लिखा है कि "रोम के लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी अगर एक भी सच्चरित्र औरत मिल जाय।"[२] स्त्रियों का यह विलास उस बंधन की प्रतिक्रिया थी जिसमें शुरू रोमन साम्राज्य में स्त्रियों को रखा गया था। डा० वार्टिंग[३] ने रोम के "मर्दाने" राज्य में आन्तरिक ज़नानी प्रतिक्रिया का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। एक बार जब बंधन खुलता है तो उसे संभाला नहीं जा सकता। रोम का साम्राज्य अपनी विलासिता के कारण उसी प्रकार नष्ट हुआ जिस प्रकार, किसी अंश तक, आज के जमाने में परम विलासी फ्रेंच लोग द्वितीय महायुद्ध में जर्मनों के ग़ुलाम बन गये थे।

प्राचीन रोम में सन्तान की पवित्रता तथा उसके अधिकार पर बहुत ज़ोर दिया गया है। पत्नी की मृत्यु के बाद सन्तानवान् लोग रखेल रखते थे ताकि सन्तान के अधिकार पर आँच न आये। सम्राट् वेसपासियन तथा मार्कस आरेलियस आदि ने भी यही किया था। अविवाहितों को विवाह कर संतानोत्पत्ति का आदेश देते हुए सम्राट् आगस्टस ने अपने व्याख्यान में कहा था—

१. Kiefer--पृष्ठ ४६

२. वही, पृष्ठ ४७

३. Dr. M. Vaerting—"The charactor of Women in a masculune State and the character of women in a faminine state"–Pub. Karlsruhe, 1921—Page 35

"मैं तुमको क्या कहूँ, मर्द ! नगर नष्ट हो रहा है। तुम उसके नाश के लिए सब कुछ कर रहे हो। नगर उसके मकानात, बाज़ार या बड़ी इमारतों से नहीं बनता। उसमें स्त्री-पुरुष रहते हैं—पहले के रोमन लोग विदेशी भूमि में भी जाकर बच्चे पैदा करा आते थे। और तुम—तुम कोई ऐसे साधु तो हो नहीं कि अकेले रहते, खाते पीते या सोते हो? तुमको अत्यधिक भोगविलास के लिए आजादी चाहिए।"[१]

आगस्टस के कठोर नियमों का परिणाम बुरा भी हुआ। वेश्या को हर तरह की छूट थी। उसे व्यभिचार करने में रोकटोक नही थी इसलिए बहुत सी अच्छे घरानों की औरतें विलास के सुख के लिए वेश्या की पोशाक पहनने लगीं।[२]

रोमन तलाक़

प्राचीन रोम में विवाह की बड़ी पवित्रता थी। धार्मिक रीति से किया गया विवाह टूट नहीं सकता था। दायोनोसियस के अनुसार रोमन साम्राज्य के आरम्भ के ५२० वर्ष तक कोई तलाक़ नहीं हुआ। रोम में स्त्री को तलाक़ देनेवाले पहले व्यक्ति स्पुरियस कार्विलियस थे। उन्होंने भी इसलिए तलाक़ दिया था कि उनकी बीबी बाँझ थी। फिर भी, समाज में उनका पद गिर गया था। सम्राट् रोमुलस ने बड़े कठोर नियम बनाये कि स्त्री पति को नहीं छोड़ सकती थी और पति को अपनी स्त्री को तभी छोड़ने का अधिकार था जब वह बच्चों को विष देकर मार डाले, पति के बक्स के ताले की कुन्जी की नक़ली कुन्जी बना ले या व्यभिचार करे।[३] रोम के प्रसिद्ध बारह नियमों में पत्नी को तलाक़ देने के लिए उसकी भर्त्सना करनी चाहिए। वेलेरियस मैक्सिमस के अनुसार पहला तलाक़ ईसा से ३०६ वर्ष पूर्व हुआ था। पश्चिमीय सभ्यता में यह पहला तलाक़ रहा होगा। नियम था कि पति को अपने पत्नी की भर्त्सना करने के लिए अपने मित्रों तथा परिवारवालों की सभा बुलानी चाहिए। आज कल भारत की अनेक जातियों में इस प्रकार की "पंचायत" होती है।

ब्याही स्त्रियों को दुराचार के लिए बड़ा कठोर दंड मिलता था और चूँकि उनके कोई सामाजिक अधिकार नहीं थे अतएव वे बहुत दबी हुई रहती थीं। व्यभिचार

१. Kiefer, पृष्ठ ३८
२. वही, पृष्ठ ३९
३. वही, पृष्ठ ३०
४. Twelve tables

के दोष में वे बड़ी बेइज़्ज़ती के साथ घर से निकाल दी जाती थीं और पति की उपस्थिति में परिवार की सभा बुलाकर उन्हें प्राणदंड भी दिया जा सकता था। रोमन लोगों में पति से अधिक पिता को अपनी विवाहिता कन्या को प्राणदंड देने का हक़ था। पर-पत्नी से व्यभिचार करनेवाले पुरुष को कोड़े मारते थे, या उसका शिश्न काट लेते थे या नौकरों के सुपुर्द कर देते थे जो उस पुरुष के साथ संभोग कर उसकी बेइज़्ज़ती करते तथा खूब पीटते भी थे। वेश्या तथा दासी-कन्या के साथ व्यभिचार उतना बुरा नही समझते थे। सिपियो अफ्रिकानस (अफ्रीका के विजेता) की पत्नी ने जब देखा कि उसकी नौकरानी से पति का सम्बंध हो गया है तो उसने इस अवगुण के प्रति नेत्र मूँद लिये।

एक बात ध्यान में रखने की है कि रोमन क़ानूनो में व्यभिचार के लिए थोडे बहुत दंडो की व्यवस्था बहुत बाद मे हुई। इसका कारण यही है कि पति को अपनी दुराचारिणी पत्नी को हर प्रकार का दड देने का स्वयं अधिकार था।[1] केटो ने लिखा है कि "यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो तो पति उसे जान से मार सकता है पर यदि पति दुराचारी हो तो पत्नी को उँगली उठाने का भी अधिकार नही है। व्यभिचार के लिए कानूनन दंड की व्यवस्था सम्राट् आगस्टस ने की—देशनिकाला, सम्पत्ति-हरण या नीच वर्गो के लिए शारीरिक दंड इत्यादि। सम्राट् कांस्तैलियस ने व्यभि-चारिणी को जिदा जला देने का नियम बनाया, या उनके नियमानुसार बोरे मे भरकर उसे पानी में डुबा देना चाहिए। पिता की हत्या करनेवाले को एक बोरे में साँप, कुत्ता तथा बिल्ली के साथ बन्द करके पानी में डुबा देते थे। सम्राट् जास्तिनियन की आज्ञा थी कि दुराचारिणी को धार्मिक महिला-आश्रमों में बन्द कर दो।[2]

रोम साम्राज्य में बहुत छोटे कारणों पर भी तलाक़ हो जाता था। उदाहरण के लिए, वैलेरियस मैक्सिमस के अनुसार एक तलाक़ इसलिए हो गया कि पत्नी बिना पति से पूछे कोई सार्वजनिक खेल देखने चली गयी थी। रोमन गणतंत्र के अंतिम काल में स्त्रियाँ भी अपना अधिकार ग्रहण कर चुकी थीं। वे भी तलाक़ लेने लगी थी। सिसरो ने अपने एक पत्र मे लिखा है कि स्त्री का पति नगर के बाहर गया। उसने जल्दी से तलाक़ ले लिया, क्योंकि वह किसी दूसरे से प्रेम करती थी। सेनेका ने लिखा है कि "कोई स्त्री अपने तलाक़ पर लज्जित न होगी। अब तो वे अपनी उम्र अपने

१. कीफ़र, पृष्ठ ३१

२. मामसेन ने इसी को "पवित्र क्रूरता" या Pious Savagery कहा है।

विवाहों से गिनती हैं। वे तलाक़ लेती हैं ताकि फिर विवाह करें, विवाह करती हैं ताकि फिर तलाक़ लें।" जुवेनल ने अपने एक व्यंग्यात्मक काव्य में एक स्त्री का ज़िक्र किया है जिसने पाँच साल में आठ विवाह किये।[1]

रोमन स्वभावतः बड़े क्रूर तथा निर्दय लोग थे। विश्वविजय की महत्त्वाकांक्षा ने उनको ऐसा बना दिया था। इस सम्बन्ध में वियेना (आस्ट्रिया की राजधानी) के मनोवैज्ञानिक स्टेकेल ने दूसरे को कष्ट देने या दूसरों से दिये गये कष्ट को सहने के ऊपर एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी है।[2] उसमें वे लिखते हैं कि "क्रूरता घृणा तथा अधिकार की इच्छा की अभिव्यक्ति है।" अधिकार-लोलुप लोग ही अधिक क्रूर तथा निर्भय होंगे। रोमन लोगों का स्वभाव ही ऐसा हो गया था कि वे "असहिष्णुता" तथा "क्रोध" भी न्यायसंगत समझते थे। यूनानी दर्शन तथा दार्शनिकों की तरह, रोमन जीवन की अन्य मधुर अवस्थाओं से या तो परिचित नहीं थे, या उनमें उनको विश्वास नहीं था। सुकरात या प्लेटो की तरह वे आत्मा, उच्च भाव तथा अध्यात्म के हिमायती नहीं थे। अतएव क्षुद्र स्वार्थ तथा क्रूरता उनके स्वभाव में रम गयी थी। उनका राज्य-चिह्न भी क्रूरतापूर्ण था—नंगी कुल्हाड़ी। इसी लिए उनका दंड भी बड़ा क्रूर होता था। उनका मनोरंजन भी बड़ा क्रूर होता था। आदमी-आदमी तलवार लेकर लड़ते थे, भाला लेकर लड़ते थे—दो में से एक की जान जाती ही थी। शेर और आदमी की, भैंसों और आदमी की क्रूर लड़ाइयाँ होती थीं। ऐसी क्रूरता की प्रतिक्रिया कामुक उत्तेजना होती है। निर्दयता का अंत कामुकता में होता है। इसी लिए रोमन लोग ऐसे क्रूर खेलों को देखकर बहुत उन्मत्त हो जाते थे। खेलों के बाद वे विलास करते थे।[3]

सन्तान के प्रति क्रूरता

मनोविज्ञान तथा कामशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि भोगी, विलासी व्यक्ति अपनी संतान के प्रति प्रायः निर्दय होते हैं। रोमन पिता को कानूनन अपने लड़के पर पूर्ण अधिकार होता था। बच्चा चाहे कितना भी बड़ा हो जाय, पिता का उस पर अधिकार रहता था।[4] कन्या का विवाह हो जाने पर भी, वह पिता के अधिकार में

१. कीफ़र, पृष्ठ ३३–३४
२. Sadism and Masochism by Stekel
३. गिबंस—Decline and Fall of Roman Empire
४. दायोनिसियस ने इसका अच्छा वर्णन किया है।

पति से अधिक थी। पिता अपनी संतान को कमरे में बंद कर सकता था, कोड़े मार सकता था, खेत पर काम ले सकता था और जान से भी मार सकता था। पिता का इतना अधिकार था कि यदि उसका विद्वान् पुत्र, व्याख्यान में प्रवीण पुत्र, जनता की ओर से राज्य के शासकों के विरुद्ध कही व्याख्यान दे रहा हो, तो पिता उसे मंच पर से खींचकर मारता-पीटता घर ले जाता था और घर पर और मरम्मत भी कर सकता था। पिता परिवार का प्रधान होता था। उसे परिवार भर में सबको दंड देने का अधिकार था।

दासों को काँटेदार चाबुकों से मारते थे। बच्चों को चमड़े या झाड़ूनुमा बेंत से मारते थे। स्कूल में बच्चों को खूब पीटते थे। मारते-मारते अधमरा कर देते थे। स्कूल में बच्चों को पीटने के विरोध में आज सभी सभ्य समाज है। अपराधी को बेंत की सज़ा देने के विरोध में आज सभी अपराध-शास्त्री हैं। पर यह जानकर हमें संतोष होगा कि आज से १९०० वर्ष पूर्व भी स्कूल में शारीरिक दंड तथा किसी भी अपराध के लिए शारीरिक दंड के विरोध में आवाज उठानेवाले पैदा हो चुके थे। हमारे विचार से सभ्य संसार में ऐसे दंडों का सर्वप्रथम विरोधी क्विंटिलियन नामक महान् वक्ता था जिसका समय ईसवीय सन् ३५ से ९५ है। क्विंटिलियन का मत था कि नवयुवकों को आध्यात्मिक शिक्षा देनी चाहिए। वे कहते है—"मैं शारीरिक दंड का विरोधी हूँ, शिक्षा के लिए शारीरिक दंड देना बहुत ही बुरा है. . . .यदि अध्यापक में छात्र को सहायता देने की भावना हो तथा धीरज हो तो ऐसे दंड की आवश्यकता ही नहीं है. . . . .उन युवकों का क्या कीजिएगा जो मार से भयभीत नहीं होते, जिनके मन में भय नही है. . .पिट जाने से जो लज्जा उत्पन्न होती है, उसकी भावना से व्यक्ति की आत्मा दब जाती है और वह दिन के प्रकाश तथा जीवन के प्रकाश से दूर भागने लगता है।"

क्विंटिलियन के ये शब्द आज के शिक्षा तथा समाजविज्ञान के सबसे आगे बढ़े हुए विचारकों के समान हैं और अपराधशास्त्र के विद्यार्थी को एक महत्त्वपूर्ण निर्णय में सहायक होंगे। हम आगे चलकर इस विषय पर इस पुस्तक के तीसरे भाग में विचार करेंगे।

जोनसार भावर में

हमने रोमन स्त्री के अधिकार-हीन जीवन का कुछ वर्णन किया है। पर इसी सिलसिले में हमें अपने देश की एक पिछड़ी जाति में स्त्री के अधिकार-हीन जीवन की तुलना करनी चाहिए। पति के यहाँ पत्नी को अधिकार-हीन बनाकर, पिता

के यहाँ उसे पूर्ण अधिकार देकर किस सुन्दरता से उसका जीवन संतुलित किया गया है।

उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा पूर्वी पंजाब में खासा जाति में सभी भाइयों के बीच में एक पत्नी रहती है। बाक़ायदा बारात लेकर शादी बड़ा भाई करता है। पर घर में आकर पत्नी सभी भाइयों की पत्नी बन जाती है चाहे उसका सबसे छोटा पति चार-पाँच वर्ष की उम्र का बालक ही क्यों न हो। बड़े भाई के सामने अन्य भाई इस "पत्नी" से बातें भी नहीं कर सकते। कई वर्गों में यह नियम है कि बड़ा भाई जब तक घर में है, कोई "पत्नी" से बात नहीं कर सकता। यह जाति उत्तर प्रदेश में देहरादून के जिले में चकराता के पास जौनसार भावर के इलाक़े में रहती है। इनमें नियम है कि हर भाई के लिए 'पत्नी' का दिन मुकर्रर है।[1]

जौनसार भावर में 'पत्नी' को पति के घर में "रहांती" कहते हैं। सबेरे तड़के से उठकर इसे काम में जुट जाना पड़ता है। घर-गृहस्थी का पूरा काम, कुएँ से पानी लाना, धान कूटना, घास छीलकर ले आना, जानवरों को चारा पानी देना, खेत काटना, रसोई-पानी करना और फिर रात में एक न एक भाई "पति" की कामवासना को शान्त करना पड़ता है।

पर, पर्व तथा त्यौहारों पर वह अपने मायके जाती है। पिता के घर पहुँचते ही उसे पूरी आज़ादी मिल जाती है। वह खूब आनन्द करती है। नाचती-गाती है और अगर वह चाहे तो बिना किसी रोक-टोक के अपने विवाह के पहले के "प्रेमियों" के साथ जो चाहे वह कर सकती है। पिता के घर में जाकर "रहांती" "घरियाबी" बन जाती है। अगर वह अपने पहले पतियों के यहाँ न जाना चाहे तो उनको कुछ आर्थिक हरजाना देकर नया पति बना ले। आर्थिक हरजाना नया पति देगा। दस साल पहले ५०-६० रुपये में काम चल जाता था। अब २-३ हज़ार रुपये तक माँगने लगे हैं। यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो—यानी अपने पतियों के अलावा, ससुराल में रहते किसी से सम्बन्ध कर चुकी हो (पिता के यहाँ उसे सब अधिकार है) तो पति लोग उसे छोड़ सकते हैं। पत्नी को "छूट" (तलाक़) देने का सरल तरीका है। जब वह अपने मायके (मायता) जाय, तो ससुरालवाले कहला देते हैं कि "हमने छूट दे दी।"

१. इस जाति तथा उसके रीति रिवाज का बड़ा अच्छा वर्णन देखिए—
Dr. R. N. Saksena—"Social Economy of a Polyandrous People"-Agra University—1955–Pages 35-36-37

फिर भी पति को हरजाना मिलता ही है। यदि बच्चे पैदा करनेवाली लड़की छूट में मिले तो लोग जल्दी व्याहने को तैयार हो जाते हैं। डा० सक्सेना ने अपनी पुस्तक[1] में २५ वर्ष के एक नवयुवक का ज़िक्र किया है जिसने १३ वर्ष की लड़की छोड़कर ४० वर्ष की एक औरत से इसलिए विवाह किया तथा काफ़ी मूल्य देकर उसे खरीदा, क्योंकि वह तीन घर तलाक दे चुकी थी पर तीनों घरों में काफ़ी बच्चे पैदा कर आयी थी। स्त्री जिस परिवार में बच्चा पैदा करती है, उसी परिवार में सन्तान रह जाती है। इन लोगों में भी विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है।

१. डा० सक्सेना की पुस्तक, पृष्ठ ३८

अध्याय ८

हत्या सम्बन्धी परम्पराएँ या नियम

संतान-हत्या

हमारे देश में किसी भी दशा में बालहत्या को अपराध माना गया है, पर अपराध-शास्त्री जानता है कि जहाँ विलासिता होती है, वहीं बच्चे की क़द्र कम होती है। उस पर कम ध्यान दिया जाता है। दूसरा कारण अशिक्षा है। तीसरा कारण आर्थिक है। जितने को खिला सकें, उतना ही पालेंगे। ब्याह में ख़र्च के भय से लड़कियों को बहुत जगह मार डालते हैं। चीन का प्राचीन युग अपनी उत्कट विलासिता के लिए प्रसिद्ध है। पर वहाँ की सभ्यता में आध्यात्मिकता भी थी। इसी लिए चीनी विधान में संतान को जान से मार डालने पर कुछ दंड मिलता था। रोम में सेना के लिए सिपाहियों की आवश्यकता थी अत: वे बच्चों को मार डालने के विरुद्ध थे, पर बाद में, उनके विलास के विकास के साथ, यह नियम या चलन भी हो गया था कि बेढंगे बच्चों को पैदा होते ही मार डालना चाहिए। प्लेटो ऐसे दार्शनिक ने भी अपने "बारह नियमों" में बेढंगे बच्चों की भर्त्सना की है। यूनान तथा स्पार्टा में नियम था कि रोगी या बेढंगे बच्चे को मार डालने या बेच डालने के लिए उसके पिता को समाज से अनुमति लेनी पड़ती थी। रोम में जिस तरह स्वामी को अपने दास को मार डालने तक का अधिकार था—सम्राट् क्लादियस ने इस अधिकार को समाप्त किया—उसी प्रकार पिता को अपने बच्चे पर पूर्ण अधिकार था। प्लेटो ने अपने नियमों में दास बेचारे को बहुत कम महत्त्व दिया है। किसी दूसरे के दास को मार डालने पर केवल आर्थिक हरजाना देना पड़ता था, पर अपना कोई दोष छिपाने के लिए अपने दास को मार डालना हत्या थी।

आस्ट्रेलिया में दोगले बच्चों को मार डालते थे। प्राचीन बोंदी नामक प्रदेश में मां के पेट से सर के बल पैदा होनेवाले बच्चों को अभागा समझकर मार डालते थे। कमछादलीज जाति में आँधी तूफान के समय पैदा हुए बच्चों को मार डालते थे। मदागास्कर टापू में मार्च या अप्रैल के महीने में तथा बुध या शुक्रवार को पैदा होने वाले या महीने के अंतिम सप्ताह में पैदा होनेवाले बच्चों को मार डालते थे। या तो

उनको पानी में डुबा देते या ज़िन्दा गाड़ देते थे।[1] उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका में बच्चों को मार डालने का बड़ा रिवाज़ था। अलीपोनीज जाति में किसी स्त्री के दो-तीन बच्चे से ज्यादा नहीं पाये जाते, क्योंकि इससे ज़्यादा बच्चे होने पर वे मार डालते थे। गुआना जाति में लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ देते थे। मुवाया जाति में एक लड़का तथा एक लड़की तक जीवित रखते थे। शेष सब बच्चों को मार डालते थे। मध्य आस्ट्रेलिया की एक जाति में कमज़ोर बच्चे को पालने के लिए मोटे बच्चे को मार-कर उसका मांस कमज़ोर बच्चे को खिलाते थे। मंगोलियनों की एक जाति चीन में है जिसको हक्का कहते हैं। इस जाति में रिवाज़ था कि लड़कियों को इसलिए मार डालते कि उसकी आत्मा दूसरी बार लड़का होकर ही पैदा हो। रोम में भी बेढंगे, कमजोर, पंगु बच्चों को पानी में डुबाकर मार डालते थे। रोमन सम्राट् रोमुलस ने विलासी रोमन लोगों को बच्चों के प्रति उदासीन होते देखकर यह नियम बनाया था कि पिता-माता कम से कम तीन वर्ष तक अपने बच्चे का अवश्य पालन-पोषण करें। उसका तात्पर्य था कि इस अवधि के बाद उस बच्चे के प्रति स्वतः प्रेम पैदा हो जायगा, तब मार डालने का सवाल नही उठेगा। रोमुलस की कठोर आज्ञा थी कि ज्येष्ठ पुत्री को कदापि न मारा जाय। समोआ जाति में बच्चे को मार डालने का बड़ा रिवाज़ था। दकोता जाति में भी यही प्रथा थी।

स्त्री की हत्या

स्त्री की हत्या के लिए भी भिन्न जातियों में भिन्न नियम थे। विक्टोरिया (आस्ट्रेलिया) में बंगेरंग नामक जाति में पति पत्नी को जान से मार सकता है, पर उसके भाई को अपनी बहिन की हत्या का बदला लेने का अधिकार है।[2] वहाँ गाय को तथा बाक-विनी जातियों में स्त्री को मार डालना हत्या गिना जाता था एवं उसी प्रकार दंडनीय था। जापान में अभी हाल में यह नियम समाप्त हुआ है कि पति को अपनी स्त्री के जीवन-मरण पर अधिकार है।[3] रूस में १७वी सदी तक नियम था कि यदि स्त्री अपने पति को मार डाले तो उसे ज़िन्दा गाड़ देते थे। बर्मा में पुरुष के सामने स्त्री का आर्थिक मूल्य (दंड के विचार से) कहीं कम है। मुसलिम शरीयत के अनुसार पुरुष का रक्त

१. Westermarck—Moral Ideas—Page 395.
२. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ४१८
३. वही, पृष्ठ ४२४

गिराने का मूल्य स्त्री के रक्त गिराने की तुलना में दुगुना होता है।[1] गलास जाति में आदमी को मारने पर १००० गाय-बैल दंड देना पड़ता है पर औरत मारने पर केवल ५० गाय से ही काम चल जाता है। कहीं-कहीं स्त्री की हत्या पर अधिक दंड देना होता है। सुमात्रा की रेजांग जाति में पुरुष की हत्या पर ८० डालर (वहाँ का सिक्का) तथा स्त्री की हत्या पर १५० डालर देना पड़ता है। स्त्री की हत्या पर दिनका जाति में ४० गौएँ देनी पड़ती थीं तथा पुरुष की हत्या पर ३० गौएँ।

प्रश्न यह है कि कितनी जातियों, मनुष्यों या पशु-पक्षियों की बातें बतलाकर कामशास्त्र तथा अपराधशास्त्र का सम्बन्ध स्थापित किया जाय। विशेषज्ञों का कहना है कि इस पृथ्वी पर १०,००,००० प्रकार के जानवर हैं, ८,००,००० प्रकार के कीड़े-मकोड़े हैं तथा ३०,००० प्रकार की मछलियाँ हैं, ९,००० प्रकार की चिड़ियाँ हैं और २,५०,००० प्रकार के पेड़-पौधे हैं। मनुष्यों का प्रकार अभी तक गिना नहीं जा सका। ८५ देशों में लगभग २५,००० प्रकार के (भिन्न सभ्यता के) नर-नारी रहते है। इनका पूरा अध्ययन कैसे हो सकता है?

नर-बलि

मनुष्य क्या नहीं करता? उसकी वासना उससे क्या नहीं कराती। वह बच्चे ही नहीं मारता, नर-बलि भी बराबर करता चला आ रहा है। आर्य जाति में, सब देशों में नर-बलि का रिवाज़ था।[2] ईसवी सन् २ तक अर्काडिया में ज्यूस हाइकारस देवता के सामने नर-बलि होती थी। प्रसिद्ध यूनानी युद्ध, सलामिस की लड़ाई के पहले थेमोस्टीकिलीज ने युद्ध में बन्दी बनाये तीन फ़ारसियों का बलिदान किया था। पिल्नी के अनुसार ईसा से ९७ वर्ष पहले रोमन सिनेट ने एक क़ानून पास कर मानव (नर) बलि की मनाही की थी। जूपिटर लैतियारिस के सम्मान में मनाये जानेवाले त्यौहार में रोम में एक आदमी का गला काटकर चढ़ाते थे। उत्तरी अफ्रीका में, टाइबेरियस के ज़माने में, शनि देवता की सेवा में बच्चों की भेंट चढ़ाते थे। इंग्लैंड के ट्यूटन, केल्ट तथा स्लाव लोग नर-बलि करते थे।[3] जापान तथा मेक्सिको में भी यही

१. Lam—Arabian Society in the Middle ages—Page 18

२. Hehn—"Wanderings of plants and animals from the first Home"–Page 144

३. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ४३५

प्रथा थी। मेक्सिको के विषय में प्रेसकोट[१] ने लिखा है कि उस राज्य में हर साल १०,००० से ५०,००० नर-बलि होती थी। प्रशान्त महासागर की माया जाति में अब भी नर-बलि होती है। फ़ीजी द्वीप में ताहिती लोग भी ऐसा करते थे। अफ्रीका में जो जाति जितनी ही शक्तिशाली होती थी, उतनी ही नर-बलि करती थी।[२] गाइना (अफ्रीका) की नीगरे जाति में खेत में अच्छी फ़सल के लिए युवती लड़की के शरीर में आरपार लकड़ी करके मार डालते थे।[३]

महाभारत के अरण्य पर्व की कथा है कि राजा सोमक की सौ रानियाँ थीं। उनको जन्तु नामक एक लड़का पैदा हुआ। ऋत्विक् (पुरोहित) ने कहा कि यज्ञ के बाद जन्तु का बलिदान कर दो, उसके मांस की आहुति अग्नि में दो। उसका धूआँ सौ रानियाँ सूँघें। जन्तु समेत सौ पुत्र पैदा होंगे। जन्तु जब जन्म लेगा तो उसकी पीठ पर स्वर्ण-चिह्न होगा। ऐसा ही किया गया। सौ पुत्र पैदा हुए। जन्तु ज्येष्ठ पुत्र हुआ। पर ऋत्विक् की मृत्यु हो गयी। काफ़ी समय तक वे रौरव नरक में यातना भोगते रहे।

सती-प्रथा भी एक प्रकार से स्त्री का बलिदान ही है। भारतवर्ष में स्वेच्छया भी सती होतीं थी पर राजा राममोहनराय के ज़माने में, १९वीं सदी के मध्य में, ज़बर्दस्ती भी क़ाफी होती थी। भारत में ही नहीं, आर्य सभ्यता के सभी केन्द्रों में, जर्मनी में, भारत में सती-प्रथा प्रचलित थी। पत्नी को पति के साथ मरना पड़ता था।[४] मिस्र में भी उच्च घरानों में यही होता था।

पराधीन स्त्री

चीन में पत्नी से अधिक माता की मर्यादा थी। भाई का मनुष्य के हाथ पैर के समान महत्त्व था। स्त्री शरीर के वस्त्र के समान थी। कपड़ा पुराना हो जाने पर बदला जा सकता है। कनफ्यूसियस ने लिखा है कि "पुरुष स्वर्ग का प्रतिनिधि है। वह सब प्राणियों के ऊपर है। स्त्री उसकी आज्ञा मानने के लिए है।" जापान में

१. Prescot-History of the conquest of Mexico

२. **वेस्टरमार्क, पृष्ठ ४३७**

३. **वही, पृष्ठ ४४९**

४. Scharder—"Pre-Historic antiquities of the Aryan-Peoples"—Page-391

पत्नी को पति पर क्रुद्ध होने का अधिकार नहीं है। जब वह मरती है तो पति उसको दफ़नाने नहीं जाता, सन्तान जाती है। बाइबिल में भी ईसा मसीह ने स्त्री से कहा है—"तेरी इच्छा तेरे पति के अधीन है। वही तेरे ऊपर शासन करेगा।"[१] मनु ने[२] स्त्री के जैसे कर्त्तव्य बतलाये हैं, वैसे ही जरथ्रमु (पारसी मज़हब के प्रणेता) ने पवित्र स्त्री उसे कहा है जो पति की आज्ञा मानती हो। यूनान में स्त्रियों को आदेश था कि अपने पति के आचरण को आदर्श समझें।[३]

पिता-माता के साथ दुर्व्यवहार

प्रत्येक वस्तु और कार्य की देश, काल तथा पात्र के अनुसार मर्यादा होती है। एथेंस (यूनान की राजधानी) में यह नियम था कि किसी को मजिस्ट्रेट नियुक्त करने के पूर्व इस बात का सबूत लेते थे कि उसने अपने पिता-माता के साथ सदा अच्छा व्यवहार किया है। जो व्यक्ति अपने बूढ़े माँ-बाप का पोषण नहीं करता था उसे राष्ट्रीय सभा में बोलने के अधिकार से वंचित कर देते थे।[४]

पर हर समाज में अपने-अपने रीति-रिवाज़ हैं। आधा नंगा जंगली भी उतना ही विनम्र हो सकता है जितना सभ्य पुरुष।[५] पर अधिकांश जंगली लोगों के यहाँ कोई विधान नही होता। केवल कुछ परम्पराएँ होती हैं जिनके अनुसार वे कार्य करते हैं।[६] इन परम्पराओं का अपना विशिष्ट कारण भी होता है। एस्किमो जाति में सबसे बड़ा दंड है ताना मारना, मज़ाक उड़ाना। इतने से ही अपराधी घायल हो जाता है। वहाँ बच्चों को चपत भी नहीं लगा सकते—और वहाँ अभी तक एक भी बाल अपराधी नहीं हुआ। तिकोपिया लोगों में चोरी करनेवाले को वाग्बाण ही मारते हैं। तिकोपिया में ही दूसरे के खेत में भी जाकर खेती कर सकते हैं पर शर्त्त यह है कि उत्पत्ति का कुछ अंश खेत के मालिक को देना होगा।[७] एक ऐसी भी जाति

१. Genesis iii–16
२. मनु० ५–१४७, १४८, १५०, १५१
३. वेस्टरमार्क, ६४७–६५२
४. वेस्टरमार्क, पृष्ठ ५३६
५. Raymond Firth—Human Types, पृष्ठ १३२
६. वही, पृष्ठ १३५
७. वही पृष्ठ १४९

है जिसमें नियम है कि जब स्त्री या पुरुष, बुढ़ापे के भार के कारण चल-फिर न सकता हो, उसे भूखों मरने के लिए एक टापू में छोड़ देते हैं जहाँ एक बूंद पानी नहीं होता, खाने को घास भी नहीं होती।[१] उत्तरी अमेरिका की कुछ जातियों में, ब्रेज़ील की कुछ जातियों में, दक्षिण सागर के टापुओं में, आस्ट्रेलिया की कुछ जातियों में और अफ्रीका के कुछ जंगलियों में बुढ़ापे में स्त्री या पुरुष को, पिता-माता को मार डालने या त्याग देने का नियम है। वे तो कहते हैं कि बूढ़ों को जाड़े में सर्दी खिलाने से क्या लाभ?[२]

१. Hearne—"Journey to the Northern Ocean-"Page 346

२. वेस्टरमार्क, ३८९

अध्याय ९

प्राचीन दण्ड-विधान

यूनान में दंड

यूनान की दंडप्रणाली पर कुछ विशेष नहीं लिखा जा सकता। इसका कारण है। यूनान की सभ्यता, यूनान का साहित्य, यूनानी भाषा, यूनान के प्रकाण्ड विद्वान्, दार्शनिक तथा वक्ता—संसार में इनका जितना नाम है, उतना बड़ा यह देश कभी नहीं था। एजियन सागर में फैले हुए बहुत से टापुओं में, सिसली में, स्पार्टा तथा एथेंस में—बस यही यूनान का राज्य था जिसमें कुछ दिनों के लिए एथेंस का साम्राज्य था जिसे ई० पूर्व ४१३ में सिसली की लड़ाई में समाप्त कर दिया गया। कुछ दिनों तक स्पार्टा का साम्राज्य रहा, वह भी ३८७ ई० पूर्व में समाप्त हो गया। पर ये साम्राज्य उन्हीं छोटे छोटे टापुओं पर ही थे और इनके समाप्त होने का एक मात्र कारण था कि इस गरीब, खेती के लिए कम भूमि तथा विलास के साधनों की कमी से दुःखी देश के पास एक ख़ास चीज़ थी—हर नगर का अपने शासन में स्वतंत्र होने का प्रेम, हर एक नगर आज़ाद था। एक नगर अपने आसपास के गाँवों को मिलाकर एक राज्य था। जब एथेंस या स्पार्टा का साम्राज्य हुआ भी तो वह पहला साम्राज्य था जिसमें शासक भी प्रजातंत्रीय प्रणाली में हो और शासित नगर भी प्रजातंत्रीय प्रणाली में ही चलाये जाते हों।

यूनान का इतिहास १२०० ईसवीय पूर्व से मिलता है। होमर के युग की कथाओं से पता चलता है कि वहाँ पहले राजतंत्र था। राजा ही राज्य का प्रथम सिपाही, नेता तथा न्यायाधीश होता था। वही प्रधान पुरोहित भी होता था। पर हर मामले में उसे राज्य के प्रमुख लोगों से परामर्श करना पड़ता था। इसके बाद भी उसे हर अहम मसले को समूची जनता की सभा के सामने पेश करके स्वीकार कराना पड़ता था। क्रमशः राजा का सब अधिकार सामन्तों में आ गया और उन को भी दबाकर प्रजा-तन्त्र बन गया। जिन दिनों दायोदोरस तथा प्लूटार्क अपना उपदेश दे रहे थे, ई० पूर्व ४०० में यूनानी प्रजातन्त्र बन रहा था। सिकन्दर महान् ने ३३६ ई० पूर्व में यूनान को मैसीडोनिया के अधीन कर लिया। १४६ ई० पूर्व वह रोमन साम्राज्य में मिल

गया। इसके बाद तुर्क साम्राज्य में मिला लिया गया। वर्तमान यूनान की स्थापना सन् १८३० में, उसकी स्वतंत्रता के बाद हुई। सन् १९२३ में लूज़ां की संधि ने उसके राज्य को स्थिर किया।

ऐसे राज्य में दंड-विधान क्या विकसित होता और कैसे होता। हर नगर का, हर जाति का, हर टापू का अपना अलग-अलग नियम था। जो कुछ था, जो कुछ विधान था, वह नगर या राज्य के सरदार-सामन्तों के मुख में था। वे जो कुछ कह दें, वही कानून था। लिखित क़ानून न होने के कारण लोग मनमानी करते थे तथा परम्परा तथा रीति रिवाज का मनमाना अर्थ करते थे। इसी लिए ६८२ ईसवीय पूर्व में पहली बार, एथेंस में "छः बुजुर्गो की एक समिति" बनायी गयी जो "पुरानी रीतियों का निर्णय" करते रहें और उनके निर्णय के अनुसार मजिस्ट्रेट लोग दंड दिया करें।[१]

राजा चूंकि धर्म तथा न्याय दोनों का प्रधान था अतएव मंदिर तथा उसके पुरोहित भी नैतिकता आदि के संबंध में मनमाना आदेश देते रहते थे। लोग स्वयं अपना क़ानून बना लेते थे। किसी की हत्या करने के बाद हत्यारा आत्मरक्षा के लिए देश ही छोड़ देता था। आपस में झगड़ा-फसाद हो जाने पर लोग पंचायतों में मामला पेश कर देते थे यानी पंचायत बुला लेते थे। हत्या करनेवाला या व्यभिचार करने-वाला यदि पकड़ लिया जाता तो उसे छुड़ाने के लिए काफ़ी रकम देनी पड़ती थी। कर्ज देनेवाला अपने ऋणी को पकड़कर घर मे बंद कर सकता था। गुलामों के ऊपर मालिक का पूरा अधिकार था, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। ईसा से ७०० वर्ष पूर्व यूनानी नगर-राज्यों ने अपने क़ानूनों को लिखना शुरू किया। ४५० ई० पूर्व तक ये लिपिबद्ध हो चुके थे। इनसे पता चलता है कि सम्पत्ति पर उत्तराधिकार औरत का भी हो सकता था। अपराधी दो प्रकार के होते थे—उच्च श्रेणी के तथा निम्न श्रेणी के। दोनों के लिए भिन्न दंडव्यवस्था थी। समाज में स्थान के अनुसार दंड मिलता था। यदि स्वतंत्र नागरिक पुरुष या स्त्री के साथ बलात्कार किया जाय तो १०० स्तातार (सिक्का) दंड देना पड़ता था, यदि अधिकार-हीन नागरिक के साथ ऐसा हो तो केवल १० सिक्का ही जुर्माना देना पड़ता। यदि किसी दासी या दास के साथ बलात्कार हो तो ५ सिक्के में ही काम चल जाता था। प्रथम श्रेणी के

१. यूनानी कानून के सम्बन्ध में इस पुस्तक को जरूर देखना चाहिए—
G. M. Calhoun and G. Delamere—"A Working Bibliography of Greek land–" Pub. Cambridge–Mass–1927

नागरिक को दंड देने के लिए पाँच गवाहों की ज़रूरत होती थी। दूसरी श्रेणी के लिए तीन की, तीसरे के लिए एक गवाह काफ़ी था।

ताइरेनियन लोगों में नियम था कि स्त्री समाज की सम्पत्ति है। अतएव वहाँ स्त्रियाँ मर्दों के साथ व्यायाम करती थीं। मर्दों के साथ कुश्ती लड़ती थीं और खुले आम नंगी घूमने में उनको कोई संकोच नहीं होता था। वे अपने पतियों के साथ भोजन नहीं करती थीं। जो आ जाय उसके साथ खाने बैठ जाती थीं। जिसके साथ चाहा शराब पी लेती थीं। पुरुष भी जिस स्त्री के साथ चाहे प्रसंग कर सकता था। वह लड़कों के साथ खुले आम अप्राकृतिक संभोग भी कर सकता था। इस जाति में मालिक जब सोने जाता था तो नौकर उसके लिए लौंडे या लड़कियाँ, जो चाहे लाकर हाजिर कर देते थे।[१] कोलोपोहोन के रहनेवालों ने कभी सूर्योदय या सूर्यास्त नहीं देखा। जब सूर्योदय होता है, वे नशे में चूर रहते और जब सूर्यास्त होता, वे शराब पीने के काम में लगे रहते थे। राजनीतिक कारणों से परायी स्त्री के साथ व्यभिचार जायज़ था। पर राजनीतिक व्यभिचार का बड़ा भयंकर उदाहरण इतिहासकार "क्लियर्पस" ने अपनी "बायोग्रोफ़ीज़" में दिया है। सिसली के आततायी नरेश पायोसेसियस द्वितीय ने अपनी माता की नगरी लोक्रिस पर अधिकार किया। उसने वहाँ एक बड़े भवन को फूलों से सजाकर नगर की सभी युवतियों को एक के बाद दूसरी को बुलाया और उनको नंगा करके तथा स्वयं भी नग्न होकर उनके साथ भद्दा से भद्दा कार्य किया। कुछ समय बाद जब दायोनोसियस का पराजय हुआ तो लोक्रिस नगर-वासियों ने उसकी पत्नी तथा लड़कियों को पकड़वा मँगवाया और उनके साथ गन्दा से गंदा व्यभिचार करके, उनके नाखूनों में सूइयाँ घुसेड़ दीं और फिर उनको मार डाला।

क़ानून की दृष्टि में "हस्तक्रिया" करना बिल्कुल वैध चीज़ थी। ब्रसेल्स के अजायबघर में यूनान की एक प्राचीन मूर्ति रखी हुई है। एक सुन्दर नवयुवक गले में माला पहने हुए अपने सामने एक प्याला रखकर उसमें हस्तक्रिया कर रहा है।

किन्तु यूनानी लोग सदाचार की महिमा समझते थे। थियोगानिस ने लिखा है कि "संसार में सच्चरित्र स्त्री से बढ़कर मधुर वस्तु और कुछ नहीं है।"[२]

१. Hans Licht—Sexual life in Ancient Greece–Page 12
२. हांस की पुस्तक, पृष्ठ ७६

तोब्रियांद जाति में

जंगली जातियों में दंडप्रथा के विषय में पहले मैंने थोड़ा बहुत ज़िक्र किया है। तोब्रियांद जाति के कामुक जीवन का कुछ विस्तृत विवरण भी है। इस जाति में पति या पत्नी एक दूसरे से असन्तुष्ट होकर तलाक़[1] दे सकते हैं। असन्तुष्ट होने के कारणों में पति-पत्नी का आलसी होना, बदमिज़ाज होना, इत्यादि है। यदि पत्नी व्यभिचारिणी हो (कुमारी के लिए सब कुछ माफ़ है) तो पति को उसे ख़ूब पीटना चाहिए। एक स्त्री ने अपने पति को इसलिए छोड़ दिया कि वह अपनी सौतेली माता के साथ भोग कर रहा था। कुलटा स्त्री की हत्या कर डालने का पति को अधिकार है और दुराचारी पति की सार्वजनिक स्थान में भर्त्सना करने का पत्नी को भी अधिकार है।[2] पर कुलटा स्त्री को मार डालने का अधिकार पति को ही प्राप्त है।[3] विवाहिता यदि अपने प्रेमी के साथ पकड़ी जाय तो दोनों को मार डालनेवाला पति दोषी नहीं समझा जायगा।[4]

वासना सम्बन्धी निम्न कार्य अपराध समझे जाते हैं तथा दंडनीय हैं[5]—

१. सगी माता के साथ संभोग की कोई कल्पना भी नहीं करता। ऐसा एक भी मामला कभी नहीं हुआ।

२. सगी बहिन के साथ सम्बन्ध एकदम वर्जित तथा असहनीय है।

३. अपनी लड़की के साथ विलास भाई-बहिन जैसा बुरा नहीं है, पर बुरी बात है।

४. माता की बहिन की लड़की के साथ प्रसंग बहुत बुरी बात है।

५. अपनी साली के साथ संभोग बहुत बुरी बात नहीं है पर अच्छी बात भी नहीं है।

६. सास या भावज के साथ संभोग करे तो अनुचित नहीं।

१. तलाक़ को उनकी भाषा में "वाइपाका" कहते हैं, वाई = विवाह, पाका = अस्वीकार करना।

२. Dr. Malinowski—Sexual life in Savages–Page 408

३. वही, पृष्ठ २७१

४. वही, पृष्ठ २७३

५. वही, पृष्ठ ४४८–४४९

इन प्राचीन दंडविधानों के अध्ययन से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्राचीन भारतीय दंडविधान ने जिस वैज्ञानिक ढंग से वासना के सभी अंग-उपांगों की रोक-थाम का प्रबंध किया है, वैसा अन्य किसी प्राचीन देश में नहीं है। हमारे यहाँ जितने मनोवैज्ञानिक ढंग से वासना को दबाकर रखने का विधान है वैसा कहीं नहीं। पर, रोम, यूनान या अन्य प्राचीन तथा आज की जंगली जातियों में वासना को धार्मिक रूप देकर नैतिकता का स्पष्टीकरण पुरोहितों पर छोड़ दिया गया, जिससे उसके राजनीतिक तथा धार्मिक दोनों ही रूप जाते रहे। हमारे यहाँ आध्यात्मिक तथा शारीरिक दोनों दंडों का आयोजन कर नैतिकता को इस लोक तथा परलोक दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण बना दिया गया।

पर दंडप्रणाली के अध्ययन से पता चलेगा कि प्रायः सभी देशों में पतिव्रत, भार्याव्रत, कुमारी का आदर, बलात्कार का विरोध, विवाह का महत्त्व, अप्राकृतिक संभोग के प्रति घृणा, स्त्री की मर्यादा की रक्षा, भाई-बहन, मां-बेटे तथा पिता-पुत्र के सम्बन्ध की पवित्रता—इन सब चीज़ों पर ज़ोर दिया गया है। सभ्यों से अधिक जंगलियों ने इस पर ज़ोर दिया है। इसलिए पुराना समाज जहाँ भोग-विलास में डूबा रहता था, वहीं वह चरित्र की मर्यादा भी क़ायम रखता था। जब उसने मर्यादा छोड़ दी, राज्य नष्ट हो गया। बन्द कमरे में अँधेरे में स्त्री टटोलकर विवाह करनेवाले स्पार्टन नष्ट हो गये। विलासी रोमन नष्ट हो गये। फ्रांस ऐसे देश भी गिर गये। कामुकता तथा भोग-विलास राष्ट्र को निकम्मा बना देता है। व्यक्ति की बात तो है ही ; इसलिए आधुनिक सभ्यता के लिए मानव को अपनी वासना पर विजय प्राप्त करनी होगी। उसे काबू में रखना होगा। यदि ऐसा न हुआ तो सभ्यता ही नष्ट हो जायगी।

अध्याय १०

आधुनिक दण्ड-विधान

(१) भारत में

वर्तमान भारतीय दंड-विधान

वर्तमान भारतीय दंडविधान ब्रिटिश हुकूमत की देन है। इसके वर्तमान रूप में आने के पहले ब्रिटिश राज्य के तत्कालीन तीन मुख्य प्रदेश—बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रेसिडेंसी—में ब्रिटिश क़ानून लागू थे। उस समय के मुसलिम या हिन्दू शासकों द्वारा बनाये गये नियमों को संशोधित कर इन तीनों प्रदेशों की लेजिस्लेटिव कौंसिल, या यों कहिए कि मंत्रणापरिषद् ने आंग्ल-भारतीय नियम बनाये थे। इस प्रकार वर्तमान भारतीय दंडविधान के पहले न तो कोई सर्वव्यापी या हर जगह के लिए लागू क़ानून थे और न हर प्रदेश में इनकी सूरत ही एक सी थी। यह परिस्थिति ब्रिटिश शासन के आरम्भ काल की है। उस समय मुसलमानों के लिए भारत में मुसलिम शरीयत थी। हिन्दुओं के लिए मनु के विधान थे, जिनका समय अंग्रेज़ ईसा से ३५० वर्ष बाद का मानते हैं। अंग्रेजी क़ानून अपनी उन सब अनिश्चितताओं के साथ था, जिनके लिए अंग्रेज़ी क़ानून प्रसिद्ध है। अंग्रेज़ों का कोई लिखित दंडविधान कभी नहीं था। केवल परम्परा से चले आनेवाले फ़ैसले तथा नज़ीरें थीं जिनके आधार पर काम होता था। आज इंग्लैण्ड भी लिखित क़ानून पर धीरे-धीरे आ रहा है। अस्तु, जब भारतीय दंडविधान बना तो वह मुसलिम शरीयत, आंग्ल-भारतीय क़ानून, अंग्रेज़ी नज़ीरें और क़ानून तथा मनुस्मृति के आधार पर सबका एक ठोस सम्मिश्रण तैयार हुआ। इसी लिए यह सत्य कहा जाता है कि भारत का दंडविधान अपने ढंग का निराला है तथा संसार के किसी भी देश के पास ऐसा ठोस दंडविधान नहीं है। यह सही है कि समय तथा काल के अनुसार इसमें विशद परिवर्तनों की भी आवश्यकता है और वह काम हो भी रहा है। स्वाधीनता के बाद हमने इसी दंडविधान को स्वीकार कर लिया और उसमें काफ़ी संशोधन भी हुए हैं।

वर्तमान दंडविधान ६ अक्टूबर १८६० को स-परिषद् गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत हुआ पर इसे लागू किया गया १ जनवरी १८६२ से। पहले यह विधान "ब्रिटिश" भारत के लिए था पर अब समूचे देश के लिए है। पाकिस्तान में भी

यही विधान लागू है। इसमें सन् १८९१ में ऐक्ट १२ के द्वारा, फिर १९३७ में, फिर १९४८ में, फिर १९५० में, फिर १९५१ के ऐक्ट ३ द्वारा सुधार किया गया तथा १९५४, १९५७ और १९५८ में भी संशोधन होते रहे। इस प्रकार स्वराज्य के वाद इसमें ६ बार संशोधन हो चुके।

भारतीय दंड विधान[1] ठोस क़ानून है। उसको क्रियारूप देने के लिए, उसका क्रियाशील विशेषण "क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड"[2] है जिसके द्वारा मुख्य क़ानून को कार्यान्वित किया जाता है। इसलिए मूल नियमों में यद्यपि साधारण परिवर्तन हुए हैं, पर क्रियाशील रूप में काफ़ी तथा महत्त्वपूर्ण संशोधन हुए हैं। उदाहरण के लिए बेंत मारने की सज़ा एकदम उठा दी गयी है।[3] प्रथम अपराधी प्रोबेशन नियम में २४ वर्ष की क़ैद कर दी गयी है। दफ़ा ३७६ के अन्तर्गत कन्या के साथ बलात्कार की उम्र १६ से १८ वर्ष बढ़ा दी गयी है।

एक बड़ा भारी सुधार यह हुआ है कि बहुत-सी दफ़ाओं में मुकदमा करने का अधिकार ग्राम पंचायतों को दे दिया गया है, जैसे दफा ३७९ में (चोरी में) पहले एक पैसे की चोरी में भी सज़ा हो सकती थी। अब ग्राम पंचायतों को अधिकार दिया गया है कि २५० रुपये तक के मूल्य के चोरी के मामलों में तसफीया करा दें। इसी प्रकार दफा ३२३ (झगड़ा), दफ़ा ३२६ (ख़तरनाक हथियारों से जान-बूझकर चोट पहुंचाना) तथा दफा ४४७ (बुरी नीयत से दूसरे की ज़ायदाद या मकान में घुसना) के मामले भी पंचायत के ज़िम्मे कर दिये गये हैं। भारतीय दंडविधान[4] को भारत सरकार एक कमेटी द्वारा दुहरवा रही है। इसके लिए एक समिति बना दी गयी है। सन् १९६० तक इसमें काफी संशोधन हो जाने की आशा है। क्रिमिनल प्रोसीड्योर

१. Indian Penal Code

२. Criminal Procedure Code

३. धारा ५३—दफा ३७९, ३८० (चोरी तथा मकान में घुसकर चोरी), ३८२ (जबर्दस्ती चोरी), ४४४, ४४८ (मकान में बिना अधिकार घुसना), ३७५, ३७७, ३९०, ३९१ (डकैती) की सजा में अन्य दंड के अतिरिक्त कोड़ा मारने का नियम था।

४. भारतीय दंडविधान पर सबसे अच्छी टीका मुझे रतनलाल की लगी तथा उसका सबसे अच्छा अंग्रेज़ी संस्करण डा० हरिसिंह गौड़ का है; प्रकाशक, ला बुक कं०, पो० बा० नं० ४ इलाहाबाद।

कोड में सन् १९५७ के संशोधन के अनुसार अपराधी को अपनी सफ़ाई तथा अपनी रक्षा के लिए काफ़ी गुंजायश कर दी गयी है। उद्देश्य यह है कि वह यदि निर्दोष हो तो उसे अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का पर्याप्त अवसर मिले।

वासना सम्बन्धी अपराधों के लिए हमारे यहाँ दंड की काफ़ी व्यवस्था है। भारतीय दंडविधान में ऐसे अपराधों के लिए कुछ दंड इस प्रकार हैं—

धारा ३७५ के अनुसार किसी स्त्री या कन्या से उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसकी सम्मति के विरुद्ध, उसे मारने-पीटने या मौत का भय दिखाकर, स्वीकृति हो या न हो पर उसकी उम्र १८ वर्ष से कम हो, यदि पुरुष प्रसंग करे तो उसे बलात्कार समझा जाय। पूरा प्रसंग न होकर केवल शिश्न-प्रवेश ही बलात्कार की सीमा में आ जाता है। यदि अपनी पत्नी हो और उसकी उम्र पन्द्रह वर्ष से कम हो तो बलात्कार नहीं होगा।[1]

दफ़ा ३७६ के अनुसार बलात्कार करनेवाले को दस वर्ष या आजन्म क़ैद की सज़ा मिलेगी। यदि अपनी पत्नी हो और उसकी उम्र १२ वर्ष से कम हो तो उसके साथ बलात्कार करने पर दो वर्ष की क़ैद होगी।[2]

धारा ४९३ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री को धोखा देकर, यह कहकर कि वह उसका वैध पति है, उसके साथ प्रसंग करे तो उसे दस वर्ष तक की क़ैद हो सकती है। इस नियम का वास्तविक अभिप्राय यह है कि यदि दुराचारी को उस स्त्री को विवाहिता पत्नी बनाकर रखने की न इच्छा हो वरन् रखेल बनाकर रखना चाहता हो, पर उस स्त्री को इसी गफ़लत में रखे कि वह उसकी विवाहिता है, तो वह दंडनीय होगा।[3]

धारा ४९७ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति बिना पति की स्वीकृति के उसकी पत्नी के साथ व्यभिचार करता है तो यह अपराध बलात्कार न होते हुए भी दंडनीय है और उसे पाँच वर्ष क़ैद या जुर्माना दोनों हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में स्त्री को दंड नहीं मिलेगा।

१. इस धारा की बड़ी व्याख्या है, उदाहरणार्थ सोती हुई स्त्री से प्रसंग करना भी बलात्कार है, बाद में तो वह जाग जाती है पर निद्रावस्था में "प्रवेश" कराने के समय उसकी स्वीकृति नहीं हो सकती—रतनलाल की टीका, १९५३ संस्करण, पृष्ठ ९१५

२. रतनलाल—पृष्ठ १२१७

३. वही, पृष्ठ ९०३

धारा ३७० किसी पुरुष या स्त्री को दास के रूप में प्रयोग करने के लिए ख़रीद-बिक्री को सात वर्ष तक के लिए दंडनीय समझती है। इस धारा में लड़कियों की ख़रीद-बिक्री भी शामिल है।[1] धारा ३७२ के अनुसार मंदिर के लिए "देवदासी" देना भी (१८ वर्ष से कम उम्र की) गुनाह है। इस धारा के अंतर्गत जो भी कोई व्यक्ति वेश्या-वृत्ति या नाजायज़ संभोग के लिए लड़का या लड़की को ख़रीदता है, कोई अड्डा किराये पर चलाता है इत्यादि, या यह जानते हुए कि ख़रीदार उसका अनैतिक कार्यों के लिए उपयोग करेगा, उसे दस वर्ष तक की सज़ा मिलेगी। सन् १९५८ के "अनैतिक व्यवसाय-निरोध" नियम ने इस धारा को और भी व्यापक कर दिया है और किसी भी उम्र की स्त्री का अपने को संभोग के लिए बेचना, उसका पेशा करना इत्यादि नाजायज़ घोषित कर दिया है।[2] धारा ३६६ (अ) के अनुसार नाबालिग (१८ वर्ष से कम उम्र की) लड़की को अनैतिक कार्यों के लिए फुसलाकर ले आना दस वर्ष की सज़ा दिला सकता है। भगाये गये लड़के-लड़की को छिपाकर रखने में भी उतनी ही सज़ा है। लड़की की इच्छा के विरुद्ध उसे दूसरे से ब्याह देना या दूसरे के पास संभोग के लिए छोड़ देना—धारा ३६५ तथा ३६६ के अनुसार सात वर्ष के लिए कारागार भेज सकता है।

पुरुष, स्त्री या पशु के साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करनेवाले को धारा ३७७ के अनुसार दस वर्ष या आजन्म क़ैद की सज़ा मिलेगी।[3] ऐसे अपराध में स्कूल में किसी लड़के को बुरा कार्य करने के लिए पत्र भेजना भी दंडनीय है। ऐसे ही, बलात्कार के मामले में एक युवक ने एक लड़की को ज़मीन पर पटक दिया, उसके मुँह में बालू भर दी, प्रसंग करना चाहता था पर उसकी चिल्लाहट से लोग आ गये। प्रसंग नही हुआ, तब भी बलात्कार माना गया।[4]

भगायी हुई लड़की की सूचना मिलते ही, यदि वह कन्या १८ वर्ष से कम उम्र की है तो मजिस्ट्रेट को चाहिए कि मुक़दमे के परिणाम की प्रतीक्षा किये बिना उसे उसके अभिभावकों के हवाले कर दे।[5]

१. वही, पृष्ठ ९०३

२. Prevention of Immoral Traffic Act

३. ऐसे अपराध में यह साबित करना पड़ेगा कि अभियुक्त ने अप्राकृतिक व्यभिचार किया, जान-बूझकर किया और शिश्न प्रवेश हुआ—रतनलाल, पृष्ठ ९२४

४. वही, पृष्ठ १३२५.

५. Criminal Procedure Code Vol. V—दफ़ा ५५२

यदि कोई व्यक्ति साधन रहते अपनी पत्नी तथा जायज़ या नाजायज़ बच्चों का भरण-पोषण नहीं करता तो मजिस्ट्रेट उनके पोषण के लिए पति या पिता से, उसकी शक्ति के अनुसार ५०० रुपये माहवार तक दिला सकता है। यदि वह नहीं देता तो कुर्की करानी चाहिए।[१]

भारतीय दंडविधान में कैद दो प्रकार की है—साधारण तथा सख्त यानी सपरिश्रम। वासना के सभी अपराधों में कठोर कारावास का दंड मिलता है।

भारतीय दंडविधान की कुछ महत्त्वपूर्ण धाराओं को दिखाने का तात्पर्य है पाठकों को हमारे देश में वासना के अपराधों की गणना, भावना तथा दंड का परिचय कराना। पर पाश्चात्य जगत् में कामुकता के अपराधों के जो अनेक रूप हैं, जो अनेक प्रकार हैं, उनकी जानकारी हमको यानी हमारे देश को अभी नहीं हो पायी है। पर ऐसे अपराधों को समझने के लिए तथा उनके सम्बन्ध में पश्चिम के लिए आदर्श विधान जानने के लिए ब्रिटिश दंडविधान की जानकारी होनी चाहिए।

हम यह बतला आये हैं कि ब्रिटिश दंडविधान लिखित नहीं है, परम्परागत है। उसका लिखित रूप अब बन रहा है। अतएव उसे समझने में थोड़ी सावधानी बरतनी होगी। वासना सम्बन्धी अपराध तथा ग्रेट ब्रिटेन में उनकी दंड-व्यवस्था को समझने के लिए हमको इस सम्बन्ध में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एक अनुसंधान तथा उसकी रिपोर्ट से सहायता लेनी होगी।[२]

(२) ग्रेट ब्रिटेन में

वासना सम्बन्धी ब्रिटिश दंड

कामुक अपराधों के लिए ग्रेट ब्रिटेन में बहुत-सी दफ़ाओं के अन्तर्गत, जो दूसरे अपराधों के लिए बनायी गयी थीं, कामुक अपराध आ जाते थे। सन् १८६१, १८६५, १९२८ आदि के नियम को, ऐसे अपराधों को दंड देनेवाले सभी नियम तथा अधिनियम परिपाटीवाले दंड आदि को १९४९ में एकत्रित किया गया था। इनमें भी संशोधन, सुधार तथा परिवर्द्धन करके उस देश में "कामुक अपराध नियम, १९५६"[३] बना, जो

१. वही—भाग ४—दफ़ा ४८८

२. Sexual Offences—A Report of the Cambridge department of Criminal Science–Pub. Macmillan & Co., London–Edition 1957

३. Sexual Offences Act, 1956

१ जनवरी १९५७ से लागू कर दिया गया है। ग्रेट ब्रिटेन ऐसे उन्नत राज्य का यह नवीन-तम नियम अपराधशास्त्र में अपना विशेष स्थान रखता है।

इस नियम की बहुत-सी विशेषताएँ हैं। सज़ा की मियाद हटा दी गयी है। अधिक से अधिक सज़ा दी जा सकती है। "भोग की इच्छा से किया गया अपराध" के स्थान पर अब "संभोग" मात्र ही अपराध है। प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक संभोग साबित करने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि प्रसंग में वीर्यपात भी हुआ हो। शिश्न का प्रवेश करना ही प्रसंग है। बलात्कार को साबित करने के लिए शिश्न-प्रवेश पर्य्याप्त है।[१] बालिग या नाबालिग दोनों ही दंडनीय हैं।[२] स्त्री के साथ बलात्कार अथवा "पति" बनकर, "पति का स्वांग कर" प्रसंग करना बलात्कार है। सहवास की वास्तविक रजामन्दी के बिना किया गया प्रसंग बलात्कार है।[३] यदि भय दिखाकर या अज्ञानवश किसी के साथ प्रसंग प्राप्त कर लिया गया तो बलात्कार है। उदाहरण के लिए एक दवा बेचनेवाले ने १९ वर्ष की एक लड़की को, जिसे बेहोशी का दौरा होता था, "कुदरत की डोरी तोड़कर"[४] बीमारी अच्छा करने के बहाने से उसके साथ संभोग किया। यह बलात्कार माना गया। एक संगीत अध्यापक ने १६ वर्ष की अपनी एक लड़की छात्रा को उसके गले की आवाज़ मधुर बनाने के लिए "नीचे के मार्ग से हवा का रास्ता खोलने के लिए"[५] उसके साथ प्रसंग किया। यह भी बलात्कार हुआ। इसी प्रकार स्त्री के सामने पति का स्वांग बनाकर उसे धोखा देकर प्रसंग करना भी बलात्कार है।[६] पर बलात्कार के मामले में यह साबित करना ज़रूरी है कि दूसरे पक्ष की रज़ामंदी नहीं थी। यदि लड़की १६ वर्ष की है तो प्रायः देखा गया है कि लड़की भी सब कुछ जानती है, उसकी कम उम्र होना उसकी "स्वीकृति" का न होना नहीं साबित कर सकता।[७] असली रजामंदी थी या सिर्फ़ "उसकी बात मान ली"—इसमें अन्तर करना बड़ा कठिन है।[८] एक स्त्री ने ८ आदमियों पर मुकदमा चलाया कि उन्होंने

१. धारा ४४ २. धारा ४६

३. वही, धारा ४४

४. सरकार बनाम फ्लैटरी, १८७७ का केस

५. सरकार बनाम विलियम्स, १९२३ का केस

६. सन् १८८५ का कानून

७. न्यायाधीश ह्म्फ्रेज का फैसला, सरकार बनाम हार्लिग, सन् १९३७

८. सरकार बनाम डे–सन् १९३४

उसे एक दरवाज़े के बगल में खड़ी कर एक के बाद दूसरे ने उसके साथ प्रसंग किया। जिस मकान का ज़िक्र था, वह वेश्यालय था, जिस औरत ने दोष लगाया था। वह स्वयं वेश्या थी। पर न्यायाधीश कोलरिज ने जूरी लोगों से कहा कि अगर इतने आदमियों को देखकर डर के मारे वह खड़ी रही, अगर उसके अनुरोध पर भी सब लोगों ने पारी-पारी से उसके पास आना स्वीकार किया तथा सभी अभियुक्त उसका इस प्रकार उपयोग कर बैठे, तो भी यह सचमुच में बलात्कार है। इसी प्रकार एक दूसरा रोचक मुक़द्दमा है। यह मान लिया जाता है कि जब किसी कन्या का विवाह होता है तो उसका मतलब ही यह है कि वह स्वीकार करती है कि उसका पति उसके शरीर का उपयोग करेगा। पर सन् १९४९ में एक मुक़दमे में, सरकार बनाम क्लार्क, यह फ़ैसला हुआ कि यदि पत्नी अपने पति से कह दे कि मैं तुम्हारे साथ सहवास नहीं करना चाहती, तो उसके साथ पति का प्रसंग करना बलात्कार है।

धारा २ (१) के अनुसार डरा-धमकाकर प्रसंग के लिए किसी स्त्री को राज़ी कर लेना भी अपराध है। झूठा बहाना या झूठी बातें गढ़कर किसी स्त्री को प्रसंग के लिए फुसलाना भी अपराध है। (धारा ३-१) डरा-धमकाकर प्रसंग करने के लिए शिश्न-प्रवेश बलात्कार नहीं हो सकता, पर धारा ३७ के अनुसार दंडनीय है। धारा ४ (१) के अनुसार मादक दवाएँ खिलाकर भोग करना भी अपराध है। १३ वर्ष की कन्या के साथ या उससे कम उम्र वाली के साथ, स्वीकृति से भी प्रसंग करना बलात्कार है। १३ वर्ष से १६ वर्ष की लड़की के साथ किसी भी दशा में किया गया प्रसंग अपराध है, दण्डनीय है।[१]

प्रसंग या सहवास को क़ानून के दायरे में बाँधने का पूरा प्रयत्न किया गया है। यदि ग़ैर-क़ानूनी उम्र में विवाह हो भी गया हो तो वह सहवास के लिए अस्वाभाविक तथा ग़ैर-क़ानूनी था। १६ वर्ष की उम्र के वाद यह समझा जाता है कि लड़की सब कुछ समझती है।[२] पहले, सन् १८८५ के क़ानून के अनुसार ऐसे मुक़दमे अपराध होने

१. इंग्लैंड में कानूनन १२ वर्ष की उम्र की या इससे अधिक उम्र की लड़की के साथ विवाह जायज़ था, यानी १२ वर्ष की उम्र "विवाह की स्वीकृति" के लिए पर्याप्त समझी जाती थी। सन् १९२९ के Marriage Act **ने यह उम्र १६ वर्ष की कर दी।**

२. इस धारा के कुछ अपवाद भी हो जाते हैं। सन् १९३८ में चार लड़कों पर,

के तीन महीने के भीतर चलाये जाने चाहिए थे। १९२८ के क़ानून ने इस अवधि को बढ़ाकर एक वर्ष कर दिया। सन् १९५६ के क़ानून के अनुसार यही अवधि क़ायम रही। इस क़ानून के साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि अधिकांश ब्रिटिश न्यायाधीशों का मत है कि १४ वर्ष की उम्र से कम के लड़के को वास्तविक व्यभिचार का दोषी नहीं बनाया जा सकता। वह "प्रयत्न" कर सकता है, पर वास्तविक कार्य नही कर सकता। इसी प्रकार १६ वर्ष की उम्र से कम की लड़की को व्यभिचार का दोषी नहीं बनाया जा सकता। बालिग स्त्रियाँ कम उम्र की लड़कियों को भड़काने, प्रोत्साहन करने तथा विषय कराने पर राजी करा सकतीं हैं, पर कम उम्र की लड़की को सज़ा नही देते।

धारा ७—विक्षिप्त, मूर्ख तथा शरीर से बेकाम स्त्री के साथ प्रसंग करना, धारा ८ (१) के अनुसार पागल, रोगी, अस्पताल में दाखिल स्त्री से प्रसंग करना, धारा ९ (१) के अनुसार ऐसी दोषपूर्ण स्त्री को प्रसंग के लिए प्राप्त करना, यह सब अपराध है। इस क़ानून ने सन् १९१३ के मानसिक दोष नियम[१] की धारा ५६ को अपनी धारा ४५ के अनुसार बदलकर मानसिक दोष की नयी व्याख्या की है। इसके अनुसार मानसिक रोगी यानी पागल वह स्त्री-पुरुष है जिसको स्वयं की रक्षा के लिए तथा जिसके द्वारा दूसरे की रक्षा के लिए दूसरे के नियंत्रण तथा देखरेख में रहना हो। या, जिसका मानसिक दोष ऐसा हो कि उसमें ऐसी दुष्ट अपराधी प्रवृत्ति पैदा हो गयी हो कि उसकी देखरेख के लिए तथा उससे दूसरों की रक्षा के लिए, उस व्यक्ति को नियंत्रण में रखना हो। मानसिक दोष होना उसको मानते हैं जिसका मस्तिष्क १८ वर्ष की उम्र के पहले ठीक से विकसित न हो सका हो या किसी चोट-चपेट या आन्तरिक कारणों से दोष उत्पन्न हो गया हो।

धारा १० (१) के अनुसार अपनी पौत्री, लड़की, बहिन (चचेरी भी) तथा माता के साथ, धारा ११ (१) के अनुसार अपने पितामह, पिता, भाई (चचेरा भाई भी) या बेटे के साथ व्यभिचार अपराध है। सन् १९०८ के क़ानून के पहले इंग्लैण्ड में इस

जिनकी उम्र १६ से १८ वर्ष थी, १६ वर्ष से कम एक लड़की के साथ व्यभिचार करने का मुक़द्दमा चला, "सम्राट बनाम हैरिसन" नामक इस मुक़द्दमे में जूरियों ने चारों अभियुक्तों को यह कहकर छोड़ दिया कि उनको क़ानून की जानकारी नहीं थी—वे अनजान थे।

१. Mental Deficiency Act, 1913

प्रकार के व्यभिचार का मुक़दमा मज़हवी—पादरियों की अदालत में ही चल सकता था। धारा १४—१, २, ३ के अनुसार किसी महिला पर अश्लील प्रहार करना, चाहे वह प्रहार मुँह से ज़बानी धमकी देना ही क्यों न हो, उससे प्रसंग करने का प्रयत्न मात्र हो, या स्त्री के सामने नंगे होकर या अपनी इन्द्रिय खोलकर जाना (एक न्यायाधीश के अनुसार यदि अगला हिस्सा खोलकर न चले, पिछला खुला हो तो अश्लील प्रहार नहीं हुआ) अपराध है। इस अपराध के अंतर्गत यह आवश्यक नही है कि प्रसंग होकर रहे, पर अश्लील कुचेष्टा भी अपराध है। इशारेबाज़ी भी अपराध है। जिसके प्रति अश्लील कुचेष्टा की जाय, यदि वह राज़ी भी हो, तब भी अपराध है। एक १७ वर्ष की उम्र का लड़का १५ वर्ष ९ महीने उम्र की एक लड़की के प्रति अश्लील कुचेष्टा में चार महीने के लिए दंडित हुआ।[१]

धारा १२, १३, १४, १५, अपनी उपधाराओं सहित परस्पर प्रसंग से सम्वन्धित है। इसके प्रथम यानी १२, १ के अनुसार अपनी ही योनि के या पशु के साथ प्रसंग जघन्य अपराध है।[२] इस धारा में यह आशा की जाती है कि जिसके साथ अप्राकृतिक प्रसंग किया गया उसकी उम्र १७ वर्ष से कम है तथा शिश्न-प्रवेश पर्याप्त अपराध है। वीर्य-पात कोई ज़रूरी बात नहीं है।[३] जिसके साथ प्रसंग किया जाता है, उसे "रोगी" कहते हैं, तथा जो करता है उसे "एजेन्ट" कहते हैं। यदि कोई स्त्री पशु से प्रसंग कराती है[४] तो वह भी जघन्य अपराध है।

पशु के साथ प्रसंग के अपराध भी काफ़ी होते हैं। घर में पालतू मुर्ग़े के साथ[५], कुत्ते के साथ[६] इत्यादि जघन्य अपराधों में दंड मिल चुका है। कुत्ते के साथ पत्नी की इच्छा नहीं थी, पति ने कुत्ते को उत्तेजित कर पत्नी को प्रसंग कराने पर मजबूर किया। पर सजा पत्नी को मिली। पत्नी के साथ अप्राकृतिक प्रसंग भी जघन्य अपराध है।[७] एक दूसरी धारा के अनुसार बालिग-बालिग का, पुरुष या स्त्री, दोनों

१. सम्राट् बनाम लावेज, १९२९–न्यायाधीश Avory का फ़ैसला
२. Felony
३. Sexual Offences Act, 1956, Section 44
४. Rex (सम्राट्) Versus Bourne, 1952
५. सम्राट् बनाम ब्राउन, १८८९
६. सन् १९५५ की घटना
७. सम्राट् बनाम जेलीमान, १८३८

का परस्पर प्रसंग जघन्य अपराध है। परस्पर प्रसंग के लिए पत्र लिखना भी अपराध है। चाहे वह पत्र जिसके नाम लिखा गया है, और न भी पहुँचा हो।[1]

धारा ३२ के अनुसार किसी पुरुष का सार्वजनिक स्थान पर किसी पुरुष को अनैतिक कार्य यानी व्यभिचार के लिए अनुरोध करना, प्रयत्न करना, फुसलाना, मुस्कराना, जीभ से होंठो को चाटकर ललचाना इत्यादि अपराध है।

संक्षेप में, ब्रिटिश क़ानून वासना सम्बन्धी अपराधों के लिए काफ़ी दंड देता है। ऐसे अपराधों की दो श्रेणियाँ होतीं हैं। एक वह जिनमें छोटी अदालतों में मुक़दमा नहीं चल सकता तथा दूसरे वे अपराध जो छोटी अदालतों में भी विचारणीय हैं। जघन्य अपराध छोटी अदालतों में नहीं जाते। दो श्रेणी के अपराधों के अनुसार बलात्कार के लिए क्रमश: १० तथा ७ वर्ष, धमकी देकर स्त्री को प्राप्त करना अथवा इसके लिए प्रयत्न करना दो वर्ष, झूठा बहाना कर स्त्री को प्राप्त करना दो वर्ष, दवा या नशा खिलाकर प्रसंग का अवसर प्राप्त करना दो वर्ष, १३ वर्ष की उम्र से नीचे की कन्या से भोग करना आजन्म कैद, ऐसा करने का प्रयत्न करना दो वर्ष, १३ से १६ वर्ष की लड़की से प्रसंग करने या ऐसा करने का प्रयत्न करने पर दो वर्ष क़ैद, विक्षिप्ता, भूखी, अपाहिज, रोगी स्त्री से प्रसंग करने पर या प्रयत्न पर दो वर्ष क़ैद का दंड होगा।

माँ, बहिन, बेटी आदि से प्रसंग करने पर आजन्म क़ैद या सात वर्ष की सज़ा तथा ऐसा करने का प्रयत्न करने पर दो वर्ष की सजा मिलेगी। पिता, पुत्र आदि से प्रसंग पर स्त्री को सात वर्ष और वैसा प्रयत्न करने पर दो वर्ष दंड होगा। महिला पर अश्लील प्रहार के लिए दो वर्ष, परस्पर प्रसंग, पुरुष-पुरुष के अप्राकृतिक व्यभिचार पर आजन्म क़ैद, वैसा करने का प्रयत्न करने पर दो वर्ष, ऐसे प्रसंग के लिए प्रहार करने पर दस वर्ष, पुरुष पर अभद्र प्रहार के लिए दस वर्ष, पुरुष का पुरुष के प्रति अश्लील व्यवहार पर दो वर्ष तथा अश्लील कार्य के लिए किसी पुरुष को प्राप्त करने की चेष्टा पर या पुरुष द्वारा पुरुष या स्त्री से छेड़छाड़ करने पर दो वर्ष क़ैद की सजा मिलेगी।

ब्रिटिश क़ानून के दोष

भारत का वासना सम्बन्धी क़ानून ब्रिटिश क़ानून से बहुत कुछ समानान्तर है। यही नही, चेष्टा यह की जाती है कि ऐसे अपराधों पर ब्रिटिश क़ानून के अनुसार ही

१. सम्राट् बनाम उड्स, १९३०

कठोर से कठोर सज़ा मिले। पर भारत तथा ब्रिटेन दोनों देशों के क़ानून स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बन्ध के विषय में जितनी कठोरता चाहते हैं, आज का विज्ञान उनके सम्बन्ध में अब नये दृष्टिकोण से काम लेने की सलाह दे रहा है। सन् १९५६ के बने ब्रिटिश क़ानून में संशोधन तथा परिवर्तन की चर्चा ज़ोरों से है। भारत में भी उसके संशोधन पर विचार हो रहा है।

उदाहरण के लिए कामवासना को पूर्णतः स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर तब कुछ दंड देने की बात सन् १९२२ से ही चल रही है। यदि एक चीज़ स्वाभाविक है तो निश्चित परिस्थितियों में स्वाभाविक कार्य करना अपराध नहीं हो सकता। इसी लिए अब कहा जा रहा है कि यदि १८ वर्ष की उम्र से कम का एक स्वस्थ क्रियाशील लड़का तथा १६ वर्ष से ज़रा कम उम्र की लड़की स्वाभाविक वासना-वश आपस में यह "अपराध" करते हैं तो वह "अपराध" नहीं है।[1]

पुरुष-पुरुष तथा स्त्री-स्त्री के परस्पर संभोग के सम्बन्ध में कठोरता कम करने का विचार हो रहा है। सन् १९५४ में ब्रिटेन में पुलिस को १५,६३६ अपराधों का पता चला। उनमें से ७,१८४ स्त्रियों पर अश्लील प्रहार के अपराध थे तथा ३, २८० पुरुषों पर अश्लील प्रहार के अपराध थे। ऐसे प्रहार से पीड़ित यानी जिन पर प्रहार किया गया—उनकी उम्र १६ वर्ष से कम थी। पुरुषों पर प्रहार अप्राकृतिक संभोग की नीयत से किये गये थे। प्रहार उसे कहते हैं जिसमें किसी न किसी प्रकार अवैधानिक रूप से ज़बर्दस्ती की गयी हो। यदि कोई लड़का या लड़की किसी दूसरे के कंधे पर इसी नीयत से हाथ रख दे तो वह प्रहार नहीं हुआ। दूसरे, पहले यह प्रणाली थी कि यदि कोई पुरुष १६ वर्ष से कम उम्र की कन्या के हाथ का उपयोग अपनी हस्त-क्रिया कराने के लिए करे तो वह प्रहार है अथवा नहीं, इसका निर्णय किये बिना प्रहार के अन्तर्गत दंड देते थे। अतएव प्रहार की व्याख्या करना कठिन है। दूसरे यदि १६ वर्ष से कम उम्र की लड़की या लड़का स्वतः राज़ी हो तो प्रहार कैसे हुआ। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अपराध-शास्त्र के लोगों ने जो खोज की थी, उससे पता चला कि लड़कियों पर अश्लील प्रहार के २२४ मामलों में से, जिनका सम्बन्ध ८ वर्ष से १६ वर्ष की उम्र की लड़कियों से था, ७४ मामलों में उन छोटी बच्चियों की रज़ामन्दी थी।[2]

१. L. Radzinowicz Sexual Offences–Page 425

२. Sexual Offences—पृष्ठ ४१३

रज़ामन्दी की उम्र

बच्चों की रज़ामन्दी में किये गये अपराध को अपराध माना जाय या नहीं? सन् १९२५ में ब्रिटिश गृहविभाग की एक जाँच कमेटी बैठी थी।[1] उसकी राय थी कि १६ वर्ष से कम उम्र के लड़के या लड़कियों के साथ उनकी स्वीकृति से भी व्यभिचार करने पर उसे अश्लील प्रहार मानकर दंड देना चाहिए। किन्तु सन् १९५६ के क़ानून ने इस विषय को इसी लिए स्पष्ट नहीं किया है कि वे स्वयं अनिश्चित हैं कि रज़ामन्दी पर क्या करना चाहिए।

इसी प्रकार एक दूसरा दोष है। तेरह वर्ष की या उससे कम उम्र की कन्या से उसकी स्वीकृति से प्रसंग करना जघन्य अपराध है[2] और उसमें आजन्म कारावास की सज़ा मिलती है। अब यह आन्दोलन चल रहा है कि स्वीकृति (कन्या की रज़ा-मंदी की उम्र) १३ से बढ़ाकर १६ कर दी जाय। सन् १८६१ में १० वर्ष की मियाद थी। १८७५ में १२ वर्ष हो गयी। १८८५ में १३ वर्ष कर दी गयी। १९२५ की कमेटी में तीन सदस्य १६ वर्ष की उम्र के पक्ष में थे, चार व्यक्ति सत्रह वर्ष तथा एक व्यक्ति १८ वर्ष को "स्वीकृति की उम्र" मानते थे। इधर ब्रिटेन के विवाह-विधान के अनुसार विवाह की उम्र १६ वर्ष मान ली गयी है। अतएव १६ से पहले "रज़ामन्दी" की उम्र नहीं हो सकती। सवाल तो यह है कि क्या १६ वर्ष की उम्र भी ठीक है? १९५५ की कमेटी की राय थी कि "जब हम १६ वर्ष की बच्चियों को स्कूल में, खेलभूमि में, कारख़ानों में देखते हैं तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सभी बच्चे ही हैं और इनको असामयिक प्रसंग से बचाना चाहिए, क्योंकि इससे उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा और यदि वे गर्भवती हो गयीं तो और भी बुरा प्रभाव पड़ेगा।" पर यह सोचने की बात है कि १६ वर्ष की लड़की से विवाह करके प्रसंग करने से क्या उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा? दोनों बातों में अन्तर कैसे होगा?[3] एक सवाल यह

१. Report of the Departmental Committee on Sex Offences against young persons 1925—Chairman Mr. (Sir) J. C. Priestley

२. Felony

३. नये अपराधशास्त्र के सामने एक बड़ी समस्या यह भी है कि प्रसंग के लिए पुरुष को दंड मिलता है पर बहुत सी लड़कियां प्रसंग करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं, उनको दंड क्यों न मिले? यद्यपि Law Times, London 29th July 1922 **के अनुसार लड़कों को बुरे मार्ग में ले आनेवाली लड़कियाँ कम मिलेंगी।**

भी है कि १७, १८ वर्ष स्वीकृति के लिए भले ही मान लिया जाय पर यदि अपराधी यह कहे कि "मैंने अमुक की उम्र १६ वर्ष से ऊपर समझी," तो उसे क्यों दोषी माना जाय? जन्म की तारीख का सबूत लिये-लिये कोई नहीं घूमता। नये (१९५६ के) क़ानून ने २४ वर्ष से कम उम्र के लड़के के लिए १६ वर्ष की लड़की को ही "रज़ामंदी" देने योग्य माना है। पर उसके साथ ही यह भी गुन्जायश कर दी है कि यदि उम्र कम भी हो पर यह साबित हो जाय कि लड़के को विश्वास था कि उम्र ज़्यादा है तो वह दंडनीय नही होगा। परिणाम यह हुआ कि १४ वर्ष की लड़की भी १६ की मान ली जाती है। क़ानून ने यह तो कर दिया है कि १३ से १६ वर्ष की उम्र की लड़की अगर राज़ी भी हो, तब भी उसे (अपराधी को) सज़ा मिलेगी।

समय के पूर्व यौवन

प्रसंग के योग्य उम्र का निर्णय करना बड़ा कठिन है। जो लोग १६, १७, १८ वर्ष को विवाह के योग्य उम्र मानते हैं उनको यही उम्र प्रसंग के योग्य भी माननी पड़ेगी, क्योंकि विवाह का परिणाम भी वही होता है। किन्तु, सबसे बड़ी समस्या यह हो गयी है कि विज्ञान की नवीनतम खोज के अनुसार आज की सभ्यता की रहन-सहन, जीवनचर्या तथा वातावरण मनुष्य को समय के पूर्व ही जवान बना देता है। ब्रिटिश मेडिकल असोशियेशन के कथनानुसार आज के लड़के या लड़कियाँ अपनी वास्तविक उम्र से पाँच वर्ष बड़े हैं।[१] यानी १२ वर्ष की लड़की को १७ वर्ष की समझना चाहिए। आज विश्व भर में वासना के अपराध इसी लिए बढ़ रहे हैं कि पिता-माता तथा अभिभावक अपने बच्चों को १२-१४ वर्ष की उम्र तक "अनजान" समझते हैं। यदि वे उनकी वास्तविक उम्र में पाँच वर्ष बढ़ाकर चलें तो परिस्थिति में बड़ा सुधार होगा। इस खोज से यह भी धारणा होती है कि हमारे शास्त्रकारों ने १२ वर्ष की उम्र यदि विवाह के लिए रखी थी तो कोई भूल नहीं की थी। वैसे विवाहों से वासना के अपराध अवश्य कम होते थे। क्या जल्दी विवाह कर देने से ऐसे लड़के लड़कियों की समस्या हल हो जायगी जो जल्दी जवान हो जाते हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सचेत हो जातीं हैं? पर, इन्द्रियों की असामयिक चेतना से ही, लड़के-लड़कियों में, विशेष कर लड़कियों में अपराध बढ़ता है, यह नहीं कहा जा सकता। यह ज़रूर है कि वासना के अधिकांश

१. Getting Married, 1958; Pub. British Medical Association

अपराधी असामयिक यौवन के शिकार प्रतीत होते हैं।[१] जो लड़की देखने में जितनी ही जवान मालूम होगी, उसकी कामुक भावनाएँ उतनी जाग्रत अवश्य होंगी और वह पुरुषों को उतना ही अधिक आकर्षित करेगी। यदि असामयिक यौवन के साथ बुद्धि का भी उसी के अनुपात में विकास हो तो जवानी की भूलें कम हो सकतीं हैं पर ऐसा होता नहीं और यह न होना ही बड़ा घातक होता है। लड़कियों का यौवन उनके मासिक धर्म से शुरू होता है। पर प्रथम रजोदर्शन से यौवन प्रारम्भ नहीं होता है। जल्दी रजोदर्शन साधारण लड़कियों में प्राप्त जीवनी-शक्ति तथा कार्यशक्ति से विशेष अधिकता प्रकट करता है।[२] इसी अवसर पर इस विशेष शक्ति को ठीक रास्ते पर उतार देना है, अन्यथा बड़ी हानि होगी। अपराधी तभी पैदा होगा जब इस शक्ति को पहचाना न जाय। हीली ने अपनी पुस्तक में ऐसे बहुत से लड़के-लड़कियों का ज़िक्र किया है जो १२ वर्ष की उम्र में ही जवान हो गये थे। उन्होंने एक १५ वर्ष के लड़के का वर्णन किया है जो अपनी आवाज़ वगैरह से भी काफ़ी बड़ा मालूम होता था और ऐसे लड़के ख़तरनाक भी होते हैं, अतएव सोचना यह होगा कि हम "रज़ामंदी" तथा विवाह की उम्र १६ साल से ऊपर रखकर ऐसे लड़कों और लड़कियों को व्यभिचारी बनने दें या इनका जल्दी विवाह हो जाना ही ठीक होगा। इस सम्बन्ध में हीली लिखते हैं—

"कई मर्तबे यह कहा गया है कि ऐसे मामलों में शीघ्र विवाह ही एक मात्र उपाय है। प्रकृति ने इन व्यक्तियों को तैयार कर दिया है और ये अब बालिग़ (वयस्क) कामजीवन के योग्य हो गये हैं। असभ्य लोगों में या सभ्यता की साधारण श्रेणी में सादा जीवन बितानेवाले लोगों में यह चीज़ मुमकिन भी है। पर हमारी आर्थिक तथा अन्य पहेलियों के सामने यह सम्भव नहीं है। हमने प्रायः कुटुम्बवालों को कहते सुना है कि उनको असामयिक जवान लड़की का विवाह कर देने में कोई आपत्ति नही है पर उस समय तक न तो कोई उसके प्रेम में फँसा होता है, न कोई योग्य वर मिलता है। ऐसी कन्या से विवाह करने के लिए जो लोग आगे आते हैं वे स्वयं बहुत बदनाम, कम उम्र, दरिद्र तथा हर प्रकार से अवांछनीय पति होते हैं। विवाह के योग्य उम्र के सम्बन्ध में रीति रिवाज़ अपूर्ण हैं। इस संबन्ध में क़ानून अधूरा है क्योंकि यह व्यक्ति-व्यक्ति की विभिन्नता पर निर्भर करता है। प्रायः १६ वर्ष की एक लड़की शारीरिक

१. William Healy—Individual Delinquency

२. Gynecological Journal—Williams, May 1902

तथा मानसिक शक्ति के अनुसार ३० वर्ष की स्त्री के बराबर हो सकती है या १४ वर्ष का लड़का किसी बालिग़ की शक्ति रखता है।[१]

इस सम्बन्ध में हमें आगे चलकर और विचार करना है। ब्रिटिश क़ानून का दोष देखते-देखते हम और भी गहरे पानी में चले गये। वासना के अपराधों की ढेरों श्रेणियाँ हैं। ब्रिटिश क़ानून उनसे संघर्ष करने का बराबर प्रयत्न कर रहा है। वहाँ एक बड़ा दोष यह चल पड़ा है कि लड़कियों तथा स्त्रियों के सामने अपनी इन्द्रिय खोलकर दिखाते हैं।[२] सन् १९५४ में पुलिस ने ऐसे अश्लील प्रदर्शन के लिए २,७२८ पुरुषों की सज़ा करायी थी। किन्तु अश्लील प्रदर्शन क्या है? क्या केवल इन्द्रिय को खोल देने से ही अश्लीलता हो जाती है? और बहुत से भद्दे तथा निन्दनीय प्रदर्शन अश्लील नही है?[३]

पुलिस ने सन् १९५४ में ब्रिटेन में परस्पर संभोग के १,०४३ मामले पकड़े। ऐसे कार्य के लिए अश्लील प्रहार करने के अपराध में ३, २८० मामले पकड़े गये थे। इसमें से २,०३४ मामले पुरुष-पुरुष से सम्बन्धित थे। पर इतने ही मामले नही थे। ऐसे अपराधों को बहुत से नगरों में स्थानीय म्युनिसिपल उपनियमों के अंतर्गत (जैसे सार्वजनिक पेशाबघर में गन्दा काम) सजा देते हैं। सन् १९५४ में ऐसे उपनियमों के अन्तर्गत ३८६ चालान हुए। इस अपराध में प्रायः यह देखा जाता है कि ज़ोर-ज़बर्दस्ती कम होती है। दोनों पक्ष राज़ी रहते हैं। और जब दोनों पक्ष राज़ी हों तो सज़ा देनी चाहिए या नही, यह विचाराधीन बात है। प्रायः ऐसी दशा में सजा नहीं देते। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अपराधशास्त्रियों ने ऐसे ९८६ मामलों की, पुरुष-पुरुष संभोग की जाँच की। इनमें से केवल दो को सज़ा मिली थी। बाक़ी सब छूट गये थे क्योंकि "रज़ामन्दी" थी।"[४]

अधिकांश यूरोपीय देशों में रज़ामन्दी से होनेवाले पुरुष-पुरुष संभोग पर अपराधी को दंड नहीं देते। ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक इसको इतना जघन्य अपराध नहीं

१. Healy—**पृष्ठ २४८**

२. **पीछे का हिस्सा दिखाना अपराध नहीं है। कानून इस विषय में मौन है।**

३. **इस विषय में** Claude Mullins **का लेख** Sexual Offenders-Medico–Legal and Criminological Review, Vol. II, Para III–July 1934-Page 236 **देखिए।**

४. Sexual Offences—Page 431

समझते कि बहुत लम्बी सजा हो।[1] दो काफ़ी बुजुर्ग लोग इस अपराध में दंडित हुए। उन्हें १२ महीने की सजा मिली। अपील पर वे इसलिए छूटे कि जाड़े की रात में यदि एक सार्वजनिक छायादार स्थान में न जाते तो कहाँ जाते ?

(३) संयुक्त राज्य अमेरिका में

संयुक्त राज्य अमेरिका में ५० राज्य हैं। वासना सम्बन्धी अपराधों के प्रति हर एक राज्य का दृष्टिकोण बराबर नहीं हो सकता। भारतवर्ष में जिस प्रकार एक ही प्रकार का क़ानून समूचे देश के लिए लागू है, वैसा वहाँ नहीं है। भारतवर्ष में केन्द्रीय सरकार का कोई जेलखाना नहीं है। सभी जेल प्रादेशिक हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में केन्द्रीय सरकार ने अपने ज़िम्मे जो कार्य रखे हैं उनके विरुद्ध आचरण करनेवालों को केन्द्रीय कारागार में रखते हैं तथा प्रादेशिक अपराध करनेवाले को राज्य के कारागार में रखते हैं। हत्या, कामवासना के अपराध, चोरी, डकैती ये सब प्रादेशिक नियमों के अन्तर्गत हैं। इसलिए बहुत से राज्यों में हत्या के अपराध में प्राणदंड मिलता है, किन्तु कितने ही राज्यों में नहीं। केन्द्रीय सरकार अनैतिकता के उन्हीं अपराधों को देखती है जो एक प्रदेश का रहनेवाला दूसरे प्रदेश के नागरिक के साथ करे। वैसी दशा में केन्द्रीय सरकार दंड देती है। केन्द्रीय सरकार प्राणदंड देती है।

हर अपराध की सज़ा हर एक राज्य जब स्वयं निश्चित करता है तो अपने रीति रिवाज़ तथा दृष्टिकोण के अनुसार करता होगा। जिस राज्य में समाज की जैसी रचना होगी, वैसा नियम बनेगा। इसलिए अपराध का स्वतः कोई विशेष महत्त्व न होकर समाज का महत्त्व होता है। जैसा समाज होगा, वैसी व्यवस्था होगी। आज कौन इस बात की कल्पना कर सकता है कि ७ अप्रैल १८३२ को इंग्लैण्ड के कार्लाइल नामक नगर में जाज़ेफ टाम्पसन नामक एक व्यक्ति ने[2] अपनी स्त्री को "एक प्लेग, एक पागल कुत्ता तथा एक मरे हुए तमंचे के समान" घोषित कर उसे नीलाम कर दिया। न्यूफ़ाउंडलैंड नस्ल का एक कुत्ता तथा २० शिलिंग यानी साढ़े तेरह रुपया लेकर उसने अपनी स्त्री बेच दी। सन् १९५९ में इस प्रकार का काम करनेवाला बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। इसी तरह सन् १८३२ में वहाँ यह कौन कल्पना करता

१. The Criminal Law and Sexual Offender—1949

२. English Digest, February, 1959

रहा होगा कि ब्रिटेन में, १९५७ में, चौरानवे अरब सिगरेट एक साल में ख़र्च होंगी तथा वहां पर ९० प्रतिशत पुरुष तथा ४७ प्रतिशत स्त्रियाँ सिगरेट पीती रहेंगी। इंग्लैंड में पुरुष एक दिन में औसतन १६ सिगरेट तथा स्त्री औसतन ८ सिगरेट पीती हैं![१]

समय बदल जाता है। स्वभाव बदल जाता है। मनुष्य बदल जाता है। फ्रान्स के सम्राट् लुई तेरहवें को स्त्री जाति से चिढ़ थी। उन्होंने वार्साई में एक महल इसलिए बनवाया कि वहाँ पर कोई औरत न जाने पायेगी और न दिखाई पड़ेगी। सन् १६४३ में लुई चौदहवें गद्दी पर बैठे। वार्साई का राजमहल स्त्रियों से भर गया, विलासिता का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया।

महिला पुलिस तथा महिला अपराध

जिस इंग्लैण्ड में क़ानूनन स्त्री को नीचा स्थान दिया जाता था, वहीं अब नगर की रक्षा तथा अपराध की रोकथाम का भार स्त्रियों पर भी है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में महिला पुलिस की भरती सन् १९०० से ही शुरू हो गयी थी। लन्दन के १०८ थानों में ५७३ महिला पुलिस तैनात हैं। महिला कांस्टेबुल को ८ पौंड १० शिलिग प्रति सप्ताह (११३ रुपया) तथा उनके सार्जेन्ट (महिला) को २९ पौड १६ शिलिंग यानी ३९३ रुपया प्रति सप्ताह वेतन मिलता है।[२]

पर महिला पुलिस की हर एक देश में आवश्यकता इसलिए पड़ रही है कि महिलाओं में अपराध बढ़ता जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय पुलिस संघ[३] के श्री पी० विलेतार्ते ने आदतन अपराधियों के विषय में एक रिपोर्ट लन्दन के तृतीय अपराध-विज्ञान सम्मेलन[४] में फ्रान्स के "आदतन अपराधी" यानी एक बार से अधिक सज़ा पानेवाले अपराधियों पर पेश की थी। उसमें उन्होंने आदतन अपराधिनी महिलाओं के विषय में बड़े रोचक आँकड़े प्रस्तुत किये थे। उनके आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि कुमारी अपराधिनियों की संख्या विधवा अपराधिनियों से अधिक है। तलाक़-शुदा या

१. Readers Digest, January, 1958

२. **प्रायः सभी सभ्य देशों में महिला पुलिस दल है**

३. International Federation of Police Functioneries

४. Third International Congress on Criminology, London. Sept., 1955

परित्यक्ता विवाहिताओं से अधिक विवाहिता अपराधिनी महिलाएँ हैं। यानी सबसे अधिक अपराध विवाहिता स्त्रियाँ करतीं है। इनमें भी संतान-रहित विवाहिता स्त्री सबसे ज़्यादा अपराध करती हैं और फिर उसके बाद दूसरा नम्बर ४ से अधिक बच्चेवाली स्त्रियों का है। नीचे दिये रोचक आँकड़े देखिए[1]—

बार-बार अपराध करनेवाली महिलाएँ

विधवा	३	सन्तानहीन	१२०
कुमारी	७३	१ संतान वाली	५८
विवाहिता	१२९	२ संतान वाली	३७
परित्यक्ता या तलाक़शुदा	८९	३ संतान वाली	४४
		४ सन्तान वाली	६५

जितनी महिलाओं की गणना की जा सकी, उनकी यह दशा है। प्रायः सभी देशों के लिए यही औसत मान लेना चाहिए, ख़ास कर इंग्लैण्ड ऐसे देश में जहाँ मर्द कम, औरतें ज्यादा हैं। वहाँ की एक "विवाह करानेवाली संस्था" के अनुसार ४ विवाह योग्य स्त्रियों पर एक विवाह योग्य पुरुष होता है। एक दूसरी विवाह एजेन्सी का बयान है कि २१ से ३० वर्ष की उम्र में फ़ी १२ पुरुष पीछे एक विवाह योग्य स्त्री है। पर ४० वर्ष की उम्र के ऊपर स्त्रियों की अत्यधिक अधिकता हो जाती है। ऐसी दशा में वासना के अपराध तो बढ़ेंगे ही। पर संयुक्त राज्य अमेरिका में वासना के अपराध बहुत ज्यादा बढ़े हैं। वहाँ पर दो विद्वानों ने १५०० नये विवाहों की छानबीन की तो पता चला कि प्रति ५ नव-विवाहित स्त्रियों में एक लड़की विवाह के पहले ही गर्भवती हो गयी थी।[2] वहाँ के एक प्रदेश कैलिफोर्निया में क्षय के एक अस्पताल में २०० क्षय के रोगी मनोवैज्ञानिक कारणों से इस रोग के शिकार हुए थे, १०० नशेबाज़ी के कारण तथा १०० परस्पर संभोग (याने अप्राकृतिक संभोग) के कारण रोगी थे।

१. Revue Internationale De Droit Penal, Paris, May, 1959–Page 159

२. Ture Story, New York, 1958

पिता-पुत्री सम्बन्ध

सबसे जघन्य तथा मन को बेचैन कर देनेवाली मिसाल प्रो० स्टाकवेल ने दी है। मिस्सिसिपी के एक औद्योगिक विद्यालय में, जो केवल कन्याओं के लिए है, लगभग १०० छात्राओं में, जिनकी उम्र १२ से १८ वर्ष की थी, ८५ फी सदी छात्राओं को भोग का अनुभव प्राप्त हो चुका था। इनमें से ८ लड़कियों का अपने सगे पिता से सम्बन्ध था। इनमें से एक लड़की तो अपने पिता के साथ संभोग करने में पूर्ण आनन्द का अनुभव करती थी, पर शेष सात को पिता के साथ ऐसा करने में आन्तरिक ग्लानि होती थी, फिर भी वे ऐसा करती थीं। जिस समाज में आज के ज़माने में वासना इतना नंगा रूप धारण कर ले उसमें क़ानून क्या कर सकता है?[१]

संयुक्त राज्य अमेरिका में धन, वैभव, सम्पदा, शिक्षा सब कुछ होते हुए भी आज नैतिक स्तर बहुत गिर गया है। वहाँ पर (सन् १९५७ में) प्रति ११·३ सेकेण्ड पर एक बड़ा अपराध होता है। प्रति ३·९ मिनट पर एक हत्या, क़त्ल, प्रहार, व्यभिचार बलात्कार इत्यादि होता है। सन् १९५७ में पिछले पाँच वर्षों की तुलना में २३·९ फ़ी सदी वृद्धि अपराधों में हुई। सन् ५७ में २७,९६,४०० बड़े अपराध हुए। इन बड़े अपराधों के लिए २०,००,००० से अधिक व्यक्ति गिरफ्तार हुए। इनमें १४,०५,९६७ गोरे तथा ६.१८,०२८ नीग्रो अपराधी थे। प्रति १०० पुरुष अपराधी पीछे एक महिला अपराधिनी थी।[२]

इस परिस्थिति को ध्यान में रखकर अमेरिकन क़ानून को समझने का प्रयास करना चाहिए,[३] यद्यपि यह स्पष्ट है कि क़ानून की सख्ती से वहाँ किसी प्रकार का अपराध कम नहीं हुआ है। वासना के अपराध उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। अमेरिकन क़ानून में वासना के अपराधों की तीन श्रेणियाँ हो गयीं हैं। पहली श्रेणी तो हुई वासना के अपराधों और अपराधियों की व्याख्या कर देना। दूसरी श्रेणी हुई वासना के अपराधों

१. Spencer L. Stockwell, M. S. W., Missisipi in International Journal of Sociology, August, 1953

२. Federal Bureau of Investigations, Washington–Annual Report, 1958

३. (i) Sex Offender Laws and their Administration, Federal Probation, Vol. 14, No. 3 (2) Organized Crime and Law Enforcement–Report to American Bar Association. The Grosby Press, 1952

की तथा तत्सम्बन्धी दंडों की समीक्षा और तीसरी श्रेणी हुई बार-बार ऐसा अपराध करनेवालों का निदान तथा चिकित्सा। इस प्रकार संयुक्त राज्य का क़ानून क्रमशः विकसित होता जा रहा है, यद्यपि प्रत्येक राज्य (प्रदेश) में इस विकास की मात्रा में कमी बेशी है। वैज्ञानिक प्रगति, मानव-स्वभाव की गहरी परख तथा नित्य नये-नये अनुभवों के कारण इस सम्बन्ध में विचार भी बदलते जा रहे हैं। दंड की कठोरता न्यायाधीश के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। किसी न्यायाधीश को अनैतिक अपराधों से बड़ी चिढ़ हो और वह कठोर दंड दे सकता है, कोई न्यायाधीश सहानुभूति से काम लेगा।[१] पुरुष-पुरुष संभोग तथा बलात्कार के सम्बन्ध में प्रायः ऐसी बातें होती हैं। किस व्यभिचार को बलात्कार कहा जाय यानी किस प्रसंग को स्त्री की इच्छा के विरुद्ध कहा जाय? बहुत से डाक्टरों ने एक नया सिद्धान्त निकाला है। उनका कहना है कि बालिग लड़की के साथ बिना उसकी इच्छा के प्रसंग हो ही नहीं सकता, योनि-छेदन हो नही सकता, इसलिए यदि बलात्कार "बिना इच्छा के प्रसंग" का नाम है तो ग़लत है। इच्छावश ही योनि-विस्तार होता है। चाहे वह इच्छा भय के कारण, मार या प्राण के भय से ही क्यों न हो। अतएव ऐसे प्रसंगों को "अश्लील प्रहार" की श्रेणी में रखा जाय, न कि बलात्कार की श्रेणी में। संयुक्त राज्य के कई प्रदेश "बलात्कार" को क़ानून से हटानेवाले हैं।

क़ानून में भिन्न दृष्टिकोण

अतः प्रश्न यह है कि किस उम्र में प्रसंग को बलात्कार यानी बिना इच्छा के किया गया व्यभिचार माना जाय और कन्या के लिए "स्वीकृति" की उम्र क्या हो? संयुक्त राज्य अमेरिका के दिलावेयर राज्य में यह उम्र ७ वर्ष है। चार राज्यों में १० वर्ष है। १८ राज्य या प्रदेशों में १८ वर्ष है। कुछ राज्यों में भिन्न उम्र की कन्या के साथ बलात्कार की भिन्न सज़ा होगी। कुछ राज्यों में, जैसे उदाहरण के लिए नेब्रास्का में, १५ से १८ वर्ष की उम्र के बीच में—यदि लड़की बदचलन हुई तो बदचलन के साथ बलात्कार करने पर सज़ा कम मिलती है या नहीं भी मिलती। कैलिफ़ोर्निया, जिआर्जिया, न्यूजर्सी और ओकला होमा प्रदेशों में वासना के अपराध पर बड़ी सख्त सज़ा मिलती है और विसकौसिन, टेनेस्सी, इंडियाना तथा वेस्ट वर्जिनिया ऐसे देशों में नर्म

१. Professor Paul W. Tappan In "Sexual Offences"—Page–500-501

सज़ा मिलती है। यह परिवर्तनशील सामाजिक विचार का ही परिणाम है।[१] प्रथम महायुद्ध के बाद संयुक्त राज्य में व्यभिचार की बाढ़ आ गयी। युद्ध से लौटे सिपाही कामुक पागल की तरह घूमते थे। एक नहीं अनेक बार वासना का अपराध करनेवाले बढ़ गये। अतएव उनकी रोकथाम के लिए "दुबारा अपराधी" के साथ कड़ाई तथा सख़्ती बरतने का तरीक़ा निकला। केन्द्रीय सरकार तथा ५ प्रदेशों को छोड़कर शेष ४५ प्रदेशों में "आदतन अपराधी" के लिए अलग नियम बने। अधिकांश प्रदेशों में तीसरी बार (वासना के) जघन्य अपराध करने पर आजन्म कारागार का नियम बना। अलबामा, अरिजोना, कनेक्टिकट, डिस्ट्रिक्ट आव कोलम्बिया, जियार्जिया, इलिनोम, इओबा, कांसस, लूसियाना, मेन मासाचुसेट, मोंटाना, नेब्रास्का, न्यूहेम्पशायर, न्यूयार्क, ओकलाहोमा, रोड द्वीप, उता, वर्जिनिया और विसकौंसिन में दूसरे या तीसरे अपराध पर सजा बढ़ा दी गयी पर आजन्म कैद नहीं रखी गयी। कैलिफोर्निया, केंटकी, टेक्सस, वाशिंगटन तथा वेस्ट वर्जिनिया में तीसरे अपराध पर आजन्म कैद अनिवार्य है। इदाहो में दंड जज की इच्छा पर निर्भर करता है। कोलोराडो, फ्लोरिडा, मिचिगन, मिन्नेसोता, मिसूरी, नेवांदा, न्यूजर्सी, ओहियो तथा वियोमिंग प्रदेश में चौथे अपराध पर आजन्म क़ैद देना अनिवार्य है। नार्थ डकोता, औरेगोन, पेनसिलवानिया तथा साउथ डकोटा में आजन्म कैद जज की इच्छा पर निर्भर करती है।[२] किन्तु क़ानून की किताब में कठोर नियम बन जाने से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि दंड भी उतना ही मिलता है। मासाचुसेट ऐसे पुराने खयाल के प्रदेश ने आजन्म क़ैद का नियम बना रखा है पर सन् १८८७ से यह नियम होते हुए भी आज तक एक भी आदतन अपराधी को आजन्म क़ैद नहीं मिली।[३] एक स्पेशल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि वहाँ अब तक ऐसे जघन्य अपराध में आदतन अपराधियों पर, जिन पर तीसरा या चौथा दोष था, ४६३ मामलों में ८० तीन या चार बार के निश्चित अपराधी थे, पर एक को भी आजन्म क़ैद नहीं हुई। १८१ को यानी ३९.१ प्रतिशत को प्रोबेशन अफसर की निगरानी में छोड़ दिया गया।

१. वही– Paul Tappan–पेज ५०१

२. फ्लोरिडा प्रदेश में बच्चों के साथ व्यभिचार करनेवालों के लिए बड़े कठोर नियम बनाये गये हैं।

३. Sexual Offences–पृष्ठ ५०५

मानसिक रोगी

नयी खोज के अनुसार अब कोई आदतन अपराधी नहीं है। मनोविज्ञान ने वासना के अपराधियों की एक श्रेणी निर्धारित की है जिसे मानसिक रोगी[1] या मानसिक कामुक रोगी कहते हैं। जिस तरह किसी को मृगी का या दमा का दौरा होता है, उसी प्रकार कामवासना का भी दौरा होता है और उस दौरे में वह अपने को रोक नहीं सकता। दोष उसका नहीं, मनोवैज्ञानिक आक्रमण का है। अतएव उस व्यक्ति को यातना देने से या जन्म भर क़ैद में सड़ाने से क्या लाभ? इस रोग की शुरुआत बचपन से ही हो जाती है। इसकी रोकथाम घर से ही होनी चाहिए। यदि नहीं की गयी तो पिता-माता या अध्यापक दोषी हैं, न कि अपराधी। सन् १९२६ में १७ वर्ष की उम्र से कम के बाल अपराधियों की जाँच की गयी[2] तो पता चला ६९४ लड़के अपराधियों में से ३३ ने कन्या से संभोग किया था, ३२ हस्तक्रिया करते थे, २९ पुरुष-पुरुष संभोग या पशु-संभोग करते थे, १५ ने अश्लील प्रहार किये थे तथा १० ने अश्लील प्रदर्शन किया था। यानी ६९४ में से ११९ वासना के अपराधी थे। ३०६ (अपराधिनी) लड़कियों की समीक्षा से पता चला कि १८० लड़कियाँ लड़कों के साथ सम्बन्ध कर चुकी थीं। २२ हस्तक्रिया करती थीं। ९ परस्पर स्त्री-स्त्री संभोग करती थीं तथा १३ अश्लील प्रदर्शन एवं प्रहार की दोषी थीं। इस प्रकार ३०६ में से २२४ वासना की अपराधिनी थीं। लड़के १७, १८ प्रतिशत ही व्यभिचारी थे, पर लड़कियां ७० प्रतिशत दुराचारिणी थीं।

इसी लिए वासना के मानसिक रोगी के लिए संयुक्त राज्य के २२ प्रदेशों ने, जिनमें हवाई प्रदेश भी शामिल है, विशेष कानून बना रखे हैं तथा कनाडा राज्य ने भी अलग नियम बना लिया है। न्यूजर्सी प्रदेश ने सन् १९५० में तथा वियोमिंग ने १९५१ में इनके लिए नियम बनाये। आधुनिक अपराधशास्त्र ने मनोवैज्ञानिक से बड़ा सहारा लिया है। वासना एक सहज तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह अपराध नहीं है। अपराध वहीं हो सकता है जहाँ नियंत्रण तथा समाज की व्यवस्था के बाहर हो जाय। पर "क्षणिक उत्तेजना" वश, "भावुकता में", "उचित-अनुचित का निर्णय करने में भूल के कारण", "भावुकता के कारण" या "प्रेरणा को नियंत्रण में रखने में कमजोरी"

१. Psychopath

२. जांच संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई, देखिए Individual Delinquency (Healy)—पृष्ठ १४८, १४९, १५०

के कारण मनुष्य वासना के अपराध करता है, अतः यह मानसिक रोग हुआ। किन्तु इस रोग का निदान, इसकी पहचान या छानबीन बड़ी कठिन बात है। आज संयुक्त राज्य के कई प्रदेशों में, जैसे न्यूजर्सी में ही, बलात्कार तथा अप्राकृतिक प्रसंग ऐसे जघन्य अपराधों को भी मानसिक रोग के चश्मे से देखकर उदारता तथा सहानुभूति पूर्वक विचार करते है।[१] मिन्नेसोता प्रदेश का कहना उचित प्रतीत होता है कि राज्य का "सुधार का महकमा" बदलकर "मानसिक रोग-विभाग" क़ायम करना चाहिए।

चिकित्सा तथा सुधार

नियमानुसार वासना के अपराधी की दो मनोवैज्ञानिकों द्वारा परीक्षा करानी चाहिए। यह काम उन पर मुक़दमा चलने के पहले होना चाहिए। पर न्यूजर्सी तथा वरमौंट को छोड़कर सरकारी ख़र्च पर केवल इसी कार्य के लिए मनोवैज्ञानिक किसी ने नियुक्त नहीं किये हैं। बहुत से राज्यों में मनोवैज्ञानिक निदान या निर्णय का काम अदालतों पर ही छोड़ दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि कारागारों में या पागलख़ानों में रोगी और नीरोग, बीमार और तन्दुरुस्त, मिलजुल जाते हैं। एक साथ रखे जाते हैं, जिसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ४८,००० मनोवैज्ञानिक हैं पर सरकार द्वारा पोषित बहुत कम हैं।

एक विचारधारा यह भी है कि कामुक भावना के प्रभाव को हर अपराध में तथा प्रत्येक कार्य के साथ नत्थी नहीं कर देना चाहिए तथा उसके प्रभाव की व्यापकता को बढ़ा देने से हमारे दिमाग़ से और बातें गुम हो जातीं हैं।[२] बहुत-सी बातें तथा उनका कारण मार-पीट करके मालूम किये जाते हैं। मि० विलियम सार्जेन्ट के कथनानुसार ब्रिटिश पुलिस भी अपराधियों से अपराध क़बूल कराने के लिए पुराने दक़ियानूसी तृतीय श्रेणी के तरीक़े, मारपीट आदि का प्रयोग करती है। यानी सब कुछ मनोविज्ञान ही नहीं है। समय-विज्ञान का भी महत्त्व है।

१. इस संबंध में यह लेख अवश्य पढ़ना चाहिए—"The Sexual Psychopath—A Civic—Social Responsibility"—Journal of Social Hygiene–Vol. 35, No. 8 Page 368-74

२. William Sargeant **ने अपने ग्रन्थ** "Battle for Mind" **में इसकी बड़ी अच्छी व्याख्या की है।**

न्यूयार्क में, सन् १९५७ के दिसम्बर मास के प्रथम सप्ताह में कई हजार मनोवैज्ञानिक एकत्र हुए। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों की संस्था[१] ने सर्वसाधारण विषय, औद्योगिक विषय तथा समाजविज्ञान पर २७ व्याख्यान कराये। पर इस अवसर पर सब बातों की एक बात श्री लिंडसे ने कही थी कि "मुझे इस बात से बड़ी परेशानी हो रही है कि मौजूदा बहुत से अहम मसलों पर भी हमारी इत्तला बहुत कम है। हम मूल कारणों की जाँच करते हैं। मूल कारण वही हो सकते हैं जिनकी हमको सबसे अधिक जानकारी हो, पर आज परिस्थिति यह है कि हम उसी को मूल कारण बनाते हैं जिसकी हमको सबसे कम जानकारी है।"[२]

यही दशा अपराधी की चिकित्सा के सम्बध में है। अस्पतालों में इनके लिए अलग स्थान नहीं है। पागलखानों में इनके लिए अलग प्रबंध नहीं है। वासना के अपराधियों की विशेष चिकित्सा के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका इतने बड़े देश में भी प्रबंध नहीं हो पाया है। और फिर इनको केवल अस्पताल में रख देने से ही चिकित्सा नही हो जाती। अदालतों में भी, वासना के अपराध में, मानसिक रोग की दुहाई सब जगह स्वीकार नही की जाती। मिचिगन, न्यू हैम्पशायर तथा इन्डियाना में यह दलील कि "मानसिक रोगी" है, अदालत मे मान ली जाती है। अन्यत्र इसे मानना या न मानना अदालत की इच्छा पर निर्भर करता है।

रिहाई के समय भी इस बात की छानबीन कर ली जाती है कि अपराधी में सुधार भी हुआ है या नहीं? क्या इतना सुधार हो गया है कि वह अब समाज के लिए खतरनाक न साबित हो? यदि ऐसा अन्दाज़ लगे कि उसमें कुछ खराबी रह गयी है तो या तो उसकी रिहाई रोक दी जाय या किसी विशेष अस्पताल आदि में और चिकित्सा के लिए भर्ती करा दिया जाय। यह नियम आदतन अपराधी के लिए है। इंडियाना प्रदेश में ऐसे अपराधी की जाँच प्रति वर्ष की जाती है और रिपोर्ट अदालत को तथा "मानसिक स्वास्थ्य समिति" के पास भेजी जाती है। विसकौसिन, न्यूजर्सी तथा वियोमिग में आदतन अपराधी की सज़ा अनिश्चित काल के लिए होती है पर यह ध्यान रखा जाता है कि उस अपराध के लिए क़ानूनन जितनी सज़ा साधारण (प्रथम बार) अपराधी के लिए है, उससे ज्यादा न बढ़े तो उचित हो। न्यूयार्क में नियम है कि

१. American Psychological Association

२. Lecture of Dr. Ogden Lindsey of Harward Medical School, American Psychological Association, Sept., 1957

उसी अपराध के लिए न्यायाधीश एक दिन से लेकर आजन्म क़ैद की सज़ा दे सकता है—वह जैसा उचित समझे। ओहियो, वर्जिनिया, विसकोसिन प्रदेशों में निश्चित रूप से अनिश्चित काल तक के लिए आदतन कामुक जघन्य अपराधी को सज़ा देते हैं।

अस्तु, संयुक्त-राज्य अमेरिका में विभिन्न प्रदेशों में अधिक से अधिक तथा कम से कम सज़ा, वासना संबन्धी अपराधों के लिए निम्न प्रकार से हैं—

अपराध	प्रदेशों की संख्या	कम-से-कम सज़ा	अधिक-से-अधिक सज़ा
ताक झांक	६	डालर २५—५०	एक वर्ष
लम्पटपन	८	डालर ५—२५	एक वर्ष
अश्लील प्रदर्शन	३६	डालर ५—२५ या ३०दिन	तीन वर्ष
माता - पिता - भाई - बहन संभोग	५०	१ से ३ वर्ष या डालर २००—१०००	बीस वर्ष[1]
पुरुष-पुरुष संभोग	५०	१ से ३ वर्ष	आजन्म क़ैद[2]
बलात्कार	५०	२ से २१ वर्ष	प्राणदंड या आजन्म क़ैद[3]
वेश्यागमन	३५	डालर २०	एक से पाँच वर्ष
पर-पत्नीगमन	४४	डालर २०	पाँच वर्ष या १००० डालर
अय्याश तथा लती व्यक्ति	२८	डालर २० से १००	पाँच वर्ष या ५०० डालर
बहुपत्नी (दो)	५०	डालर ४०० से २००० या तीन महीने से ६ वर्ष	डालर ५००० तथा १० वर्ष[4]
बच्चों के साथ अय्याशी	२४	डालर २०० या १ माह से दो वर्ष	बीस वर्ष[5]
वेश्यावृत्ति	४७	पाँच डालर से ५० डालर, या १० से ३० दिन	डालर १००० या तीन वर्ष

१. न्यू हैम्पशायर प्रदेश २. जिआर्जिया ३. देलावेयर ४. कैलिफोर्निया ५. वाशिंगटन

वीभत्स कार्य	४८	१० से ५०० डालर या ६ महीना	१० से १००० डालर या ३० दिन से १० वर्ष[1]
अय्याशी का व्यवहार	२२	डालर[2] २५	१० वर्ष[3]

संयुक्तराज्य के वासना सम्बन्धी दंड-विधान का निचोड़ ऊपर दे दिया गया। वहाँ की परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री टप्पन लिखते हैं[4]—

"संयुक्त राज्य के अपराधी-समूह में कामवासना के उग्र तथा भयावह अपराधी एक प्रकार से बहुत कम हैं। ऐसे अधिकांश अपराधी विनम्र, आज्ञाकारी इत्यादि हैं। वे समाज के लिए परेशानी का कारण हो सकते हैं, ख़तरा नहीं हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वे किसी एक प्रकार के लोगों में से नहीं हैं बल्कि बहुत ही भिन्न श्रेणियों में से हैं। वासना के अपराधियों में बहुत कम ऐसे हैं जो दुबारा वही अपराध करते हैं। वे चोर डाकुओं की तरह से उसी अपराध को बारबार नहीं दुहराते। यदि ठिकाने से चिकित्सा की जाय तो सज़ा की मियाद के भीतर ही ऐसे अपराधियों का सुधार हो सकता है। पर जिन अपराधियों को हम सुधार के परे समझते हैं, उनको अनिश्चित काल तक के लिए रोक रखना उचित नही है। क्योंकि अन्य जघन्य अपराधियों को भी बिना सुधारे छोड़ दिया जाता है.... मेरे पास जो कुछ प्रमाण हैं उनसे मैं यही कह सकता हूँ कि इस दिशा में वासना के अपराधी की आन्तरिक भावना तथा प्रवृत्ति की थाह लगाने में तथा वासना के अपराधों में रोकथाम करने में हम सफल नहीं हुए हैं....इस विषय में असली खोज होनी चाहिए, न कि नये-नये क़ानून बनाते जायें तथा लम्बी-लम्बी सजाएँ देते रहें।"

श्री टप्पन एक स्थान पर लिखते हैं कि "यह स्पष्ट है कि छोटे-मोटे वासना के अपराधों के लिए कुछ जुर्माना कर देना या कुछ दिनों की क़ैद से कोई फ़ायदा नहीं होता। पर इसके साथ ही सवाल उठता है कि क्या लम्बी क़ैद या अनिश्चित काल के लिए क़ैद से भी कोई लाभ हुआ है? अभी तक का अनुभव यह सिद्ध करता है कि अप्राकृतिक संभोग, अश्लील व्यवहार तथा प्रदर्शन, ताक-झांक, लपक-झपक और अन्य साधारण वासना के अपराधों की रोकथाम का कोई उपाय नहीं है।"[5]

१. ओकलाहोमा २. एक अमेरिकन डालर लगभग पाँच रुपए के बराबर हुआ ३ नेवादा ४. Sexual Offences—पृष्ठ ५१३–५१४ (सारांश) ५. वही, पृष्ठ ५१२

(४) अन्य देशों की स्थिति

बेलजियम में

बेलजियम यूरोप का एक छोटा सा, पर बड़ा उन्नत राज्य है। वासना सम्बन्धी अपराधों में इस राज्य का दृष्टिकोण ही बिल्कुल भिन्न है। इस देश में अनैतिकता का अपराध उसे ही मानते हैं जिससे समाज की क्षति हुई हो, जैसे या तो पीड़ित व्यक्ति बच्चा हो या उसकी स्वीकृति न प्राप्त हुई हो।[१] यदि परिवार में ही व्यभिचार हो तो उसका निदान धर्म-समाज या साधारण समाज अपनी व्यवस्था के अनुसार करे। राज्य से कोई मतलब नहीं है। बेलजियम विधान के अनुसार "अपराध" उसे कहते हैं जिसके करने पर ५ से १० वर्ष तक की क़ैद या प्राणदंड मिले। जिस कार्य पर आठ दिन से लेकर ५ वर्ष क़ैद तथा २६ फ्रैन्क से लेकर बीस गुना अधिक तक अर्थदंड मिले, वह उप-अपराध है।[२] "भूल-चूक"[३] उन अपराधों को कहते हैं जिनमें एक दिन क़ैद तथा एक फ्रैन्क दंड से लेकर ७ दिन क़ैद तथा २३ फ्रैन्क अर्थदंड मिले। क़ानून सं० ७९ के अनुसार यदि अदालत चाहे तो प्राणदंड की सज़ा को तीन वर्ष की क़ैद, सपरिश्रम आजन्म क़ैद को तीन वर्ष, १५ वर्ष के कठिन कारावास को २ वर्ष तथा १० वर्ष से १५ वर्ष कठोर कारावास को ६ महीने की सज़ा में बदल सकती है।

बेलजियम क़ानून की कई विचित्रताएँ हैं। वहाँ पर सार्वजनिक स्थान पर किये गये अश्लील कार्य तथा बच्चों के साथ किये गये अश्लील कार्य का दंड अधिक कठोर है। सार्वजनिक स्थान पर, जैसे सड़क पर, रात के अँधेरे में भी अश्लील कार्य करना अपराध है। "सार्वजनिक स्थान" उसे कहते हैं जहाँ उस काम को देखनेवाला ऐसा साक्षी मौजूद हो जो स्वयं उस काम से सहमत न हो। यदि घर में भी १६ वर्ष की उम्र से कम लड़का या लड़की के सामने अश्लील कार्य किया जाय और वे देख रहे हों तो अश्लील कार्य समझा जायगा। आँख से अश्लील इशारा भी, जिससे ज़बर्दस्ती का अन्दाज लगता हो अश्लील कार्य है। पुरुष-पुरुष का या स्त्री-स्त्री का संभोग स्वतः कोई अपराध नहीं है पर अश्लील प्रहार के अन्तर्गत आ सकता है। दफ़ा ३७९ के अनुसार वेश्यावृत्ति हर हालत में अपराध है पर पिता माता, भाई-बहिन के साथ व्यभिचार कोई अपराध तब तक नहीं है जब तक १६ से २१ वर्ष की अविवाहित

१. Prof. E. Dumon का लेख–Sexual Offences पृष्ठ ४९६

२. Delits

३. Contraventions

कन्या या लड़के के साथ पिता-माता का व्यभिचार न हो। यदि १६ वर्ष से ऊपरवालों के साथ उनकी स्वीकृति से किया जाय तो पिता-माता के साथ किया अपराध भी "अश्लील प्रहार" की श्रेणी में आ जायगा। बलात्कार स्वतः कोई अपराध नहीं है।दफ़ा ३७५ के अनुसार ज़बर्दस्ती प्रसंग करने का प्रयास दंडनीय है। यह कहना कि असली काम तो हुआ नहीं था, कोई बचाव नहीं है। काम की तैयारी ही काफ़ी है। धारा ३७५ के अनुसार बालिग के साथ ज़बर्दस्ती संभोग करने पर ५ से १० वर्ष कठोर कारावास, १६ से २१ वर्ष के भीतर १० से १५ वर्ष, १६ से नीचे १० वर्ष की उम्र तक के साथ १५ से २० वर्ष तथा १० वर्ष से नीचे के साथ आजन्म क़ैद की सज़ा है। १४ वर्ष की उम्र या उससे कम की लड़की के साथ, उसकी स्वीकृति होने पर भी सहवास करना बलात्कार है।

डेनमार्क में

डेनमार्क में सन् १९३३ से १९५३ के बीच में पुलिस ने १९,५५२ व्यक्तियों को वासना सम्बन्धी अपराधों में सज़ा करायी। इनमें से १०,०४४ को अदालतों द्वारा सज़ा मिली तथा ९,५४९ मामले आपस में निपटा दिये गये। अब ज़्यादातर मामले अदालत में आते है। डेनमार्क की पुलिस का अन्दाज़ है कि राजधानी कोपेन-हेगन में (आबादी लगभग १२ लाख) वासना के जिन अपराधों का पता चलता है उनमें से केवल ४५ फ़ीसदी अदालतों तक पहुँच सकते हैं तथा अन्य नगरों तथा देहातों में (आबादी ३५ लाख) ८० प्रतिशत तक अदालत या पंचायत में आ जाते हैं। वासना के अपराध काफ़ी बढ़ गये हैं। सन् १९३३ में ५४२ अपराध तथा ८९४ अपराधी थे। सन् १९५३ में १५८८ अपराध तथा २१३७ अपराधी थे। इनमें स्त्रियों की संख्या काफ़ी कम है। ऊपर दिये गये १९,५५२ व्यक्तियों में केवल ६९७ महिलाएँ अपराधिनी थीं जिनमें पिता या भाई के साथ संभोग के लिए ४२३ स्त्रियों का चालान हुआ। ६३ भद्दे ढंग से अपने शरीर को खुला रखने के लिए दंडित हुई; १४ स्त्री-स्त्री प्रसंग की अपराधिनी थीं।

डेनमार्क के १९३५ के क़ानून के अनुसार अदालत वासना के अपराधी की इन्द्रिय भी कटवा सकती है। बहुत से अपराधी अपने मन से ऐसा करा देते हैं। पर मनो-वैज्ञानिक चिकित्सक उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं, या ज़ोर नहीं देते।[1] यदि वासना का

१. डेनमार्क में वासना सम्बंधी अपराध तथा कानून की पूरी जानकारी के लिए पढ़िए—"Treatment of the Sex Offender in Denmark"—American Journal of Psychiatry, Vol., 108 No. 4, Page 241-50

अपराधी पागल भी समझा जाय तब भी सज़ा दी जाती है। हाँ, उसे पागलखाने में इलाज के लिए भेज सकते हैं। यदि एक बार अपराध करने के बाद कोई दुबारा करे (छूटने के तीन साल के भीतर) तो उसे अनिश्चित काल के लिए जेल भेज देते हैं।

१५ वर्ष की उम्र से कम के बच्चे यदि अपराध करें तो वे अदालत के सामने नहीं लाये जाते, सुधार-गृह भेज दिये जाते हैं। धारा २१० से २३२ तक केवल वासना के अपराधों के लिए हैं। इनके द्वारा ३ दिन से लेकर १० वर्ष तक की सज़ा मिल सकती है, पुरुष-पुरुष संभोग या सह-योनि संभोग में (धारा २२५) ३० दिन से ३ वर्ष की सजा मिलती है। पशु के साथ संभोग में भी इतनी ही सज़ा है। पैसा लेकर अप्राकृतिक प्रसंग करानेवाले पुरुष को ३० दिन से २ वर्ष की सजा, महिला के प्रति अश्लील व्यवहार पर एक माह से ४ वर्ष तक की सजा है। २१ वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ व्यभिचार पर ३ वर्ष तक की सज़ा है। विक्षिप्त महिला, चाहे पत्नी ही क्यों न हो, के साथ व्यभिचार पर आजन्म क़ैद तक की सजा हो सकती है। सोयी हुई स्त्री के साथ या दूसरे आदमी के वेष में व्यभिचार करने पर छः वर्ष तक की क़ैद हो सकती है। डरा धमका या फुसला कर स्त्री को प्राप्त करने पर ८ वर्ष तक की कैद है। बलात्कार के लिए यह साबित करना होगा कि स्त्री की रज़ामन्दी नहीं थी। माता-पिता, भाई-बहिन के साथ संभोग पर आजन्म क़ैद हो सकती है।

स्वीडन-नार्वे

अपराध-शास्त्र तथा अपराध-विज्ञान की दृष्टि से नार्वे और स्वीडन दोनों ही बहुत प्रगतिशील देश समझे जाते हैं। इन दोनों देशों में एक बड़ा अच्छा नियम है। ब्रिटेन या भारत में अपराधी "प्रोबेशन" पर छोड़ा जाता है। स्वीडन तथा नार्वे में वासना के अपराधियों के लिए विशेष "चिकित्सालय" खुले हुए हैं। दूसरे वहां पर अदालतों को अधिकार है कि सज़ा को "स्थगित" कर दें यानी अपराधी को घर रह कर सुधरने का मौक़ा दें और यदि उसमें सुधार के लक्षण न पाये जायँ तो जेल भेज दें। दोनों ही देशों में आदतन अपराधी को कम-से-कम पाँच वर्ष के लिए "सुधार-गृह" भेज देते हैं। यदि पाँच वर्ष में न सुधरा तो और ज्यादा रहना होगा। नार्वे में सन् १९४७-५० के बीच में वासना सबन्धी ६४१ व्यक्तियों को दंड मिला, जिनमें से २७५ यानी ४३ प्रतिशत की सज़ा स्थगित कर दी गयी। सन् १९४६-४७ में ११८ सज़ाएँ स्थगित की गयीं जिनमें से ८ ने पुनः अपराध किया। स्थगित सज़ा में दुबारा अपराधी को कम मौक़ा मिलता है। स्वीडन में सन् १९५१ में ३७२

व्यक्तियों को बलात्कार आदि जघन्य अपराधों के लिए सज़ा मिली जिनमें से २४५ यानी ६६ प्रतिशत की सज़ा स्थगित की गयी। दोनों ही देशों में अपराधी की इच्छा पर उसके अंडकोष काटे जा सकते हैं या इन्द्रिय ही काट दी जा सकती है। पर इसके लिए स्वास्थ्य बोर्ड के अध्यक्ष से अनुमति लेनी पड़ेगी। दोनों ही देशों में वासना के अपराधी के सम्बन्ध में अदालत के सामने दो मनोवैज्ञानिकों की रिपोर्ट होनी चाहिए। दोनों ही देश पागलपन में किये गये अपराध को क्षम्य मानते हैं।

स्वीडन में पुरुष-पुरुष संभोग या परस्पर योनिप्रसंग कोई अपराध नहीं है। १८ वर्ष से कम उम्र के या १८ से २१ वर्ष की उम्र के भीतर के लोगों के साथ उनकी अनुभवहीनता का लाभ उठाकर किया गया व्यभिचार होने पर दंडनीय होता है। यह सन् १९५३ के नये नियम, धारा १० और १० ए भाग १८ के अनुसार है। सन् १९४७ से १९५१ के बीच में २१९ व्यक्तियों को इस अपराध में दंड मिला पर किसी की सज़ा एक वर्ष से अधिक नही थी। नार्वे में धारा २१३ के अनुसार केवल पुरुष-पुरुष सम्बन्ध ही दंडनीय है। स्त्री-स्त्री सहवास अपराध नहीं है। पर पुरुष-पुरुष संभोग पर भी तभी मुक़दमा चलाना चाहिए जब सार्वजनिक हित में नितान्त आवश्यक हो। सज़ा भी केवल एक वर्ष तक है। इसी धारा के अन्तर्गत पशु-संभोग भी दंडनीय है। सन् १९५३ के नियमानुसार २१ वर्ष के नीचे के लोगों की विशेष रक्षा का प्रबंध किया गया है।

माता-पिता, भाई-बहिन आदि के साथ संभोग के संबन्ध में १ से ८ वर्ष तक कारागार का नियम नार्वे में है। १६ वर्ष के बच्चे या लड़की पर अभियोग नहीं लगता। भाई-बहिन के संभोग में दो वर्ष की सजा है। सन् १९४७ से १९५० के बीच में ऐसे अपराध में १२ पुरुषों को तथा ४ स्त्रियों को धारा २०७ के अनुसार दंड मिला। स्वीडन में प्रत्यक्ष सम्बन्धियों तथा भाई-बहिन के संभोग में भाग १८ धारा १-३ के अन्तर्गत दस वर्ष की सज़ा मिल सकती है। स्वीडन में अपने आश्रितों के साथ संभोग पर विशेष कठोर दंड मिलता है। सन् १९४९ में ऐसे २१ अपराध (माता-पिता, भाई-बहिन प्रसंग) हुए। तब से अब तक प्राय: २०-३० के बीच में ऐसे अपराध प्रति वर्ष होते हैं। स्वीडन में वेश्यावृत्ति के लिए अपनी कन्या का या किसी दूसरे की कन्या का उपयोग करने पर ४ वर्ष तक की सज़ा मिलती है।

नार्वे में १६ वर्ष से नीचे के बालक-बालिकाओं के साथ अश्लील कार्य करने पर ६ महीने से ३ वर्ष की सज़ा तथा दुबारा अपराध करने पर २ से ५ वर्ष का दंड है। १४ वर्ष की कन्या से प्रसंग करने पर कम-से-कम ३ वर्ष और अधिक-से-अधिक १५ वर्ष की क़ैद है। सन् १९४७-५० के बीच में २५७ व्यक्तियों को इस प्रकार के अपराध

में दंड मिला। स्वीडन में अश्लील कार्य के अंतर्गत अश्लील प्रदर्शन भी आ जाता है। सन् १९५३ की धारा १३ भाग १८ के अनुसार किसी को अश्लील ढंग से छू लेना भी अपराध है। सन् १९४२ से १९५१ के बीच में इस धारा में औसतन २४३ व्यक्तियों को दंड मिला। अधिकांश पर जुर्माना हुआ और कुछ को छः महीने तक की क़ैद हुई।

नार्वे के दंडविधान की धारा १९२ के अनुसार बलात्कार "उस अभद्र प्रसंग" को कहते हैं जो किसी के साथ उसके प्राण या स्वास्थ्य का भय दिखाकर किया जाय। इसी के अन्तर्गत यदि कोई स्त्री भी पुरुष को प्रसंग के लिए भयभीत कराये तो दंडनीय होगी। ऐसे अपराध के अन्तर्गत ३ से १० वर्ष तक की सज़ा हो सकती है। यदि ऐसे कार्य में मृत्यु हो जाय तो आजन्म क़ैद की सज़ा होगी। धोखा देकर प्रसंग करना या बेहोशी या निद्रा की हालत में किया गया प्रसंग बलात्कार नहीं है। जीवन तथा स्वास्थ्य का ख़तरा न होते हुए भी, डराकर प्रसंग करना ३ महीने से ६ वर्ष तक के लिए दंडनीय है।

स्वीडन में बलात्कार उसे कहते हैं जिसमें पुरुष स्त्री से ज़बर्दस्ती प्रसंग करे। दंडविधान के भाग १५, धारा १२ के अनुसार अपराधी को कम-से-कम चार वर्ष की सज़ा मिलती है। अपराध की गुरुता के अनुसार आजन्म क़ैद भी हो सकती है। स्वीडन में निद्रित, बेहोश या उन्माद में पड़ी स्त्री के साथ प्रसंग भी बलात्कार है।

अध्याय ११

वासना और अपराध का सम्बन्ध

पृथ्वी में भिन्न-भिन्न देशों में, जातियों तथा सभ्यताओं में वासना का अपना-अपना रूप है। जो चलन है तथा समाज का उसके प्रतिकूल या अनुकूल अनुशासन है, उसके सम्बंध में मेरे विचार से ऊपर के पृष्ठों में अध्ययन की प्रचुर सामग्री दे दी गयी है। और कल के समाज तथा आज के समाज के पतन की परिभाषा भी पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। अब सोचना यह है कि क्या काम-वासना के अपराध स्वतः अपने में ही समाप्त हो जाते हैं अथवा विश्व के अन्य अपराधों में या अपराधी जगत् में भी उनका कोई भाग होता है। सिगमंड फ्रायड ऐसे प्रकाण्ड मनोवैज्ञानिक ने समूचे अपराध का जनक कामभाव या कामवासना को माना है।[1] इस विषय पर हम आगे चलकर लिखेंगे। पर सब बातों की बात मेरी दृष्टि में सन् १८६९ में क्वेटलेट ने अपने ग्रन्थ में कह दी थी।[2] मेरे विचार से उनका वाक्य अमर है—"समाज अपराध को तैयार करता है। अपराधी उसे कार्यरूप में परिणत करता है।" प्रश्न यह है कि ज़हर तैयार करनेवाला दोषी है या खानेवाला या दोनों। किन्तु पुराने अपराधशास्त्री इटालियन सिजारी लोम्ब्रोज़ो का एक दूसरा ही मत है और उनका मत वासना तथा अन्य सभी अपराधों के लिए लागू होता है। लोम्ब्रोज़ो[3] आधुनिक अपराध शास्त्र के जन्मदाता कहे

१. Sigmund Freud—"The Contributions to the Sexual Theory"—New York—Journal of Mental & Nervous Diseases—Page 91

२. क्वेटलेट (जन्म १७९६—मृत्यु १८७७) "Social Physics" By Quetlet—प्रकाशित १८६९

३. लोम्ब्रोजो का जन्म १८३६ में एक यहूदी परिवार में हुआ था। १८६६ में इन्होंने मनोविश्लेषण में विशिष्ट शिक्षा समाप्त की। ये चिकित्सक (डाक्टर) भी थे। १९०९ में इनकी मृत्यु हुई।

जाते हैं, यद्यपि स्वयं उनके ग्रंथ[1] से पता चलता है कि उनके पहले भी बड़े-बड़े अपराध-शास्त्री हो गये थे। ५९०७ अपराधियों के चेहरे, मुख, आँख, नाक, कान आदि की परीक्षा कर तथा ३८३ मुर्दा खोपड़ियों की परीक्षा कर लोम्ब्रोज़ो इस नतीजे पर पहुँचे कि विशिष्ट प्रकार की नाक, आँख, कान या बनावट वाले व्यक्ति ही विशेष प्रकार के अपराध करते हैं। अपने निष्कर्ष की पुष्टि में उन्होंने लिखा :—

"मैं जिन नतीजों पर पहुँचा हूँ वे इतिहासकाल के पहले से ही चले आ रहे हैं। होमर ने थरसाइटीज़ का ज़िक्र किया है। सोलोमन ने लिखा है कि हृदय जैसा होगा वैसा बुरे आदमी का चेहरा बदल जायगा। और सर्वोपरि अरस्तू, एविकन्ना और जे० बी० डल्ला पोर्टा ने अपराधियों के चेहरे तथा शरीर की रचना पर विचार प्रकट किये हैं तथा पिछले दो तो हमारे निष्कर्षों से भी आगे बढ़ गये हैं। और अब क्या कहें जब पोलोमन यहाँ तक कहते हैं कि अपराधी का मस्तक अमूमन पतला और कम चौड़ा होगा तथा उसका बायाँ हाथ ज्यादा चलता होगा।"

तब क्या यह माना जाय कि वासना के अपराधियों का नाक-नक्शा भी खास क़िस्म का होता होगा और उस प्रकार के नाक-नक्शे वालों पर नियंत्रण कर देने से, रोकथाम कर देने से, वासना के अपराध रुक जायँगे? हम रोज़ नयी बात सीखते हैं, सिद्धान्त बनाते हैं, मिटाते हैं। सन् १८०१ के पहले पागलपन तथा अन्य अपराध में कोई अन्तर नहीं था। दोनों को एक ही स्थान पर रखा जाता था। पागल को अलग कर उसे अपराधी न मानने का उपदेश पिनेल ने अपने ग्रन्थ[2] द्वारा १८०१ में दिया और तब से पागल को अन्य अपराधी वर्ग से पृथक् किया गया। शायद बहुत दिनों तक हम लोम्ब्रोज़ो के नाक-नक्शे वाले सिद्धान्त के धोखे में रहते कि अपराधी चार प्रकार के होते हैं—

१. जन्मजात अपराधी
२. वासना-अपराधी
३. पागल अपराधी तथा
४. समय-समय पर अपराध करनेवाले

लोम्ब्रोज़ो कामुक अपराधी के विषय में लिखते हैं—

१. Criminal Sociology Appleton & Co. 1915 लेखक—एनरिको फेरी—इस ग्रन्थ से लोम्ब्रोजो के विचार स्पष्ट रूप से समझ में आ सकते हैं।

२. Pinel—Medical & Philosophical Treatise on Mental Alienation–1801

"प्रभाव डालनेवाले क्षेत्र की विकृतियाँ, घृणा, विना संकल्प के ही उत्पन्न होनेवाली द्वेष या तिरस्कार की भावना, आत्म-नियंत्रण का एक दम अभाव या उसकी कमी, पैतृक प्रवृत्तियाँ—ये सब मिलकर अनैतिक रोगी की अवाधित भावनाओं को उत्पन्न करती हैं। यही बात जन्मजात अपराधी के लिए भी है।"[१]

आज का अपराध विज्ञान इनमें से किसी बात को नहीं मानता। कुछ वर्षों तक यह माना जाता था कि पैतृक कारणों से वासना के अपराध होते हैं, पर अब यह सिद्धान्त भी खंडित हो गया है। लोम्ब्रोज़ो के जीवन काल में ही उनके सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ानेवाला पैदा हो गया था। उसका नाम था एनरिको फ़ेरी।[२] सन् १८७६ में उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।[३] फ़ेरी का कहना था कि नाक-नक्शा या रूप रंग से अपराध का कोई संबंध नहीं है। अपराधी जो कुछ करता है वह अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्र इच्छा से। वे लिखते हैं—

"कोई भी अपराध, चाहे कोई भी करे तथा किसी भी परिस्थिति में करे, उसका और कोई कारण नहीं पर केवल यही कहा जा सकता है कि वह व्यक्तिगत स्वतंत्र इच्छा से किया गया है, या फिर प्राकृतिक यानी स्वाभाविक कारणों का स्वाभाविक परिणाम है। चूँकि इस कथन का कोई वैज्ञानिक महत्त्व नहीं है अतएव किसी अपराध के कारण का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण भी नहीं हो सकता। यह तभी सम्भव है जब यह विचार किया जाय कि विशिष्ट शारीरिक तथा सामाजिक वातावरण में विशिष्ट ऐन्द्रियिक और मनोवैज्ञानिक गठन पर अमुक कारण बनता है।"[४]

अपराध या अपराधी

पर इन लोगों के सिद्धान्तों को मिलाकर गैरोफाल्लो और भी आगे बढ़ गये। वे

१. लोम्ब्रोजो का एक व्याख्यान जरूर पढ़ना चाहिए—Speech at the sixth Congress of Criminal Anthropology at Turin in April, 1906. **इसके तीन वर्ष बाद ही वे मर गये।**

२. Enrico Ferri **इतालियन—जन्म १८५६**

३. इनका ग्रन्थ "The Theory of Imputability and Denial of Free Will"—Pub. 1876–**फेरी बोलोन विश्वविद्यालय में अपराधविधान के अध्यापक थे।**

४. Ferri—Criminal Sociology—**पृष्ठ ७४–७५, सन् १९१५ का प्रकाशन।**

ऊपर लिखे दोनों अपराधशास्त्रियों के समकालीन[1] थे। नेपुल्स (इटली) के विश्वविद्यालय में क़ानून के प्रोफ़ेसर थे और मजिस्ट्रेट के पद पर भी काम कर चुके थे। राज्य की कौंसिल के सदस्य भी थे। सन् १८५२ में इनका जन्म हुआ था। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ "अपराध शास्त्र" सन् १८८५ में प्रकाशित हुआ था। लोम्ब्रोज़ो और फ़ेरी से इनका काफ़ी मतभेद था पर लोम्ब्रोज़ो ने जिस बहुत बड़ी बात को शुरू किया था तथा फ़ेरी ने जिस सिद्धान्त की "पुष्टि" की थी, उसे गैरोफालो ने भी स्वीकार किया था। अपराधशास्त्रियों में लोम्ब्रोज़ो पहले व्यक्ति समझे जाते थे जिन्होने इस सिद्धान्त को चालू किया कि "अपराध" को मत देखो, "अपराध" स्वतः कोई वस्तु नही है, "अपराधी" का अध्ययन करो। इसलिए १९वीं सदी से "पाप" नहीं "पापी" को, अपराध नही अपराधी को महत्त्व देना शुरू किया गया। गैरोफालो जीवविज्ञान (लोम्ब्रोजो) तथा समाजविज्ञान (फ़ेरी) के द्वारा अपराधी की चिकित्सा नहीं करना चाहते थे। उनका उपचार मनोवैज्ञानिक था। वे चार प्रकार के अपराधी मानते थे—हत्यारे, उग्र अपराधी, सम्पत्ति के विरुद्ध अपराधी तथा कामुक वासना या ऐयाशी के अपराधी। इन चारों प्रकार के अपराधियों को वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुधार के परे तथा समाज के लिए घोर शत्रु समझते थे। स्वाभाविक अपराधी के प्रति दया करना वे अनुचित समझते थे। इस अपराधी-वर्ग को एकदम मिटाने के लिए उनके अनुसार प्राणदंड, आजन्म कारागार या देश-निकाला, यही तीन प्रकार की सज़ा होनी चाहिए। वे लिखते हैं कि "ऐसे अपराधी सामाजिक जीवन के अधिकारी नही हैं।"

धीरे-धीरे चलकर इस विचारधारा में और परिवर्तन होने लगे। यह विचार स्थिर हो गया है कि अपराध को नहीं, अपराधी को देखकर दंड देना चाहिए। फिर, दंड ही क्यों दिया जाय। समाज की रक्षा के लिए सुधार की भी आवश्यकता है और अपराधी को दंड न देकर उसका सुधार करना तथा अपराध की रोकथाम का उपाय करना अधिक श्रेयस्कर है। इस सिद्धान्त के अपनाने के पहले एक बीच का सिद्धान्त भी कुछ दिनों तब चालू था, जिसे "दुहरा प्रवेश" कहते हैं। इस मध्यम मार्ग के स्कूल के अनुसार फान हामेल ऐसे शास्त्री एक तरफ तो कुछ प्रकार के अपराधियों को कठोर दंड देने के पक्ष में थे तथा कुछ के सुधार के पक्ष में।[2] इसी विचारधारा के लोगों ने,

१. Refaele Garofalo **लेखक** "Criminology"—**सन् १८८५।**

२. International Union of Criminal Law. (आगे देखो)

जर्मनी के लिज़्त, बेलजियम के प्रिंज तथा हालैन्ड के फान हैमेल ने पेरिस में "अपराधी दंडविधान का अंतर्राष्ट्रीय संघ" सन् १८८९ में स्थापित किया। इस संघ की रचना ने अपराध-शास्त्र के जगत् में एक नयी जाग्रति तथा एक नयी हलचल पैदा कर दी। इस संघ ने कुछ ऐसे सिद्धान्त निर्धारित किये जिनका बड़ा महत्त्व है। संघ के अनुसार —

१. संघ का निश्चय है कि अपराध तथा दंड के साधनों का सामाजिक तथा न्याय की दृष्टि से पुनः समीक्षण किया जाय।

२. अपराध-विधान का उद्देश्य समाज में प्रचलित अपराधी प्रवृत्ति को दूर करना है।

३. दंड का बहुत अच्छा असर पड़ता है, पर दंड को अन्य सामाजिक उपायों से पृथक् न कर दिया जाय। सुधार के उपायों की उपेक्षा भी न की जाय।

४. कभी-कभी अपराध करनेवाले तथा आदतन अपराध करनेवालों में अन्तर है और इसी हिसाब से क़ानून बनना चाहिए।

पश्चिम के लिए आधुनिक अपराधशास्त्र के जन्मदाता बक्कारिया ने जो कुछ लिखा था, वह बात तो काफ़ी दूर पीछे रह गयी। १९वीं सदी का अन्त होते-होते अपराध के स्थान पर अपराधी व्यक्ति बहुत सामने आ गया और फ्रेन्च पंडित तार्दे[1] ने नैतिक ज़िम्मेदारी "व्यक्तिगत विशिष्टता तथा सामाजिक समनुकूलता" पर रख दी। वे लिखते हैं कि "यह विशिष्टता ही मानव के साथ स्थायी रूप से लगी हुई है.....: मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य अपनी चेतना तथा अन्तश्चेतना का समुच्चय मात्र है.....यह "मैं" है जो कि सामाजिक तथा राजकीय बंधनों से बँधा हुआ है। यह "मैं" है जो दूसरे के लिए अनुकरण या अनुकरण के अयोग्य होता है.....इसलिए व्यक्ति को नैतिक ज़िम्मेदारी महसूस कराने के लिए उस व्यक्ति को तथा उसके कार्य से पीड़ित व्यक्ति दोनों को ही महसूस कराया जाय कि दोनों एक देश के, एक समाज के तथा एक ही सामाजिक नियमों के अन्तर्गत रहनेवाले हैं।"

दण्डनीय कौन है ?

समाज तथा उसके प्रचलित नियम के साथ अपराधी का सम्बन्ध स्थापित करने का उद्देश्य यही था कि रोज़ लोग नये-नये नियमों की या अपराधों की कल्पना न किया करें। वरना, ज़िन्दगी दूभर हो जायगी। इसलिए इटालियन दंडविधान

१. Tarde–Penal Philosophy—पृष्ठ ११५

में सबसे पहले तथा फ्रेन्च राज्यक्रान्ति में "मानव के अधिकार की घोषणा" में, या पोलैण्ड के दंडविधान में १९३२ में, या फ्रांस के नये दंडविधान में १९३४ में, या जर्मनी के दंडविधान में सन् १९३७ मे यह स्पष्ट लिख दिया गया है कि "कोई भी व्यक्ति तब तक किसी कार्य के लिए दंडनीय न होगा जब तक कि उस कार्य के करने के पहले उसके सम्बन्ध में कोई क़ानून न बना हो।" जर्मनी में नाज़ी शासन-काल में भी इतनी गुन्जायश रखी गयी थी कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर राज्य के हस्तक्षेप का अनुचित प्रभाव न पड़े। सन् १९३५ में अन्तर्राष्ट्रीय दंड-विधान सम्मेलन के अवसर पर भाषण करते हुए (बर्लिन में) नाज़ी शासन के न्याय-मंत्री डा० गु् .नर ने कहा था कि "न्यायाधीशों का काम क़ानून बनाना नही है। उनका कार्य है व्यवस्थापक सभा द्वारा बनाये गये क़ानूनों के अनुसार काम करना। यदि किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए दंड का, क़ानून का, विशेष संकेत नहीं मिलता, तो खीचतान कर, किसी क़ानून के अंतर्गत उस व्यक्ति की सज़ा करने से कही बेहतर है उस अपराधी को छोड़ देना।"

किन्तु डा० गुतनर ने जितने ऊँचे सिद्धान्त की बात कही है, उतना ऊँचा सिद्धान्त व्यवहार में नहीं आता था। डा० गुतनर ने स्वयं अपने उपरिलिखित भाषण के सिल-सिले में आगे चलकर कहा था —

"न्याय का तक़ाज़ा है कि प्रत्येक अपराध का समुचित प्रायश्चित्त हो.... न्यायाधीश को यह हिदायत होनी चाहिए कि जान बूझकर किये गये अपराध में दुर्भाव कितना था, और दुर्भाव की कमी-बेशी के हिसाब से दंड दिया जाय तथा लापरवाही से किये गये अपराध में किस सीमा तक लापरवाही तथा अज्ञान था, उस हिसाब से ज़िम्मेदारी ठहरायी जाय।"[१]

हर अपराध दंडनीय है, यह नाज़ी सिद्धान्त नया नहीं है। इस सिद्धान्त को मानने-वाले काफ़ी लोग हैं। कार्ल रोदक ने, जिनका जन्म सन् १८०६ में तथा मृत्यु १८७९ में हुई थी, दंड की महत्ता ४र बहुत कुछ लिखा है। वे तो यहाँ तक कह बैठे हैं—[२]

"अपराधी को उसके कार्यों के लिए जो दंड मिलता है, वह उसे अभिशाप

१. Proceedings of the XI International Penal and Penitentiary Congress—Page 10-15

२. Bernaldo de Quiros—Modern Theories of Criminality—Pub. Little Brown & Co., 1912—Page 126

या वरदान समझता है, यह तो उसकी बुद्धि की स्थिति पर निर्भर करता है। उसके मन की जैसी नैतिक स्थिति होगी, उससे वह अनुमान लगा सकेगा कि उसका वास्तविक हित क्या है......अपराधी के लिए दंड को बुरा समझना वैसा ही है जैसे कोई मरीज़ अज्ञानवश दवा को बुरा समझे या बच्चा स्कूल जाने के लिए बाध्य किये जाने पर रोना शुरू करे।"

सन् १८६३ में ब्रिटेन के प्रधान विचारपति काकबर्न ने "रॉयल कमीशन" के सामने कहा था —

"इनका (दंड का) उद्देश्य दुहरा है। पहला यह कि वैसे ही लालच मे पड़कर वैसा अपराध करने से डरें या हिचकें तथा दूसरे, अपराधी का स्वत: सुधार हो। समाज की रक्षा के लिए प्रथम वस्तु अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि समाज का बहुत बड़ा स्वार्थ इसमें भी है कि अपराधी सुधरे पर ऐसा सुधार केवल एक व्यक्ति का होगा जब कि दंड के भय से समूचे समाज पर असर पड़ेगा......"

पर, दूसरे को दंड देने से क्या हमारा यानी समाज का कल्याण होता है? क्या यह सम्भव है? प्लेटो ने कहा था कि "जिसने हमारा नुकसान किया उसे नुकसान पहुँचाना कभी न्यायोचित नहीं होगा। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिजविक लिखते हैं—

"पुराने ढंग की सजाएँ दंड सम्बंधी लोकप्रिय भावनाओं में अब भी वर्तमान हैं। यह अब भी समझा जाता है कि न्याय का तकाजा है कि जिसने भूल की है उसे पीड़ा पहुँचायी जाय। मैं इस भावना का घोर विरोधी हूँ। मैं समझता हूँ कि यह भावना साधारण समझदारी से भी दूर है। धीरे-धीरे प्रगतिशील समुदायों में शिक्षित समाज इसके विरुद्ध होता जा रहा है।"[१]

इस प्रकार परस्पर-विरोधी भावनाओं के सामञ्जस्य की कोई सूरत न पैदा होती यदि सन् १९२६ में, दण्डविधान के प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में ३५० प्रमुख न्याय-पंडित एकत्र न होते। ब्रसेल्स कांग्रेस के एक प्रस्ताव ने हलचल तो बहुत मचा दी पर यह भी सत्य है कि उस प्रस्ताव ने अपराधी के लिए नया मार्ग खोल दिया। प्रस्ताव के अनुसार "समाज की रक्षा तथा दंड, दोनों ही न्यायाधीश के दायरे की चीजें हैं। न्यायाधीश को प्रत्येक मामले में घटनाओं को ठीक से समझकर, अपराधी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर यह निश्चय करना चाहिए कि वह दंड का पात्र है या सुधार का।" सन्

१. Sidgwick—Methods of Ethics—Pub. Macmillan & Co., London, Fifth Edition, 1893—Page 281

१९२५ में लन्दन में ९वें अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में लार्ड हाल्डेन ने ब्रसेल्स के प्रस्ताव की पृष्ठ-भूमि पर ही अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया था। उन्होंने कहा था कि "दंड की प्रतिशोधात्मक विशेपता हो सकती है, और सुधारात्मक विशेषता भी हो सकती है। इन दोनों रूपों से भिन्न भी एक रूप हो सकता है। अपराधी के लिए दंड निजी प्रायश्चित्त का भी रूप ग्रहण कर सकता है....अपनी स्वतंत्रता में रुकावट पड़ने की पीड़ा या अपने जीवन की हानि के भी दुःख को स्वीकार कर वह समाज के उन उमूलों को स्वीकार कर रहा है जिनके आधार पर दंड के नियम बने है और क़ानून के फल को स्वीकार कर वह अपराधी अपने साथियों की इच्छा तथा संकल्प को स्वीकार कर रहा है....इस उसूल को मान लेने से भला बनने तथा भला करने का एक नया रास्ता खुल जाता है और जेलों मे इस उसूल की ओर कैदी का ध्यान दिला-कर उसका बड़ा कल्याण किया जा सकता है....नैतिकता धर्म से भिन्न है और बिना धर्म का सहारा लिये भी उसकी सत्ता है।"

लार्ड हाल्डेन ने भी दंड का महत्त्व व्यक्ति के विचार से ही माना है, अपराध के विचार से नहीं। पर आज से पचास वर्ष पूर्व, ब्रिटिश पार्लमेण्ट में तत्कालीन गृहमंत्री विंस्टन चर्चिल ने एक ऐसा महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था जो आज भी अपनी विशेषता रखता है। उन्होंने कहा था—"अपराध तथा अपराधी के प्रति जनता की कैसी भावना है तथा दृष्टि है, उसीसे उस देश की सभ्यता का वास्तविक अनुमान लग सकता है। अपराधी तथा दंडित व्यक्ति के अधिकारों को समझदारी तथा निर्मम भाव से स्वीकार करना, दंड देने का काम जिनके ज़िम्मे है उनका बराबर अपने हृदय को टटोलते रहना, जिन्होंने दंड का अभिशाप प्राप्त कर लिया है, उनको उद्योग की दुनिया में फिर से बसा देना, अपराधी मनोवृत्ति में सुधार तथा नयी भावना की जाग्रति के उपायों को अनवरत रूप से ढूँढ़ते रहना, इस विषय में अटल विश्वास कि यदि आप चाहें तो हर एक हृदय में जो ख़ज़ाना छिपा है उसे ढूँढकर निकाल सकते है—अपराध तथा अपराधी के प्रति व्यवहार मे ये वे प्रतीक या चिह्न है जिनसे राष्ट्र की अन्तःशक्ति का अनुमान लगता है तथा राष्ट्र के भीतर वर्तमान सजीव गुणों का लक्षण तथा प्रमाण है।"

चर्चिल के उपरिलिखित महान् वाक्य आज भी अपराधशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए अति मूल्यवान् हैं और वास्तव में समाज के भीतर जो छिपा हुआ गुण है, वही इस बात का सबूत देता है कि हम सामाजिक नियमों की अवज्ञा करनेवाले का किस रूप में उपचार करना चाहते हैं। हमने पुस्तक के आरम्भ में ही हिन्दू धर्मशास्त्रों का उद्धरण देकर दंड की नीति बतलायी है। प्रत्येक धर्मशास्त्री ने अपराध पर विचार न कर व्यक्ति को, व्यक्तिविशेष को दोषी माना है तथा दंड की कल्पना न कर

प्रायश्चित्त की कल्पना की है। अतएव पश्चिम में भी पूर्व का यह मंत्र पहुँच गया है कि क़ानून का उद्देश्य व्यक्ति का सुधार करना है। व्यक्ति सदैव मुख्य वस्तु है, अपराध गौण है।

नीयत क्या है

इसी लिए ब्रिटिश क़ानून की सबसे बड़ी शक्ति है "नीयत का सबूत"। यदि अपराध हो गया और अपराधी की अपराध करने की नीयत नही थी तो वह निर्दोष है। इसी लिए सायर[१] ने आज के २७ वर्ष पूर्व लिखा था कि—"जब क़ानून घोर अपराधों के लिए ऐसे लोगों को दंड देने लगता है जो निर्दोष हैं तथा नैतिक दृष्टि से बेगुनाह हैं, वे व्यक्ति समाज के प्रतिष्ठित तथा सम्भ्रान्त सदस्य भी हो सकते है, तो उस क़ानून की अपराध को रोकने की शक्ति समाप्त हो जाती है।" इसी लिए निर्दोष की रक्षा के लिए किसी भी अपराध को प्रमाणित करने के लिए यह साबित करना होगा कि अपराधी ने वह काम "दुर्भाव से, स्वेच्छया, जान-बूझकर, धूर्ततापूर्वक किया, कराया, करने दिया या होने दिया।"[२]

ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री रैमज़े मैकडोनल्ड जब मज़दूर दल के नेता थे, उनके पास किसी व्यक्ति ने एक पुलिस इंस्पेक्टर की हत्या करने की धमकी का पत्र भेजा। उस आदमी पर मुक़दमा चला। उसके मामले में सज़ा देते हुए जज डालिंग ने अपने फ़ैसले में कहा था—"आदमी बहुत से ऐसे दुर्भावपूर्ण कार्य करता रहता है जो अनुचित होते हैं और अत्यप्रक्ष रूप से बुरी नीयत से किये जाते हैं....मेरे विचार से दुर्भाव शब्द का अर्थ ऐसा कार्य करना है जिसे करने का उस व्यक्ति को जायज अधिकार न हो और न किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऐसे उपाय अपनाये जो कि अनुचित हों।"[३]

जस्टिस डार्लिंग की यह व्याख्या ध्यान में रखनी चाहिए। आगे चलकर यह

१. Sayre—Public Welfare Offences (1933), 33 Edition—L. R. 55

२. Maliciously, Wilfully, Knowingly, Permitting, Suffering, Causing, Allowing, Fraudulently.

३. J. Edwards—"Mens Rea in Statutory Offence"—Macmillan & Co., London 1955—पृष्ठ ७

बड़ा काम देगी। जो काम बुरा है, उसे करना तवतक दंडनीय नहीं है जब तक हम उसे बुरा समझते हुए न करें। पागल अगर सड़क पर नंगा चला जाता है तो उसे "अश्लील प्रहार" का दोषी नहीं ठहराते। ब्रिटेन में सन् १४८६ में औरत भगाने के विरुद्ध क़ानून पास हुआ था। पर इस क़ानून के अनुसार अपराध तभी था जब "जान-बूझकर किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध प्राप्त किया जाय।"

बहुत से अपराध ऐसे होते हैं जो अपराध होने के कारण ही अपराध नही रह जाते। ब्रिटेन में विवाह के सम्बन्ध में ऐसी ही बात है। तीन प्रकार के विवाह "नाजायज़" या "नाजायज होने योग्य" हैं, अतएव उनको करनेवाला दंडनीय भी नही रह जाता। जैसे (१) यदि वर या वधू १६ वर्ष से कम उम्र की हुई तो वह विवाह हुआ ही नहीं समझा जायगा; (२) यदि वर-वधू में से कोई भी पूर्व विवाहित है तो वह विवाह हुआ ही नहीं समझा जायगा; (३) यदि अपने ही कुल में, निकट रिश्तेदार से विवाह हो गया तो वह विवाह नाजायज़ होने योग्य है और उसे विवाह मानना ही नहीं चाहिए।[1] इससे एक नयी बात पैदा होती है। वह यह कि नाजायज़ काम को नाजायज़ कह देने से ही समाज की रक्षा का काम चल गया। अब और ज़्यादा मामला बढ़ाने से क्या लाभ? इसी प्रकार "धूर्ततापूर्ण" कार्य मे भी धूर्तता की इच्छा का होना ज़रूरी है। यदि जल्दी में ग़लती से कोई रेलवे स्टेशन पर दूसरे का बक्स उठा ले तो वह चोरी नही हुई।[2]

१. वही, पृष्ठ ७१–७२

२. वही, पृष्ठ १८३—लार्ड गोर्डाड कहते हैं—जो दूसर की सम्पत्ति को यह जानते हुए कि दूसरे की है, गलती से नहीं जान बूझकर उठाता है...वह अपराधी है।

अध्याय १२

असाधारण कामुकता

अपराध की उपरिलिखित पृष्ठ भूमि देने के उपरान्त हम इस बात की समीक्षा करना चाहते हैं कि क्या वासना अपराध है? क्या कामुकता से और अन्य प्रकार के अपराधों से कोई सम्बन्ध है? सर्व-गुण-सम्पन्न न तो कोई समाज बना है और न कोई व्यक्ति। धूप और छाँह दोनों साथ-साथ चलते हैं। लेडी अलेन[१] ने सत्य लिखा है कि "छाया तथा गोधूलि वेला भी शिशु के लिए उतने ही आवश्यक हैं जितना सूर्य का प्रकाश तथा ताज़ी हवा।" यही दशा समाज की भी है। उसे धूप-छाँह में सँभलकर ले चलने के लिए ही शासनविधान तथा क़ानून बनते हैं। पर इनकी रचना करने-वालों के विचार चाहे कितने ही उदार क्यों न हों, जिन कागज़ों पर ये क़ानून लिखे रहते हैं, "वे निर्जीव होते हैं, स्वयं उनको कार्यरूप में नहीं परिणत किया जा सकता। इसके लिए एक मानवी एजेन्सी की जरूरत है।"[२] यह मानवी एजेन्सी अदालत समझी जाती है। पर अदालत में जो बैठता है, वह भी हमारा भाई है। अतएव इस एजेन्सी यानी वास्तव में मनुष्य को मनुष्य को पहचानना होगा। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही क़ानून बनता है। जे० हूवर[३] ने इसी लिए लिखा है कि "कोई भी समुदाय जैसा चाहता है या आग्रह करता है उससे बेहतर क़ानून का पालन नहीं करा सकता।"

कामुकता पेट से या परिवार से ही नहीं आती, संग-साथ का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। जेल में जवान-बूढ़े, हर प्रकार के क़ैदी एक साथ रख दिये जाते हैं और

१. Lady Allen of Hurtwood

२. John R. Dethmers, Chief justice, Supreme Court of Michigan (U. S. A.)—In U. S. News & World Report, Dec., 12, 1958, Page—88

३. J. Edgar Hoover, Director, Federal Bureau of Investigations, U. S. A.

वहाँ रहकर वे नये-नये सबक़ सीख लेते हैं। एक जेलयात्री ने लिखा है—"तीन महीने जेल में रहकर मैंने जो शिक्षा प्राप्त की है उससे मेरे पेशे में बड़ी तरक्क़ी हुई है। सरकार ने तो मुझे ऐसी जगह रख दिया कि मैं व्यवसाय सीखूँ और जब सीख लिया तो उस पर अमल करना ही चाहिए।"[१] दर्जनों मर्त्तबा हमारे पास ऐसे उदाहरण आये हैं जब कि जेलजीवन से ही वास्तविक पतन प्रारम्भ हुआ है। दो नौजवान जो कभी के परिचित नही थे, जेल में जाकर एक-दूसरे से परिचय प्राप्त कर लेते हैं और फिर जेल के बाहर निकल कर अपनी बुरी आदत चालू रखते हैं। मनुष्य का स्वभाव प्रेमी है। एक दूसरे से प्रेम करना चाहता है। जेल में ही ऐसा प्रेम पैदा हो जाता है और फिर वही भ्रष्ट रूप धारण कर लेता है। जेलों में क़ैदियों के बीच में कामवासना खूब चलती है। परस्पर संभोग बहुत अधिक होता है। यह कोई भारत की ही बात नही है बल्कि संसार भर के जेलों का यह बड़ा भारी अवगुण है। संयुक्तराज्य अमेरिका के नेब्रास्का राज्य के जेलों का अध्ययन कर श्री वाइडेन ने लिखा है[२] कि उन्होंने जिन युवक क़ैदियों से बात की उससे स्पष्ट हो गया कि ६० प्रतिशत क़ैदियों में कामुक अवगुण वर्तमान थे तथा जेलों में ६० फ़ीसदी व्यक्ति परस्पर संभोग करते थे। इस विषय में एक मार्के की बात हीली ने लिखी है। उनके कथनानुसार बालिग़ लड़कियों में परस्पर संभोग लड़कों की अपेक्षा जल्दी शुरू हो जाता है। यानी, जेलों में लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा कुटेव जल्दी सीखती हैं। हीली लिखते हैं कि बहुत-सी लड़कियों ने हमसे कहा कि संभोग के बारे में जितना वह जिन्दगी भर नहीं सीख पायी थीं, उतना वह जेल में रहकर २४ घण्टे में सीख गयी।[३]

वासना की ऐसी असाधारण शिक्षा में मानव कैसे सावधान रह सकता है। कैसे सँभल सकता है। वासना स्वतः अपनी ही सीमा तक अपराधों को सीमित नहीं रखती, उससे अनेक अनर्थ उत्पन्न होते है। मानव के स्वभाव की रचना में मन तथा शरीर दोनों का हाथ है। कौन कह सकता है कि जो मनुष्य समाज-विरोधी कामुक प्रवृत्तियों को प्रकट करता है उसके शरीर के भीतर कुछ ऐसे रस की उत्पत्ति हो रही है जिससे वह ऐसा कर रहा है या उसके मन की कल्पनाशक्ति इतनी बढ़ी हुई है कि

१. Healy—"Individual Delinquency" पृष्ठ ३१४

२. L. E. Widen—"Young Criminals in Nebraska State Penitentiary"—The Survey, Nov., 18, 1957, पृष्ठ १२२१–१२२४

३. Healy—पृष्ठ ३१३

वह बिना वासना के रह नहीं सकता, या फिर वह ऐसे वातावरण में रहता है या ऐसे शरीरजन्य अनुभव प्राप्त कर चुका है कि उसकी वासना रोके नहीं रुकती या सँभाले नहीं सँभलती। कहीं किसी के मामले में यह कहा जा सकता है कि परिवार या पिता माता का बुरा प्रभाव पड़ा है, तो उससे अधिक ऐसे मामले सामने आते हैं जिनमें साधु तथा सज्जन परिवार में भी ऐसे भयंकर रोगी मिलते हैं। यह भी स्पष्ट है कि कामुक वासना के कारण ही बहुत से अपराध पैदा होते हैं। जर्मनी में एक व्यक्ति केवल कामुक उत्तेजना प्राप्त करने के लिए खून करता था। ऐसे अनेक मामले मिलेंगे जिनमें केवल कामुकता के कारण पुरुष या स्त्री में दूसरे को पीड़ा देने की भावना पैदा होती है और वह मार पीट करते हैं। (अतृप्त कामवासना के कारण लाखों व्यक्ति चिड़-चिड़े स्वभाव के या क्रोधी हो जाते हैं।) नपुंसकता की ग्लानि के कारण कितने ही व्यक्ति डकैती करने लगते हैं। कामवासना मे अनेक ही नहीं, अनगिनत अनर्थ पैदा होते हैं---बलात्कार, निकट सम्बन्धी के साथ संभोग, सह-योनि प्रसंग, इत्यादि। ये सब परेशान दिमाग़ या दिमाग़ी उलझन या दूषित वातावरण के कारण अच्छे ख़ासे सीधे-सादे व्यक्ति में भी उत्पन्न हो सकते हैं। असाधारण कामुकता का बहुत बड़ा कारण बचपन का अनुभव होता है। अच्छे स्वस्थ लड़के तथा लड़कियाँ जल्दी शिक्षा पाने लगती हैं। कभी-कभी घर पर माता-पिता का प्रसंग वे देख लेते हैं, माता-पिता तो सोचते हैं कि वे सो रहे हैं। हीली ने १५ वर्ष की एक लड़की की कथा लिखी है कि वह इतनी कामोन्मत्त थी कि कोई अवसर नहीं चूकती थी। उसे इस बात का घमंड था कि उसने अत्यधिक पुरुषों का प्रसंग प्राप्त किया है। १५ वर्ष की उम्र में ही वह गर्भवती हो गयी थी। उसका इतिहास जानने पर पता चला कि बचपन में ही उसके साथ बलात्कार किया गया था, जिससे उसे नसीहत मिल गयी थी।

पर हीली यह भी लिखते हैं कि यह असाधारण कामुकता भिन्न दशाओं में भी पायी जाती है। अमेरिका में गोरी लड़कियाँ नीग्रो (काले) लड़कों पर बहुत आसक्त हो जाती हैं—यह क्या बात है। केवल असाधारण कामुकता का ही परिणाम है। छोटी उम्र में बहुत से बच्चे चोर तथा गिरहकट हो जाते हैं—यह भी उनमें व्याप्त असाधारण कामुकता है।[1] कामुकता सबमें है और उसकी संतुष्टि के लिए समाज ने नियम बना रखे हैं पर जो व्यक्ति—चाहे पुरुष हो या स्त्री, आत्मसंयम करना नहीं जानता, वही विशेष परिस्थितियों में पड़कर, सामाजिक दायरे के बाहर निकलकर

१. हीली--पृष्ठ ४०३

आत्म-सन्तुष्टि करता है। समाज में ऐसे रोगी भी होते हैं जिनको "हर युवती के पीछे भागने" का रोग होता है या ऐसी स्त्रियाँ भी होती हैं। पर डाक्टरी जाँच से पता चला है कि ऐसे लोगों का मन का विकार उतना दोषी नहीं है जितना कि उनके शरीर की बनावट, जिसमें ऐसी ग्लैंड होती हैं जिनसे कामुकता का विचित्र रस द्रवित होता रहता है, जो उनको उग्र कामोन्मत्त बनाने पर मजबूर करता है। ऐसे लोगों की दवा जेल में नहीं, अस्पताल में होती है। ऐसे रोगियों से समाज की रक्षा करनी होगी, यह सही बात है। ऐसी रक्षा के लिए ऐसे रोगियों को अलग ही रखना होगा, क्योंकि वे स्वस्थ पुरुषों को यानी सदाचारी स्त्री-पुरुषों को भ्रष्ट करते रहते हैं।

कुछ का मन इतना कमजोर होता है कि काम की उत्पत्ति होते ही वे काबू के बाहर हो जाते है। वे अपने को सँभाल नहीं सकते। जब उत्तेजना को शान्त करने के लिए और कोई साधन नही मिलता तो वासना के बजाय वे अन्य प्रकार के अपराध करने लगते हैं। पागल तथा उन्मत्त व्यक्ति भी इसी वासना के रोगी हो सकते है। कामोन्माद का रोगी प्रायः दूसरों की उपासना या आराधना की चीजें, जैसे मूर्त्तियाँ चुराया करता है। उसकी वासना को इसी में संतुष्टि मिलती है।[1] ऐसे कामुक चोर प्रायः औरतों के रूमाल या उनके जूते चुराया करते हैं। अत्यधिक काम-भावनावाली स्त्रियाँ जिनको पुरुषों के आघात में आनन्द आता है, वासना के ही कारण पुरुषों की "दासी" बन जाती हैं। बहुत-सी स्त्रियों को पुरुषों के हाथों पिटने पर अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है, पर ऐसी स्त्रियाँ बड़ी खतरनाक भी होती है। वे वासना की सन्तुष्टि में कमी पाकर पुरुषों के प्राण भी ले सकती हैं। बहुत से पुरुषों में कामोत्तेजना तभी होती है जब वे अपनी पत्नियों या रखेलियों से पिटते है। ऐसे ही व्यक्ति दूसरों को पीटने, कोड़ा, मारने, दूसरे के साथ उद्दंडता करने में सुख का अनुभव करते हैं। उन्हें तो सज़ा मिलती है मारपीट की और उनका अपराध कुछ और ही होता है। बहुत से ऐसे अपराधी होते हैं जिनकी कामवासना इसी से सन्तुष्ट हो जाती है कि स्त्री के शरीर का जो भाग उन्हें सब से सुन्दर प्रतीत हो, उसे काट लें। औरतों की नाक या कान काट लेने का भी प्रायः यही कारण होता है।

कुछ मर्दो में आदत होती है कि गुप्त रूप से स्त्रियों की ताक-झाँक किया करें। कैसे कपड़ा पहनती है, कैसे शौचालय में बैठती है, इत्यादि। कुछ स्त्रियों में भी यह

१. Havelock Ellis—"The Criminal"—3rd Edition, London Scott & Co., 1907—पृष्ठ ४१९

आदत होती है। इन दोनों प्रकार के लोगों को इस प्रकार की ताक-झाँक से ही वासना की सन्तुष्टि प्राप्त होती है। कुछ लोगों में कम उम्र की लड़कियों को भ्रष्ट करने का बड़ा मर्ज़ होता है। वे उनके साथ बलात्कार भी नही करते पर अन्य प्रकार से उनका कामुक उपयोग करते रहते हैं। हीली एक ऐसे व्यक्ति का ज़िक्र करते हैं[1] जो छोटी उम्र की लड़कियों को बिगाड़ने के अपराध में पाँच बार जेल हो आया था। छूटने के कुछ ही महीने के भीतर उसने कई बच्चों को खराब किया। अब यह मान लिया गया है कि छोटे बच्चों को ख़राब करनेवाले ज्यादातर लोगों को सज़ा नहीं मिल पाती। वे अदालत तक जा भी नही पाते और उनके कार्य का भयानक परिणाम लाखों निर्बोध, सीधे, भोले बच्चों का जीवन नष्ट कर देता है। कुछ पुरुषों की आदत होती है कि स्त्रियों के सामने सीना तानकर चलना, अपना बल-वीर्य दिखलाना, पर पुरुषों से ज़्यादा स्त्रियों में यह अवगुण होता है। प्रायः प्रत्येक स्त्री चाहती है कि दूसरों की निगाहों में अच्छी लगे और अपने स्तन को ऊँचा उठाकर, आधा खुला छोड़कर या बारीक चादर से ढँक कर, कामुक आकर्षण करते हुए चलना भी एक प्रकार का वैसा कामुक अपराध है जो आजकल पढ़ी लिखी लड़कियाँ ज़्यादा करती हैं।

हस्तक्रिया की आदत से बहुत से अपराध होते है। हस्तक्रिया में एक खास बात है, उसके करने से जितनी शारीरिक हानि नही होती उससे अधिक हानि हस्तक्रिया के बाद उत्पन्न हुई ग्लानि तथा उसे करने या न करने की चिन्ता से होती है। यह अवगुण लड़के तथा लड़कियों में काफ़ी पाया जाता है। हस्तक्रिया करनेवाला या वाली का मन बराबर इस बोझ से दबा रहता है कि "यह काम बुरा है"। फिर, उसे एकान्त की बड़ी तलाश रहती है। इससे इस कुटेव के रोगी के मन का नैतिक बल एकदम समाप्त हो जाता है। रोगी निरुद्यमी तथा आलसी हो जाता है। अपना आलस्य दूर करने के लिए सिगरेट-बीड़ी पीना शुरू करता है। अत्यधिक चाय या कहवा पीनेवाले भी हस्तक्रिया या अन्य कामुक उत्तेजना के मरीज़ हो सकते हैं। हीली एक १६ वर्ष की लड़की का ज़िक्र करते हैं जो हस्तक्रिया करती थी और उसकी प्रतिक्रिया में छोटी-मोटी चोरियाँ करती थी। उस कन्या की माता ने बड़े परिश्रम से उसकी आदत छुड़ा दी। उसका सब ऐब भी जाता रहा। इस सम्बन्ध मे एक चीज़ ध्यान में रखनी चाहिए। बचपन में कामोत्तेजना की सीख प्रायः लड़के को लड़के से ही तथा लड़की को लड़की से ही मिलती है। एक दूसरी योनिवाले से नहीं मिलती।

१. Healy—पृष्ठ ४०६

इसलिए जो लोग यह सोचकर अपने बच्चों से निश्चिन्त हो जाते हैं कि लड़के-लड़के एक साथ हैं, या लड़कियाँ-लड़कियाँ एक साथ हैं, वे भारी भूल कर रहे हैं। केवल नैतिक दुर्बलता के कारण ही अप्राकृतिक संभोग या परस्पर-योनि संभोग का प्रारम्भ हुआ है, यह सोचना भूल है।[१] बुरी सोहबत तथा बुरे वातावरण और मानसिक दुर्बलता से ये कुटेव शरीर में घुन कर लेनी हैं। बीभत्स रूप से प्रसंग करने के प्रेमी, विपरीत प्रसंग के हिमायती तथा अनुचित प्रसंगवाले व्यक्ति प्रायः समाज, सभ्यता, वातावरण या बुरे साथ के शिकार नहीं होते। वे मनोवैज्ञानिक रोगी भी होते हैं। उनके मन की चिकित्सा करनी चाहिए।[२] पर मन की चिकित्सा जेल में रखने से नहीं हो सकती।

१. P. Nacke—"Homo-Sexuology and Psychosis"—Pub. 1911

२. Sigmund Freud—"Three Contributions to the Sexual Theory", New York-Journal of Mental & Nervous Diseases-1910—Page 91

अध्याय १३

वासना के अपराधों की व्यापकता

विचार बदलते रहते हैं

ब्रिटिश जेलों के भूतपूर्व कमिश्नर सर विलियम नारउड ईस्ट ने[1] बिल्कुल सत्य लिखा है कि आधुनिक समाज के प्रवाह में कामुक अपराधी पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है। हम उनके विचारों को नीचे संक्षेप में देने का प्रयास करेंगे। वास्तव में यह बात समझने की है कि समाज किस प्रकार अपने ही नये नियमों के जाल में फँसकर नये अपराध करा रहा है। उदाहरण के लिए पश्चिमीय देशों में एक पत्नी रहते दूसरा विवाह नहीं किया जा सकता। सन् १८५८ में, आज के १०१ वर्ष पूर्व जब तलाक़ का क़ानून बनने लगा था, इंग्लैण्ड में कुछ लोगों ने सलाह दी कि पर-पत्नी सम्भोग को दंडनीय बना दिया जाय। पर घोर विरोध के कारण वैसा न हो सका और आज तलाक़ के क़ानून की बदौलत हर साल लाखों व्यक्ति नयी पत्नी या नया पति प्राप्त करते हैं या बदलते हैं। बहु-विवाह से अधिक निन्दनीय तथा घृणित स्थिति हो गयी है।

नारउड लिखते हैं कि समय के अनुसार विचार भी बदलते जाते हैं। हज़रत मूसा के विधान के अनुसार विवाहित पति-पत्नी को व्यधिचार करने पर, दोनों को प्राणदंड मिलता था। प्राचीन रोमन नियम के अनुसार व्यभिचारिणी पत्नी दंडित होती थी, पति नहीं। पिता अपनी व्यभिचारिणी पुत्री को जान से मार सकता था पर पति नहीं। एक दूसरे प्राचीन देश के नियम के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री की नाक, कान काट लेते थे। १७ वीं सदी में ईसाई पादरी व्यभिचारिणी पत्नी को घोर दंड देते थे। पर आज स्विट्ज़रलैंड में सन् १९३७ के क़ानून के अनुसार केवल एक वर्ष

१. Sir William Norwood East, M. D., in "Sexual Crime"—The Journal of Criminal Science, Vol. I, Macmillan & Co., Pub. 1948—Page—45

की सज़ा हो सकती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यभिचारिणी पत्नी तथा पति दोनों दंडनीय हैं पर इधर दो दर्जन वर्षो से इस क़ानून पर अमल नहीं किया गया है। इंग्लैंड में सन् १९५८ में लगभग ४,००,००० विवाह हुए,[१] इनमें से एक तिहाई का तलाक़ ज़रूर होगा क्योंकि वैवाहिक जीवन के "प्रथम दो वर्ष बड़े कठिन होते हैं।"[२] यदि ये दो वर्ष ठीक से बीत गये तो फिर वैवाहिक जीवन में स्थिरता आ जायगी।

डा० यूस्टेन चेसर लिखते हैं—"हमें मालूम हो या न मालूम हो, कामुक वासना हमारे जीवन के प्रत्येक जीवित क्षण को प्रभावित कर रही है।"[३] यह कहना भी कठिन है कि विवाह हो जाने के बाद आदमी सुधर जाता है। नारउड के कथनानुसार उन्होंने अश्लील प्रदर्शन के लिए दोषी १५० मर्दो के मामले की छानबीन की तो उनमें से ९० अविवाहित या अकेले थे, ५७ विवाहित थे तथा ३ विधुर थे।[४] वासना के विचित्र अपराध होते है। अतृप्त वासना के कारण ही बहुत से लोग मकानों में सेंध लगाते हैं, चोरी करते हैं और कुछ कामी पुरुष औरतों की चोली या जम्पर या नीचे का जाँघिया चुराकर ही संतोष प्राप्त करते है। ऐसे भी मामले हुए तथा होते हैं जब बलात्कार करते समय विरोध करने पर उस स्त्री की हत्या केवल कामुक तृप्ति के लिए की जाती है या बीच सड़क में औरत को पटककर उसका जूता छीन ले जाने में कामुक सन्तोष प्राप्त होता है।

स्त्री की तुलना में पुरुष अधिक कामी होता है। स्त्री अपने मन को दबा सकती है, काबू में रख सकती है। अब तो आजन्म ब्रह्मचारिणी स्त्रियाँ तथा पुरुष भी काफ़ी मिलते हैं। ऊँचे पद पर प्रायः अविवाहिता स्त्रियाँ ही मिलती हैं। नारउड की गणना के अनुसार सन् १९३८ में कामी अपराधों में पुरुष अपराधी की संख्या स्त्री अपराधिनी से दस गुना अधिक थी। सन् १९१० से १९३१ के बीच में, इंग्लैंड तथा वेल्स में कामी अपराधियों की संख्या फ़ी १,००,००० व्यक्ति पीछे ४ से ७ के बीच में थी। प्रथम महायुद्ध के बाद, सन् १९३० में सबसे ज़्यादा यानी ७ प्रति लाख पीछे थी। इन अपराधियों की उम्र १६ वर्ष से ऊपर थी। सन् १९३८ में ऐसे अपराधी ५ प्रतिशत

१. Getting Married—1958—Pub. British Medical Association—Page 67

२. वही, इलेनगी का लेख, पृष्ठ १०९

३. वही, पृष्ठ ७२

४. The Journal of Criminal Science–Vol. I पृष्ठ ४७

१४ वर्ष से कम उम्र के थे, १५ प्रतिशत १७ से २० वर्ष की उम्र के, ९ प्रतिशत २१ से २५ वर्ष की उम्र के बीच के, १२ प्रतिशत २५ से ३० वर्ष की उम्र के, ५६ प्रतिशत ३० की उम्र के नीचे तथा ४४ प्रतिशत ३० से ऊपर की उम्र के थे—पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों। सन् १९३८ में कामी अपराध के लिए २३२१ को दंड मिला था। अपील करने पर जितने लोगों की सजा बहाल रही, वह इस प्रकार है—

अपराध	दंडित पुरुष	दंडित स्त्री
अप्राकृतिक व्यभिचार	५८	०
अप्राकृतिक व्यभिचार की चेष्टा	७६	१
पुरुषों के साथ अश्लीलता	१४१	०
बलात्कार	४०	०
स्त्रियों पर अश्लील प्रहार	११५	०
१३ वर्ष से कम उम्र की लड़कियों से भ्रष्टाचार करना	३१	०
१३ से १६ वर्ष की उम्र की लड़कियों से भ्रष्टाचार करना	१७९	०
निकट सम्बन्धी से प्रसंग	४०	४
व्यभिचार के लिए प्राप्त करना	१५	२
व्यभिचार के लिए भगा लाना	४	१
एक से अधिक पुरुष या स्त्री सम्बंध	१९५	८१
	८९४	८८

इसी वर्ष में १५४ पुरुष तथा ३२ स्त्रियों पर वेश्यावृत्ति को जीविका का साधन बनाने पर मुकदमा चला। ५ पुरुष तथा १७२ स्त्रियों पर वेश्याकार्य के लिए मुक़दमा चला तथा ४४९ पुरुष तथा ८१ स्त्रियों पर अश्लील ढंग से शरीर प्रदर्शन के लिए दंड मिला।

वासना की प्रतिद्वन्द्विता

पशु हो या मनुष्य, जैसे वासना स्वाभाविक है, वैसे ही उसके साथ द्वेष तथा ईर्ष्या और "अपना बनाकर रखने की भावना" भी स्वाभाविक है। नारउड ने एक मज़बूत घोड़े का ज़िक्र किया है जिसके ज़िम्मे दो घोड़ियाँ थीं। इनमें से एक के प्रति उसका विशेष अनुराग अवश्य था क्योंकि जब वह दूसरी घोड़ी से प्रसंग करने चलता

और उसकी प्रियतमा घोड़ी आवाज़ लगाती तो वह प्रसंग छोड़कर पहले उसे सान्त्वना के शब्द सुना देता, तब अपना कार्य जारी करता।[1] जंगली साँड़ अपने दायरे से निकल कर दूसरे साँड़ की तरफ़ जानेवाली गाय के लिए द्वंद्व युद्ध करता है और दो की लड़ाई में उस गाय के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। चिड़ियाख़ाने में ऐसे अजीब दृश्य प्रायः देखे जाते है जब "पुरुष पशु" की लड़ाई में स्त्री पशु की जान जाती है। ऐसी कितनी ही हत्याएँ होती हैं। जब कोई व्यक्ति यह देखता है कि वह जिसे प्यार करता है, वह उसकी न होकर पराये की गोद में जानेवाली है तो उसे इसलिए मार डालता है कि दूसरा तो उसको न अपना सके। वासना एक उन्माद है, एक ऐसी वस्तु है जिसका विचित्र मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक मिश्रण है। सोमाली लोगों[2] को तभी सुख मिलता है जब सुहागरात के दिन वे अपनी नव-वधू की योनि को बुरी तरह से क्षत कर डालें। स्त्रीप्रसंग के पहले वे अपनी प्रियतमा को कोड़े से पीटते है। कामुक वासना रूप तथा लावण्य पर ही नही निर्भर करती। एक २६ वर्ष के नौजवान ने ७० वर्ष की एक अविवाहिता कुमारी बुढ़िया के साथ बलात्कार किया और फिर उसे मार भी डाला।[3]

वासना कैसे बढ़ती है, कैसे जागती है, यह कुछ कहना बड़ा कठिन है। अभी तक लोग अँधेरे में टटोल रहे है। बूढ़े कामी लोगों के लिए कहा जाता था कि उनके पेशाब के स्थान के ऊपर प्रास्टेट ग्लैंड मे वृद्धि हो जाने के कारण ऐसा होता था। पर अब चिकित्साविज्ञान ने इसे झूठा साबित कर दिया है। यदि यह कहा जाय कि बार-बार कामी अपराध करनेवाले का यही इलाज है कि उसकी इन्द्रिय काट लो या आधी काट लो—तो इससे भी काम नही चलेगा। फोरेल का कहना है कि जवानी में खतना करानेवाले लोग आगे चलकर अपनी स्त्री के साथ प्रसंग के योग्य हो जाते है। यह कहना भी ग़लत है कि ऐसे अपराधी स्त्री-पुरुष को ऐसा नश्तर लगा दिया जाय कि वे सन्तान न पैदा कर सकें—क्योंकि अब यह साबित हो गया है कि यह कोई ज़रूरी नही है कि लम्पट की औलाद भी लम्पट होती है।[4] अधिकाश लम्पटों की संतान बड़े

१ वही, पृष्ठ ५०

२. "मध्य आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी"—Roheim ने इनके विषय में विशेष अध्ययन किया है।

३. नारउड, पृष्ठ ५२

४. Dr. W. Narwood East in "Mental Abnormality & Crime", Macmillan & Co., Pub. 1949–Page 100

अच्छे मार्ग पर चलने वाली होती है। इन्द्रिय आदि के काटने से मन नहीं कटता। मन को जीतना है, तभी इन्द्रियों पर विजय होगी। किसी आदमी का शिश्न काट लिया जाय तो बहुत होगा वह प्रसंग न कर सकेगा। पर रातों दिन वासना उसका मन सताया करेगी। तब तो उसका जीवन और भी कष्टमय होगा। नपुंसकता यदि लानी है तो मन में लानी चाहिए। इसका मनोवैज्ञानिक उपाय हो सकता है। यह न भूलना चाहिए कि मानसिक संभोग, मन ही मन बैठे व्यभिचार, बड़ी घातक तथा भयंकर वस्तु है।

परन्तु व्यभिचार के अपराध संसार में, प्रत्येक देश में, दूसरे की सम्पति अपहरण करने के अपराधों के बाद दूसरा स्थान रखते हैं, यद्यपि प्रथम का भी कारण वही हो सकते है। पागल, उन्मत, रोगी की कामवासना का कारण समझा जा सकता है पर स्वस्थ व्यक्ति की बात आसानी से समझ में नही आती। हम लोग यह भूल जाते हैं कि बचपन में ही बच्चों में, लड़के-लड़कियों में, वासना की नीव पड़ती है। अनायास उनके नन्हें हाथ उनकी योनि या इन्द्रिय पर चले जाते हैं। यदि माता-पिता ने योनि तथा इन्द्रिय को साफ नही रखा तो खुजली भी होती है। इसलिए हाथ बार-बार जाता है। उससे कुछ सुख मिलता है और यही सुख आगे चल कर कामुक सुख का रूप धारण कर लेता है। और प्रसंग का पहला अनुभव जैसा होगा, वैसा मन का एतत्-सम्बन्धी संस्कार बनेगा। एक युवक को औरतो का जूता चुराने की बड़ी आदत थी। पर इसका कारण यह था कि जब उसने होश सँभाला, बहुत अच्छा जूता पहनने वाली एक आकर्षक लड़की ने उसका मन मोह लिया था। लड़की दूसरों की हो गयी—जूते का असर छोड़ गयी। एक युवक का एक लड़की से संसर्ग हुआ, जिसमे स्खलन के बाद उसके नीचे के वस्त्र गीले हो गये। गीला वस्त्र देखकर लड़की बहुत बिगड़ी। उसके इस बिगड़ने का प्रभाव युवक पर ऐसा पड़ा कि वह लड़कियो के कपड़े खराब करने में ही बड़ा सुख अनुभव करता था। एक २२ वर्ष का नौजवान पुलिस-कास्टेबुल पर प्रहार करने के अपराध मे ब्रिटिश जेल मे भेजा गया। वहाँ पर छानबीन करने पर मालूम पड़ा कि वह वास्तव में भला मानुस लड़का था। उसकी माता की उम्र पिता की उम्र से बहुत कम थी। दोनो मे फूट हो गयी। माता एकान्त स्थान में अपने बेटे को लेकर चली गयी। उस बेटे के साथ वह क्रीड़ा भी करने लगी। अब उस युवक के जीवन में पतन के लिए और क्या चाहिए था? जिसने सिखाया, वह दोषी है।

इसी प्रकार बलात्कार की भी बात है। यदि कन्या के साथ बलात्कार हुआ और वह गर्भवती हो गयी तो उस बेचारी का सत्यानाश हो गया। पर क्या बलात्कार में कन्या गर्भवती हो सकती है? जब तक उसका स्खलन न होगा यह गर्भवती कैसे होगी?

यदि स्खलन हुआ तो इसका अर्थ है उसे सुख मिला। यह भी कहा जाता है कि अपने बराबर शक्ति वाली स्त्री के साथ पुरुष बलात्कार कर ही नहीं सकता। अमेरिकन वैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि वयस्क स्त्री जब तक न चाहे, उसकी योनि में प्रवेश नहीं हो सकता। इंग्लैण्ड में १९२९-३८ के बीच में, २५८ पुरुषों को बलात्कार के लिए दंड मिला। इनमें से ऐसे भी मामले थे जिनमें स्त्री ने "स्वीकार" करना अस्वीकार कर दिया और जान से हाथ धो बैठी। ऐसी दशा में बलात्कार तो प्रतीत होता है वरना आज तर्क होने लगा है कि बलात्कार स्वतः कोई वस्तु नहीं है। ज़ोर, ज़ुल्म, ज़बर्दस्ती आदि अपराधों के आधार पर दंड हो सकता है। इसी प्रकार पिता-पुत्री या माता-पुत्र या बहिन-भाई के प्रसंग के अपराध भी दो में से एक पक्ष की भूल से शुरू होते हैं। इंग्लैड में १९२९-३८ के बीच में ऐसे अपराध से ४७१ पुरुष तथा ४९ स्त्रियाँ दंडित हुई थीं। ५३० स्त्रियाँ, जिनमें अधिकांशतः वेश्याएँ थीं, परस्पर प्रसंग के लिए दंडित हुई।

इस विचित्र संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुभव होते हैं। हैवलाक एलिस ऐसे विद्वानों ने भी सिद्ध कर दिया है कि संसार में दो प्रकार के प्राणी होते हैं। एक वह जो दूसरे को पीड़ा पहुँचाकर कामुक का मानसिक सुख प्राप्त करता है तथा दूसरा वह जो पीड़ा सहकर सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार पुरुष तथा स्त्री दोनों ऐसे ही दो भावों में से एक के शिकार होते हैं। स्त्री को पीड़ा सहने में सुख मिलता है—यह अधिकांश स्त्रियों का सहज गुण प्रतीत होता है, पुरुष को पीड़ा देने में। स्त्री प्रसंग में पुरुष के आघात से सुख का अनुभव करती है। पर-पीड़न में सुख पानेवाले ही हत्या, मारपीट, दूसरे की सम्पत्ति का नाश, आग लगाना, दूसरे के कपड़े ही ख़राब कर देना या किसी पर स्याही उड़ेल देने का अपराध करते हैं। पुरुष ही अधिकतर ऐसा अपराध करते हैं। स्त्रियों में आत्म-हत्या, कुएँ में कूद पड़ना, पति को उत्तेजित कर उससे पिट जाना, अपने शरीर में आग लगा लेना इत्यादि के अपराध काफ़ी होते हैं। पीड़ा सहकर सुख उठाने की एक बड़ी मार्के की मिसाल नारउड ने दी है। वे लिखते हैं कि एक युवती स्त्री प्रायः चोरी की सज़ा पाती थी। उसमें आदत थी कि मासिक धर्म होने के समय वह अपनी धोती में, पैर में, हाथ में अपने से घाव कर देती थी, अपने ही चमड़े में, अपने हाथों में सुई चुभो देती। इस प्रकार पीड़ा से कराहने में तथा अपना रक्त देखकर उसे बड़ा कामुक सुख मिलता था।[1]

१. The Journal of Criminal Science–Vol. I—पृष्ठ ७३, ७४

जब पुरुष की बुद्धि तथा उसकी पहचान इतनी कठिन वस्तु है तो उसका निदान तथा उसकी चिकित्सा भी किस प्रकार हो सकती है? अब इस विषय में दो चार बातें और लिखकर इस समस्या के दूसरे पहलू पर विचार करेंगे। मनुष्य-स्वभाव की व्याख्या करना कठिन है। हमें रोज़-रोज़ नये-नये ढंग के नये-नये व्यक्ति मिलते हैं। उदाहरण के लिए कोई आदमी है जो स्वभाव का चिड़चिड़ा है। अक्सर ज़रा सी बात पर उसे क्रोध आ जाता है। वह लोगों पर बहुत जल्दी चिल्ला पड़ता है। बातें ख़ूब करता है। उसे बातें करने का बड़ा शौक़ है। उसकी भूलें यदि उसे बतलायी जायँ तो वह नाराज़ हो सकता है। ऐसे आदमी मनोवैज्ञानिक रूप से एक विशिष्ट अहंभाव के रोगी है। अपने को महत्वपूर्ण समझने का इनमें इतना बड़ा रोग है। वे मन चाहने पर ख़ूब ख़र्चीले बन जाते हैं। ख़ूब शराब भी पी लेते है और मौक़ा पड़ा तो वासना सम्बधी अपराध भी कर बैठते है। ऐसे लोगों से मिलते-जुलते ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनको यह ख़ब्त हो जाता है कि वे अन्तरात्मा की आवाज़ सुन रहे है या ईश्वर से उन्हें प्रत्यक्ष आदेश प्राप्त हो रहा है। अपने सभी कार्यो को वे ईश्वरीय आदेश समझने लगते है। समाज से यदि किसी बात में उनकी खटपट हो गयी तो वे उससे चिढ़-कर अपने को अपने में ही खीच लेते है और उस खिंचाव को ईश्वरीय आदेश में मिला लेते हैं। उनके मन में प्रेम तथा घृणा का ऐसा प्रवाह है जो कभी उत्तेजनावश उन्हें मजबूर करता है कि वे अपनी कामवासना से बचने के लिए अपना अंडकोष काट डालें। ऐसे ही लोग अपने विवाह के दिन ही अपनी आत्महत्या कर लेते हैं। मन में बैठी घृणा तथा प्रेम का मिलान न मिला सकने के कारण वे यह सब अनर्थ करते रहते हैं।[१]

वासना के ही मरीज ऐसे बहुत से काम करते है जिनका देखने में प्रत्यक्षतः वासना से कोई सम्बन्ध नहीं रहता—जैसे भद्दी भाषा का उपयोग, दूसरे के विरुद्ध अपमान-जनक बातें कहना, गालीगलौज भरा पत्र भेजना,[२] परिवार की देखरेख नहीं करना, दूसरे के काम में बाधा डालना, शराब पीना, इत्यादि। कामुक वासना की उत्तेजना ही अनेकों में हत्या के भाव उत्पन्न करती है। केवल अपने मन की खीज मिटाने के लिए किसी के शीशे की खिड़की पर ढेला फेंकना भी तो यही है। वासना की ही प्रति-क्रिया होती है कि अक्सर लोगों के मन में बिना कारण भय समा जाता है। लोग हाथ में चाकू लेने से डरते हैं कि कही उस चाकू से वे किसी का गला न काट लें। एक अज्ञात

१. Mental Abnormality—पृष्ठ २२, २३

२. वही, पृष्ठ ३१

अस्पष्ट भय उनको हमेशा सताया करता है। वे मन में बार-बार निश्चय करते हैं कि उस भय के ऊपर उठ जायँ पर भय दबोचे रहता है। ऐसे ही लोगों में यह आदत हो जाती है कि खूब साफ-सुथरा कपड़ा पहनो वरना और लोग क्या समझेंगे। ऐसे मरीज मन ही मन कामुकता की बातें बहुत सोचते हैं पर वे इतने कायर हैं, इतने भयभीत हैं कि व्यवहार रूप में कुछ करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ती।[1]

मनोवैज्ञानिक रोग

बहुत से काम ऐसे हैं जो केवल मन की कमज़ोरी से होते हैं। आत्म-हत्या क्या है? व्यक्ति स्वयं अपनी असफलता पर विजय प्राप्त न कर सकने के कारण या मन में दोष की, ग्लानि की भावना को सँभाल न सकने के कारण या फिर दूसरे को दुःख पहुँचाकर उससे बदला लेने के लिए अपनी जान ले लेता है। वास्तविकता से दूर भागने के लिए, अपने कष्टों से निर्वाण के लिए प्राण दे देता है। यदि उसे कोई समझा सकता कि कष्टों से छुटकारा ऐसे नही मिलता तो शायद वह ऐसा न भी करता। विकृत मस्तिष्क की असंतुलित दशा में, निराशा या ग्लानि की ना-समझी की चट्टान से टकराकर, भावावेश में पुरुष या स्त्री आत्महत्या कर लेते हैं।[2] यदि इनके संकल्प को ढाई घंटे तक टाल दिया जाय, प्राण लेने की क्रिया का प्रारम्भ होने के पूर्व ढाई घंटे[3] तक रोक दिया जाय तो आत्महत्या कभी न होगी। चूँकि यह पागलपन है अतएव ज्यादातर आत्महत्याएँ पूर्णमासी या अमावस्या के निकट होती हैं। यह भी मार्के की बात है, प्रमाण-सिद्ध है।

किन्तु आज का विज्ञान दूसरे की हत्या को केवल क्षणिक उन्माद या पागलपन मानने के लिए तैयार नही है। कुछ क्षणिक उन्माद के भी रोगी होते हैं पर कुछ ही, ज्यादातर अच्छे दिमाग़ के सुलझे हुए लोग होते हैं। पर छानबीन करने से पता चलेगा कि ऐसे हत्यारों में से अधिकांश बचपन से ही उग्र तथा तेज़ मिज़ाज़ के लोग रहे हैं। एक मर्तबा उत्तेजित हो जाने पर वे अपनी उत्तेजना को संभाल नहीं सकते। ज्यादातर हत्याएँ काम-भाव के कारण होती हैं, चाहे वह किसी स्त्री को प्राप्त करने के लिए हों, या अपने लड़के को अपने क़ाबू में रखने के लिए। यह अवश्य है कि यह मन का रोग ही है कि किसी को रक्तपात के द्वारा ही प्राप्त किया जाय।

१. वही, पृष्ठ ७५ २. वही, पृष्ठ ११०

३. इस सम्बंध में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान बड़ा सही पाया गया है

डा० हैंडरसन[1] का कहना है कि काम-भाव से पीड़ित तथा काम-अपराध करने-वाले अधिकांश व्यक्ति शुरू में सह-योनि प्रसंग के शिकार होते हैं। वे लिखते हैं कि "शुरू में मेरा ऐसा खयाल था कि वासना का अपराधी डाक्टरी चिकित्सा का विषय है। मेरे अनुभव ने मुझे अपना विचार बदलने के लिए मजबूर किया है। वासना के बहुत कम अपराधी का मन रोगी सिद्ध हुआ। वह व्यक्ति और हर मामले में भद्र पुरुष है। केवल उसका वासनामय कार्य ही समाज के प्रतिकूल है। यह कहना बड़ा कठिन है कि उसके ऐसे कार्य का कितना प्रतिशत भावुकता, आवेश आदि के कारण है और कितना मानसिक रोग के कारण और कितना अन्य कारणों से। आज तक इसका उचित मापदंड नहीं प्राप्त किया जा सका।" इतने बड़े विद्वान् के मन में जो शंका है, यदि वह हमारे मन को भी सता रही हो तो क्या आश्चर्य है। हैडरसन ने एक व्यक्ति का उदाहरण दिया है जो २६ दिसम्बर १९१६ से लेकर १० सितम्बर १९४० तक १२ बार सज़ा भोग चुका था। अपराध भी एक ही था।

१.	२६ दिसम्बर, १९१६	अश्लील व्यवहार	१० या ५ दिन कैद
२.	१५–४–१९१९	,,	३० दिन कैद
३.	१२–२–१९२०	,,	६० दिन कैद
४.	१०–६–१९२०	,,	६० दिन क़ैद
५.	२३–२–१९२३	,,	६० दिन क़ैद
६.	२९–८–१९२४	,,	६० दिन क़ैद
७.	१३–५–१९२५	,,	६० दिन कठोर कारागार
८.	९–१२–१९२५	,,	३० दिन क़ैद
९.	८–१०–१९२६	,,	८ महीना क़ैद
१०.	२८–९–१९३१	,,	१२ महीना क़ैद
११.	३–१–१९३६	,,	१८ महीना क़ैद
१२.	१०–९–१९४०	,,	१८ महीना क़ैद

ऐसे ही उदाहरण हमारी बुद्धि को चकरा देते हैं। सज़ा, जेल में सुधार के उपाय, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, सब कुछ हुआ और परिणाम कुछ न निकला। हैंडरसन लिखते हैं—

१. डा० डी० के० हैंडरसन, मनोविज्ञान के अध्यापक, एडिनबर्ग विश्व-विद्यालय,—Mental Abnormality पृष्ठ ११४–११५

"सब बातों पर पूरी तरह से विचार करने के बाद हम यह मानने के लिए मजबूर होते हैं कि कामुक अपराध को चिकित्सा तथा सामाजिक सम्मिलित समस्या कहा जा सकता है। फिर भी आज तक ऐसे अपराध तथा अपराधी के साथ समुचित उपाय की हमको जानकारी नहीं हो पायी है।"[१]

वासना का रोगी मनोवैज्ञानिक रोगी है या समाज का रोगी? जब तक यह निर्णय न किया जाय, दंड का भी निश्चय नहीं हो सकता। यदि मानसिक रोगी है तो जेल या पिटाई से मरीज़ पर कोई असर न पड़ेगा। यदि साधारण चोर डाकू की तरह सज़ा दी जाय तो उससे अपराध मे कमी नही आ सकती। वासना का रोग शरीर की विशिष्ट वनावट तथा उसके भीतर विशिष्ट रस—सुख के कारण है, यह भी कहना बड़ा कठिन है। आज का विज्ञान अब इस उसूल को भी मानने को तैयार नहीं है। प्रत्येक डाक्टर या वैद्य यह जानता है कि बीमारी की हालत में रोगी जैसा व्यवहार करता है, स्वस्थ दशा में वैसा नहीं करता।[२] पर कामुक व्यक्ति के व्यवहार में स्वस्थ या रोगी दशा में अन्तर नहीं मालूम होता। यही बात अनुसंधान के लिए बड़ा महत्त्व-पूर्ण विषय है। अभी तक निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

सन् १९५५ में लन्दन में अपराध-शास्त्र विषयक द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। उसमें विचारणीय विषयों में "बार-बार अपराध करनेवाले" की समस्या थी, जिस पर बहुत विचार किया गया था। इन पंक्तियों का लेखक तथा विश्व-विख्यात अपराध शास्त्री डा० शेल्डन ग्लूक और उनकी पत्नी एलिनर ग्लूक उस सम्मेलन में उपस्थित थे। उसके निर्णयों की समीक्षा में श्री शेल्डन ग्लूक ने एक लेख लिखा है। उसमें आप लिखते हैं[३]

"अपराधी की रचना में पिता-माता की लापरवाही या फिर बहुत लाड़-प्यार भी महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है। जाँच से एक बात यह मालूम होती है कि हर अपराधी का इतिहास अपनी विशेषता रखता है। उनमें एक-स्वरता (समानता) नही है। फलतः बहुत से आर्थिक अपराधों की तह में उद्दंडता या कामुक अपराध हो सकता है या दोनों ही वर्तमान हो सकते हैं। जब अपराधी का इतिहास एक समान मालूम होता है तब भी मनोविश्लेपण से यह पता चल जाता है कि एक अपराधी के व्यक्तित्व के अन्तरतम में कोई गहरी उलझन या गड़बड़ी छिपी हुई है।"

१. वही, पृष्ठ ११५ २. वही, पृष्ठ १५९ ३. Two International Criminologic Congresses—A Panorama—By Sheldon Glueck, Published in "Mental Hygienc"--Vol. XI. No. 3, July 1958 तथा No. 4, Oct. 1958

अध्याय १४

चुम्बन

अपराध के संस्कार अनेक कारणों से बनते हैं। उनमें चुम्बन भी एक बड़ा भारी कारण है। चुम्बन से एक छिपी उत्तेजना होती है—चुम्बन लेनेवाले, देनेवाले तथा देखनेवाले को। हैवलाक एलिस तथा फ्रायड दोनों ने कहा है कि बच्चे को अपनी माता के स्तन से खेलने में कामुक सुख मिलता है। पिता-माता को अपनी सन्तान का मुख चूमने में कामुक सुख मिलता है। जिन देशों में माता-पिता बच्चों के सामने परस्पर चुम्बन करते रहते हैं उन देशों में बच्चे बचपन से ही कामुक शिक्षा प्राप्त करते रहते हैं। इसी लिए पूर्वी देशों में, जहाँ परस्पर चुम्बन अभी तक सभ्यता की सीमा के पार नहीं जा सका है, पश्चिम की तुलना में वासना के अपराध कम होते हैं।

चुम्बन से बचपन में ही कामोत्तेजना का उपदेश मिलता है। ह्रीली ने ११ वर्ष के एक बच्चे की कथा दी है जो प्रायः चोरी करता रहता था। रात-रात भर घर से ग़ायब रहता था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि जब वह चार वर्ष का था, एक लड़की ने उसे प्रसंग का पहला पाठ पढ़ाया। इस शिक्षा का उसने एक लड़के पर उपयोग किया और पकड़ा गया। तबसे उसे सँभालने का प्रयत्न किया गया, पर सफलता नहीं मिली। यह बच्चा सिनेमा जाने का बड़ा शौक़ीन था। माता-पिता के मना करने पर भी यह सिनेमा जाता था और सिनेमा जाने के लिए पैसे की चोरी करता था। सिनेमा में इसे सबसे ज़्यादा आनन्द तब आता था जब प्रेमी लोग "आपस में एक दूसरे को चूमते थे।" इस प्रकार का दृश्य देखने के बाद वह अक्सर हस्तक्रिया किया करता था।[१]

चुम्बन के इसी विनाशकारी परिणाम के कारण आज से चार सौ वर्ष पूर्व इटली में सार्वजनिक स्थान पर पति-पत्नी का चुम्बन भी प्राणदंड के योग्य अपराध था और आज भी वहाँ सार्वजनिक स्थान में, सड़क पर, होटल में, रेलवे प्लैटफार्म आदि पर, कहीं

१. ह्रीली, अध्याय ७, पृष्ठ ३०९–३१०

भी आत्मीय से आत्मीय को चूमा नहीं जा सकता। पुर्तगाल तथा स्पेन में भी सबके सामने प्रेम प्रकट करना अपराध समझा जाता है। इटली में "चुम्बन" शब्द का दंडविधान में प्रयोग नहीं है। उसे "चिढ़ पैदा करनेवाला," "अपमानजनक", "निजी प्रहार", "सार्वजनिक शिष्टता के विरुद्ध कार्य" आदि सम्बोधनों से इंगित किया गया है। प्राचीन रोमन क़ानून में चुम्बन तीन प्रकार के होते थे, १. स्नेह का परिचायक "गाल का आलिंगन,"[१] प्रेम का परिचायक "मुख का चुम्बन",[२] वासना का परिचायक "भरपूर चुम्बन"[३]। रोमन क़ानून में अपनी कन्या के सामने अपनी पत्नी को चूमना भी अपराध था। आज भी अनेक इटालियन नगरों में पुलिस की टोली गश्त लगाकर चूमनेवालों को गिरफ्तार करती रहती है। रात को पुलिस की गाड़ियाँ तेज़ रोशनी फेंककर देखती रहती हैं कि कोई चूम तो नहीं रहा है।

८ मार्च १५५२ को नेपुल्स (इटली) में, जो उस समय स्पेन के अधीन था, एक क़ानून लागू हुआ जिसके अनुसार सार्वजनिक चुम्बन पर प्राणदंड की सज़ा निर्धारित हुई। सन् १५८९ में वेनिस के राजा ने इसी अपराध पर अपनी लड़की को घर से निकाल दिया। इटालियन दंडविधान की धारा ७२६ के अनुसार चुम्बन के अपराधी को एक मास क़ैद तथा १६,००० लिरा (इटालियन सिक्का) यानी १३८० रुपये जुर्माना देना पड़ेगा। चूमने के विरुद्ध १८वीं सदी में पोप का भी फ़तवा जारी हुआ था।

पर, सन् १९०९ से चुम्बन के हिमायतियों का आन्दोलन शुरू हुआ। इटली के सेरजेतो नगर में लिस्तुरे नामक युवक का मेरिया नामक लड़की से प्रेम हो गया। कुछ समय बाद मेरिया ने दूसरे नौजवान को अपना लिया। लिस्तुरे ने यह सम्बन्ध तोड़ने के लिए एक उपाय किया। एक दिन मेरिया बीच बाज़ार में से अपने नये प्रेमी के साथ जा रही थी। लिस्तुरे ने दौड़कर उसे भरमुह चूम लिया। लिस्तुरे का लक्ष्य पूरा हुआ। मेरिया का नया प्रेमी चिढ़कर चला गया। पर युवक पर चुम्बन के लिए मुक़दमा चला और तबसे अदालतों के सामने यह समस्या है कि ऐसे अवसरों पर दंड दे या न दे। लिस्तुरे छोटी तथा बड़ी अदालत से, दोनों से छूट गया था। सन् १९२९ में, २१ जनवरी को एक अपील कोर्ट ने फ़ैसला किया कि अपने भावी पति या पत्नी को सार्वजनिक स्थान में चूमना अपराध नहीं है। पर, १९५१ की जुलाई में इटली के सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला किया कि यदि "चुम्बन कामुकता अथवा कामवासना को व्यक्त

१. Osculum २. Basium ३. Savium

नहीं करता" तो वह अपराध नहीं है। पर, जून १९५५ में एक अपीलकोर्ट ने पुनः फ़ैसला दिया कि "चुम्बन अश्लील कार्यों में से है।" सन् १९५८ में रोम में एक युवक पर एक कन्या को सार्वजनिक उद्यान में चूम लेने का अभियोग लगा, पर जब यह सफ़ाई दी गयी कि लड़के ने चूमा पर लड़की ने चूमने का जवाब चूमकर नहीं दिया तो अपराधी छोड़ दिया गया।

वासना के सबसे अधिक अपराध फ्रान्स में होते हैं। संयुक्त-राष्ट्रपरिषद् के अनुसार सन् १९५३-५४ में मिस्र में प्रति दस लाख व्यक्ति पीछे वासना के ९ अपराध हुए, जापान में ३६ का औसत था, तुर्किस्तान में १०३५ तथा फ्रान्स में ५०३६ अपराध हुए।[1] मिस्र तथा जापान में गार्हस्थ्य जीवन की मर्यादा कहीं अधिक है। पूर्वी देशों में तथा मुसलिम राज्यों में सार्वजनिक चुम्बन पर रोकथाम है। चुम्बन की सबसे ज़्यादा आज़ादी फ्रान्स में है। वहाँ पर हर गली, कूचा, चौराहा पर लोग एक-दूसरे से चिपटे-चूमते नज़र आयेंगे। उसका परिणाम भी प्रत्यक्ष है।

१. राष्ट्रपरिषद् की रिपोर्ट, १९५५

अध्याय १५

विवाह तथा तलाक

सामाजिक जीवन में स्थिरता लाने के लिए, परस्पर प्रेम-भाव क़ायम रखने के लिए तथा साथ ही वासना को एक नियंत्रण में रखने के लिए विवाह से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। पर इस सम्बंध में भारतीय सभ्यता ने जो ऊँचा आदर्श प्रतिपादित किया है वह कहीं नहीं है—विवाह भोग के लिए नहीं, सन्तानोत्पत्ति के लिए, पितृ-ऋण से मुक्ति पाने के लिए है। यह आदर्श मानकर चलने से पत्नी को वेश्या भी नहीं बनाया जा सकता। पर हिन्दू धर्म में भले-बुरे की सभी गुन्जायश है।[1] ज्योतिष की गणना करके किस समय कहाँ पर प्रसंग हो, यह भी निर्देश कर दिया गया है। "जातक-पारिजात" के अनुसार सुख-स्थान में यदि सूर्य हो तो घर के अतिरिक्त वन या उद्यान में प्रसंग करना चाहिए। सुख-स्थान में चन्द्रमा हो तो रमणीय गृह में, मंगल हो तो कुटी में, बुध हो तो विहार के स्थान में हो विहार हो, गुरु सुख-स्थान में हो तो मंदिर

१. ज्योतिष शास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक "जातक पारिजात" दैवज्ञ श्री वैद्यनाथ विरचित, काशी संस्कृत सीरीज ग्रंथमाला, १०. प्रकाशक जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, चौखम्भा, वाराणसी, सन् १९४२—में श्लोक हैं—

वंध्यासंगमिनेऽस्तगे समवधूकेलिर्निशानायके
भूपुत्रे तु रजस्वलाजनरतिं वंध्यावधूमेति वा
वेश्यामिन्दुसुते तु विप्रवनितां जीवे सिते गर्भिणीं
नीचस्त्रीरतिमर्कजोरगशिखिप्राप्तेऽथवा पुष्पिणीम् ॥३९॥

(सप्तमाष्टमनवम भाव फलम्, अ० १३)

यानी सूर्य सप्तम हों तो वंध्या स्त्री से संगम हो, चन्द्रमा सप्तम हों तो अपने समान स्त्री से, मंगल में रजस्वला से, बृहस्पति सप्तम हों तो ब्राह्मणी से, शुक्र सप्तम में गर्भिणी से, बुध में वेश्या से, शनि, राहु वा केतु सप्तम हों तो नीच स्त्री या रजस्वला से रति हो।

में प्रसंग हो। शुक्र हों तो जल के समीप हो, शनि, राहु तथा केतु, इनमें से कोई यदि सुख-स्थान में हो तो शंकर, देवी या गणेश के मन्दिर में प्रसंग हो।[१] देखने में यह श्लोक मूर्खतापूर्ण मालूम होता है। पर इसका एक फल अवश्य है। इतना विचार कर, ग्रह, नक्षत्र आदि देखकर चलने वाला बिरला ही अपनी कामुकता का अवसर प्राप्त करेगा। ये सब भी वास्तव में वासना की रुकावट के लिए बंधन हैं। जहाँ बंधन नहीं है वहाँ की परिस्थिति बड़ी खराब है। वहाँ का वातावरण नयी सभ्यता की चमक-दमक में इतना दूषित हो गया है कि पग पग पर काम-वासना को उत्तेजना मिलती है। जेन अदाम्स ने बहुत पते की बात लिखी है कि आजकल के समाज का मनोरंजन का साधन ही ऐसा है कि "पग-पग पर वासना पैदा करता है, अपराधी बनाता है। नाच, गाना, खेल, कूद, सिनेमा, थियेटर, रेडियो, टेलीविजन, सड़क के साधारण मनोविनोद, जिधर देखिए वासना को प्रोत्साहन मिलता है।"[२] रजस्वला होने के बाद, उठती हुई जवानी में, चपल, चंचल व मनेवाली लड़कियाँ पुरुषों को उत्तेजित करती हुई, ललचाती हुई, प्रसंग द्वारा उनको रोगी तथा निकम्मा बनाती हुई, अपनी समवयस्क लड़कियों को बुरी नसीहत देती हुई, समाज के लिए ख़तरे की घंटी हैं।[३]

पश्चिमी देशों में चरित्र इतना गिर गया है कि संयुक्तराज्य अमेरिका में फ़ी १००० व्यक्ति पीछे, २·२ तलाक़ होते हैं। रूमानियां (कम्यूनिस्ट) में १·९ तथा हंगरी (कम्यूनिस्ट) में १·८ और डेन्मार्क में १·५ का औसत है। उत्तरी आयरलैंड में फ़ी एक हज़ार आबादी पीछे ०·०७ तथा पुर्त्तगाल में ०·०९ का औसत है। इंग्लैंड, फ्रान्स आदि में १·२५ से लेकर अन्य यूरोपीय देशों में ०·५ तक का औसत है।

बहुत से देश ऐसे हैं जहाँ विवाह योग्य स्त्रियों की कमी है। बहुत से स्थान ऐसे

१. क्रीड़ागारमिने वनं सुखगते चारु स्वगेहं विधौ
भूपुत्रे सति कुड्यमिच्छति बुधे जातो विहारस्थलम् ।
जीवे देव गृहे सिते तु सलिले मन्देऽथवा पन्नगे
केतौ माधवशंकरप्रियसुतस्थानं वधूसंगमे ॥ ४० ॥ अ० १३
(जातक पारिजात, पृष्ठ ४७८).

२. Jane Addams—"The Spirit of Youth and the City Streets"—Macmillan, New York, 1909

३. ह्वीली—चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ २४८.

हैं जहाँ विवाह योग्य पुरुषों की कमी है। अलास्का या फ़ाल्कलैंड द्वीप समूह में, सन् १९५५, ५६, ५७ के साल में १५ वर्ष से ऊपर, विवाह योग्य स्त्रियों में फ़ी १००० पीछे २०५, १५१ तथा १४९ का विवाह हो गया। इसी अवधि में इसी उम्र की विवाह योग्य स्त्रियों में फ़ी १००० पीछे केवल ८७ का विवाह संयुक्तराज्य अमेरिका तथा वेस्ट इंडीज़ में हुआ। संसार में ७२ ऐसे देश है जहाँ पर विवाह योग्य स्त्रियों की अधिकता है। पूर्व जर्मनी (कम्यूनिस्ट) का स्थान आँकड़ों से इन देशों में प्रधान प्रतीत होता है। वैसे पश्चिमी जर्मनी, पोलैंड आदि में भी यही दशा है। सन् १९५७ में पूर्वी जर्मनी में विवाह योग्य १००० पुरुषों में ११३ का विवाह हो गया।[1] संसार में विवाहित लोगों की संख्या इधर बराबर बढ़ रही है। बहुत से देशों ने विवाह करने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन दे रखे हैं। इंग्लैंड में ४२ पौंड (६३० रुपये) टैक्स में छूट मिलती है। फ्रांस में संतान होने पर सरकारी सहायता मिलती है। जो हो, विवाहित लोगों की संख्या बढ़ रही है। राष्ट्रपरिषद् के अनुसार "८५-५४ उम्र के बीच के अविवाहित पुरुषों की संख्या घट गयी है।" यह बात प्रायः हर एक देश में है। यद्यपि भारत के लिए आँकड़े नही दिये गये है पर वहाँ भी यही स्थिति है। विश्व के इतिहास में "इतने अधिक विवाह नहीं हुए थे जितने कि आजकल यानी पिछले तीन साल मे।" संयुक्तराज्य अमेरिका में ४५-५४ वर्ष की उम्र के बीच में केवल ८·५ प्रतिशत व्यक्ति अविवाहित है। इस उम्र के ७५ प्रतिशत लोग वहाँ विवाहित हैं बाकी या तो विधुर हैं या तलाक़ दिये जा चुके है। भारत तथा थाईलैंड (स्याम) में इस उम्र के केवल ४ प्रतिशत लोग बिना स्त्री के हैं। संयुक्त अरब प्रजातन्त्र, मोरक्को, अल्जीरिया, लीबिया, तुर्किस्तान आदि में इस उम्र के केवल ५ प्रतिशत अकेले हैं। कनाडा, पश्चिमी यूरोप आदि में लगभग संयुक्तराज्य अमेरिका का औसत है। आयरलैंड में विवाह बहुत कम होते है—हज़ार पीछे पाँच और ४५-५४ के उम्र के बीच में वहाँ ३१ प्रतिशत अकेले है। मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका में २२ प्रतिशत अविवाहित है तथा कोलम्बिया, निकारागुआ, पारागुये, क्यूबा आदि मे १५ से १८ प्रतिशत।

पश्चिमी यूरोपीय देशों में ४५ से ५४ वर्ष की उम्र की १०-१४ प्रतिशत स्त्रियाँ बिना ब्याही है। आयरलैंड में २४ से २६ प्रतिशत स्त्रियाँ कुमारी हैं। पर वहाँ की स्त्रियों का चरित्र अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक अच्छा है। वहाँ कुमारी

१. ये सब आंकड़े राष्ट्र संघ द्वारा प्रथम वार प्रकाशित रिपोर्ट से लिये गये हैं—
U. N. Demographic Year Book, 1958

गर्भवती बहुत कम मिलेंगी, इसी लिए वहाँ १००० पीछे संतानोत्पत्ति २० का औसत है जब कि अविवाहिता का औसत प्रायः वही होते हुए भी पनामा तथा वेनेजुएला में बच्चों की उत्पत्ति का औसत १००० पीछे ४० तथा ४६ है। वेनेजुएला में कुमारियों की संख्या ३४ प्रतिशत है।

संसार के सभी देशों का औसत मिलाने पर पता चलता है कि दूल्हनों की औसत उम्र २४ वर्ष की है। दूल्हों की औसत उम्र २७ वर्ष की है। संयुक्त राज्य अमेरिका में औसत उम्र दूल्हे की साढ़े चं बीस, दूल्हन की २२ है। ११५ देशों में औसतन वधू की उम्र १९ से ३१ वर्ष है। सब से छोटी उम्र की वधू फीजी द्वीप, अल ग्रानिया, मिस्र आदि में तथा सबसे बड़ी उम्र की वधू —३१ वर्ष फ्रेंच गाइना, वेस्ट इंडीज आदि में मिलेगी। फ.जी आदि में वर की उम्र औसतन २३ वर्ष की है। फ़िलप्पीन, मेक्सिको, बलगारिया आदि में औसतन २७ वर्ष, वर-वधू की उम्र में ४ से ७ वर्ष तक का औसतन अन्तर प्रतीत होता है। सबसे कम अन्तर मिस्र, स्पेन आदि में होता है।

आजकल, कुछ वर्षों से विवाह जल्दी होने लगे है। कुछ देश ऐसे है जहाँ विवाह की उम्र बढ़ गयी है, जिनमें भारत तथा जापान मुख्य है। जहाँ पर जल्दी विवाह होने लगे है उनमे संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैड, कनाडा, न्यूजीलैड, आस्ट्रेलिया आदि प्रमुख हैं। पर "विवाह" का अर्थ यह नही है कि सभी का विवाह पहला विवाह होता है। अलास्का में प्रति वर्ष जो विवाह होते है उनमें केवल ५० प्रतिशत वर या वधू ऐसे होते है जिनका विवाह पहले नही हुआ रहता। मिस्र में ६२ प्रतिशत का औसत है। संयुक्त-राज्य अमेरिका में नव-विवाहितो में ६९ प्रतिशत वर या वधू की पहली शादी होती है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैड ऐसे देशो मे ९० प्रतिशत का प्रथम विवाह होता है।

सवाल यह है कि क्या जल्दी विवाह हो जाने से यानी विवाह की उम्र न टालने से वासना के अपराध घट सकते हैं। आज हर एक सभ्य देश में जल्दी विवाह कर लेने की सलाह दी जा रही है ताकि वासना के अपराध कम हों। हीली लिखते हैं[1]—

"असभ्य तथ सादी ज़िन्दगी वाले लोगों में शीघ्र विवाह हो जाता है। पर हमारे साथ आर्थिक तथा अनेक परिस्थितियाँ इसके विपरीत हे। हमने बहुत से परिवार वालों को कहते सुना है कि वे अपनी समय से पूर्व युवती हुई कन्या के शीघ्र विवाह की महत्ता को समझते हैं पर उसका विवाह करना असम्भव होता है, क्योंकि या तो कोई उस समय तक उसका प्रेमी नहीं होता या फिर बहुत ही कम उम्र का, अप्रतिष्ठित, आर्थिक दृष्टि

१. हीली. अध्याय ४, पृष्ठ २४८.

से एकदम निकम्मा पति मिलता है. . .अक्सर १६ वर्ष की लड़की या लड़का ३० वर्ष के स्त्री या पुरुष के बराबर कामुक दृष्टि से होते हैं पर. . . . ."

विवाह क्यों तथा कब ?

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने सन् १९५० में जब शिक्षामन्त्री के पद से युवक-युवतियों को सलाह दी कि वे जल्दी विवाह करें, तो लोगों ने उनके कथन की अहमियत को नहीं समझा। पर अब धीरे-धीरे लोग यह स्वीकार करने लगे हैं कि आर्थिक स्थिरता के लिए भी तथा सामाजिक स्थिरता के लिए बहुत देर का विवाह हानिकर होता है। जवानी उभड़ते ही वासना जरूर जागती है। उसे रोक-थाम लेना विरलों का ही काम है। जो सँभाल सकते है वे वास्तव में संसार में अमर काम भी कर जाते है।

जवानी आते ही पुरुष तथा स्त्री के दृष्टिकोण में एक बड़ा अन्तर होता है। लड़की एक अति सहनशील कार्य की तैयारी करती है—उसे पूर्ण मातृत्व की तैयारी करनी है। उसकी तैयारी केवल शारीरिक ही नहीं है, वह मनोवैज्ञानिक, भावनामय तथा आध्यात्मिक होती है। कामुक संसर्ग उसके लिए उस महान कार्य में केवल एक घटना मात्र है।[1] जब वह किसी जवान लड़के से प्रेम करती है तो वह कहती है—"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। चलो हम लोग विवाह कर लें"। पर जवान होता हुआ लड़का किसी युवती से कहता है—"मैं तुमको प्यार करता हूँ। चलो हम हम-विस्तर हों।" इस-लिए अनेक दृष्टियों से लड़के को अधिक शिक्षा मिलनी चाहिए। उसे शारीरिक आवश्यकता का आभास होता है। पर भावुकता उसके पल्ले नहीं पड़ती।'[2]

पर, पुरुष की भूलों को समाज सुधारता था। आज से सौ दो-सौ वर्ष पहले के पश्चिम के लोग यदि आजकल की तरह लड़के-लड़कियों का पूर्ण स्वतंत्र रीति से मिलना देखें तो घबड़ा जायँ। उन दिनों भी व्यभिचार आदि होते थे पर पारिवारिक जीवन अधिक स्थिर था। पति को न प्यार करने पर भी स्त्री उसके साथ रहती थी, इसलिए कि और कोई दूसरा चारा नहीं था। पुरुष अपनी स्त्री को छोड़ नहीं देता था, इसलिए कि यदि वह ऐसा करता तो समाज में नक्कू बन जाता और उसकी प्रगति में भयंकर

१. "Ahead of Marriage"—By Dr. E. Chesser in "Getting Married—1958. पृष्ठ ७४

२. वही, पृष्ठ ७५

बाधा पड़ जाती।[१] आज के युग में हमको पिछली सफलता तथा असफलता से नसीहत लेनी चाहिए। जवानी स्थायी वस्तु नही है। थोड़े दिनों की चीज़ है। अतएव जवानी की भूल से शेष जीवन को क्यों नष्ट किया जाय? अधेड़ उम्र आते-आते वासना शान्त होने लगती है। पुरुष अपने स्वभाव में स्वयं नर्मी महसूस करता है तथा परिवार के प्रति अधिक आकर्षित होने लगता है। स्त्री तो शुरू से ही अपने परिवार में फँस जाती है। विवाह एक पवित्र कार्य है। उसकी पवित्रता को जब तक हम लोग नहीं समझेंगे तब तक विवाह की मर्यादा नहीं बन सकेगी।[२]

आदर्श प्रेम तथा आदर्श विवाह के सम्बन्ध में एक रूसी पुस्तक "माँ-बाप और बच्चे" में बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है—"और प्योत्र एलेक्सान्ट्रोविच ने अपने पारिवारिक जीवन की बड़ी विवेकपूर्ण और सुन्दर व्यवस्था कर रखी है। अपनी युवावस्था में उन्होंने सुन्दर युवतियों के आकर्षण का सही-सही विश्लेषण और मूल्यांकन करके नीना वसीलियेव्ना को अपनी पत्नी के रूप में चुना था। वह उस समय एक भूरी आँखोंवाली लड़की थी जो दूसरों को थोड़ी व्यंग भरी दृष्टि से देखती थी। प्योत्र ने समझ-बूझकर अपनी भावनाओं की लगाम ढीली छोड़ दी और नीना से गहरा और स्थायी प्रेम करने लगे, जिसमें मित्रता तथा पुरुष की सूक्ष्म श्रेष्ठता भी मिली हुई थी। नीना ने मधुर उपेक्षा के साथ इस श्रेष्ठता को स्वीकार किया....[३]"

किन्तु विवाह एक धार्मिक कृत्य है। किसी हिन्दू-मुसलमान को या यों कहिए कि किसी भारतीय को यह समझाने की ज़रूरत नहीं है। पश्चिमी देशों में जहां ईसाई मज़हब के होते हुए भी इसका धार्मिक महत्त्व जाता रहा है, अब लोग पुनः उसके धार्मिक रूप पर आ रहे हैं। हम कहते हैं कि पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए विवाह करना चाहिए। विवाह का लक्ष्य कामुकता नहीं, सन्तानोत्पत्ति है। डा० यूस्टेस चेसर ने अपने अनुसंधान से यह सिद्ध कर दिया है कि उस पुरुष-स्त्री का बचपन तथा जवानी, कौमार्य और वैवाहिक जीवन अन्य की तुलना में कही अधिक सुखी तथा सफल होता

१. "The Good old days"—Doris M. Odlum—Article in "Getting Married", 1958, **पृष्ठ, ८०, ८२**

२. **इस सम्बंध में देखिए** "Whom God Hath Joined"—Dr. David R. Mace–Pub. Epsworth Press. London

३. **माँ-बाप और बच्चे—ले० अ० स० माकारेंको. विदेशी भाषा प्रकाशन ब्यूरो, मास्को, पृष्ठ १७९.**

है जो धार्मिक विश्वासी होते हैं। जिस परिवार में धार्मिक भावना होगी, उसके बच्चे अधिक सुखी होंगे। आज के वैवाहिक जीवन की कटुता का कारण पति-पत्नी का अलग-अलग घोर स्वार्थी होना है। जहाँ पुरुष तथा स्त्री अपना-अपना स्वार्थ लेकर खींचते हैं, कटुता होगी ही, पर जिनका विश्वास होता है कि "भगवान् की इच्छा सर्वोपरि है", वे निजी स्वार्थ को सर्वोपरि नहीं मानेंगे। सच्ची धार्मिकता क्षुद्र स्वार्थ को परास्त कर देती है।[1] ईश्वर ने सृष्टि की रचना की। अब हम "सृष्टि की रचना कर यानी सन्तान उत्पन्न कर" ईश्वर का कार्य कर रहे हैं। इस भाव से संतान का पैदा करना समाज का परम कल्याण करना है। आज जो लोग विवाह को धार्मिक कृत्य नहीं मानते उनके मन में भी धर्म के प्रति आस्था है। इंग्लैंड में सरे नगर के गिरजाघर के पास विवाह की रजिस्ट्री का दफ़्तर है। जो लोग गिरजा में विवाह न कर रजिस्ट्री कराते हैं उनमें ९० फ़ी सदी पास के गिरजा के जीने पर पति-पत्नी की तसवीर खिंचा लेते हैं? क्यों आज इंग्लैंड और वेल्स में प्रति १० विवाह पीछे सात धार्मिक रूप से होने लगे हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि धार्मिक रीति से किया गया विवाह सदैव श्रेष्ठ समझा गया है।[2]

निकट-सम्बन्धी विवाह और अपराध

हिन्दू शास्त्र में गोत्र तथा निकट सम्बध बचाकर विवाह करने की सलाह दी गयी है। आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकार कर रहा है कि निकट सम्बन्धी विवाह बड़ा हानिकारक है।[3] ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान अधिक अपराधिनी या अपराधी होती है। निकट सम्बधियों में विवाह के कारण ही स्पार्टा, यूनान या रोम ऐसी सभ्यताएं नष्ट हो गयीं। यूनान में सगे भाई-बहिन का विवाह होने लगा था। प्लेटो ने ऐसे विवाह की बड़ी निन्दा की है। पादरी जी० आई० मेंडल ने वर्षों खोज करके

१. What Matters Most—Joseph Brayshaw–Getting Married, 1958, पृष्ठ ९१

२. वही, पृष्ठ ८७

३. इस विषय में देखिए "Is Racidivism due to Natural Urge for Crime or Defective Marriages—" By Paripurnanand Varma, Address to Third Inter-national Congress on Criminology, London, 12-18th Sept., 1955.

यह पता लगाया था कि निकट सम्बन्धी विवाह से पैदा होनेवाली संतान प्रायः बदज़ात होती है। सन् १२१५ में ही पादरियों की महासभा ने सम्बंधियों की चार श्रेणी का बराव करके विवाह करने की हिदायत दी थी। ब्रिटिश नरेश हेनरी आठवें ने सोलहवीं सदी में सगी साली से भी विवाह करने की मनाही कर दी थी। सन् १५६३ में बड़े पादरी पार्कर ने "किन-किन से विवाह नहीं करना चाहिए" का नक्शा तैयार किया था। सन् १६०३ में वह समूचे ईसाई जगत् में मान्य हो गया। स्पेन तथा पुर्तगाल में ममेरा, चचेरा, मौसेरा रिश्ता भी नहीं हो सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका में, वाशिंगटन समेत १६ राज्यों में चचेरे भाई-बहिन या मौसेरे भाई-बहिन के साथ विवाह वर्जित है। सन् १६७३ में सायमन डुगार्ड का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें यह सिद्ध किया गया था कि निकट सम्बन्धियों के विवाह से पैदा होनेवाली संतान मरती अधिक है, जीवित कम रहती है। सन्तानोत्पत्ति की संख्या तो प्रायः बराबर रहती है, क्योंकि पियर्सन तथा नेटलशिप की खोज के अनुसार ११८ परिवारों में, जिनमें निकट सम्बन्धी विवाह हुआ था, औसतन ५ से ६ बच्चे थे तथा २२४ परिवार जिनमें रिश्तेदारी में विवाह नहीं हुआ था, औसतन ५·४ बच्चे थे। पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय के श्री आर्नर की खोज के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में २० वर्ष से कम उम्र के मरनेवाले लड़के-लड़कियों में १६.७ प्रतिशत चचेरे या मौसेरे पति-पत्नी की संतान थे, १४.९ प्रतिशत अन्य निकट सम्बंधियों की सन्तान थे तथा ११·६ प्रतिशत साधारण विवाह की सन्तान थे। इस प्रकार निकट सम्बंधी की सन्तान की उम्र कम होती है। यही डारविन का भी मत है।

सन् १८६५ में सर आर्थर मिचेल ने साबित किया था कि निकट सम्बंधी विवाह की संतान अन्य सन्तान की तुलना में पागलपन तथा दोषी मस्तिष्क की अधिक शिकार होती है। अमेरिका के श्री फे का कहना है कि ऐसे विवाह की सन्तान का कम से कम ३ प्रतिशत बहरा या गूंगा होता है। आयरलैंड के जनगणना विभाग का कथन है कि ऐसी सन्तान में ७ प्रतिशत, गूंगी बहरी होती है। डाक्टरी खोज का निचोड़ है कि ऐसे बच्चों में क्षयी रोग अधिक होता है, लगभग ४ से ६ प्रतिशत तक ऐसे बच्चों में अपराधी प्रवृत्ति, अपराधी भावना, कामुक वासना, शारीरिक दोष, मस्तिष्क विकार, उन्माद आदि रोग अन्य बच्चों की तुलना में अधिक होते हैं। ऐसे रोगी तथा अपराधी संसार में कहीं अधिक होते, पर निकट संबंधी विवाह ही कम होते हैं। डारविन के कथनानुसार सन् १८७२-७३ में इंग्लैंड में ऐसे विवाहों का औसत १ प्रतिशत ही था। प्रो० पियर्सन को ब्रिटिश मेडिकल जर्नल ने ४·७ प्रतिशत संख्या बतलायी थी। श्री आर्नर के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में ५ प्रतिशत है और प्रो० पीट का कहना है कि

सभ्य देशों के सभी विवाहों में निकट सम्बंधियों के विवाह का २ प्रतिशत का औसत पड़ेगा।

निकट-सम्बंधी विवाह के मना करने का वैज्ञानिक कारण यह है कि एल्डरटन के अनुसार एक ही ख़ून के लोगों में विवाह होने से एक ही प्रकार के गुण या अवगुण सन्तान में आते हैं। पर, चूंकि गुण और अवगुण के मेल में स्वभावतः अवगुण पहले घर कर लेता है अतएव एक ही रक्त का दोनों का सिम्मिलित अवगुण बच्चे में समा जाता है। यदि दो प्रकार के प्राणी मिलेंगे तो दोनों के भिन्न-भिन्न गुण-अवगुण में जो दोनों का सम्मिलित गुण होगा, वही अधिक बलशाली होगा। वैज्ञानिक खोज से[1] सिद्ध हो चुका है कि निकट-सम्बंधी विवाह में स्वभाव तथा बुद्धि में समानता सबसे अधिक होती है। फलतः पिता-माता का सम्मिलित स्वाभाविक अवगुण शिशु में जल्दी प्रवेश करता है। यह बात भाई, बहिन, चाचा, भतीजा, चाचा, चाची-भतीजा, चाचा-भतीजी आदि में पूरी तरह से लागू होती है। अतएव आजकल अपराध रोकने का प्रयत्न करनेवाले यदि अपराधों में कमी करना चाहते हैं तो इस प्रकार के विवाह भी अवश्य बन्द होने चाहिए।

विवाह शीघ्र करें

डा० सम्पूर्णानन्दजी ने शीघ्र विवाह करने पर ज़ोर दिया है। डा० जी० आई० एम० स्वायर[2] भी उन्हीं के मत में हैं यद्यपि डा० सम्पूर्णानन्दजी के कथन के ८ वर्ष बाद स्वायर उसी नतीजे पर पहुँचे हैं। उनका कहना है कि विवाह कब करें, इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि तुम कौन हो, तुम्हारी क्या उम्र है, तुम क्यों विवाह करना चाहते हो। यदि पचास के ऊपर के विधुर या विधवा विवाह करेंगे तो उनके लिए समस्या ही दूसरी होगी। वास्तव में यह पहेली नवयुवक तथा नवयुवती के लिए है।

जो निजी जीवन का सुख चाहते हैं, जो सुरक्षा तथा स्थिरता चाहते हैं, वे जितनी जल्दी विवाह कर लें, उचित है। यदि संतान चाहिए तो तभी विवाह कर लो जब तक स्त्री में उत्पादनशक्ति है। बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य रखनेवाले स्त्री-पुरुष प्रायः नपुंसक

१. The Biometrics and Eugenics Laboratories.

२. "The Right Age to Marry—" G. I. M. Swyer Getting Married 1958, पृष्ठ १०६ से १०८

भी हो जाते हैं और कामना जब एक बार मर जाती है तो जगाये नहीं जगती। ऐसी हज़ारों-लाखों लड़कियाँ हैं जिन्होंने विवाह की इच्छा को दबा लिया। उनकी कामना मर गयी और फिर जगाये न जागी। उनको पुरुष की कभी जरूरत नहीं पड़ी।[1] यह सही है कि कम उम्र में जवानी या व्यक्तित्व दोनों पूर्ण रूप से विकसित नही हो पाते पर लड़की की तुलना में लड़के में कामभाव जल्दी आता है। यदि वह विवाह न करेगा तो पथ-भ्रष्ट होगा। यह सही है कि २०-२१ वर्ष की उम्र के पहले कामुक शक्ति पूरी तरह से नहीं उन्नत हो पाती। यदि वह उन्नत हो जाय, जीविका का साधन सामने हो, भरण-पोषण की समस्या न हो, तो विवाह कर लेना चाहिए। स्त्री २० से ३० वर्ष की उम्र में गर्भ धारण करने की सबसे अधिक शक्ति रखती है। ३० के बाद उसकी यह शक्ति क्षीण होने लगती है। अतएव यदि संतान का सुख चाहिए तो २० से ३० वर्ष की उम्र में ही प्राप्त होगा। श्री स्वायर कहते हैं—

"विवाह करने का उचित समय अभी है. . . .अभी जवानी है। विवाह कर लो और जितना बड़ा परिवार बनाना चाहो, वैसा प्रबंध कर लो। जब तुम्हारे बच्चे बड़े होंगे, उस समय तक तुम दोनों भी जवान से ही रहोगे। यह बड़े संतोष की बात होगी।"

यह अवश्य है कि जहाँ आर्थिक समस्या हो, पेट की समस्या हो, वहाँ शीघ्र विवाह ही नही, विवाह मात्र भी हानिकारक हो सकता है।

१. Marie Stopes–Married Love., 1927.

अध्याय १६

आज की कृत्रिम सभ्यता

परिवार की महत्ता

वासना सम्बन्धी अपराध को रोकने के लिए, समाज में बढ़ते हुए हर प्रकार के अपराधों को रोकने के लिए, तथा बाल-अपराध के वेग कम करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम समाज में परम्परा तथा शिष्टता की मर्यादा पुनः स्थापित करें। शहरों की चकाचौंध से आज मानव अपनी मानवता को जिस प्रकार खो रहा है, उसे बचा लें।[1]

नगर की सभ्यता

श्री मार्गन लिखते हैं—"....अनजाने ढंग से संसार के अधिकांश भागों में यह समझ लिया गया है कि नगर के जीवन के कुछ विशिष्ट गुण ही वास्तव में महत्त्वपूर्ण तथा अन्य गुणों के आधार हैं। प्रायः इसी कारण परम्परा के पुजारी ग्रामों से, संसार भर में, लोग भाग-भागकर शहरों की ओर चले आ रहे हैं। फिर भी समाज को शक्ति देनेवाले कुछ ऐसे गुण तथा प्रवृत्तियां—जिनसे समाज में स्थिरता तथा परिष्कृति आती है—न तो मन के भीतर ऐसी बैठी हुई हैं कि जानवरों की तरह जहाँ चाहा, हाँक दिया और न तो वे मौजूदा पीढ़ी की तीव्र आलोचना से ही पैदा हो सकती हैं। वे तो हमारी परम्परागत सांस्कृतिक देन हैं।"

मार्गन लिखते हैं कि "यदि नगर की सभ्यता अपने को समुदाय की वास्तविक पृष्ठभूमि से दूर कर ले तो उसका क्या भविष्य होगा। पहले तो कोई स्पष्ट हानि नहीं दीखती। शिष्टाचार का स्थान सद्भावना ले सकती है। केवल अनुभवी व्यक्ति ही इसके अन्तर की थाह पा सकेगा। स्पष्टवादिता तथा सचाई का स्थान "हिकमत"

१. Arthur E. Morgan—The Community of the Future–Pub. Hindustani Talimi Sangh, Wardha–1958. **पृष्ठ २७ तथा ४९**

ले सकती है। नक़दी काम ज्यादा आसान होता है और पड़ोसी के सहयोग की ज़रूरत महसूस नहीं होती। अपने क्लब में, अपने मंदिर में या अपने व्यवसाय में हमने मित्र बना रखे हैं तो पड़ोसी को पहचानने या उससे जान पहचान करने की क्या ज़रूरत है। यदि हमारे मन पर कोई बोझ है तो मनोवैज्ञानिक तो है ही, अतएव घनिष्ट मित्र बनाने की क्या ज़रूरत है?"

कृत्रिम सभ्यता इसी प्रकार कृत्रिमता पैदा कर हमारे सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन को नष्ट कर रही है और उनके ही नष्ट होने के कारण समाज का सारा ढाँचा ही बिगड़ गया है, बिगड़ता जा रहा है। अब यह सोचना भी भूल होगी कि विवाह के बाद जीवन सुधर जाता है, आदमी अपने को सम्भाल लेता है। मद्रास सरकार के २१ अप्रैल १९५९ के पत्र के अनुसार,[१] ४ अप्रैल १९५९ को मद्रास के जेलों में जितनी स्त्रियाँ बन्दी थीं उनमें विवाहित-अविवाहित का औसत था—५·७५ विवाहित तथा १ अविवाहित। सन् १९५८ में मद्रास के जेलों में ८० व्यक्तियों को फाँसी की सजा मिली (फाँसी पर ३० ही लटकाये गये) जिनमें से ७५ मर्द थे, ५ औरतें तथा इनमें सभी स्त्रियाँ अविवाहित थीं तथा ९० फ़ीसदी मर्द विवाहित थे। उत्तर प्रदेश की सरकार के १२ मई १९५९ के पत्र के अनुसार[२] सन् १९५८ में प्रदेश के ६२ जेलों में ८६,५४३ क़ैदी थे जिनमें ४६,७८९ विवाहित तथा १८,१४६ अविवाहित थे। १७३ विधवाएँ थीं और ४५३० विधुर थे। वेश्याएँ ४ थीं। इन आँकड़ों से तो यही स्पष्ट होता है कि हमारे पारिवारिक जीवन में भी कुछ बड़ी गड़बड़ी है जिस कारण हम जीवन का सुख या महत्व कुछ भी नहीं समझ पाते। अविवाहित की तुलना में विवाहित अपराधी अधिक हैं।

इसी लिए राष्ट्रसंघ द्वारा आयोजित प्रथम अपराध-निरोधक सम्मेलन में, जेनेवा में ३ सितम्बर १९५५ में जो प्रस्ताव "परिवार" के सम्बंध में पास हुआ था,[३] उसकी महत्ता पर हमको विचार करना चाहिए—

"साधारणतः यह सर्वमान्य बात है कि प्रारम्भ से ही बच्चे के जीवन में परिवार का सबसे महत्त्वपूर्ण हाथ होता है तथा उसके व्यक्तित्व, प्रवृत्तियों तथा व्यवहार के

१. अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम

२. अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम.

३. First United Nations Congress on the Prevention of Crime & Treatment of Offenders—Geneva–Report–Page 4.

निर्माण में परिवार का मौलिक हाथ होता है। यह भी मान लिया गया है कि नगरों की वृद्धि तथा औद्योगिक सभ्यता की प्रगति ने हमारे सामाजिक, पारिवारिक तथा निजी जीवन को असंगठित कर दिया है। अपराधों में वृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण है परिवार में सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि रोकथाम के ऐसे उपाय किये जायें जिससे पारिवारिक बंधन अधिक दृढ हो, जिससे परस्पर स्नेह, भावुक सुरक्षा तथा नियंत्रण में वृद्धि हो। बच्चे में अपनत्व की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। उसे यह मालूम होना चाहिए कि मै अमुक परिवार का हूँ।"

परिवार की दृढ़ता ही समाज की दृढ़ता है। कुनवे का पुख़्तापन ही समाज को पुख़्ता बना सकता है। इसलिए ज़रूरत है कि हम समाज मैं परिवार की मर्यादा को लुप्त होने से बचायें, तभी कामवासना के अथवा अन्य प्रकार के अपराध कम होंगे। आजकल युवक समुदाय अपने पिता-माता, बहिन-बेटी, पड़ोस की कन्या, किसी की इज्ज़त नहीं करता। उसका सर्वनाश निश्चित है, चाहे वह सर्वनाश कितना ही शनैः-शनैः क्यों न हो। आज पुरुष अपने अधिकार के लिए लड़ता है। स्त्री अपने अधिकार के लिए।[१] हम चाहते हैं कि लोग परिवार के अधिकार के लिए लड़ें।

सदाचार की व्याख्या

दूसरी आवश्यकता यह है कि हम अपने मन में सदाचार की व्याख्या समझ लें। हर ज़रा सी बात को भ्रष्टाचार के दायरे में ले आना तथा "पतन" समझना भी बड़ी घातक चीज़ है। इससे समाज की नैतिकता का अनायास ह्रास होता है। जागर लिखते हैं—

"जिस समाज या जनसमूह का कामवासना सम्बन्धी दृष्टिकोण जितना ही संकुचित तथा नख़रेबाज़ होता है, जितना ही उस समाज में स्वाभाविक भूलों को अपराध समझा जाता है, उतना ही उस समाज में वेश्याओं का संघटन अनियत्रित तथा लज्जाजनक होता है—विष को फैलानेवाली वेश्याएँ बढ़ती ही जाती है—तथा

१. Mary Wallstonecraft (1759-1797) in "A Vindication of the Rights of Women"–Says–"Women will never attain the same degree of emancipation as man, and man will always surpass them in many things".

बड़े नगरों की अभिशाप अर्द्ध-वेश्याओं में बड़ी अधिकता हो जाती है—और मैं कहता हूं कि ऐसे समाज में गुप्त दुराचार खूब फैलता है तथा ऐसे दुराचार के शिकार लोगों को अपनी "सुन्दर" नैतिकता का बड़ा ग़र्रा रहता है। यह बात खास तौर पर इंग्लैंड के लिए लागू होती है।"[१]

व्यक्तिगत नैतिकता बना लेने से, व्यक्तिगत आदर्शों के चक्कर में पड़ जाने से समाज का कल्याण नहीं हो पाता। समूह के साथ व्यक्ति के सुख की जितनी अच्छी कल्पना प्राचीन काल का भारतीय करता था उतना कोई नहीं कर सकता। श्री जितेन्द्रनाथ बनर्जी के कथनानुसार —

"प्राचीन काल के भारतीयों के चरित्र में एक बात सबमें पायी जाती थी, वह यह कि वे अपने स्वतंत्र अनुसंधानों को समाज की प्रथा में मिला देते थे, अपने व्यक्तित्व को विशद समूह में डूबा देते थे, ताकि ज्ञान के विशेष अंगों में प्राप्त उनके अनुभव सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनकर अधिक अधिकारशील एवं पवित्र शिला पर स्थापित हो जायें।"[२]

सदाचार की बहुत बढ़-बढ़कर बातें करनेवालों से प्रो० मैकनील डिक्सन ने अपनी गिफर्ड व्याख्यानमाला में सवाल किया है —[३]

"जो लोग जुआ और शराब बन्द कर देना चाहते हैं, जो यहाँ तक चाहते है कि सब लोग १० बजे रात तक सो जायें, उनसे यह पूछना चाहिए कि क्या उनको मालूम है कि वे जीवनी-शक्ति के सोते को ही सुखा देना चाहते हैं। यदि वे मानव की शक्ति को ज़मीन में गाड़ देना चाहते है तो एक दिन यह इतनी एकत्रित होकर विस्फोट करेगी कि चन्द्रमा तक पहुंच जायगी। फ्रायड ने हमको स्मरण दिलाया है कि जब हम अपनी किसी दृढ़ तथा बलवती इच्छा को दबा देते हैं, तो वह एक दिशा में दबकर किसी दूसरी सूरत मे, दूसरी दिशा में, दूसरे वेश में उभड़ पड़ती है और उस व्यक्ति के जीवन में भयंकर उथल-पुथल पैदा कर देती है। ऐसी ही अतृप्त तथा दबी हुई वासना के फलस्वरूप भद्दे-भद्दे रीति-रिवाज़ पैदा होते गये। प्राचीन रोम में हर साल २३ फरवरी

१. Gustav Jager—"Discovery of the Soul" –Leipzig, 1884–Vol. I–Page 265.

२. The Development of Hindu Iconography by Jitendranath Bannerjee–Pub. Calcutta University, 1941–Page 14

३. Prof. Macneile Dixon–"The Human Situation".

को रोम नगर में युवक तथा युवतियाँ एकदम नग्न होकर सड़क पर जलूस बनाकर चलते थे और एक दूसरे को कोड़ा मारते रहते थे—ऐसी बेहूदी रीति का कोई भद्दा कारण होगा।"

समाज में प्रत्येक को तरह-तरह के अनुभव होते हैं। "समाज वह पाठशाला है जिसमें मनुष्य भले-बुरे की पहचान करना सीखता है।"[१] समाज हमें शिक्षा देता है कि अपने लिए कम लाभवाली होने पर भी अपने को अच्छी लगनेवाली वस्तु के मुका-बले में, सबके लिए अधिक लाभवाली वस्तु को अधिक पसन्द करें।[२] सर जेम्स स्टीफन ने कहा है[३] कि उचित वह है जिससे दूसरों को सुख मिले। अनुचित वह है जिससे दूसरों को कष्ट मिले या उस सुख में कमी हो।[४] बेंथम के कथनानुसार उपादेयता की दृष्टि से उचित तथा अनुचित की पहचान करनी चाहिए।[५] काम कुछ भी हो, परिणाम कुछ भी हो। काम का औचित्य और अनौचित्य काम करनेवालों की नीयत से समझना चाहिए—यानी असली चीज़ नीयत है, काम कुछ महत्त्व नहीं रखता। वेस्टरमार्क लिखते हैं—

"यद्यपि हमारी प्रकृति के भावुक आधार में गहरी जड़ जमाये हुए भी हों, पर नैतिकता के सम्बंध में हमारे विचार तर्क तथा बुद्धि द्वारा ठीक किये जा सकते हैं। उनकी सुन सकते हैं। हर समाज में, अधिकांश लोग परंपरा से चली आनेवाली उचित-अनुचित की भावना को, भले-बुरे की भावना को, कर्तव्याकर्तव्य की भावना को स्वीकार करते हैं। प्रचलित भावना के बारे में विशेष ऊहापोह भी नहीं करते। यदि ऐसी भावनाओं के प्रारम्भ या उद्गम की छानबीन की जाय तो पता चलेगा कि इनमें से बहुतों के पीछे निजी उपेक्षा, घृणा या स्वीकृति, पसन्द या नापसन्द की भावना छिपी होती है। इसलिए समझदार, विचारवान् को ऐसी घृणा या प्रेम की छानबीन करके तब उसके भले-बुरेपन का फैसला करना चाहिए।" यद्यपि दक्षिण सागर के द्वीपों

१. Dr. Edward Westermarch–"The Origin and Development of Moral Ideas"—Macmillan & Co., London 1912–Vol. I page 9

२. प्रो० सिजविक

३. सर जेम्स स्टीफन–पृष्ठ ३३८.

४. Benthem—"Principles of Morals and Legislation"–Page 4.

५. वही, पृष्ठ ११

में यह नियम है कि कोई सरदार यदि किसी साधारण स्त्री से विवाह कर ले तो उसे प्राणदंड मिलता है, पर इतनी ज़रा सी बात पर प्राणदंड देने के औचित्य या अनौचित्य कां निर्णय तो करना ही पड़ेगा।

भीतर बैठी हुई कामुक वासना ही मनुष्य को निर्दय तथा हृदयहीन बना देती है। यदि दंड देते समय मनुष्य भावना-शून्य हो जाय तो वह शायद न्याय भी कर सकता है, उदारता भी कर सकता है। किन्तु क्या बिना हृदयहीन बने न्याय का काम नहीं चल सकता। ब्रिटेन के सम्राट् चार्ल्स प्रथम को प्राणदंड की सज़ा देते समय पाँच न्यायाधीशों की जो अदालत बैठी थी उसने अपने फ़ैसले में कहा —

यहाँ से तुम उसी स्थान को जाओगे जहाँ से तुम आये थे। वहाँ से तुम एक छकड़े पर बैठाकर वध-भूमि को ले जाये जाओगे। वहाँ पर तुम्हें गर्दन से तब तक लटकाया जायेगा जब तक तुम आधे मुर्दा न हो जाओ। फिर तुम उसके बाद ज़िन्दा काटे जाओगे। पहले तुम्हारे सामने तुम्हारे अंडकोष और इन्द्रिय काटकर आग में फेंक दी जायँगी, तुम्हारा पेट चीरा जायेगा और भीतर का पाकाशय आग में जलाया जायगा। फिर तुम्हारे धड़ से सिर अलग किया जायेगा। तुम्हारे शरीर के चार टुकड़े करके सरकार जैसे चाहेगी उसका उपयोग करेगी।[१]

यह न्याय नहीं, सामाजिक उद्दंडता है, प्रतिहिंसा है, घोर कामुकता है जो इस प्रकार मानव-जीवन को कलंकित करती है। अदना से अदना और छोटी से छोटी बातों में समाज की विचित्र भावनाओं का द्योतक है। पुराने ज़माने में पश्चिम के अनेक देशों में स्त्रियाँ चाँदनी रात में खुले में नहीं सोती थीं—इसलिए कि उनका विश्वास था कि चन्द्रमा अपनी रश्मियों से, किरणों से उनके साथ संभोग करेगा।[२]

समाज बदल गया है। धारणाएँ भी बदल गयी है। पर, पुरुष और स्त्री का जीवन के प्रति भिन्न दृष्टिकोण न तो कभी एक केन्द्र पर आकर स्थिर हुआ है और न उसकी कोई सम्भावना प्रकट होती है। दोनों के मन के भीतर एक ऐसी कामवासना बैठी है जो जिधर चाहती है, घुमा देती है। इसी लिए केसरलिंग लिखते है कि "आज के

१. **सम्राट चार्ल्स प्रथम को प्राणदंड मिला था. देखिए—**
Sex in History–By G. Rattray Taylor, Pub. Thomas & Hudson, London–Page 183.

२. M. E. Harding–"Womens' Mysteries"–Longman Green & Co., Pub. 1935-Chapter II.

नर और नारी वासना की प्रेरणा से ही संचालित तथा परिचालित हो रहे है..... अधिकांश लोगों का विवाह अनुपयुक्त है। उनका जोड़ा बेमेल है। उन्हें पता भी नहीं चलता पर जब वे विवाह कर लेते हैं तब मालूम होता है कि उनके दोनों के दृष्टिकोण तथा जीवन में कितना व्यापक अन्तर है। प्रायः प्रत्येक स्त्री-पुरुष ग़लत व्यक्ति से प्रेम करता है। उनमें से बिरले को ही मालूम है कि विवाह का असली अर्थ क्या है ?" प्रेम उस वस्तु का नाम है जो सर्वांग सम्पूर्ण हो। विवाह वास्तविक प्रेम का परिचायक नहीं है।[१] यदि ईसा से ५०० वर्ष पूर्व तक यूनान में भाई-बहिन तथा चाचा-भतीजी में विवाह होता था तो क्या यह प्रेम था। जब ज्यूस ने अपनी सगी बहिन हेरा से, हाइपरियन ने अपनी बहिन थिया[२] से विवाह किया तो क्या यह प्रेम था ? या, होमर के कथनानुसार आयोलस के ६ लड़कों ने अपनी ६ सगी बहिनों से विवाह किया तो क्या यह प्रेम था ? किन्तु प्रेम किसे कहें ? सदाचार किसे कहें ? यदि "नैतिकता उस वस्तु का नाम है जिसमें अपने शरीर को केवल पीड़ा ही देना है, सुखाना है"[३] तो फिर ऐसी नैतिकता कितने दिन चलेगी ?

टेलर ने सच लिखा है कि —

"मनुष्य अपने धर्म की दृष्टि से अपने लिए आचरण के जिन व्यावहारिक नियमों को बना लेता है, उसी का नाम नैतिकता है। नैतिकता उसके मन की भावना का एक प्रकट रूप है, उसके सपनों का सक्रिय कलेवर है। यदि नैतिकता को धर्म से पृथक् कर दिया जाय तो वह अपना महत्व खो बैठती है। केवल बुद्धिमत्तापूर्ण विचार से ही समाज में स्थिरता नही आती। उससे केवल आदमी हाड़-मास की पुकार के ऊपर उठता है। पर केवल दार्शनिकता से काम नही चलेगा। उसके साथ भावना का भी सम्मिश्रण ज़रूरी है। भारत में दर्शन तथा धर्म दोनों एक साथ मिले-जुले हैं। यूनान में दोनों भिन्न हैं। यूनान की सभ्यता समाप्त हो गयी है। भारत की सभ्यता अमर है। जो आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाये, वही धर्म है। आवश्यकता इस बात की है कि मानव-जाति के अनुभवों के द्वारा ईश्वर का अर्थ पहचानें[४]। जिस लक्ष्य की प्राप्ति

१. Keyserling—"The Book of Marriage"—Part I

२. "Sex in History" **पुस्तक इस प्रकार के उदाहरणों से भरी पड़ी है.**

३. James—"The Varieties of Religious Experience"—Pub. 1912

४. Hocking

की कल्पना करके हम चलते हैं, उसका नाम है धर्म। पैर संसार में हों और आँख उस पार लगी हो—इसमें कुछ समन्वय तो करना ही होगा।

सभ्यता में समन्वय

आज सभ्यता का रूप बिगड़ गया है। जो भले हैं वे हाथ-पैर सिकोड़े वासनाओं से दूर बैठे हैं। जो बुरे हैं वे गहरी वासनाओं से खेल रहे हैं।[1] आज चारों ओर समस्याएँ ही समस्याएँ हैं। व्यापारिक बंधनों ने आर्थिक शक्ति को कुण्ठित कर दिया है। मानव इतना दुर्बलहृदय हो गया है कि सिगरेट का धुआँ उड़ा उड़ाकर अपने मन की जलन उड़ा रहा है। हमारा वर्त्तमान हमारे अतीत से बहुत दूर हट गया है। हेरोडेटस[2] का यह कहना सच हो सकता है कि इतिहास प्राचीन गौरवगाथाओं के भूल जाने से बचाने का प्रयत्न मात्र हो सकता है, पर थुसाइडेडीज़ की यह बात भी सही है कि लोग पुरानी ग़लतियों को दुहरायें नहीं, इतिहास इसका एक निराशामय प्रयत्न भी हो सकता है।[3] हमें इतिहास के बहुत से पन्ने याद रखने हैं और बहुत से फाड़ डालने भी हैं। रुचि-वैचित्र्य तथा रुचि-वैभिन्य समाज के लिए आवश्यक है, पर क़ायदे के साथ। अपनी रुचि की विभिन्नता से हम आपबीती तथा दूसरे पर बीती घटनाओं को भिन्न दृष्टि से देखते हैं, इसी लिए एक-दूसरे को ठीक से समझ नहीं सकते। कुछ वर्ष हुए जापान में "राशोमान" नामक एक बड़ी अच्छी फ़िल्म बनी थी। एक लकड़हारा मानव-जाति पर विश्वास खो बैठा है। इसका कारण एक आँखों देखी घटना है। उसने जंगल में देखा कि एक पति-पत्नी चले जा रहे थे। एक लुटेरा मिला। उसने पति को मार डाला, पत्नी के साथ बलात्कार किया। पत्नी और डाकू थाने पर लाये गये। मृत पति भी प्रेतयोनि से, एक के माध्यम से वहाँ पर पहुँचा और थाने पर तीनों का विचित्र तथा भिन्न बयान सुनकर उस लकड़हारे को घोर अश्रद्धा तथा घृणा हो गयी। हमारे समाज में आज उस लकड़हारे की तरह वर्त्तमान समाज से निराशा

१. Yeats **की प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं—**
The Best lack all connections, while the worst
Are full of Passionate intensity.

२. **यूनानी इतिहासकार**

३. Charles Frankel—"The Case for Modern Man"–Pub. Macmillan & Co., London, 1957–Chapt. VIII–Page 130-131.

और घृणा करने वालों की कमी नहीं है। दार्शनिक हेलवातियस ने शायद सही कहा है "आदमी स्वतः बुरा नहीं है। वह केवल अपने स्वार्थ में रत है। मानव की अच्छाई का अन्दाज़ लगाने के लिए इस नये मापदंड से उसके गुणों का पता लगाना होगा।"[१] नीबर की यह बात ज़रूर याद रहे कि "ईश्वर की आत्मा" की यात्रा में "सुख को मुक्ति या प्रगति का पर्य्यायवाची नही समझना चाहिए।" इस सुख की तलाश में जब कभी आदमी अपनी सीमा को लाँघ जाता है, वह पाप के गड़े में गिर पड़ता है।[३] सुख स्वतः कोई चीज नहीं है। वह दूसरों से प्राप्त होता है, आज के संसार में सुख का अभाव इसी लिए है कि हम दूसरों से बड़ी आशा करते हैं।[४] हेलवातियस ने लिखा है कि "मानव-जाति से प्रेम करने के लिए यह जरूरी है कि उससे बहुत कम आशा की जाय।"[५]

पर मनुष्य मनुष्य से ही आशा करता है। वह आशा करने और जायगा कहाँ ? यह जीवन आशा तथा निराशा का उतार-चढ़ाव मात्र है। प्लेटो ने जीवन को ही "मरने की अनवरत स्थिति" कहा था। हर क्षण हम मरने के निकट जा रहे हैं। हर क्षण हम मरते जा रहे हैं। स्व० कुंवर रघुवीरसिंह ने लिखा है—

ज़िन्दगी मौत थी एक उम्र में मालूम हुआ।
मेरा होना था महज़ मेरे न होने के लिए।।

इस मरनेवाले जगत में प्रत्येक वस्तु का मूल्य चुकाना पड़ता है। जीवन का मूल्य मृत्यु से चुकता है। जितनी ही बड़ी वस्तु होगी, उतना ही बड़ा मूल्य होगा। स्पिनोज़ा ने सच लिखा है कि जो ईश्वर को प्यार करता है वह निश्चित न समझे कि ईश्वर भी उसे उतना ही प्यार करेगा।[६] किसको कितनी क़ीमत चुकानी पड़ेगी यह ठीक से ज्ञात

१. वही, पृष्ठ ९४
२. वही Niebuhr की उक्ति—पृष्ठ ९५
३. वही, पृष्ठ ८४
४. अष्टावक्र गीता में लिखा है—
"आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य"
(जो आशा के दास हैं, वह संसार भर के दास हो जाते हैं।)
५. The Case for Modern Man, पृष्ठ ९०
६. वही, पृष्ठ ५८

नहीं है। समाज में आज इसी "क़ीमत की आँक" से अव्यवस्था पैदा हो गयी है। हम उस अंधे आदमी की तरह हैं "जो एक अँधेरे कमरे में उस काली बिल्ली की तलाश कर रहा है जो वहाँ पर मौजूद नहीं है।"[१]

आज हमारी प्रवृत्तियों तथा हमारी आशाओं में अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ है। चारों ओर उलझनें पैदा कर दी गयी हैं। हम जिसे तर्क कहते हैं, भले-बुरे को पहचान कर असलियत समझाने वाली बुद्धि कहते है, वह आज इतनी दूषित हो गयी है कि हमारे लिए कल्याणकारी नहीं; हमको उत्तेजित करनेवाली वस्तु बन गयी है। आज हम अपने ही तर्कों से खेल रहे हैं। आज हम अपने भीतर के अंतर्द्वन्द्व से नहीं, बाहर में फैले हुए कुहरे से भटक रहे हैं।

ठीक से कुछ समझ में नहीं आ रहा है। "जिस प्रकार एक अपराधी के मस्तिष्क में अपराध का नरक भरा हुआ है, उसी प्रकार मध्यम श्रेणी के एक बाबू के घर में, या उसकी टोपी के नीचे (सिर में) एक बिल्कुल भिन्न दर्शन या दृष्टिकोण का अम्बार भरा रह सकता है।"[२] इनकी असली पहचान होनी चाहिए। जो ज्ञानवान हैं, इन चीज़ों को पहचानते हैं, वे वास्तव में भले लोग है तथा पुण्यात्मा हैं, यह सोचना भी भूल होगी। ज्ञान का आज के ज़माने में एक ही बड़ा भारी उपयोग है— उसके द्वारा हम दूसरों के विचारों से अपनी रक्षा कर सकते हैं।[३]

संसार में जो होना चाहिए, जो जायज़ है तथा जो नैतिक है, उसमें जो परस्पर अन्तर आ गया है, उसके दोषी हैं हम तथा हमारा समाज। श्री रेमंड फ़र्थ का कहना है[४] कि "क़ानून के नियमों में, सदाचार के नियमों में तथा वास्तविक व्यवहार के नियमों में जो अन्तर दिखाई पड़ता है वह केवल अज्ञान के कारण नही है, लापरवाही के कारण नही है या व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण नहीं है, बल्कि दूसरों के प्रति सचाई, ठीक से काम पूरा करने की तबियत तथा व्यावहारिकता के अभाव से, क़ानून की अच्छाई में विश्वास की कमी तथा सार्वजनिक हितों के प्रति उपेक्षा के कारण है।"

श्री फ़र्थ लिखते है—"समाज के आदेश क्या हैं, इस सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत

१. "A Blind Man in a dark room looing for a black cat that is not there." (वही, पृष्ठ ५४, अध्याय ४)

२. वही अध्याय ५, पृष्ठ ७०

३. वही, अध्याय ६, पृष्ठ ९२

४. Raymond Firth–Human Types –पृष्ठ १४१

परिभाषा नहीं है। आस्टिन के समय से पुरानी न्यायसंगत परिभाषा तो यह थी कि समाज के नियमों का उल्लंघन करने पर जो दंड मिलता था, वही आदेश है। पर आज की विचारधारा में नयी व्याख्याएँ शामिल हो गयी हैं जिनके अनुसार व्यक्ति या समुदाय निश्चित आदेशों की अवज्ञा करके भी अपने को सही रास्ते पर चलने-वाला साबित कर सकता है। जो लोग समाज में मनुष्य के जीवन में रुचि रखते हैं, अनेकों सवाल पैदा होते हैं, क्या दूसरे समाजों में भी आचरण के वैसे ही नियम हैं। यदि हाँ, तो उनमें से कितने नियम स्पष्टतः उस समाज के लोगों द्वारा निर्धारित हैं, उन नियमों का किस सीमा तक पालन होता है, किस हद तक उल्लंघन होता है।"[1]

"रैडक्लिफ ब्राउन ने एक अधिक सही तथा वास्तविक वर्गीकरण किया है। संगठित तथा असंगठित आदेशों में भेद करने के बाद वे यह बतलाते हैं कि कौन से आदेश नैतिक तथा कर्त्तव्य की परिधि में हैं और कौन प्रतिशोध तथा दंड के दायरे में हैं तथा कौन आदेश धार्मिक परिपाटी की श्रेणी में हैं। जो आदेश दंड तथा प्रतिशोध के दायरे में हैं, उन्हीं को क़ानूनी आदेश समझना चाहिए।"[2]

आज का मानव इन्हीं "आदेशों" की समस्या में उलझा चल रहा है। चूँकि उसके सामने "आदेश"[3] स्पष्ट नहीं हैं, उसका जीवन भी स्पष्ट नहीं है। यह समस्या आसानी से हल नहीं होती दीखती। फिर फ्रैंकेल के शब्दों में—"यह कहना कि यही समस्या है, यह कहने के बराबर है कि अपराध की समस्या तभी तक है जब तक दंड-विधान है, क़ानून है। तलाक़ की समस्या तभी तक है जब तक विवाह होता है या सिरदर्द तभी तक है जब तक सिर है।"[4]

इसलिए, जब तक क़ानून है, अपराध रहेगा। जब तक सिर है, सिरदर्द रहेगा या जब तक मानव है, कामवासना रहेगी, अपराध रहेगा। अतः निराश होने से काम नहीं चलेगा। एक स्वतः सिद्ध दूषित वातावरण में हमको अधिक से अधिक सावधानी से चलना है। मानव को मानव समझकर काम करना है।

"आज की व्यापक अव्यवस्था "कर्त्तव्य, क़ानून तथा धर्म में एक दूसरे के प्रति

१. वही, रेमंड फर्थ—पृष्ठ १३०
२. वही, पृष्ठ १४२
३. आदेश यानी sanctions
४. The Case for Modern Man—पृष्ठ ८७

प्रतिकूलता या विभिन्नता आ जाने के कारण है, जिसने सभ्य समाज में असामंजस्य की जो परिस्थिति उत्पन्न कर दी है वह पिछड़े हुए कहे जानेवाले सरल समाजों में नहीं है।"[१]

आधुनिक सभ्यता अपनी सभ्यता के बोझ से ही दबी हुई है, परेशान है।

१. Human Types—पृष्ठ १४८

द्वितीय भाग

बाल-अपराध की व्याख्या

अध्याय १७

बाल अपराधी की समस्या

कतिपय कारणों पर विचार

प्रथम अध्याय में कामवासना तथा अपराध के संबंध पर विचार करते हुए हमने यह दिखलाने का प्रयत्न किया था कि बहुत अंशों तक वासना की भूलों का ही दुष्परिणाम बाल-अपराधी है। आजकल की नित्य नयी खोजों से भी बहुत कुछ यही निष्कर्ष निकलता जा रहा है।

फिलप्पीन के कैथोलिक असोशियेसन के अध्यक्ष फेलिसियानो जोवर लेडेस्मा ने मनीला (राजधानी) के रोटरी क्लब के सामने भाषण करते हुए बाल-अपराधियों की संख्या में वृद्धि का कारण निम्नलिखित बतलाया—[1]

१. ग़लत ढंग के सिनेमा-चित्र, प्रति १० फिल्मों में ८ में डकैती, लूटपाट, कम-उम्र के बच्चों की शरारतें, बन्दूक़बाज़ी तथा प्रहार के खेल होते हैं जो लड़के-लड़कियों के मस्तिष्क पर बड़ा बुरा प्रभाव डालते हैं।

२. गन्दे साहित्य, नंगी, भद्दी तसवीरों की बिक्री तथा स्कूल और घर में पहुंच जानेवाली गन्दी कहानियों की पुस्तकें उनके मन को गन्दा कर देती हैं।

३. सरकारी अधिकारी (फ़िलप्पीन के) बच्चों के चरित्र-निर्माण पर ज़रा भी ध्यान नहीं देते। वे स्कूल से बहुत निकट शराबघर, नाचघर, सिनेमा आदि में कोई रुकावट नहीं डालते।

४. पिता-माता या अभिभावक अपने बच्चों की पारिवारिक शिक्षा की कोई चिन्ता नहीं करते। वे प्रायः समझते हैं कि बच्चों को अच्छा खाना, कपड़ा देना तथा स्कूल भेज देना उनके लिए पर्याप्त कर्त्तव्य हो गया। बच्चों की माताएं अपने सामाजिक जीवन में, क्लब तथा पार्टी में, खेल तथा अन्य

१. "Guide Post" Fortnightly, Manila, Philippines, 15th August, 1958.

मनोरंजनों में इतनी व्यस्त हैं कि उनको बच्चों के लिए अवकाश नहीं है।"

इसलिए, श्री फेलसियानो के मत के अनुसार बाल-अपराध रोकने के लिए यह आवश्यक है कि—

१. गन्दे सिनेमा-चित्र बन्द किये जायँ;
२. अश्लील खेल तथा अश्लील चित्रों पर रोक लगा दी जाय;
३. स्कूल के आसपास सिनेमा, शराबघर, नाचघर आदि बन्द कर दिये जायँ;
४. अभिभावकों या माता-पिता को अपनी सन्तान को नैतिक शिक्षा देने की नसीहत देनी चाहिए;
५. स्कूलों में चरित्र-निर्माण का एक अलग पाठ्य-विषय ही बना दिया जाय;
६. धार्मिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय तथा इसके लिए संविधान में संशोधन किया जाय;
७. स्काउटिंग आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया जाय;
८. सरकार और सार्वजनिक संस्थाएँ युवकों के लिए व्यायामशालाओं तथा खेल-कूद का प्रबन्ध करें।

बालअपराधी तथा परिवार की महत्ता पर हम आगे चलकर विशेष प्रकाश डालेंगे पर यहाँ पर हम एक बात लिख दें। पिता-माता का एक कटु-वचन बालक के ऊपर कितना स्थायी प्रभाव उत्पन्न कर देता है इसकी एक मिसाल हीली ने अपनी पुस्तक में दी है। उन्होंने एक बहुत ही सच्चरित्र तथा सिगरेट आदि दुर्गुणों से रहित ऐसे लड़के का ज़िक्र किया है जिसकी उम्र ११-१२ वर्ष की थी। वह अपने पिता के एक वाक्य से एकदम बदल गया। एक दिन, शाम को उसका पिता घर आया। पिता का स्वभाव उस दिन चिड़चिड़ा हो रहा था। उसने देखा कि लड़का पढ़ने के समय आराम कर रहा है। छोटे लड़के ने बतलाया कि उसकी तबियत ख़राब है, इसलिए आराम कर रहा है। पिता ने ग़ुस्से से कहा—"झूठ बोलता है। वह मुझसे ज्यादा बीमार नहीं है." यह बात जब उस लड़के ने सुनी तो उसने सोचा—"अच्छा, मैं झूठ बोलता हूं, मैं बहानेबाज़ हूं, ठीक है। मैं यही करूंगा।" और उस दिन से उसका जीवन ही बदल गया। वह निरुद्यमी, आलसी, सिगरेट-पीनेवाला और न जाने कितने दुर्गुणों से युक्त हो गया। पिता की एक ग़लत तानाज़नी ने उसकी ज़िन्दगी चौपट कर दी और समाज के हाथ से एक भला लड़का निकल गया।[१]

१. Healy—Individual Delinquency, Page 396.

चलचित्र का दुष्परिणाम

चलचित्र तथा पारिवारिक जीवन के अवगुणों पर प्रकाश डालते हुए आस्ट्रेलिया से प्रकाशित एक ताज़ी रिपोर्ट में बड़ी मार्के की बातें दी गयी हैं। रिपोर्ट में लिखा है—

"आज़माइशी तौर पर यही कहा जा सकता है कि बच्चों के पारिवारिक जीवन का जैसा भावनामय वातावरण होगा वैसा ही उनके चरित्र के निर्माण पर निश्चित प्रभाव पड़ेगा।"[१]

इसी लिए आस्ट्रेलिया में बाल-अपराधी के प्रति बड़ी उदार नीति बरती जाती है। ३० जून, १९५७ को समाप्त होनेवाले वर्ष में उस देश में सरकार के ध्यान में १३७८ ऐसे लड़के-लड़कियों के मामले आये जो अपने परिवार अथवा माता-पिता की लापरवाही से ग़लत रास्ते पर चले गये थे। इनमें से ८१२ यानी ५९ प्रतिशत मामलों में से ५३९, यानी कुल १३७८ का ३९ प्रतिशत, बिना अदालती कार्यवाही के ही निपटा दिये गये। २१४ यानी कुल के १५·६ प्रतिशत पर अदालती कार्यवाही करनी पड़ी तथा ६१ यानी ४ प्रतिशत निजी तौर पर हल कर दिये गये अर्थात् लोगों ने व्यक्तिगत रूप से सुधार की ज़िम्मेदारी ले ली।

मद्रास के एक समाजशास्त्री ने मद्रास नगर के बाल अपराधियों की जाँच करके अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि सिनेमा बाल-अपराध का बड़ा भारी कारण है। उससे केवल निजी उत्तेजना ही नहीं प्राप्त होती बल्कि सिनेमा के अभिनेताओं का अति धनी होना भी नवयुवक-नवयुवतियों को बड़ा आकर्षित करता है। सिनेमा से एक लाभ होता है—दिन भर की परेशानी के बाद व्यक्ति "सब झंझटों से छुटकारा पा जाता है" और "अपनी स्थिति से भागने का अवसर मिलता है। इसी लिए, बहुत से लोग उपन्यास भी पढ़ते हैं।"[२]

इस प्रकार बड़े-बूढ़े तथा बच्चे, सबको अपनी परेशानी से भागने के लिए सिनेमा एक साधन बन गया है। मद्रास के समाजशास्त्री का कहना है कि धार्मिक चलचित्रों के प्रति बच्चों का आकर्षण और भी ज्यादा इसलिए है कि उनमें पोशाक इत्यादि की अश्लीलता और भी अधिक है।[३] सन् १९५८ की इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि

१. Report by the Minister on the "Child Welfare Department—Australia", for the year ended 30th June, 1957. Page 7.

२. दैनिक Pioneer, अग्रलेख ५ दिसम्बर १९५८.

३. देखिए Film Enquiry Committee Report, India, 1958.

"बाल-अपराध रोकने के लिए जिस प्रकार चलचित्रों के प्रति काफ़ी सख़्ती बरतनी चाहिए, उसी प्रकार भग्न-परिवार, माता-पिता की लापरवाही तथा पारिवारिक जीवन की पवित्रता को भी पुनः स्थापित करना ज़रूरी है।

धार्मिक चित्रों में से एक तामिल चित्र की आलोचना करते हुए फिल्म इनक्वायरी कमेटी ने लिखा है कि "सुब्रह्मण्यम (विष्णु) का ब्रह्मा को सीटी बजाकर भद्दे शब्दों में बुलाना अति निन्दनीय है। पार्वती की वेश-भूषा आपत्तिजनक है। नन्दी के प्रति श्रद्धा के स्थान पर अश्रद्धा होती है। नारद और यम तो उनसे कहीं गये-गुज़रे हैं।" फिल्म के नियमानुसार भारत में स्त्रियों की भीतरी पोशाक का प्रदर्शन नहीं हो सकता। पर दूकानों पर भद्दे ढंग से स्त्रियों के वस्त्र बिक्री के लिए क्यों रखे जाते हैं? जब चल-चित्र देवताओं का इतना गंदा रूप खींच सकते हैं तो फिर सामाजिक चित्र नितान्त गन्दे क्यों न हों। यदि इनसे बाल-अपराधी पैदा होते हैं तो दोष समाज का या सरकार का है, न कि बाल-अपराधी का। अपराधी का क्या दोष है जब कि समाज उसके सामने नयी नयी भावनाएँ रोज़ रखता जाता है। ब्रिटिश पार्लमेन्ट की एक प्रसिद्ध कमेटी[1] ने अप्राकृतिक प्रसंग या स्त्री-स्त्री-प्रसंग को अपराध न मानने की सलाह दी है। ऐसे नये नैतिक विचारकों के लिए डा० जी० डी० किलपैट्रिक ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान में बड़ी मार्के की बात कही—

"इस विश्वविद्यालय के किसी बड़े अध्यापक को पूरा अधिकार है कि हमारे नवयुवकों के मन में निर्दयतापूर्वक ऐसे विचार भर दें जिससे उनका जीवन दुःख और पाप से भर जाय। जो इस मार्ग पर चलता है उसे अपने साथ एक मनोवैज्ञानिक को रख लेना चाहिए ताकि अगर कभी उसकी ऐसी कुचेष्टा की तरफ़ क़ानून का ध्यान जाय तो मनोवैज्ञानिक की आड़ में वह अपनी रक्षा कर सके।" समाज में युवकों को पथ-भ्रष्ट करनेवाले सिद्धान्त-प्रचारक, चल-चित्र तथा भग्न परिवार, इन सब के साथ पूरी सख़्ती बरतनी होगी। तब जाकर बाल-अपराधियों की संख्या में सुधार हो सकेगा।

बाल-अपराधों में वृद्धि

समाज में उत्पन्न दूषित वातावरण के कारण ही चारों ओर बाल-अपराध बढ़ता

१. Wolfenden Committee's Report, 1958.
२. G. D. Kilpartick, Dec., 1958.

जा रहा है। ब्रिटेन में बाल-अपराध की वृद्धि पर दो रिपोर्टों से बड़ी खेदजनक जानकारी होती है।[१] इनका सारांश है—

"सन् १९४८-५६ के बीच में १४ से १६ वर्ष के बच्चों में शराब पीकर उन्मत्त हो जाने का अपराध ८ गुना अधिक बढ़ गया और १७ से २० वर्ष के युवक-युवतियों में चौगुना अधिक हो गया। अपेक्षा की जाती है कि सन् १९५७ में २१ वर्ष से नीचे के लड़कों में नशाख़ोरी के अपराध में १३ प्रतिशत वृद्धि सन् १९५६ की तुलना में होगी। इसी अवधि में सब उम्र के लोगों में नशाख़ोरी के अपराधों में ११ प्रतिशत की वृद्धि होगी। आँकड़ों में, सन् १९५७ में इस प्रकार के अपराध में ५,८०० लड़के तथा ६७,००० सब उम्र के लोग दण्डनीय होंगे।"

"इन्हीं उम्र के लड़कों में हिंसात्मक अपराधों की संख्या दुगुनी हो गयी है। सन् १९५४ से ऐसे अपराधों की संख्या तिगुनी हो गयी है। नशेबाज़ी के अपराध, लड़कियों में लड़कों की तुलना से अधिक बढ़े हैं। १४-१८ वर्ष की लड़कियों में गर्भवती होनेवालों की संख्या बहुत बढ़ गयी है तथा १४-२० वर्ष की उम्र के बीच में नाजायज़ बच्चे पैदा करनेवाली लड़कियों की संख्या इस उम्र से अधिक की स्त्रियों के नाजायज़ बच्चों से कहीं अधिक है।"

सन् १९०७ में इंग्लैण्ड में प्रोबेशन क़ानून (प्रोबेशन अफ़सर की निगरानी में छोड़ने का नियम) पास हुआ था। हर्बर्ट ग्लैडस्टन उस समय गृहसचिव थे। उपसचिव थे हर्वर्ट सैमुयेल (बाद में वाइकौंट सैमुयेल)। उन्होंने १९०८ में पार्लमेन्ट में "बाल-अधिनियम" पेश किया था। उसमें १३० धाराएँ थीं। उसी अधिनियम के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन में चारों ओर बाल-अपराधियों के लिए विशेष अदालतें स्थापित हुईं। इन अदालतों के पचास वर्ष पूरे होने पर वाइकौंट सैमुयेल ने एक विशेष लेख लिखा था। उसमें वे बड़े रोचक आँकड़े देते हैं।[२] उनका कहना है कि पिछले निर्दय दंडविधान को बदलने से तथा अच्छे सुधारक नियम चालू करने से इंग्लैण्ड तथा वेल्स में जेलों में क़ैदियों की संख्या काफ़ी घट गयी। सन् १९०५ में २१,००० बन्दी जेलों में थे। १९१८ में ९,००० ही रह गये। फलतः ब्रिटेन के आधे जेल बंद कर दिये गये। पर, प्रथम महा-

१. Two Reports of the Christian Economic and Social Research Foundation, 1957, 1958.

२. Children & Crime—50 Years of Juvenile Courts–By Viscount–Samuel–The Sunday Times, London, 2nd March, 1958

युद्ध के बाद से ही जेलों की संख्या बढ़ने लगी। दंडनीय अपराधों के लिए दंडित सभी उम्र के पुरुषों की संख्या सन् १९३८ में ६८,००० थी और १९५७ में १,०२,००० हो गयी। सन् १९३७ में दंड देने योग्य ३,००,००० अपराधों का पता लगा था। सन् १९५१ में इनकी संख्या ५,००,००० से ऊपर हो गयी और सन् १९५७-५८ के वर्षों में ४,८०,००० का वार्षिक औसत है।

१९३८ में पुरुष बाल-अपराधियों की संख्या ३६,००० थी। ८ वर्ष से २० वर्ष की उम्र के भीतर सन् १९५६ में यह संख्या बढ़कर ४९,००० हो गयी।

संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे धनी देश में जहाँ रोज २०,००० नयी मोटरें तथा १०,००० टेलीविजन के सेट बनते और बिक जाते हैं, अपराध की संख्या बेतहाशा बढ़ती जा रही है। समाजशास्त्री डा० टप्पन का कहना है कि "अमेरिका की सांस्कृतिक भूमि में अपराध की जड़ें बहुत नीचे तक चली गयी हैं। अत्यधिक सांसारिकता तथा भौतिक सुखों के पीछे पड़े रहने के कारण, राजनीतिक सत्ता के प्रति स्वाभाविक उपेक्षा के कारण, व्यापारिक तथा राजनीतिक अत्यधिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण, जीवन के मूल्यांकन में परस्पर विरोधी भावनाओं के कारण, तथा सामाजिक नियमों के प्रति उच्छृङ्खल भावना के कारण और आचरण की मर्यादा में बराबर ह्रास होने के कारण वहाँ अपराध बढ़ते जा रहे हैं।"[१]

परिणाम यह हुआ है कि अमेरिकन सरकार की रिपोर्ट के अनुसार,[२] उस देश में प्रति ११·३ सेकेन्ड पर एक बड़ा अपराध होता है। प्रति ३·९ मिनट पर एक हत्या, एक क़त्ल, एक घातक प्रहार अथवा बलात्कार का मामला होता है। सन् १९५७ में सरकार की जानकारी में २७,९६,४०० अपराध हुए। यानी पिछले पाँच वर्षो के औसत पर २३·९ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कुल मिलाकर एक वर्ष में लगभग २०,००,००० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये जिनमें १४,०५,९६७ गोरे लोग तथा ६,१८,०२८ नीग्रो थे। हर १०० अपराधियों में १ स्त्री अपराधिनी थी।

ऐसे भयंकर वेग में, अपराध की ऐसी बाढ़ में, संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-अपराध की संख्या यदि बेतहाशा बढ़ रही हो तो आश्चर्य क्या है! ब्रिटिश पार्लमेन्ट

१. Juvenile Delinquency in North America—Survey for the United Nations–Page 134. Report–By Dr. Paul W. Tappan, Professor of Sociology, New York University.

२. Federal Bureau of Investigations, U. S. A. Govt., 1958.

के सदस्य श्री मौंटगोमरी हाइड ने संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा करने के बाद लिखा है[1] कि वहाँ कम से कम प्रति वर्ष दस लाख बाल-अपराध होते हैं—यानी कुल २० लाख अपराधियों में आधे अपराधी ८ से २० वर्ष की उम्र के भीतर के होते हैं। न्यूयार्क नगर में ही, सन् १९५७ में बच्चों ने ३० हत्याएँ कीं। इन हत्याओं के कारणों से ही पता चल जाता है कि आज वहाँ का शिशु से लेकर नवयुवक तक का समाज कितना उच्छृंखल हो गया है। चौदह वर्ष के एक लड़के ने, न्यूयार्क में ही, ८ वर्ष के एक बच्चे को पेड़ से लटकाकर मार डाला। कारण पूछने पर उसने कहा कि "मन में ऐसी ही तरंग उठी।" कैलिफोर्निया के सैक्रामेंटो नगर में १४ वर्ष के एक बड़े प्रतिभाशाली विद्यार्थी ने १० वर्ष की एक लड़की को हथौड़े से मार मारकर खत्म कर दिया, इसलिए कि उसकी "किसी को मार डालने की इच्छा" बड़ी तीव्र हो उठी थी। न्यूजरसी में १४ वर्ष के एक लड़के ने ११ वर्ष के एक बच्चे का गला घोंटकर इसलिए मार डाला कि उस बच्चे ने उसे "बुज़दिल" कह दिया था। न्यूजरसी में ही १७ वर्ष की एक लड़की ने १० वर्ष के अपने छोटे भाई को इसलिए मार डाला कि उसके माता-पिता उसकी तुलना में उस लड़के से ज्यादा प्रेम करते थे। सन् १९५८ के शुरू महीने में ही न्यूयार्क नगर में १८-१९ वर्ष के एक नवयुवक ने १५ वर्ष के एक रोगी बच्चे के पेट में छुरा भोंककर मार डाला और जब वह अभागा बच्चा दम तोड़ रहा था, हत्यारे ने उससे कहा "अनेक अनेक धन्यवाद।" पुलिस को उसने बयान दिया कि "बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि किसी के पेट में छुरा भोंकू ताकि देखें, कैसा लगता है।"

जिस देश में बच्चों में इतनी क्षुद्र प्रवृत्तियाँ घर कर जाती हैं, उसकी समस्या बहुत ही गम्भीर होगी। न्यूयार्क के ९०० स्कूलों के प्रधानाध्यापकों ने सितम्बर-अक्टूबर, १९५८ में अपने स्कूलों से ५४४ लफंगे विद्यार्थियों को निकाल बाहर किया।[2] उनका निश्चय था कि वे आपस के और किसी स्कूल में दाखिल नहीं किये जायेंगे। इतने बच्चों को स्कूल से निकालने पर भी इन प्रधानाध्यापकों का कहना है कि लफंगे विद्यार्थियों या छात्राओं की केवल एक प्रतिशत संख्या ही निकाली गयी है। जिस देश में केवल एक साल में ४४०० अबोध शिशु केवल इसलिए मोटर गाड़ियों के नीचे कुचल गये कि उनके माता-पिता ने उन्हें संभाल कर अपने पास नहीं रखा—जिस देश में

१. "A Million Young Offenders',—By H. Montgomory Hyde, M. P. Sunday Times, 22nd December, 1958.

२. रायटर का संवाद, दिसम्बर १९५८

३६० बच्चे एक ही साल में, कम उम्र में साइकिल चलाने का अभ्यास करने में गिर कर मर जाते हों,[१] वहाँ की स्थिति के बारे में क्या कहा जाय ?

बाल-अपराध इतना क्यों बढ़ रहा है, तथा इसका क्या कारण है, यह बात आसानी से न तो समझी जा सकती है और न समझायी जा सकती है। बिल वाघम ने बड़ी पते की बात कही है कि "सृष्टि का क्षिति-मंडल बाल-अपराध के समान है। हम इसका जितना पता लगाते हैं उसकी वास्तविकता से उतनी ही दूर प्रतीत होते हैं।"।[२]

अस्तु, बाल-अपराध में वृद्धि के सम्बन्ध में हम बहुत अधिक आँकड़े न दे सकेंगे। इसके लिए सामग्री उपलब्ध नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् १९५३ से १९५६ के बीच में, बाल-अपराध के सम्बन्ध में प्रत्येक देश की स्थिति की छानबीन कर छः भागों में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। पर इतने महत्त्वपूर्ण प्रकाशन में बाल-अपराध के वास्तविक आँकड़े ही नही हैं। भारत में भी प्रत्येक प्रदेश के आँकडे उपलब्ध नहीं हैं। अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति ने राज्य की सरकारों को पत्र लिखकर कुछ आँकड़े एकत्रित किये हैं पर वे भी अधूरे हैं।

उत्तर प्रदेश में हर प्रकार के जेलों को मिलाकर जेलों की संख्या ६२ है। सन् १९५८ में इनमें २,४२,९४३ क़ैदी रखे गये थे। इनमें विचाराधीन तथा सजायाफ्ता शामिल हैं। सज़ायाफ्ता क़ैदियों की संख्या ८६,४५३ तथा विचाराधीन बंदियों की संख्या १,३२,४४५ थी। बाल-अपराधियों की संख्या २३,५९९ थी।[३] मद्रास में ४ अप्रैल १९५९ को उनके कुल ११४ जेलों में १४,४८२ दंडित क़ैदी, १,२६५ विचाराधीन क़ैदी तथा बाल-अपराधी एक भी नहीं था[४]—इसका अर्थ यह है कि जेलों में बाल-अपराधियों को नही रखा गया था। बम्बई के प्रदेश में पुलिस की १०६२ हवालातों को मिलाकर १४५३ जेल हैं। ३१ दिसम्बर १९५८ को इनमें सब प्रकार के दंडित अपराधी १३,५७८ थे। ५८३५ विचाराधीन क़ैदी थे। बाल-अपराधियों की संख्या ८४७ थी।[५] बम्बई में, मद्रास की तरह, अधिकांश बाल-अपराधी जेल में नहीं रखे जाते,

१. True Story, 1958.

२. Readers' Digest, Oct., 1958

३. प्रधान कारागार निरीक्षक, उत्तर प्रदेश, पत्र सं० १३२३४–१२ मई, १९५९

४. मद्रास सरकार का पत्र सं० ४०५४६. २१ अप्रैल १९५९

५. प्रधान कारागार निरीक्षक, बम्बई का पत्र सं० ६२२, १७ जून १९५९

उनके लिए अलग सुधारगृह आदि हैं। बम्बई प्रदेश में बच्चों के लिए २८ बाल-अपराधी अदालतों को मिलाकर १८४ सुधार-संस्थाएं सन् १९५७ में थी। १९५८ में इनकी संख्या १९२ हो गयी। ३१ मार्च १९५७ को इनमें ६८१५ पुरुष बाल-अपराधी तथा २५१४ महिला बाल-अपराधी थे। ३१ मार्च,१९५८ को यही संख्या क्रमशः ७७९० तथा २६९९ हो गयी। यानी एक वर्ष में ही अपराधी काफी बढ़ गये थे। केरल प्रदेश में पुलिस विभाग की रिपोर्ट है कि सन् १९५६ में दंडनीय अपराधों की संख्या ८७४५ थी तथा सन् १९५७ में १०,४६१ यानी १९·६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। २५६ हत्याएँ हुई। सन् १९५६ में १६७ ही थीं यानी ५९ प्रतिशत वृद्धि हुई। इनमे से २५ हत्याएँ कामुक वासना के कारण, ३४ हत्याएँ पारिवारिक झगड़ों के कारण, ६ दलबंदी के कारण तथा १९१ अन्य कारणों से हुई। किन्तु बाल-अपराधी की संख्या में कमी हुई। सन् १९५६ में २११ तथा १९५७ में १४७।[१] आसाम में बाल-अपराधियों की संख्या का पता तो नहीं चलता है पर यह अवश्य है कि आसाम हाईकोर्ट की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सन् १९५५ में, उस प्रदेश में नागा क्षेत्र को छोड़कर, नये और पुराने दंडनीय मुक़दमों की संख्या ६३,९३३ थी पर १९५६ में ७१,७९५ हो गयीं।[२] मध्य प्रदेश के कुल ७६ जेलों में ३१ मार्च, १९५९ को ५१६३ पुरुष तथा ७२ महिला दंडित क़ैदी, क्रमशः २५७५ तथा ६० विचाराधीन तथा ३० बाल-अपराधी थे।[३]

फिलप्पीन के कारागार विभाग के मुख्य संचालक श्री अलफ्रेड एम० बुनी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रसिद्ध अपराधी नगर शिकागो में पत्र-प्रतिनिधियों से कहा था— "जिस प्रकार शिकागो में बाल-अपराधी बढ़ते जा रहे हैं उसी प्रकार फिलप्पीन द्वीप समूह में भी। २० वर्ष से कम उम्र के बच्चों में अपराध बहुत बढ़ गया है, और अपराध भी इस प्रकार का जिसका कोई कारण नहीं है। वे बिना कारण हत्या कर डालते हैं। वे बहुत से ऐसे अपराध करते हैं जिनका कोई कारण भी समझ में नहीं आता।"[४]

१. Administration Report of the Police Deptt. Govt. of Kerala, 1957–Page 7.

२. Report of the Administration of Criminal Justice in the State of Assam, 1956–Part I.

३. डिप्टी सेक्रेटरी, मध्य प्रदेश सरकार का पत्र सं० १४६५, ११ जुलाई १९५९.

४. "The Chicago American", May 24, 1958.

*

अध्याय १८

बाल अपराधी कौन है ?

"बाल" का अर्थ

बाल-अपराध के विषय में और गहराई में उतरने के पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि बाल-अपराधी कहते किसे हैं तथा "बाल" से तात्पर्य क्या है ? जहाँ तक उम्र का सम्बन्ध है, भारत, पाकिस्तान, बर्मा तथा लंका में "७ वर्ष की उम्र से नीचे के बच्चे द्वारा किया गया कोई भी कार्य अपराध नहीं है।"[१] इन्हीं देशों के दंडविधान के अनुसार ७ से १२ वर्ष के बच्चों द्वारा किया गया कोई भी कार्य तब तक अपराध नहीं होगा जब तक कि उनमें इतनी समझ न आ जाय कि वह कार्य क्या है तथा उसका परिणाम क्या होगा।"[२] फिलप्पीन में "९ से १५ वर्ष के भीतर बच्चे तब तक अपराधी नहीं हैं जब तक यह न मालूम हो जाय कि उन्होंने भला-बुरा सोचकर वह कार्य किया है।[३] थाईलैण्ड (स्याम) में "पूरे ७ तथा पूरे १४ वर्ष की उम्र के बीच के" लड़के-लड़कियों को "शिशु" तथा "१४ से १८ के बीच को "बाल" कहते हैं।[४] भारत में बंगाल, मद्रास तथा बम्बई में सन् १९२४ के बाल-अधिनियम के अनुसार ७ से १४ वर्ष को शिशु तथा १४ से १६ (अब १८) को "बाल" कहते हैं। भारत तथा पाकिस्तान में सुधार-गृह में १५ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को रखते हैं। जापान में "२० वर्ष से नीचे लड़का या लड़की बाल-अवस्था का समझा जायगा।"[५] जापान तथा भारत के नियम में एक बड़ा अन्तर है। बर्मा, पाकिस्तान, भारत, लंका में—भारत में बम्बई

१. भारतीय, पाकिस्तान तथा बर्मी दंडविधान की धारा ८२ तथा लंका की ७५

२. वही क्रमशः ८३ तथा ७६

३. फिलप्पीन दंडविधान, धारा १२, उपधारा ३

४. १९५१ का थाई दंडविधान, धारा ४

५. जापानी बालविधान, धारा २

प्रदेश छोड़कर—यह नियम है कि अदालत तथा सरकार के लिए अपराधी की उम्र दंड के समय की उम्र मानी जायगी, न कि अपराध करने के समय की उम्र। फिलप्पीन, जापान तथा थाईलैण्ड में ऐसा नहीं है। थाईलैण्ड में बाल-अधिनियम की धारा २ के अनुसार यदि मुक़दमा चलने के दौरान में निश्चित उम्र पार भी कर गया हो, तो भी वही बाल-अधिनियम लागू होगा। बम्बई प्रदेश में भी यही नियम है।

सऊदी अरब तथा यमन में क़ुरान शरीफ तथा शरियत के अनुसार शासन होता है। वहाँ १२ से नीचे के बच्चे अपराधी नहीं समझे जाते। १२ से १५ तक नवयुवक या नवयुवती तथा १७ से १८ वर्ष को बालिग़ होना मानते हैं। इसलिए १२ से १८ वर्ष के बीच के अपराध को बाल-अपराध मानते हैं; जार्डन में ९ से १८ वर्ष। मिस्र, सीरिया (अरब गणतंत्र), लेबनान और ईराक़ में ७ वर्ष के नीचे के शिशु को अपराधी नहीं मानते। मिस्र के तथा जार्डन के दंडविधान में "बाल-अपराधी" तथा "बाल आवारा" में अन्तर कर दिया गया है।[१] ८ अगस्त १९४९ के संशोधित नियम १२४ के अनुसार बाल आवारा की उम्र १८ वर्ष तक की मिस्र में निश्चित की गयी है। बाल-अपराधी वह है जिसने "ऐसा कार्य किया है जिससे नियम की अवज्ञा हुई है तथा जो कार्य "अपराध" हो सकता है, दुर्व्यवहार या नियमों का उल्लंघन हो सकता है। बाल-आवारा, मिस्री दंडविधान, धारा १२४ के अनुसार वह है जिसकी उम्र १८ वर्ष से कम है तथा जो—

१. भीख माँगता है—सड़क पर निरर्थक चीज़ें बेचता है या कसरती खेल दिखाता रहता है;
२. सड़क पर से जले हुए सिगरेट के टुकड़े या अन्य फेंकी हुई चीज़ें बटोरता है;
३. वेश्यावृत्ति, संभोग के अन्य अपराधों, जुआ आदि में रत है या ऐसे अपराधियों का साथ देता है;
४. लफंगों, गुण्डों का साथ देता है या बदनाम लोगों का साथ देता है;
५. दुश्चरित्र है, अपने माता-पिता या अभिभावक के नियंत्रण के बाहर है;
६. जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान नही है तथा जो आदतन सड़कों पर सो रहता है;

१. Comparative Survey on Juvenile Delinquency—Part V. Middle-East—Published by the United Nations-Department of Social Affairs, New York, 1953—Page 2.

७. जिसके अभिभावक या माता-पिता मर गये हैं, जेल में हैं या लापता हैं तथा जिसकी जीविका का कोई वैध सहारा नहीं है।

जार्डन में बाल-आवारा की उम्र अधिकतम १८ पर कम से कम १५ होनी चाहिए तथा बाल-अपराधियों में शामिल हैं—

१. मादक द्रव्य सेवी, बारबार अपराधी तथा अयोग्य अभिभावकों की देखरेख में रहनेवाले बच्चे;
२. आदतन चोर या वेश्या का साथी;
३. वेश्या के मकान में रहनेवाला या रहनेवाली, संभोग करानेवाला या वाली या अप्राकृतिक व्यभिचार का सन्देह जिस पर हो।

इस प्रकार बाल-अपराधी की उम्र में जो बड़ा अन्तर मुसलिम देशों में है, वह इस तालिका से प्रकट हो जायगा —

देश	कम से कम उम्र	अधिक से अधिक उम्र
मिस्र	७	१५
ईरान	११	१८
ईराक	७	१५
जार्डन	९	१८
लेवनान	७	१५
सीरिया	७	१५
सऊदी अरब तथा यमन	१२-१५	१७-१८ (बालिग़)

पर मध्यपूर्व के अनेक देशों में शिशुकाल को छोड़कर केवल बालकाल तथा नवयुवक-नवयुवती को बाल-अपराधी मानते हैं। मिस्र, सीरिया, लेबनान, ईराक़ में शैशवकाल—जिसकी उम्र नीचे दी जाती है—को भी अपराध का काल मानते हैं पर तुर्किस्तान तथा ईरान में केवल बाल तथा नवयौवनकाल को ही अपराधी श्रेणी में रखते हैं। इस प्रकार उम्र का विभाजन नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा—

देश	शैवशकाल	बाल्यकाल	नवयौवन
मिस्र	७—१२ वर्ष	१२—१५	१५—१७
ईरान	११ वर्ष तक	११—१५	१५—१८
ईराक	७—१२	१२—१५	१५—१८
जार्डन	९—१३	१३—१५	१५—१८

देश	शैशवकाल	बाल्यकाल	नवयौवन
लेबनान	७—१२	१२—१५	१५—१८
सीरिया	७—१२	१२—१५	१५—१८
तुर्किस्तान	११ वर्ष तक	११—१५	१५—१८

सऊदी अरब तथा यमन में दो प्रकार के "बाल" माने जाते हैं, एक वह जो भले-बुरे की पहचान न कर सके। दूसरा वह जो ऐसी पहचान कर सके। ऊपर की तालिका से एक बात स्पष्ट है। ईरान तथा तुर्किस्तान में "अबोध" बच्चे की उम्र ७ वर्ष तक न मान कर ११ वर्ष तक की मानते हैं। सभी देशों में इस बात का ध्यान रखा गया है कि किस उम्र में या किस अवस्था में भले-बुरे की पहचान होने लगती है या हो सकती है। इसी को बाल-अपराध का बहुत बड़ा आधार माना गया है।

पश्चिमी देशों में भी "अपराध के पूर्व की उम्र" यानी अपराध की ओर झुकता हुआ बाल-काल का सिद्धान्त मान लिया गया है। यह उम्र सभी देशों में एक समान नहीं है। यह आगे चलकर मालूम होगा पर उसकी व्याख्या इस प्रकार है कि "निश्चित उम्र का व्यक्ति जिसने कोई अपराध नहीं किया है पर अपने व्यवहार से वह ऐसा प्रतीत होता है कि अपराधी हो सकता है।"

अपराधी मनोवृत्ति

पश्चिमी देशों में, जहाँ बालसुधार के काम के लिए अधिक पैसा तथा अधिक कला और ज्ञान भी है, इस समस्या पर काफ़ी समय तथा द्रव्य खर्च होता है। वहाँ बाल-अपराधी को दो भागों में बाँट दिया गया है। एक वह बालक या बालिका जिसने कोई अपराध नहीं किया हो पर जिसके स्वभाव तथा वातावरण को देखकर यह भय पैदा हो रहा हो कि वह अपराधी बनेगा या बनेगी। दूसरी श्रेणी अपराध करनेवालों की है।

आस्ट्रिया में बाल-कल्याण अधिनियम, १९५४[१] के अनुसार शरीर तथा नैतिकता में दुर्बल बच्चों को विशेष शिक्षा देने के लिए प्रोवेशन के अन्तर्गत, या सरकारी स्कूल या सुधार-पाठशालाओं या समाज-कल्याण की संस्थाओं में भर्ती कर देते हैं। कभी कभी ऐसे बच्चों को बालिग़ होने तक ऐसी संस्थाओं में रहना पड़ता है। बेल्जियम में[२]

१. Jugendewohlfahrtagesetz.

२. Loi Sur La Protection De La Enfance.

ऐसे लड़के-लड़कियों को प्रोवेशन में या "बन्द" पाठशालाओं में भर्ती कर देते हैं जो "घरेलू जीवन में अपनी बुरी चाल-चलन से या संयम के अभाव के कारण अपने माता-पिता या अभिभावकों के लिए एक समस्या बन गये हों। इनकी उम्र १८ वर्ष से कम होनी चाहिए या १६ वर्ष से कम उम्र के हों जो अपने जीवन को वेश्यावृत्ति, जुआ, लफंगापन, अपराध आदि की तरफ़ ले जा रहे हों।" फ्रांस में ३० अक्टूबर सन् १९३५ के क़ानून के मुताबिक़ तथा सन् १९४५ के संशोधन के अनुसार ऐसे बच्चों की देखरेख का विशेष प्रबंध है जिनके माता-पिता सरकार को यह रिपोर्ट करें कि उनके बच्चे में अपराध करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है।

पश्चिम जर्मन प्रजातन्त्र में २८ अगस्त १९५३ के अपने क़ानून[१] के मुताबिक़ १८ वर्ष की उम्र के जिन बच्चों में शारीरिक, मानसिक या नैतिक उपेक्षा के कारण कोई कमज़ोरी आ गयी हो, उनके संरक्षण का भार राज्य को लेना पड़ेगा। यूनान के सन् १९५० के दंडविधान के अनुसार ७ से १२ वर्ष की उम्र के ऐसे बाल-अपराधियों के लिए, जिन्होंने अपराध तो किया है, पर जो अपने काम की बुराई को ठीक से नहीं समझते हैं, विशेष संस्थाओं में रखने का प्रबंध है। आयरलैण्ड में सरकार १५ वर्ष से नीचे के उन बच्चों को अपनी निगरानी में ले लेती है जो मशहूर चोर या वेश्याओं के साथ रहते पाये जाते हैं। इज़रायल में १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चे, जिनको सरकारी निगरानी में रखना चाहिए, प्रोवेशन अफ़सरों द्वारा बाल-अपराधी अदालतों में ले जाये जाते हैं। इटली तथा नीदरलैन्ड्स[२] में भी १६ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए यही नियम है। स्वीडन, नार्वे, फिनलैण्ड तथा आइसलैण्ड में अपराधी तथा ग़ैर-अपराधी दोनों को निगरानी में रखने, शिक्षा देने आदि का नियम है। डेन्मार्क का सन् १९५१ का क़ानून है कि "यदि कोई लड़का या लड़की अपने घर में माता-पिता का कहना न मानता हो, उसके अभिभावक उसे शिक्षित करने में असमर्थ हों—यानी उनके पास साधन न हों—या बच्चा ही उद्दंड हो—तो सरकार उसे अपनी निगरानी में ले लेगी। स्वीडन में यदि १६ वर्ष से नीचे के लड़कों में कोई ख़राबी देखी जाती है तो माता-पिता को सख्त चेतावनी दी जाती है तथा बच्चे को भी। यदि माता-पिता में अनैतिकता के कारण बच्चे पर बुरा प्रभाव समझा जाता है तो चेतावनी और कठोर हो जाती है। स्विट्जर-लैंड में भी "नैतिक

१. Reichsgesetz Fur Jugendwohlfahrt.

२. Burgerlijk Wetbock, 1838.

ख़तरे" में से बच्चों का उद्धार करते हैं। इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड तथा वेल्स में बाल-अपराधी तथा बाल-अपराधी-वृत्ति को रोकने के लिए अनेक नियम तथा उपाय हैं, जिनका ज़िक्र हम आगे करेंगे।[1]

विशेष व्यवहार का प्रश्न

अध्याय के प्रारंभ में हमने "बाल अपराधी" की उम्र की व्याख्या की है। समाज के नियमों को तोड़नेवाला "अपराधी" हुआ। पर अपराधी की भी श्रेणियाँ होती हैं और आधुनिक समाज ने उसकी व्याख्या कर दी है। प्रायः सभी देशों ने कम से कम १७ या १८ वर्ष तक की उम्र के अपराधी को "बाल-अपराधी" कह कर उसके साथ विशेष व्यवहार तथा विशेष प्रकार का दंड या सुधार-प्रणाली को अपनाने का नियम बनाया है। किन्तु ऐसा करने में समाज को सैकड़ों वर्ष लग गये। आसानी से वह यह मानने को तैयार नहीं हुआ कि बालिग़ और नाबालिग़ के अपराध और कार्य में किसी प्रकार का अन्तर है।

ब्रिटिश क़ानून का यह महान् सिद्धान्त है कि "क़ानून की जानकारी न होने से कोई अपराध क्षमा नहीं हो सकता।" प्रत्येक के लिए वह समान रूप से सब देशों में लागू था। फिर भी अदालतें किसी न किसी रूप में, दंड देते समय, यह साबित करने की चेष्टा करती थीं कि "यह अपराध जान-बूझ कर किया गया है।" क़ानून चाहे उनसे इस प्रकार की सफ़ाई न भी माँगता रहा हो पर उनके मन में चोर रहता ही था कि "बिना बुरी नीयत के किया गया कोई भी काम अपराध नहीं है।"

ब्रिटेन के सन् १९२२ के क़ानून के अनुसार[2] १३ से १६ वर्ष की उम्र की कन्या के साथ प्रसंग जघन्य अपराध है। पर यदि अपराधी २३ वर्ष की उम्र से नीचे का है और उसका पहला अपराध है तो वह यह सफाई दे सकता है कि उसने लड़की की उम्र १६ वर्ष से अधिक समझी थी। पर सन् १८७५ में लन्दन में ऐसी ही एक कन्या को अनैतिक कार्य के लिए उसके घर से भगा लाने का अभियोग एक व्यक्ति पर लगा।

१. Children & Young Persons Act of England, 1952! Criminal-Justice Act, 1949—Scotland.

२. Criminal Law Amendment Act, 1922 (12 and 13, Geo, 5, 6–56- section 2)

उसने यही सफाई दी कि उसकी समझ में लड़की १६ वर्ष की उम्र से ज्यादा थी। जूरी लोगों की भी यही राय थी कि अभियुक्त सच्ची नीयत से यही समझता था कि लड़की १६ से ज्यादा है। पर विचारपति ब्रेट अपनी राय पर अड़े रहे और अन्त में अदालत ने बहुमत से इस सफाई को मानना अस्वीकार कर दिया और दंड देते समय कहा कि "कोई भी व्यक्ति यदि किसी अविवाहिता कन्या को उसके माता-पिता से बिना पूछे ले आता है तो उसे यह ख़तरा उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए कि उसकी उम्र १६ से कम की साबित हो जायगी।"[१]

किन्तु बाल-अपराध के बारे में इतनी छानबीन पहले नहीं होती थी। अभी तक इतने सुधार के बाद भी यही शिकायत है और पहले तो बहुत अधिक थी कि हम बाल-अपराधी के मामले में सही तरीक़ा नहीं अपनाते थे। उनका "अपराध" समझने का भी ठीक से प्रयत्न नहीं होता था। सर विलियम क्लार्क हाल ने बड़ी मार्के की बात कही है। वे बाल-अपराधियों को विशेष अदालतों के सामने लाने के पक्षपाती थे। वे कहते हैं।[२] "असली बात तो यह है—और ऐसी बात है जिसे हमारे व्यवस्थापक एक न एक दिन समझ जायँगे—कि बाल-अपराधियों के लिए मुक़दमा करने के तरीक़ों को सरल बना देने से ही हम इस समस्या की तह तक नहीं पहुंच सकेंगे। जब तक हम बच्चों को "अपराधी" समझते रहेंगे, तब तक हम केवल यही प्रबंध करके प्रसन्न रहेंगे कि उनकी कम-उम्री का लिहाज करके उनके अपराध की समीक्षा हो, हम बाल अपराध की समस्या का वास्तविक उपाय नहीं कर सकेंगे। अपराध के निर्णय के लिए कोई नाटकीय प्रबन्ध करने से बेहतर है दुष्प्रवृत्तियों की रोकथाम करने के लिए सही उपाय सोचना. . .।"

जेल क्यों भेजें ?

ऐसे ही उपायों में प्रोवेशन की प्रणाली भी है। बाल-अपराधी को जेल न भेजकर प्रोवेशन अफ़सर या अभिभावक की निगरानी में छोड़ दिया जाय। इंग्लैण्ड में जब सन् १९२२ में यह नियम बना कि छोटे-मोटे अपराधों पर जेल का दंड न देकर, आर्थिक

१. Mens Rea in Statutory Offences—Macmillan & Co., 1955—Page 59.

२. "Children's Courts" by Sir William Clarke Hall—Pub. George—Allen & Unwin Ltd., London, Page 64

दंड दिया जाय और जुर्माना जमा करने के लिए भी मियाद दी जाय तो लोगों ने, यानी क़ानूनी दुनिया ने इसे "क्रान्तिकारी सुधार" समझा था। सन् १९२५ में लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय दंड-सम्मेलन हुआ।[1] उसमें "सबको एक ही प्रकार की सजा देने या अल्पकालीन जेल की सज़ा" के विरुद्ध बोलते हुए, ब्रिटेन के प्रधान न्यायाधीश बेरी के लार्ड हिवर्ट[2] ने कहा था—

"हमारी यह राय नहीं है कि जेल भेजने की सज़ा समाप्त कर दी जाय या उसका जो ध्येय है, वही समाप्त हो जाय। समस्या यह है कि उचित मामलों में एक ऐसा वास्तविक तथा सही सन्तोषजनक तरीक़ा अपनाया जाय जिससे आज जो काम जेलों के द्वारा पूरा हुआ समझा जाता है, वही काम बाहर हो सके। हमें पूरे समाज की रक्षा तथा उसके हितों की ओर देखना है। हमें यह देखना है कि हममें से एक ने जो भूल की है, वही भूल और लोग न करें...अन्ततोगत्वा यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज कुछ वर्गों को मिलकर नहीं, बल्कि व्यक्तियों से बनता है और हमको हर एक व्यक्ति को, उसके गुण-दोष के अनुसार देखना पड़ेगा...आम तौर से जो बात लोग ठीक से नहीं समझते वह यह है कि अपराधी तैयार करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है बाल-अपराधियों को अनायास जेल भेज देना...जहाँ पर वे ऐसे मनुष्यों तथा उपायों से परिचित हो जाते हैं जो उन्हें सदा के लिए नष्ट कर देते हैं...उन पर बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है जो किसी लड़के या लड़की को, या यों कहिए कि किसी पुरुष या स्त्री को पहली बार जेल भेजते हैं।"

बहुत काफ़ी ठोकर खाने के बाद ब्रिटेन के प्रधान विचारपति या उनके साथियों ने यह बात समझी। ग्रेट ब्रिटेन में पुराने ज़माने में, नाज़ुक से नाज़ुक उम्र का बच्चा क़ानून की अवज्ञा करने पर जेल भेज दिया जाता था। जेल में जाकर वह "अपराधों की पाठशाला" से "अपराध-पंडित" होकर बाहर निकलता था। १९वीं सदी के मध्यकाल में यानी सन् १८२५ से १८७५ तक—यदि इंग्लैण्ड के जुर्मों की छानबीन की जाय तो अधिकांश अपराधियों की औसतन उम्र १५ वर्ष की मिलेगी। इंग्लैण्ड में ८ वर्ष के एक बच्चे को किसी खलिहान में "द्वेषपूर्वक, प्रतिशोध की भावना से मक्कारी तथा चतुराई से" आग लगा देने के अपराध में प्राणदंड हुआ और वह बेचारा फाँसी पर लटका दिया गया। सन् १८३३ में ९ वर्ष के एक छोटे बच्चे को 'एक दूकान

१. International Penitentiary Congress, London, 1925.

२. Lord Chief Justice of England, Lord Hewart of B ıry.

की शीशे की खिड़की का शीशा फोड़ कर दो आने क़ीमत की चीज़ चुरा लेने के अपराध में प्राणदंड हुआ।[1] महारानी विक्टोरिया के ज़माने में बड़ी निर्लज्जतापूर्वक खुले आम कारखाने के मालिक माता-पिता से उनके बच्चे खरीद लेते थे। ५ वर्ष से ऊपर के बच्चे लंकाशायर के कारखानों में "अप्रेंटिस" के नाम से बेच दिये जाते थे। इस अप्रेंटिस का जीवन ऐसी नरकमय गुलामी का जीवन था जिससे बचना असम्भव था। पांच वर्ष के छोटे लड़के लड़की से बड़ों के बराबर काम लिया जाता था। कारख़ानों में एक व्यक्ति को १२ घंटे काम करना पड़ता था। बच्चों के लिए भी काम करने के यही घंटे थे। गन्दा वातावरण, दूषित स्थिति, बुरा भोजन, सफाई का नितान्त अभाव—इतनी विकट पीड़ा तथा ऐसी दर्दनाक मृत्यु-जिसका वर्णन नही किया जा सकता।[2]

बच्चों की ऐसी दुर्गति देख कर ही उस देश में मैथ्यू डेवनपोर्ट हिल (१७९२-१८७२) या सिडनी टर्नर (१८१४-१८७९) ऐसे आन्दोलन करनेवाले पैदा हुए कि चार्ल्स डिकेन्स ऐसे प्रसिद्ध उपन्यासकार का ध्यान भी इस ओर गया और उनकी लौह-लेखनी ने भूखे-नंगे कामुक रोग से पीड़ित बालक या बालिका को समाज के सामने खड़ा कर दिया और इस सब सामूहिक विरोध का अच्छा परिणाम भी हुआ। सन् १८५४ का प्रथम रिफार्मेटरी स्कूल ऐक्ट (सुधारगृह) पास हुआ। बाल-अपराध की समस्या को हल करने का तथा बाल-अपराधी की नयी व्याख्या करके अन्य अपराधियों से उसे पृथक् करने का यह पहला प्रयत्न था। भारतवर्ष में, जो इंग्लैण्ड का ग़ुलाम था, सन् १८५४ के ब्रिटिश क़ानून के ठीक ७५ वर्ष बाद बच्चों की ओर ध्यान दिया गया। १९१९-२० में भारतीय जेल कमेटी ने अपनी सिफ़ारिश में "जेल के स्थान पर अन्य उपाय" पर विचार करते हुए यह सिफ़ारिश की कि अदालतों को माता-पिता के समान बाल-अपराधी के प्रति व्यवहार करना चाहिए। शरीर से दोषी बच्चों के लिए विशेष संस्थाएँ होनी चाहिए, प्रोबेशन प्रणाली, रिमांडहोम आदि का प्रबंध होना चाहिए। फिर भी, हमारे देश में बाल-अपराधी के प्रति कोई कथनीय ध्यान नहीं दिया जाता था। सन् १९३३ में बंगाल में २१ वर्ष की उम्र से कम ५,३५८ बाल-अपराधी जेल भेजे गये तथा केवल १२४ बच्चे प्रोबेशन पर छोड़े गये। इसी वर्ष १९३२ बाल-अपराधी मद्रास में जेल भेजे गये थे तथा ५१४ प्रोबेशन[3] पर छोड़े गये थे।

१. सम्राट् ने यह सजा माफ कर दी।

२. Sir William Clarke Hall—"Queen's Reign for Children."

३. परिवीक्षण

बाल-वृद्ध में भेद

सभी देशों में बाल-अपराधी को शेष अपराधी समाज से पृथक् करने में काफ़ी समय लगा, काफ़ी संघर्ष भी रहा। इस सम्बन्ध में हम आगे चलकर विचार करेंगे। लाकासेन का यह मत माननेवाले बहुत कम मिलेंगे कि "संसार में अपराध नहीं हैं, केवल अपराधी हैं।"[१] और इस अपराधी को सही रास्ते पर लाने के लिए एक नहीं अनगिनत उपाय सोचे जा चुके हैं और सोचे जा रहे हैं। सन् १७७१ तथा सन् १७७५ में शायद पहली बार "बुरा काम करनेवाले या आलस में जीवन बितानेवाले लोगों के निजी कल्याण के लिए तथा उन्हें राज्य के लिए उपयोगी बनाने के उपाय" पर घेंट (फ्रान्स) के प्रसिद्ध शासक (कोतवाल) बिलेन १४वें ने फ्लैंडर्स के राज्यों की महासभा में अपना प्रसिद्ध वक्तव्य रखा था।[२] सन् १७७७ में लंदन में जान हावर्ड[३] ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[४] प्रकाशित कर ब्रिटिश जेलों की दुर्दशा का चित्रण किया था। इस पुस्तक ने बड़ी हलचल पैदा कर दी थी। इसी से पता चलता है कि पुराने ज़माने में कठोर कारावास की सजा में बालक या वृद्ध क़ैदी से कितना निरर्थक काम लिया जाता था। जैसे केवल एक पहिया घुमाते रहना, एक गठरी को इधर से उठाकर उधर रखना, एक तख्ते पर चढ़ना और उतरना, इत्यादि। मनुष्य को पशु से भी बुरा बना दिया गया था। सन् १७९० में फ्रान्स के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मिराबों ने "नजरबन्द करने वाले यातनागृहों को" समाप्त करने के लिए अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी। सन् १७७६ में पेनसिलवानिया (संयुक्त राज्य अमेरिका) प्रदेश ने जेल-सुधार पर अपना प्रथम सुधारक नियम बनाया था।

ऊपर कही गयी बातों से स्पष्ट है कि इसके पहले बालक हो या वृद्ध किसी की अपराधी-वृत्ति की "चिकित्सा" की बात भी नहीं सोची गयी थी। हरएक को "भौतिक, शारीरिक तथा नैतिक रूप से अपने अपराध का प्रायश्चित्त करना पड़ता था। लम्बी लम्बी सज़ाएँ दी जातीं थीं और लम्बी सज़ा का मतलब यह था कि उस

१. Lacassagne's Epigram—"There are no Crimes, there are only Criminals.

२. Vilain XIV of Ghent in the States Generai of Flanders.

३. **जिनके नाम पर विश्व-विख्यात संस्था** Howard League of Penal Reform **है।**

४. The State of Prisons—John Howard.

"भयानक" व्यक्ति से समाज जितना अधिक दिनों तक सुरक्षित रह सके, उतना ही उसका यानी समाज का कल्याण होगा। जेल के अधिकारियों का कर्त्तव्य था कि दो कारणों से क़ैदी को सज़ा देते रहें—(१) अपराधी दंड के भय से फिर अपराध न करे तथा (२) अपने गुनाह का वह प्रायश्चित्त भी करे और प्रतिशोध भी होता रहे।[१]

किन्तु, दंड का उद्देश्य धीरे धीरे बदलने लगा। सन् १८५४ में प्रकाशित ग्लैड-स्टन कमेटी की रिपोर्ट में लिखा है —"जेल में जो बन्दी हैं, वे मनुष्य हैं। यदि जेल का एक उद्देश्य बंदी के या अपराधी के मन में भय उत्पन्न करना है तो उसका उद्देश्य उसे समाज के लिए सुयोग्य नागरिक बनने की पुनः शिक्षा-दीक्षा देना भी है। जेल का शासन ऐसा होना चाहिए कि बंदी के भीतर बैठे श्रेष्ठ गुणों का विकास हो सके। उसके चित्त के सद्गुण जाग उठें। वह समाज के लिए उपयोगी तथा अधिक उपयुक्त नागरिक होकर घर लौटे।"

"जेलों के शासन का सिद्धान्त आज भी, मेरे विचार से, यही है और इस भावना के ऊपर अभी कोई बात समझ में नहीं आयी है। फ्रांस का सन् १८८५ का जेल-क़ानून तथा लगभग इसी समय संयुक्त राज्य अमेरिका में ब्राकवे का एलमिरा के सुधारगृह का अनुभव भी इसी सिद्धान्त को पुष्ट करता है। इसी समय से बंदी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने लगा। नयी खोजों ने नये नये सिद्धान्त सामने रखे। अपराधी के व्यक्तित्व की परख तथा परीक्षण, उसका वर्गीकरण, मानसिक खराबियों की जाँच तथा शिष्ट नागरिक के जीवन में उस अपराधी को पुनः स्थापित कर देने की चर्चा और उसका उपाय होना चाहिए।"[२]

जिन दिनों यह तय हो रहा था—और उसकी बड़ी चर्चा थी कि बन्दी के जीवन का कल्याण किस प्रकार हो तथा अपराधी के प्रति निर्दय व्यवहार के स्थान पर उदा-रता का व्यवहार होना चाहिए तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात बाल-वृद्ध, हर अपराधी के व्यक्तित्व को पुनः स्थापित करना है और उसके भीतर के छिपे हुए अथवा सोये हुए सद्गुणों को जाग्रत करना है—उन्हीं दिनों यह चर्चा भी चल पड़ी कि बालिग़ और नाबालिग़, बच्चे और बड़ी उम्र के, नासमझ तथा समझदार के अपराध तथा कार्य, विवेक तथा बुद्धि, मन तथा प्रेरणा में बड़ा भारी अंतर है और उस अन्तर को

१. Modern Methods of Penal Treatment. Pub. International Penal & Penitentiary Foundation–1956–Page xvii.

२. Modern Methods of Penal Treatment, पृष्ठ xx.

समझकर तब उसके साथ पृथक् व्यवहार होना चाहिए। इन्हीं दिनों अपराधी तथा बाल-अपराधी की भिन्न व्याख्या शुरू हुई। दोनों के प्रति समाज के रुख़ में फ़र्क़ आने लगा और (१) अपराध से एकदम अनजान उम्र, यानी सात वर्ष तक; (२) उसके बाद नासमझी की उम्र यानी १७-१८ वर्ष तक—और फिर (३) वयस्क अर्थात् बालिग हो जाने की उम्र, इस प्रकार का श्रेणी-विभाजन हो गया। इस विभाजन की भावना के क्रमशः विकास पर हम आगे चलकर कुछ अधिक प्रकाश डालेंगे। यहाँ पर हम केवल यह जानना चाहते है कि "बाल-अपराधी" कहते किसे हैं। जब तक यह न निश्चित हो जाय कि "बाल-अपराधी" से तात्पर्य क्या है, तब तक "बाल-अपराधी" की चिकित्सा भी कैसे हो सकेगी।

चिकित्सा भी जितनी जल्दी शुरू हो जाय, उतना ही कल्याणकर होगा। कच्ची उम्र से ही यह अपराधी मनोवृत्ति की रोकथाम शुरू हो जायगी तो आगे चलकर मानव सँभल जायगा। हीली ने अपनी पुस्तक में अपराधी की जल्दी चिकित्सा शुरू करने पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है। सही उम्र से बालक-बालिका की देख-रेख हो और देख-रेख करनेवाले सही लोग हों—इन दोनों बातों की ओर ध्यान देना ज़रूरी है। अपराध के ऐसे बहुत से मामले होते हैं जिनमें जो वास्तविक कारण हैं, वे सामने देर से आते हैं।[1] इन कारणों को ढूँढ़ निकाल कर ही, इनको समझकर इनका उपाय करने से ही कल्याण होगा। बच्चों में एक विचित्र बेचैनी, उत्तेजना तथा पाशविक प्रवृत्ति होती है।[2] उसे रास्ते पर लगा देने से उनका जीवन उपयोगी हो जाता है। केवल घर के बाहर के कामों में उन्हें बहुत अधिक व्यस्त कर देने से काम न चलेगा। हमारा अनुभव है कि बाहर के जीवन की अधिकता से ही वे वासना के अपराधों में पड़ जाते हैं। बचपन की शिक्षा-कुशिक्षा आगे जीवन को प्रभावित करती है। मनुष्य क्या है—बच्चा ही तो है। बच्चा केवल बड़ा हो गया है।[3] इसलिए बाल-अपराधी की समस्या यदि हल हो जाय तो बड़ी उम्र के अपराध तथा अपराधी, दोनों आप से आप कम हो जायँगे। हीली की राय में बाल-अदालतों में १७-१८ वर्ष तक की उम्र के लड़के-लड़कियों पर विचार करना ठीक नही है। यह उम्र २०-२१ साल तक कर देनी चाहिए, क्योंकि "अदालतों में रोज काम करने के अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि अधि-

१. Healy—Individual Delinquency—**पृष्ठ १७२–१७३।**
२. **वही, पृष्ठ २४६**
३. **वही, पृष्ठ १२–१३**

कांश लड़के-लड़कियों का बचपन १७-१८ वर्ष की उम्र में ही नहीं समाप्त हो जाता। हम इसे साबित कर देंगे कि जीवन का रचनाकाल भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होता है और बाल-अदालतों में निश्चित उम्र में समाप्त नहीं हो जाता।"[१]

आदतन अपराधी

आदतन अपराधी या बार-बार अपराध करनेवाले बाल-वृद्ध की सम्मिलित व्याख्या करते हुए हीली के मत का सारांश है—[२]

"बार बार अपराध करनेवाला समाज को बड़ी हानि पहुँचा रहा है। हमने देखा है कि बाल-अदालतों में भी आदतन अपराधी बार बार आते हैं। ऐसे अपराधियों की अनेक श्रेणियाँ होती हैं पर एक बार अपराध करके फिर उसे न दुहराने वाला वह व्यक्ति है जिसने उस कार्य के परिणाम से ऐसी नसीहत प्राप्त कर ली है कि फिर उसे दुहराता नहीं है। पर अपराध को बार-बार दुहराने वाला वह व्यक्ति है जो धमकी, चेतावनी तथा दंड के बाद भी समाज-विरोधी कार्य करता रहता है। बड़े हों चाहे छोटे, ऐसे बहुत से अपराधी हैं जिनका अपराध अदालत के सामने "पहला" मालूम पड़ता है पर वे अपने परिवार में रहते हुए भी बार बार वही अपराध करते हुए पुलिस तथा अदालत के पञ्जे में नहीं आये हैं। लेकिन इनके सम्बन्ध में बातें करते समय हम यह भी साफ़ कर दें कि हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि प्रथम अपराधी की तुलना में वह अधिक पापी या दुष्ट ही होगा। क़ानून के जिस दायरे में वह दंडनीय समझा गया है, उस दायरे के बाहर के भी बहुत से ऐसे काम, जिन पर क़ानून चुप है, अधिक नीच, पतित तथा दुष्ट हो सकते हैं और हैं। हमारे सामने १५-१६ वर्ष के ऐसे बहुत-से लड़के लड़कियों की मिसालें मौजूद हैं जो सुधार का अनेक प्रयत्न करने पर भी समाज-विरोधी भावना तथा कार्य से दूर नहीं हो सके, दूर नहीं जा सके। अपराधी मनोवृत्ति के लिए स्थान, नगर या आबोहवा का वैसा प्रभाव नहीं पड़ता जैसा कि हम समझते हैं। यह समस्या मानव-स्वभाव की है। यह जटिलता मानवी मनोवृत्ति की है। इसका कोई सही हल निकाल सकना कठिन है। यह अवश्य है कि समाज, परिवार, माता-पिता तथा धार्मिक पुरोहितों की सहायता से यह बहुत कुछ हल हो सकती है।"[३]

१. वही, पृष्ठ, १७३
२. वही, पृष्ठ १३—१४
३. बालकों के स्वभाव, बालक—बालिकाओं की मनोवृत्ति आदि के संबंध में अंग्रेजी

बाल-अपराधी की व्याख्या

अप्रैल १९५५ में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में संयुक्तराष्ट्र-संघ ने "बाल अपराधी" के पूर्व की परिस्थिति यानी 'पूर्व-बाल-अपराधी' उसे माना है जो, बाल अपराधी के लिए निर्धारित अधिकतम उम्र के समानान्तर उम्र में कोई ऐसा काम नहीं करता या करती है जिससे उस देश के कानून की अवज्ञा हो, पर अनेक कारणों से जिसे समाज के प्रतिकूल तथा अपने आचरणों से समाज के विरुद्ध काम करनेवाला माना जा सकता है और सामाजिक नियमों की उसकी अवज्ञा इतनी अधिक हो गयी है कि यदि उसकी रोकथाम न की गयी तो अपराधी बन जायेगा।"[१]

स्पष्ट है कि पूर्व-बाल-अपराधी तथा बाल-अपराधी की उम्र—क़ानूनी उम्र—बराबर है।

बाल-अपराधी की व्याख्या करते हुए संयुक्त राष्ट्र-संघ कहता है—

"बाल अपराधी वह नवयुवक तथा नवयुवती है जिसने निश्चित उम्र के भीतर दंडविधान के अंतर्गत अपराध किया है और न्याय-अदालत या बाल-कल्याण समिति ऐसी विशेष संस्था के सामने पेश किया गया है ताकि उसकी ऐसी चिकित्सा का प्रबंध हो सके जिससे वह समाज द्वारा पुनः स्थापित यानी स्वीकृत हो जाय बहुत से मामलों में क़ानून बाल अपराधी की अधिक से अधिक ही नहीं, कम से कम उम्र भी निश्चित कर देता है जिसके नीचे की उम्र का बच्चा अपने अपराधों के लिए ज़िम्मेदार नही होता।"[२]

अमेरिकन मेडिकल असोशियेसन के एक प्रकाशन में बाल अपराधी को "निजी व्यवहार में या व्यक्तित्व में व्यक्तिक्रम का दोषी" माना है। स्कूल जानेवाले विद्यार्थियों के इस दोष के सम्बन्ध में लिखा है—

"स्कूल के बच्चों में व्यवहार अथवा व्यक्तित्व में व्यतिक्रम की व्याख्या इस प्रकार

में बड़ा साहित्य उपलब्ध है। पाठक खास तौर पर इस पुस्तक को पढ़ सकते हैं। Harry and Bonaro Overstreet—"When Children Come First"—Pub. National Congress of Parents & Teachers, Chicago, Illinois, 1949.

१. The Prevention of Juvenile Delinquency—U. N. O. April 1955—Page 2.

२. वही, पृष्ठ ३

की जा सकती है कि "उनका ऐसा कार्य या उनमें ऐसी प्रतिक्रिया जिससे बच्चे की शिक्षा के कार्य पर बुरा असर पड़ता हो, बाधा पड़ती हो या स्कूल के समुचित संचालन में अव्यवस्था पैदा होती हो।"[१]

बहुत सोच-समझकर की गयी यह व्याख्या बाल-अपराध तथा बाल अपराधी को समझना काफ़ी आसान कर देती है। पर बाल अपराधी की जो व्याख्या हम नीचे दे रहे हैं, वह शायद बहुत ही उपयुक्त और विषय को स्पष्ट कर देनेवाली हो। संयुक्त राज्य अमेरिका के ओहियो प्रदेश की सरकार के बाल-कल्याण विभाग ने इस व्याख्या को प्रकाशित किया है और आज यह व्याख्या बहुत ही उपयुक्त तथा युक्ति-संगत समझी जाती है। उसमें लिखा है—[२]

बाल-अपराधी वह है जो—

१. प्रदेश के किसी अंग या उपांग या प्रदेश या देश (संयुक्त राज्य अमेरिका) के किसी नियम का उल्लंघन करता है।

२. अपने माता-पिता, गुरुजन, अध्यापक, अभिभावक के वाजिब नियंत्रण में नहीं रहता, गलत रास्ते पर चलता है, उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता।

३. स्कूल या घर से अक्सर भाग जाया करता है।

४. जिसके काम ऐसे हैं जिनसे अपने तथा दूसरों के चरित्र तथा स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है तथा हानि होती है।

५. बिना माता-पिता या अभिभावक या वैध अधिकारी की अनुमति के, इस प्रदेश द्वारा निश्चित नियमों के विपरीत, इस प्रदेश में या बाहर किसी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

मैं समझता हूँ कि बाल अपराधी की एक अच्छी, उपयुक्त व्याख्या हमारे सामने है। यदि ऊपर लिखा बालक या बालिका अपराधी है तो क्या उसको मार-पीटकर, दंड देकर ठीक करना चाहिए या सुधार से भी काम चलेगा?

१. Report of the 5th National Conference on Physicians and Schools, Oct., 12-13-14, 1955—Pub. Bureau of Health Education, American Medical Association, Page 56.

२. Manual of Child Welfare Laws, Children's Service, Division of Social Administration, Department of Public Welfare, Columbus, Ohio, 1939.

*

अध्याय १९

दोषी कौन है ?

मनोवैज्ञानिक बात

बाल-अपराधी की व्याख्या के उपरान्त अब यह देखना है कि दोषी कौन है? बच्चे अपराधी क्यों और कैसे बनते हैं? बच्चों के स्वभाव का गूढ़ अध्ययन कर उनकी शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेवाली इटालियन महिला मेरी मौंटेस्सरी के नाम से आज कौन नहीं परिचित है? उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "मौंटेस्सरी प्रणाली" का तीसरा संस्करण सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ था। उसका एक नया अनूदित संस्करण मद्रास में सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक में उस प्रसिद्ध महिला का सन् १९०७ का एक भाषण है जो एक "बाल भवन" खोलने के समय किया गया था। ५३ वर्ष हो गये और ऐसा प्रतीत होता है कि वही बात आज के लिए भी लागू है। वे कहती हैं[1]—

"प्रायः हम समाचारपत्रों में ऐसे समाचार पढ़ते हैं कि एक बड़ा परिवार है, लड़के और लड़कियों की उम्र बढ़ती जा रही है और वे एक ही कमरे में सोते हैं। उस कमरे के एक कोने में एक दुश्चरित्र, बाहरी औरत भी रहती है जिसके यहाँ रात को व्यभिचारी लोग आते हैं। लड़के-लड़कियाँ यह सब दृश्य देखते हैं। उनके मन में भी दुर्भावना जाग उठती है और वे ऐसे अपराध तथा रक्तपात के दोषी बन जाते हैं जिससे हमारे सामने एक अति खेदजनक दृश्य का परदा उठ जाता है...... समाचारपत्रों में प्रकाशित हिंसात्मक तथा अनैतिक अपराधों की कहानी सामने आती है जिससे ऐसी खेदजनक तथा भयावह परिस्थिति का पता चलता है और उन उदार लोगों के मन में जो इनके बीच में काम करना चाहते हैं, बड़ी हलचल पैदा कर देती

१. Maria Montessori, M. D., D. Litt., F. E. I. S.—"The Discovery of the Child"—Translated by Mary A. Johnstone, Pub. Kalakshetra, Adyar—Madras—1948—Page, 57, 58, 61 and 62.

हैं। कहने को जी चाहता है कि हर वेदना का अपना विशेष इलाज है. . .पर, उदारता है क्या चीज़? आन्तरिक खेद तथा करुणा को कार्यरूप में परिणत करना? पर ऐसी दानशीलता से विशेष लाभ नहीं भी होता। संगठन के अभाव तथा साधन की कमी से इससे केवल थोड़े से लोग लाभ उठा सकते हैं. . . ."

इस विषय की बहुत कुछ समीक्षा करने के बाद अन्त में वे लिखती हैं—[१]

"अपने जीवन के आरम्भ के दो वर्षों में अपनी ग्राह्य बुद्धि से शिशु व्यक्ति के चरित्र-निर्माण की तैयारी कर रहा है। वह अनजाने ही ऐसा कर रहा है। तीन वर्ष की उम्र होते ही उसमें चल शक्ति आ जाती है। वह अपनी चेतन बुद्धि के लिए निश्चित अनुभव संचय करने लगता है। उसकी यह चल शक्ति उसके हाथों में आ जाती है, जिसका वह हर काम में उपयोग करना चाहता है। यह सभी जानते हैं कि बच्चा हर एक चीज़ को छूना चाहता है और बुद्धि तथा हाथ के सम्मिलित प्रयत्न से वह खेल-कूद में लग जाता है. . . .दो वर्ष तक उससे कुछ अधिक के अपने शैशवकाल में अपनी अनजानी ग्राह्य शक्ति से वह अद्भुत अनुभव प्राप्त कर लेता है। उसमें इतनी शक्ति नहीं है कि बड़ों की तरह वाणी से बोलकर कुछ सीख सके. . . . .पर यह निश्चित है कि अपनी ग्राह्य बुद्धि से वह इन दिनों जो कुछ सीखता है, वह याद-दाश्त में न रहते हुए भी उसकी सजीव इन्द्रियों में समा जाता है और व्यक्ति के चरित्र तथा मस्तिष्क के निर्माण में आधार बन जाता है . . . .यही उम्र है जब मानव बिना थके काम करता रहता है और जीवनदाता भोजन की तरह ज्ञानकोष संचित करता रहता है, उन मानसिक उपायों से, जिनसे मानव की बुद्धिमत्ता के गुप्त द्वार का ताला खुलता है, काम न लेने से बच्चा अनायास साधारण तथा उचित मार्ग से दूर चला जाता है. . आज मनोवैज्ञानिक लोग यह स्वीकार करने लगे हैं कि उद्दंड या अपराधी मनोवृत्ति वाले बच्चे "मानसिक भूख से पीड़ित" हैं, उनका विश्वास रुक गया है और वे मानव-विकास के सीधे मार्ग से विचलित हो गये हैं. . . .बच्चों की समस्या मनोवैज्ञानिक है।"

नशाखोरी

बचपन से जो संस्कार बनता है तथा परिवार और वातावरण का जो असर होता है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हीली लिखते हैं कि ठीक से तो नहीं कहा

१. वही, पृष्ठ ५००, ५०१ तथा ५०२

जा सकता, पर कुछ ऐसे भी प्रमाण मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि यदि शराब या किसी और नशे का सेवन कर पिता के संभोग से बच्चा गर्भ में आता है तो उसमें पैदा-यशी अवगुण आ जाते हैं। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। मेरे विचार से पश्चिमी देशों में बाल-अपराधों की वृद्धि में माता-पिता का नशा-सेवन भी एक कारण है। हीली की खोज के अनुसार बाल अपराधियों में २·७ प्रतिशत नशेबाज़ माता-पिता की संतान थे, यद्यपि यह औसत कुछ ज्यादा नहीं मालूम होता। पर हीली ने १००० बाल-अपराधियों की जाँच करके यह भी पता लगाया कि ५६ प्रतिशत अपराधियों के परिवार में किसी न किसी प्रकार का अपराध भी वर्तमान था, जिसमें नशाख़ोरी का अपराध भी था। उनका यह भी कथन है कि यदि गर्भवती स्त्री किसी मादक द्रव्य का सेवन करती है तो गर्भ के शिशु पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है। हीली लिखते हैं—[1]

'नशेबाज़ी से, बहुत साधारण नशा-सेवन नहीं, परिवार में नाना प्रकार के उपद्रव, दुर्भाव तथा झगड़े खड़े होते रहते है। प्रायः इनका परिणाम यह होता है कि बच्चे में अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। यह कहना तो कठिन है कि शराब के कारण किस सीमा तक अपराधी भावना पनपी पर यह सभी जानते है कि शराब से ही झग-ड़ालू प्रवृत्ति पैदा होती है।"

अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने एक परिवार का ज़िक्र किया है जिसमें माँ-बाप दोनों नशेबाज़ थे। उनको १२ बच्चे पैदा हुए जिनमें से सात मर गये, एक लड़का अच्छा निकला, एक लड़की बदचलन हो गयी, तीन लड़के बदमाश, अवारा, जेबकट तथा गिरहकट निकल गये।

पश्चिमी देशों में बच्चों को ज़रा बड़ा होने पर, उनके नवयुवक-नवयुवती होने पर, माता-पिता उन्हें शराब देने लगते है। इसका परिणाम उनके चरित्र पर बहुत बुरा होता है।[2] जिन देशों में बाल अपराधी बहुत बढ़ गये हैं, उनके बालक-बालिकाओं के जीवन पर प्रकाश डालने से पता चलेगा कि नशाख़ोरी का बहुत बड़ा ऐब उनमें आ गया है। अमेरिकन मनोविश्लेषक डा० फ्रेडरिक वर्थम[3] ने बालकों में मादक

१. Healy—Individual Delinquency, पृष्ठ २६४

२. वही, पृष्ठ २६७

३. Dr. Frederick Werthan संयुक्त राज्य अमेरिका में कालेज के ही नहीं, स्कूल के छात्रों में भी नशाख़ोरी बढने पर कई साधिकार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

द्रव्य के उपयोग का बड़ा भयानक चित्र खींचा है। उनका कथन है कि सिनेमा या डाकाज़नी आदि की बाज़ार में बिकनेवाली पत्रिकाओं में नशाखोरी की तसवीरें, उनके मुख में बेढंगे तरीक़े से लगे हुए सिगार या अफीम के पाइप आदि को देखकर बच्चों को भी शौक़ पैदा होता है कि उनकी नकल करें और वे पहले तो महज़ शौक़ में शुरू करते हैं, फिर उनको लुक-छिप कर, चोरी से अफ़ीम, चरस, गाँजा आदि प्राप्त करने में बड़ी उत्तेजना प्रतीत होती है और वे इनको पीकर हर प्रकार के उत्पात करते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मादक द्रव्य का उपयोग तथा उसकी समस्या काफ़ी जटिल है। वहाँ की आबोहवा भी ऐसी है कि कुछ भागों में चुपचाप भारतीय गाँजा तथा अफ़ीम की खेती होती है। "संयुक्त राज्य अमेरिका में मादक द्रव्यों के नाजायज़ यातायात तथा बिक्री की समस्या ग्रेट ब्रिटेन से कहीं अधिक कठिन है।"[१] माता-पिता जो व्यवसाय करते हैं, उसका प्रभाव बच्चों पर पड़ता ही है और वे भी उन घातक द्रव्यों के शिकार बन जाते हैं।

प्रत्येक अपराधी पर, चाहे बालक हो या वृद्ध, वातावरण तथा समाज का प्रभाव तो पड़ता ही है। जुर्म करनेवाले के सिर में कोई खास सींग नहीं होते। गोरिंग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस विषय को स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं—

"एक ही उम्र के क़ानून तोड़नेवाले अपराधी तथा क़ानून के दायरे में रहने वाले नागरिक के मन तथा शरीर की रचना में कोई अन्तर नहीं होता। एक ही वर्ग, एक ही श्रेणी, एक ही समान सामाजिक पद तथा बुद्धि दोनों की हो सकती है। जीव-विज्ञान से किसी विशिष्ट अपराधी वर्ग को सिद्ध नहीं किया जा सकता।"[२]

इसलिए यदि हमारे बाल-बच्चे अपराध करते हैं तो हमारा दोष होगा, समाज या परिवार का दोष होगा। बहुत से अपराध-शास्त्री परिवार को ही दोषी ठहराते हैं। बहुत अंशों में हम भी उनसे सहमत हैं।

१. International Criminal Police Review, December, 1949—Paris. पृष्ठ २३

२. Charles Goring, "The English Convict & Statistical study", Pub. London, Wyman & sons, 1913—Page 440.

परिवार का दोष

हीली ने इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।[1] उनका कथन है कि बच्चों के प्रति घर में जरूरत से ज्यादा सख्ती होने से भी वे अपराधी हो जाते हैं। बच्चे घर में आपस में लड़ते रहते हैं। माता-पिता चिढ़कर उन्हें पीटकर घर से बाहर कर देते हैं। इसकी बड़ी बुरी प्रतिक्रिया होती है। एक पिता ने अपने बच्चे को मारकर घर से बाहर ढकेल दिया। उसने सड़क पर एक लड़के को छुरा भोक दिया। बच्चों को अपनी बचपन की उद्दंडता को खर्च करने का मौका मिलना चाहिए। माता-पिता की सख्ती से यह प्रवृत्ति कुचल कर दूसरे ऐबों में बदल जाती है। इसके विपरीत, यदि अभिभावक बच्चों पर कोई नियंत्रण या रोकथाम या प्रभाव नहीं रखते तो वे बिगड़ जाते हैं। प्राय: देखा गया है कि अंधे, गूंगे, बहरे माता-पिता की सन्तान ग़लत रास्ते पर चली जाती है। उनके दुर्बल संरक्षक उनका संरक्षण ही नहीं कर सकते। जिन बच्चों के माता-पिता दिन भर बाहर काम पर चले जाते हैं, अपनी जीविका की फ़िराक़ में रहते हैं, वे भी पथभ्रष्ट हो जाते हैं। कम से कम इसकी सम्भावना रहती है। कम्यूनिस्ट देश पोलैंड के एक समाचारपत्र "नोवा कल्चुरा"[2] ने सितम्बर ३, १९५६ में प्रकाशित किया था कि पोलैंड में कम से कम २० लाख माताएँ कारखानों में काम करती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि बाल-अपराधी बहुत बढ़ गये हैं। पश्चिमी देशों के लिए यह समस्या निश्चयत: बड़ी गम्भीर है। औद्योगिक सभ्यता का आवाहन करना तो उचित है पर औद्योगिक सभ्यता के कतिपय अभिशापों के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा।

माता-पिता के पारस्परिक झगड़े का भी बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उससे भी बुरा प्रभाव तब पड़ता है जब वे एक दूसरे से तलाक देकर या यों ही अलग हो जाते हैं।[3] हो सकता है कि माँ या बाप, दो में से किसी एक का चरित्र बहुत खराब हो और यदि वे अलग हो जायँ तो बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ना बंद हो जाय। पर पारिवारिक जीवन की इस उथल-पुथल का परिणाम बच्चों पर हर हालत में बुरा होता ही है। १००० अपराधी बालकों की समीक्षा करने के बाद हीली इसी नतीजे

१. हीली की पुस्तक, पृष्ठ २८८–२९१
२. Nowa Kultura, Warsaw, Sept., 1956.
३. हीली, पृष्ठ २९०

पर पहुँचे।[1] कभी कभी ही नहीं, प्रायः ही ऐसा होता है, विशेष कर पश्चिमी देशों में, कि माता अपने छोटे बच्चों को लेकर दूसरे पति के पास चली जाती है या पिता इन बच्चों के लिए दूसरी माता बना लेता है। इसलिए बच्चे के जीवन में यकायक एक नया वातावरण, अजनबी चरित्र, विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अधिकतर बच्चे अपने को नयी परिस्थिति में सँभाल नही पाते। बहुत से सौतेले माता-पिता अपने सौतेले बच्चों से प्रेम भी नही करते। तलाक़ दे या लेकर आये हुए नव-पति-पत्नी बड़े कामुक तथा विलासी भी होते हैं। इनके हास-विलास का बच्चों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। जिस परिवार के लोगों का यह खयाल है कि बच्चे उनकी हर एक चीज़ को बड़ी बारीक़ी से नहीं देखते, जिनका यह अनुमान है कि बड़ों के जीवन का छोटो पर कोई प्रभाव नही पड़ता, वे बड़ी गहरी भूल कर रहे है। याद रखना चाहिए कि आज हम जो भी कुछ हैं उसका आधा श्रेय या अपयश हमारे परिवार को है।

जिस परिवार के लोग बराबर एक स्थान छोड़कर दूसरा स्थान, एक नगर छोड़-कर दूसरा नगर, एक घर छोड़कर दूसरा घर बदलते रहते हैं, उसका भी बच्चों पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। उनके जीवन में अस्थिरता आ जाती है। "हमारा घर" की भावना निकल जाती है। इससे उस बालक या बालिका में किसी चीज़ के प्रति सहज स्नेह नहीं रह जाता। क्रूरता तथा उदासीनता की भावना आ जाती है। कुछ बालक-बालिका इसलिए अपराधी हो जाते है कि उनका जन्म साधारण, सीधे-सादे परिवार में होता है पर उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ बहुत होती है। वे "दूसरों" के समान अधिक शिक्षित, अधिक मर्यादाशील तथा पद-वृद्धि चाहते है। यदि उनकी महत्त्वाकांक्षा की पुष्टि नही हुई, उसे किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिला तो निराशा की प्रतिक्रिया में भी वे कुमार्ग पर चल देते हैं। माता-पिता की अपने बच्चों के प्रति उदासीनता, अपने ही मनोरंजन में व्यस्त रहकर बच्चों को नौकर-चाकर के भरोसे छोड़ देना, बच्चों की साधारण जिज्ञासा की भी पूर्ति न करना, उनके प्रश्नों का उत्तर तक न देना, प्यार के स्थान पर झिड़क देना, इन सब बातों का बच्चों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक लापरवाही से अपराधी बननेवाले बच्चों की विशद छानबीन हीली ने की है। उन्हें १००० अपराधी बच्चों में परिवार तथा वासना के कारणो से निम्नलिखित अपराधी मिले। ताज़ी छानबीन करने से यह संख्या और भी अधिक प्रमाणित होगी।

१. वही, पृष्ठ १३४

दोषपूर्ण घरेलू वातावरण के कारण

कारण	१८ वर्ष से ऊपर के लड़के-लड़कियाँ	१८ वर्ष से नीचे के लड़के-लड़कियाँ
घरेलू झगड़ा	२६	७८
परिवार के लोगों का शराबी, दुराचारी आदि होना	६२	९५
ग़रीबी	४	५९
अभिभावकों के अज्ञान के कारण घरेलू नियंत्रण का अभाव	२	१०
बीमारी	२	२६
पिता का अधिकांशतः बाहर रहना	...	६
माता बाहर काम करती है	२१	३२
माता-पिता की अत्यधिक लापरवाही	७	३१
माता-पिता का अलग हो जाना	२०	३५
घर का अभाव, सड़क की ज़िन्दगी	...	१
घर का अभाव, घूमते रहनेवाली ज़िन्दगी	...	४
अस्पताल या बोर्डिंग स्कूल में बच्चा बदल गया	२	१७
घर में व्यभिचारी वातावरण	५	२३
	१६२	४१७

मानसिक उलझनों से भी बड़े अपराधी पैदा होते हैं। आखिर मन ही तो समूचे उत्पात का कारण होता है। ऐसे अपराधी बच्चों का १००० अपराधियों में औसत इस प्रकार निकला —

मानसिक उलझन के कारण

कारण	१८ वर्ष से ऊपर	१८ वर्ष से नीचे
कामुक भावना की उलझन	४३	१२
"माता-पिता कौन हैं" की उलझन	७	२
अज्ञात कारण से	४	...

कारण	१८ वर्ष से ऊपर	१८ वर्ष के नीचे
घरेलू परेशानी से	...	२
समाज के विरुद्ध आंतरिक घृणा	४	३
अंध-विश्वास के कारण	...	१
अपने शारीरिक दोष से ग्लानि	...	१
	५८	२१

कामवासना के कारण

कच्ची उम्र में कामवासना की जानकारी या उसका अनुभव	३४	७३
अत्यधिक हस्तक्रिया	१२	७५
अप्राकृतिक संभोग इत्यादि	....	११
	४६	१५९

इन आँकड़ों से कई चीज़ें बहुत स्पष्ट हो जाती हैं। जिन लोगों का यह खयाल है कि ग़रीबी के कारण अपराध तथा अपराधी बढ़ते हैं, उनको बड़े आश्चर्य की बात मालूम होगी कि गृहविहीनों में भी, सड़क पर सोनेवालों में भी अपराध कितना कम है। यह भी मार्के की बात है कि पिता की अनुपस्थिति से बच्चे का जीवन नष्ट होता है। तीसरी मार्के की बात है कि बच्चों की जिस मानसिक उलझन की बड़ों को जानकारी भी नहीं होती, वह उनका कितना पतन करा देती है। नयी नयी खोजों से तो यहाँ तक साबित हो गया है कि शारीरिक दोष से भी, अपने को औरों के सामने छोटा समझने से बड़े अवगुण उत्पन्न होते हैं। नाक, कान, दाँत की ख़राबी से, आँख दुखने से, कान बहने से, नेत्रों में रोहू इत्यादि से बच्चों में चिढ़ पैदा होती है, चिड़चिड़ापन पैदा होता है। फलतः वह अपनी चिढ़ दूसरे ढंग से निकालते हैं। आँख कान के दुःख से बराबर पीड़ित बच्चे कामवासना के अपराध में इसी लिए फँसते हैं कि उनका दुःख थोड़ी देर तक भूला रहता है। शारीरिक दोष किस सीमा तक अपराधों के लिए ज़िम्मेदार हैं, इसकी निश्चित छानबीन अभी तक नहीं हो पायी है। हीली ने जो छानबीन की थी उसके अनुसार नाक और गले की ख़राबी वाले ४१ बाल-अपराधी, नेत्र के दोषी ७२, सड़े दाँतवाले १९, दोषी कानवाले १३, समय से पूर्व यौवनवाले ३३, ६ दिल

की बीमारी वाले—यानी १००० में इन्हीं चार-पाँच बीमारियों के १८४ मरीज़ मिले। बच्चों की किसी भी बीमारी को उपेक्षा से नहीं देखना चाहिए।

बुरे साथी

हम लोग कभी यह जानने-समझने की चेष्टा भी नहीं करते कि हमारे बच्चे कैसे लोगों के साथ खेलते-कूदते हैं। उनकी साथ-सोहवत क्या है। याद रखना चाहिए कि अपराधी बनाने का सबसे बड़ा कारण बुरा साथ होता है। और भी कारण हैं, पर बुरे साथी, दुष्ट साथी, पतित साथी से बढ़कर बाल-वृद्ध को गढ़े में गिरानेवाला और कोई कारण नहीं होता। इसी लिए आम कहावत हैं—

भले संग रहना, खाना बीड़ा पान,
बुरे संग रहना, कटाना दोनों कान।"

बुरे साथियों में, घरेलू जीवन में माता-पिता भी होते हैं, रिश्तेदार भी होते हैं, अपना सगा भाई या बहिन भी होती है। पाठशाला के साथी का नम्बर बाद में आता है। रिश्तेदारों पर कोई शुबहा भी नहीं करता। समवयस्क या उम्र में काफ़ी अन्तर वाले रिश्तेदार जितना घर के बच्चों को बिगाड़ते हैं उतना बाहरी लोग नहीं। इस विषय में काफ़ी लम्बे विवेचन की आवश्यकता है। हम बुरे साथ पर आगे चलकर काफ़ी प्रकाश डालेंगे। यहाँ पर इतना ही लिख देना उचित होगा कि कुटेव या कामवासना के अपराध प्रायः बुरे साथ से शुरू होते हैं।

अभिभावकों को यह भी ध्यान नही रहता कि बच्चों को कौन सा सिनेमा यानी खेल तथा थियेटर दिखाना चाहिए। सिनेमा का तथा अपराध का सम्बन्ध हम ऊपर बतला चुके है। थियेटर तथा अपराध का प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध तो नही मालूम होता पर कामुक वासना को प्रोत्साहन मिलता है। थियेटर के पात्र-पात्राओं का स्वतंत्र तथा वासनामय जीवन भी लड़के-लड़कियों को आकृष्ट करता है और वे प्रायः उनका अनुकरण करना चाहते हैं। पर थियेटर का प्रभाव वासनामय जीवन पर ही पड़ता है। अन्य किसी प्रकार के अपराध पर भी पड़ता होगा, पर उसका प्रमाण नहीं मिलता है। अप्रत्यक्ष प्रभाव ज़रूर होता है। थियेटर के पात्र-पात्राओं की भड़कीली पोशाक, दुकानों में सजी भड़कीली पोशाक, सड़क पर चलनेवाले स्त्री-पुरुषों की रंग बिरंगी बढ़िया पोशाकों को देखकर लालचवश काफ़ी चोरियाँ होतीं हैं। चोरी करने की आदत पड़ जाती है। सार्वजनिक नाचघर, होटल, उनका विलासितामय जीवन न केवल बाल-अपराधी बल्कि चरित्र-भ्रष्ट युवक-युवती तैयार कर रहे हैं।

पाठशालाओं में बुरे छात्र-छात्राओं की संगत के अलावा ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे अपराधी बन जाते हैं। अध्यापकवर्ग किसी छात्र को बुद्धू या बोदा समझकर पीछे बिठाते हैं। उसके मन में भयंकर प्रतिक्रिया होती है। अध्यापकों को पता भी नहीं चलता। कोई छात्र अपने नेत्रों की या कान-नाक की कमज़ोरी छिपाने के लिए पीछे बैठ जाता है। उसकी प्रतिभा तथा बुद्धि औरों की तुलना में अधिक होते हुए भी विकसित नहीं हो पाती। वहुत से छात्र पढ़ने से ज्यादा मशीन के काम के शौकीन हैं। उनको मार-पीटकर पढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। ये सब ऐसी बातें हैं जिन पर ध्यान देने की ज़रूरत है, जिनके विषय में यह आवश्यकता है कि समाज, शिक्षक तथा अभिभावक सभी अपनी ज़िम्मेदारी को समझें। उनकी लापरवाही का फल हमारे बच्चे भोगते है।

आज समाज में बड़े-बूढ़े प्रत्येक को पथ-भ्रष्ट करने के लिए साधन बिखरे पड़े है। गंदे उपन्यास, कहानी की गन्दी किताबें, गन्दा साहित्य, रद्दी-भद्दी तसवीरें, वासना, उत्तेजना तथा चोरी-डकैती से भरे समाचारपत्र, मोटे अक्षरों में छपनेवाले अपराध के संवाद[1], ये सभी बुद्धि तथा चरित्र को भ्रष्ट करनेवाले होते हैं। चित्रों में जो उपन्यास प्रकाशित होते हैं उनमें बदमाशों की धूर्त्तता बड़े आकर्षक ढंग से दी जाती है। माना कि अंत में बदमाश की हार होती है पर वह हारता इसलिए नहीं है कि उसका काम बुरा है, बल्कि इसलिए कि उसमें चतुराई की कमी आ गयी—ये सब अपराध के पैदा करनेवाले हैं। समाज में अनगिनत चीज़े सम्बद्ध तथा असम्बद्ध रूप से फैली हुई है। इनमें से कौन सी चीज मनुष्य के लिए हितकर है, कौन सी कितना प्रभाव रखती है, यह कहना बड़ा कठिन है। पर समाजशास्त्र के विद्यार्थी को इसी कठिनाई के भीतर से अपना मार्ग निकालना है। मायर फ़ोर्टेज़ ने सही लिखा है कि "एक निश्चित समाज में सामाजिक सम्बन्धों की भिन्न श्रेणियों की एक निश्चित प्रणाली में प्रत्येक वस्तु कितनी एक दूसरे से सम्बन्धित है तथा एक दूसरे पर निर्भर करती है, इसी एक तथ्य की ओर हर एक सामाजिक ढाँचा हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।[2]" इन परस्पर-

१. Francis Fenton, "The Influence of Newspaper Presentation upon the Growth of Crime".—Thesis University of Chicago Press, 1911, Page 96.

२. Meyer Fortes—"Americal Anthropologist", Vol. 55, 1953 —Page, 22.

संबन्धित समस्याओं के बीच से ही हमको ऐसा सामाजिक हल निकालना है जिससे बाल-समाज तथा बाल-अपराध की समस्या हल हो सके।

उस समाज के विषय में क्या कहेंगे जो आज बच्चों के प्रति बिलकुल उदासीन हो गया है। जी० के० होडेनफील्ड ने लिखा है कि "यदि अमेरिकन लोग जितनी चिन्ता तथा सावधानी अपनी मोटरकार के विषय में बरतते हैं, उसकी आधी भी अपने बच्चों के प्रति बरतते तो आज संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-अपराध की समस्या न होती। देश की समूची पुलिस-शक्ति की एक तिहाई केवल मोटरगाड़ियों की चोरी, मोटर से होनेवाली दुर्घटना आदि के काम में लगी हुई हैं। पर बच्चों की देखरेख या उनकी रक्षा में कितनी पुलिस लगी हुई है? बहुत होगा, हर पुलिसथाना पीछे एक कांस्टेबुल होगा। आज बाल-अपराधी के लिए नियुक्त अफ़सर अपने दफ्तर में बैठा हुआ इस प्रतीक्षा में रहता है कि बाल-अपराधी उसके पास पहुँचा दिया जाय। पर, कितने ऐसे व्यक्ति है जो परिवार में तथा घरमें जाकर बाल-अपराधी बनने के पूर्व ही बालक-बालिका की रक्षा करते है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका में ८५ प्रतिशत बाल-अपराधी व्यक्तिगत अपराधी नही है। वे किसी न किसी गरोह के, अपराधियों के गरोह के सदस्य हैं। ये अपराधी अकेले घूमनेवाले भेड़िये नही हैं। इनका एक समुदाय है। इनका एक गुट है।"

इस गुट को तोड़ने के लिए हम क्या कर रहे हैं? ऐसे अपराधी गुट एक ही देश में नहीं, चारों तरफ़ फैले हुए हैं। इस गुट से बच्चों को निकालने का क्या प्रयत्न हो रहा है। ७ वर्ष से १८ वर्ष के बच्चों की उम्र बड़ी कठिन, बड़ी समस्यामय तथा रहस्य-मय उम्र होती है। इस उम्र में बच्चों को सँभालने में, उनकी बातों को तथा उनकी आवश्यकताओं को समझकर उनकी पूर्ति करने में माता-पिता तथा अभिभावकों को बड़ी कठिनाई होती है। बहुत से इस कठिनाई को समझते हैं और बहुत से नहीं भी समझते। यह उम्र बच्चों के साधारण विकास में असाधारण परिस्थिति की है। यह वह उम्र है जिसमें न वह बच्चा है, न बालिग़। दो में से किसी श्रेणी का नहीं है। उसके साथ किस प्रकार का आचरण किया जाय, यह समझ में नहीं आता। माता पिता विशेषज्ञों से सलाह माँगते हैं, वह भी नहीं मिलती। तब कैसे उनकी समुचित रक्षा या सेवा की जाय?[१]

१. Marie Battle—"Rebels With a Cause"—Article in the Hindustan Times, Ist June, 1958.

हेंस हाफ का मत

आस्ट्रिया के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रो० हैंस हॉफ[1] ने सन् १९५८ में संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा करने के बाद समाचारपत्रों में एक लेख लिखा था। उनका कहना है कि यूरोप के बाल-अपराधियों की तुलना में वहाँ के बाल-अपराधी कहीं अधिक गये गुज़रे हैं। अपने एक व्याख्यान में उन्होंने कहा था —

"यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बाल-अपराधियों में मौलिक भेद है। वहाँ के अपराधी नवयुवक तथा नवयुवतियाँ कही अधिक उग्र तथा उद्दंड होते हैं। उदाहरण के लिए यदि आस्ट्रिया मे किसी व्यक्ति के सामने कोई नवयुवक पिस्तौल तानकर खड़ा हो जाय तो उससे बातचीत कर उसे राज़ी किया जा सकता है। पर अमेरिका में इसकी कोई सम्भावना नहीं है। वहाँ तो बात करना चाहे तो वह गोली दाग देगा। वहाँ पर बाल-अपराध का एक बड़ा कारण यह भी है कि जो पितृ-विहीन शरणार्थी वहाँ गये है, वे बच्चे जल्दी पतित हो जाते है। जिन बच्चों के पिता अंग्रेजी की कम जानकारी के कारण नौकरी पाने में असमर्थ होते है, वे घर में ही सम्मान खो बैठते हैं। बच्चे अपने पिता से ही नफ़रत करने लगते है। माता के प्रति तो उनका आदरभाव रहता है पर पिता का बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा अमेरिकन सिनेमा फ़िल्मों की डकैती की कहानी का भी बड़ा बुरा असर पड़ता है। उस देश में सबसे बुरी बात यह है कि वहाँ की अदालतों मे यह नियम नही है कि कुछ समय बाद प्रथम अपराधी की सज़ा का रेकार्ड रद्द कर दिया जाय। यूरोप में बहुत से देशों में ऐसा होता है। परिणाम यह होता है कि जीवन में एक बार अपराध करनेवाला सदा के लिए कलंकित हो जाता है. . .पर उस देश में बाल-अपराधियों को सन्मार्ग पर लाने का भगीरथ प्रयत्न हो रहा है और ऐसी अनेक संस्थाएँ बड़ा काम कर रही हैं। इन संस्थाओं का यही मंत्र है कि समाज को इन बच्चों से बदला न लेकर इनका सुधार करना चाहिए।"

सहानुभूति बनाम कठोरता

लार्ड सैमुयेल[2] ने विशेषज्ञों से प्रश्न किया है कि उनको यह बतलाना चाहिए कि बाल-अपराधियों के लिए बाल-अदालतों से वाक़ई कोई लाभ भी हुआ है या नहीं।

१. Prof. Hans Hoff, Chief of Vienna's Psychiatric Neurologic University Clinic.

२. Sunday Times, २ मार्च १९५८, लन्दन

क्या उनके प्रयत्न से पारिवारिक संयम में कोई वृद्धि हुई है ? क्या यह अब नहीं साबित हो गया है कि इनके साथ कठोरता के स्थान पर सहानुभूति दिखलाने से अधिक लाभ होगा ? क्या यह सम्भव नहीं है कि डाकुओं या कामुक वासना के अपराधियों से समाज की अधिक रक्षा का प्रयत्न किया जा सके ? पर मेरे विचार से इन विशेषज्ञों पर निर्भर करना बड़ा खतरनाक होगा। मैं सिर्फ दो खास बातें कहना चाहता हूँ।

"पिछले पचास वर्षों में विज्ञान ने मानव-स्वभाव के अध्ययन में बड़ी प्रगति की है। फ्रायड के विज्ञान ने मन के पीछे अज्ञात तथा अचेतन अवस्था में पड़ी हुई दुष्प्रवृत्ति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस जानकारी से अपराधशास्त्र को भी नयी बातें मालूम होने का अवसर मिला है। पैतृक अर्जित वासनाएँ भी सामने आ गयी हैं। 'स्वतंत्र इच्छा' से होनेवाले काम की बात अब पीछे पड़ गयी है। अपराधी के साथ दया तथा सहानुभूति की माँग करनेवाले दंड-सुधारक अब व्यक्ति के कार्यों की "निजी ज़िम्मेदारी" के सिद्धान्त को ग़लत साबित कर रहे हैं। अब यह नही कहा जाता कि मनुष्य अपनी स्वतंत्र इच्छा से काम करता है, यह ग़लत बात है। उसके साथ उसका पैतृक संस्कार तथा वातावरण से उत्पन्न अनुभव तथा शिक्षा भी है जो उसके चरित्र तथा आदतों को बनाती है तथा उसके मस्तिष्क के अन्तरतम में अपनी छाप छोड़ देती है। मनुष्य के कार्य इन्हीं सब सम्मिलित कारणों से होते हैं। पर मैं ऐसा नहीं मानता। अन्तर भावना को इतना महत्त्व दे दिया जाय कि चेतन भावना का कोई स्थान न हो; ऐसा नही है। हम देखते हैं कि रोजमर्रा की ज़िन्दगी में मन के भीतर अंतर्द्वन्द्व चलता रहता है। हम कुछ काम करना चाहते हैं, एक तरफ मन होता है कि उसे करें, दूसरी तरफ़ कोई ताक़त, कोई प्रेरणा उसे रोका भी करती है—रोकती रहती है। इसी प्रकार पैतृक संस्कारों की भी बात है। यदि हमने उन संस्कारो से वासना को प्राप्त किया है तो वासना पर नियंत्रण करने की शक्ति तथा प्रेरणा भी प्राप्त की है। साधारणतः व्यक्ति अपने कार्यों के लिए स्वतः अपने को ज़िम्मेदार समझता है। वह अपने से, अपनी पूरी ज़िम्मेदारी के साथ काम करता है। समाज इसी लिए उसको ज़िम्मेदार समझकर दंड देता है। यदि मनुष्य अपने कार्यों के लिए ज़िम्मेदार न हो तो समाज चल भी नहीं सकता।

"मेरी दूसरी बात है अपने क़ानून बनानेवालों, न्याय करने वालों तथा क़ानून का पालन करानेवालों से यह पूछना कि वे अपराधी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करें, जो वास्तव में समाज के हित का हो तथा जिससे समाज की रक्षा हो। पर सबसे बड़ा काम यह है कि किस प्रकार अपराध होने से ही रोका जाय। हमको केवल मर्ज़ की दवा ही नहीं करनी है, उसका कारण भी जानना है। साफ़ बात तो यह है कि

अपराध तथा अपराधी बराबर बढ़ते जा रहे हैं। आखिर इनकी रोकथाम का भी कोई उपाय है अथवा नहीं।

"यह किसी से छिपा नहीं है कि आजकल योनि सम्बन्ध, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध बहुत ढीला हो गया है। बड़े हल्के मन से विवाह हो जाता है, बड़ी आसानी से तलाक हो जाता है। परिवार भग्न हो जाते है। घरेलू जीवन विषाक्त हो जाता है। बच्चों का जीवन संकटमय हो जाता है। उनका जीवन असंतुलित तथा असंयमित हो जाता है। संसार में चारों ओर औद्योगिक तथा अनेक प्रकार के संघर्ष छिड़े हुए है। जिस शताब्दी में मनुष्य ने बौद्धिक जगत् में अद्भुत विकास तथा गति प्राप्त की है, उसी शताब्दी में दो भयंकर युद्ध हो चुके तथा मानव-संहार की भीषण वेदना भी उत्पन्न हो गयी है। तीसरे तथा अन्य सब युद्धों से भयंकर युद्ध की भी संभावना हमारे सामने उठती रहती है। हम देख रहे हैं कि आज की दुनिया ही बीमार है, बेचैन है। वह अपनी बीमारी को समझ रही है पर बौद्धिक तथा आध्यात्मिक रूप से वह इतने घपले में है कि उसे अपनी बीमारी का कारण ही नहीं समझ में आ रहा है। यह जरूर प्रत्यक्ष है कि चारों तरफ़ नैतिक स्तर बहुत नीचे गिर गया है. . .हम बाल-सुधार के, अपराधी के सुधार के, नये दंडविधान के, सब कुछ उपाय करते रहे पर यह सोचने की बात है कि ऐसे दूषित वातावरण में स्वस्थ तथा चरित्रवान् बच्चे कैसे पनप सकते है? वे कैसे नैतिक दृष्टि से स्वस्थ तथा अच्छे हो सकते है? समाज की आबोहवा सार्वजनिक विचारधारा पर निर्भर करती है और सार्वजनिक विचारधारा के बनानेवाले हम लोग है।"

लार्ड सैमुयेल ने इतनी पते की बात कही है कि आज की बाल-अपराध की समस्या का इससे अच्छा और कोई विश्लेषण नहीं हो सकता। आज समाज ही बीमार है, संसार मात्र का चरित्र गिर गया है, तो फिर हम अपराधी की समस्या में अधिकतम उलझते क्यों न जायें?

धन का दुष्परिणाम

लार्ड सैमुयेल ने यह प्रश्न किया था कि बाल-अदालतों में कितना कल्याण हुआ है। इसका उत्तर लंदन की बाल-अदालतों के अध्यक्ष जान वाटसन ने दिया है।[१] वे लिखते हैं—

१. John Watson, Chairman of the Metropolitan Juvenile Courts since 1936—Sunday Times, London, 9th March, 1958.

"आजकल अपराधों की इतनी वृद्धि देखकर लोग पूछते हैं कि क्या बाल-अदालतों से वह काम पूरा हो रहा है जिसके लिए वे बनायी गयी हैं। जनता का आम तौर से यह खयाल है कि ये अदालतें इसलिए बनी है कि बाल-अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दंड दें। पर पार्लमेन्ट ने जब इस प्रकार की अदालतों की रचना की थी, उस समय उसका स्पष्ट आदेश था कि बच्चों के कल्याण की भावना सर्वोपरि रहे, और समाज की रक्षा की दृष्टि से यह बात सर्वथा उचित भी है। इस प्रकार बाल-अदालतों का लक्ष्य, उनका कार्य-क्षेत्र सभी काफी व्यापक हो जाता है। बच्चों की नैतिक आवश्यकता का अनुमान लगाकर उनके लिए ऐसे "दंड" की व्यवस्था करनी होगी जिससे उनके सुधार में रचनात्मक कार्य भी हो सके। सभी बाल अपराधियों के लिए ऐसी चिकित्सा की आवश्यकता नही होती। ऐसे भी पूर्ण स्वस्थ अपराधी आते हैं जो बड़े शरारती होते है। यह उम्र ही ऐसी है कि साधारण शरारत तथा अपराधी कार्य के बीच में कोई रेखा खींचना सम्भव नही होता। सब कुछ देखने के बाद हम इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि माता-पिता द्वारा देखरेख ही सबसे अच्छी चिकित्सा है। उसके सुधार के लिए इससे अच्छी कोई पाठशाला नहीं है।

"यह भी सही है कि सभी माता-पिता यह कार्य नही कर सकते। उनमें बहुत से गैर जिम्मेदार होते हैं। सब शरारतों की जड़ आत्म-संयम का अभाव है। बहुत से माता-पिता में स्वयं यह वस्तु वर्त्तमान नहीं है अतः उनके बच्चों में कहाँ से आये।

"दरिद्रता या अभाव अब अपराधों का प्रमुख कारण नहीं रह गया है। मेरा विश्वास है कि आज मुख्य कारण है साधारण प्रयत्न पर अत्यधिक भौतिक सुख-सामग्री का उपलब्ध होना। इन सुख-सामग्रियों की तलाश में परिवार के लोग इतन समय नष्ट करते है कि अपने बच्चों की देखरेख की उन्हें चिंता नहीं रहती या समय नहीं रहता। बहुत सी माताएँ बिना किसी आर्थिक कारण के यानी बिना रोज़ी की समस्या के भी काम के, केवल सुख-सामग्री सञ्चय करने में अपना समय नष्ट करती हैं। बच्चों की वास्तविक देखरेख में तो लापरवाही की जाय और फिर उनकी जेब पैसों से भर दी जाय या उन्हें क़ीमती तोहफ़े दिये जायँ, यह कोई सन्तोष की बात नही है। इसका उलटा असर होता है कि बच्चे में भी एक से एक चीज़ों को प्राप्त करने की हवस बढ़ जाती है जो पूरी नहीं होती। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वह चोरी करने लगता है. . . .आज कल्याणकारी राज्य की भावना ने भी एक बड़ा दोष पैदा कर दिया है। परिवार के लोग यह सोचते हैं कि राज्य की तुलना में उनकी ज़िम्मेदारी बहुत कम है।

"किन्तु, बाल-अदालतों में हमारे लिए सबसे कठिन समस्या उन बच्चों की नहीं है जो घरेलू वातावरण में बिगड गये हैं या जिनमें संयम तथा विनय का अभाव है। सबसे कठिन तो वे हैं जो घर में प्रेम, सहानुभूति तथा सुरक्षा के अभाव में बिगड़ गये हैं। वे बड़े भयंकर अपराधी होते हैं—इसलिए नहीं कि उनका अपराध गुरुतर होता है, बल्कि उनके अपराध की पृष्ठभूमि अनुभवी से अनुभवी विचारपति को हैरत में डाल देती है।

"भला प्रेम का भूखा बच्चा प्रेम कैसे पा सकता है जब उसके माता-पिता स्वयं 'अपने को प्यार करते है।' उसे अपने घर में सुरक्षा कैसे मिलेगी जहाँ रोज़ झगड़ा, उपद्रव, पति-पत्नी की लड़ाई होती रहती है, तलाक़ होता है, नया बाप या नयी मां आ जाती है। जिस परिवार मे पारस्परिक गाली-गलौज बहुत होता है या जहाँ माता अपने किसी एक बच्चे को प्यार करती है, पिता किसी दूसरे को और घरेलू कलह में बच्चों की दलबंदी भी स.मने आ जाती है — वहाँ कैसे ये बच्चे, धूर्त झूठे, अवारा, तथा लम्पट न निकलें? इनका अपराध साधारण होता है पर समस्या विकट होती है।

"......हमारे काम में बड़ा क्लेश है, बड़ा खेदजन्य काम है, पर उसमें एक संतोष भी है। इन बच्चों में इतना मूल्यवान् गुण भरा हुआ है कि बस उसे तह में से निकालकर ऊपर लाने की जरूरत है। हम देखते हैं कि उनमें साहस है, सहिष्णुता है, नेतृत्व शक्ति है, ऐसी मौलिक ईमानदारी भरी है जो उनकी झूठी बातों के बीच से निकलकर चमक उठती है। इनमें से कुछ को दंड मिलना चाहिए। पर सभी को सहायता की, उनके गुणो का विकास करने के लिए सहायता की आवश्यकता है। बाल-अदालतें उनके इन छिपे गुणों की पहचान कर, उनके विकास का मौका पैदा कर, भविष्य में एक अधिक स्वस्थ समाज की रचना का कार्य कर सकती है।"

वाटसन ने कुछ ऐसी बातें कहीं है जिनसे हमें बड़ा सबक़ मिलता है। क्या बच्चों को मुट्ठी भर पैसा जेबखर्चका दे देने से काम चल जाता है। क्या उन्हें मूल्यवान् वस्तुएँ देने से अधिक उत्तम यह न होगा कि उनको प्रेम तथा पुचकार का पुरस्कार दिया जाय? क्या बच्चों के सामने गाली-गलौज या माता-पिता की परस्पर लड़ाई बंद नही हो सकती?

आप अपनी ओर देखिए

ब्रिटेन के वर्तमान गृहमंत्री श्री बटलर ने लार्ड सैमुयेल के लेख के ही सिलसिले में स्वयं एक रोचक लेख लिखा। उन्होंने इस बात पर बड़ा खेद प्रकट किया है कि सन् १९०८ में जब बाल-अदालतें खुली थीं, साधारण अपराधों के लिए २०,००० तथा

बड़े अपराधों के लिए १३,००० लड़के-लड़कियाँ उनके सामने लाये गय थे। सन् १९५६ में साधारण अपराधियों की संख्या २९,००० तथा बड़े अपराधियों की संख्या ३८,००० हो गयी थी। सन् १९५२ से ब्रिटेन में बाल-अपराधियों की संख्या गिरने लगी थी पर पिछले तीन वर्षों से फिर बढ़ने लगी है। इन बाल-अदालतों के सामने जो लोग लाये जाते हैं उनमें से एक तिहाई तो बिना शर्त्त रिहा हो जाते हैं, एक चौथाई प्रोबेशन पर छोड़े जाते हैं, एक तिहाई पर जुर्माना होता है, शेष अपने घर से अलग करके सुधारगृह इत्यादि में भेजे जाते हैं। सन् १९५६ में १३३५ लड़के तथा लड़कियाँ बोर्स्टल स्कूलों में दाखिल हुईं। गृहमंत्री के कथनानुसार इधर तीन वर्षों में इस संख्या में और अधिक वृद्धि हुई है। वे लिखते हैं—[१]

"मैं चाहता हूँ कि मैं कुछ ऐसे एक-एक कारण बतला सकूँ जिनसे इन अपराधियों की संख्या में वृद्धि की चुनौती का कारण मालूम हो सके. . . .पर, जैसा कि लार्ड सैमुयेल ने कहा है, इसकी अनेक जड़ें हैं, पैतृक संस्कार, भग्न पारिवारिक जीवन, स्नेह तथा घरेलू सुरक्षा का अभाव, तैतृक ग़ैर-ज़िम्मेदारी, कम उम्र में ही खर्च करने के लिए काफ़ी पैसा मिलना, ये सभी मिलकर अपराधी बनाते हैं। पर, वस्तुस्थिति यह है कि हर उम्र के अपराधियों की संख्या बढ़ती जा रही है। आज जेलों की संख्या में जो वृद्धि हो गयी है, उतनी कभी नहीं थी। पचास वर्ष में दंडसुधार तथा जेलसुधार के जितने कार्यक्रम हुए हैं उनका परिणाम अपराधों में अत्यधिक वृद्धि है और यह सोचने पर मजबूर करती है कि आखिर क्या किया जाय कि अपराधियों की संख्या में कमी हो. . . हमको देखना है कि ये बाल-अदालतें किस सीमा तक हरएक बाल-अपराधी की चिकित्सा सही ढंग से करने में समर्थ हुई हैं। हमारे रचनात्मक सुधार कार्यों से क्या इन युवक युवतियों का चरित्र-निर्माण हो रहा है और यदि नहीं तो हमको सोचना पड़ेगा कि दूसरा कौन सा रास्ता अख्तियार करने से कल्याण होगा. . . . . .हमको इन प्रश्नों का सही उत्तर प्राप्त करना होगा। तभी हम सुधार के कार्यों पर अपनी आशा केन्द्रित कर भविष्य में अपराध कम करने की आशा कर सकते हैं। इसी कारण से मैंने गृहविभाग के साथ एक अनुसंधान विभाग भी नत्थी कर दिया है जो इन चीज़ों की बराबर छान-बीन करता रहे. . . . . .मुझे कुछ ऐसा लगता है कि अपराधों में वृद्धि का एक कारण यह भी हो सकता है कि हम वातावरण, परिवार आदि सबकी ज़िम्मेदारी तो मानते

१. The Rt. Hon'ble R. A. Butler, M. P. Lord Privy Seal and Home-Secretary—Sunday Times, London, March 16—1959

हैं पर व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी के महत्त्व को भूल जाते हैं। इस मशीन के युग में, जब सभ्यता ही यंत्रीय हो चली है, हर एक को अपनी व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी का महत्त्व भी समझना पड़ेगा। जरा हम अपने से तो पूछें कि क्या हम स्वयं अपने बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारी बहुत कम समझते है ? क्या हम उनकी ज़िम्मेदारी बहुत कुछ स्कूलों पर, युवकसंगठनों पर, और अंत में अदालतों पर नही छोड़ देते ? प्रत्येक सन्तानवाले को यह सवाल अपने से पूछना चाहिए। बर्क ने कहा था कि मानव जाति की पाठशाला निजी उदाहरण है और उससे अच्छी नसीहत और कही नहीं मिल सकती। मेरी सम्मति में बाल-अपराध कम करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि माता-पिता अपनी सन्तान के लिए स्वयं उदाहरण बनें। उनमें स्वयं कर्त्तव्य, सच्चरित्रता तथा जिम्मेदारी की वह भावना हो जिससे बच्चे नसीहत लें। हमको पारिवारिक ज़िम्मेदारी को उचित स्थान देना होगा।"

बड़ों की नक़ल

ब्रिटिश पार्लमिन्ट के सदस्य श्री मौंटगोमरी हाइड, संयुक्त राज्य अमेरिका के अपराधी समाज का अध्ययन करने गये थे। २२ दिसम्बर १९५८ को लन्दन के "संडे टाइम्स" में उन्होंने एक रोमांचकारी लेख लिखा है। वे लिखते हैं कि आज संयुक्त राज्य अमेरिका यदि अपराध सम्बन्धी किसी वस्तु से बहुत परेशान है तो वह बाल-अपराध है जिसकी समस्या भयंकर रूप धारण करती जा रही है। वे लास ऐंजीलीज़ नामक प्रसिद्ध नगर में ठहरे हुए थे कि वहाँ कुछ नवयुवकों ने एक अनजान, भोली, १५ वर्ष की लड़की को, जो मोटर से चली जा रही थी, गोली मार दी। पता चला कि उनके प्रतिद्वन्द्वी गरोह की एक लड़की की सूरत उस लड़की से मिलती जुलती थी, जिसका दंड दूसरी को भोगना पड़ा। हाइड के कथनानुसार इस प्रकार के अपराध वहाँ आम तौर पर होते रहते हैं। हर साल , उनके कथनानुसार, संयुक्त राज्य में दस लाख बाल अपराधी बढ़ते जा रहे है। इस वृद्धि में मादक द्रव्य सेवन करने वालों की संख्या भी काफ़ी बढ़ती जा रही है। सड़क पर २० वर्ष से कम उम्र के अपराधी अपने प्रतिद्वन्दी गिरोह के लोगों को गोली मारते हुए या उपद्रव मचाते हुए बेख़ौफ घूमा करते हैं। इसका एक बड़ा कारण गन्दे निवासस्थान तथा मज़दूर बस्तियों का वातावरण भी है। न्यूयार्क के प्रसिद्ध नगर के पूर्वी भाग में तथा शिकागो के दक्षिणी भाग में जिसने भी गश्त लगाया होगा, उसको प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगा कि रहन-सहन तथा वातावरण का क्या परिणाम होता है। पर अमेरिकन अपराधशास्त्री को ऐसे गन्दे वासस्थानों के रहनेवाले अपराधियों की उतनी चिन्ता नहीं है; उनका कहना है

कि संयुक्त राज्य में जो हर साल दस लाख बाल अपराधी पुलिस के क़ब्जे में आते हैं उनमें ज्यादातर इन बस्तियों के नही होते। यहाँ के रहनेवाले बड़े होने पर ये बस्तियाँ छोड़ देते और जहाँ कहीं जीविका मिल जाती है, वही बस जाते है—शादी भी कर लेते है और बचपन की अपनी शरारतों को भूलकर अच्छे नागरिक बन जाते है। असली चिता का कारण सम्पन्न परिवार का बाल अपराधी है जिसके अपराध का प्रत्यक्ष कारण भी समझ में नही आता। ऐसे अपराधों का मनोवैज्ञानिक समीक्षण करने से पता चलता है कि वे घरेलू झगड़े, घर के लोगों की विलासिता, पति-पत्नी के मतभेद, तलाक़, नये माता-पिता या इनमें रद्दोवदल के कारण भावना के आघातों से उत्पन्न होते हैं। कहीं पिता बड़ा सख्त है तो कही माता ने लाड़-प्यार में चौपट कर रखा है। भावनाओं के आघात से बने हुए ये अपराधी ठीक से न तो पकड़ में आते हैं और जब पकड़ में आते है तो उनकी मनोवृत्ति को समझना कठिन हो जाता है। हाल में ही ओहियो की एक बाल-अपराधी अनुसंधान समिति[1] ने खोजकर ५४ हत्यारे लड़के-लड़कियों की समीक्षा की। इनकी उम्र ९ से १९ वर्ष के भीतर थी। इनमें से एक को छोड़कर शेष ५३ ने अनायास, बिना पहले कुछ सोचे ही हत्या की थी। और छानबीन करने पर पता चला कि "घर में या तो उनके साथ बड़ा बुरा व्यवहार होता था या उनकी निजी स्वतंत्रता में बड़ी तानाशाही का व्यवहार था।" ये हत्याएँ वैसे व्यवहार की प्रतिक्रिया थी। कनेक्टिकट की सरकारी सार्वजनिक कल्याणसमिति[2] की खोज अधिक व्यापक थी। इस संस्था ने ४५०० बाल अपराधियों की समीक्षा की थी और उनकी रिपोर्ट का सारांश यह है—

१. परिवार के कुसंगठन के कारण ही अधिकांश बाल अपराध होते हैं।

२. परिवार का कुसंगठन अधिकांश दशा में माता-पिता की भावुक अस्थिरता के कारण होता है।

३. "असंगठित" या "कुसंगठित" परिवार बच्चों के मन पर इतना हानिकारक प्रभाव छोड़ देता है कि वे बचपन से ही या आगे चलकर अपराधी बन जाते हैं।

४. असंगठित परिवार से ही और अधिक हानिकारक दोष पैदा होते हैं, जैसे मानसिक रोग, पागलपन, अपराध और तलाक़।

१. Bureau of Juvenile Research, Ohio.

२. Public Welfare Council, Connecticut.

अपराध के चार कारण

ऐसे अपराधियों की पूरी छानबीन करने के लिए, उनके मन तथा शरीर की पूरी परीक्षा करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में जगह जगह मनोवैज्ञानिक केन्द्र खुले हुए हैं। भारतवर्ष में ऐसे केन्द्र प्रायः नहीं हैं। उत्तर प्रदेश इतने बड़े सूबे में अब, १९५९ के अन्त तक जाकर ऐसे दो केन्द्र खुलने जा रहे हैं, जिनमें ऐसे बच्चे जो या तो अपराधी हैं या जिनके अपराधी होने की सम्भावना हे, रखे जायंगे तथा उनके सुधार या उद्धार के लिए उचित निदान होगा। प्रदेश में केवल वाराणसी तथा आगरा में बाल-अधिनियम[1] लागू है। अतएव वहीं यह प्रयोग होगा।[2]

संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसे केन्द्रों में डा० राल्फ ब्रेंकेल[3] का केन्द्र बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ पर ऐसे बच्चों को ६० दिन तक रखते हैं। न्यूजर्सी के मेनलो यार्क का यह केन्द्र नयी नयी खोजें संसार के सामने रख रहा है। ब्रेंकेल का कहना है कि अपराध के चतुर्मुखी कारण होते हैं। एक अपराधी दो प्रेरणाओं के संघर्ष का परिणाम होता है। एक तो है "किसी का अपना बनकर रहने यानी किसी द्वारा अपनाये जाने की इच्छा" और "प्रेम की भूख" तथा दूसरा है "उद्दंड अथवा झगड़ालू मनोभाव से उत्पन्न होकर दुर्बल विरोध से लेकर हत्या तक कर डालने की प्रवृत्ति।" इस परिणाम पर पहुँचने के पूर्व सन् १९४९ में ही इस संस्था ने २५०० अपराधियों की तथा २८०० कामवासना के अपराधियों की परीक्षा की थी। इन वासना के अपराधियों पर, नाबालिगों पर, कामुक प्रहार का दोष लगा था। ऐसा ही प्रयोग, पर ज़रा भिन्न ढंग से, उत्तरी कैलिफोर्निया के ट्रैसी नगर में हो रहा है। इस संस्था[4] में १२०० नवयुवक १७ से २५ वर्ष की उम्र के हैं। इनको हवाई जहाज़ की मशीन ठीक करने तक का काम सिखलाया जाता है।

डा० ब्रेंकेल के मत से आधुनिक सभी मनोवैज्ञानिक सहमत न होंगे पर कितने भी नये नये कारण ढूँढ़ निकाले जायँ, बाल-अपराध कम होता नहीं दीखता। अमेरिकन करेक्शन (सुधार) संघ के गत ३५ वर्षों से महामंत्री श्री एडवर्ड कांस ने संस्था के

१. Children's Act.

२. Child Guidance Clinic **३ जुलाई १९५९ का समाचार।**

३. Run by Dr. Ralph Broncale at Menlo Park in New Jersey.

४. Denuel Vocational Institute.

५. Congress of the American Correctional Association, Chicago, 1958, Edward Cass.

सन् १९५८ के वार्षिकोत्सव में संसार में चारों तरफ बाल अपराध में वृद्धि का कारण बतलाते हुए कहा था कि—"यह वृद्धि क्यों हो रही है, इसका कोई सरल उत्तर देना कठिन है। सरकार तथा समाज के नियमों का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति पारिवारिक जीवन से प्रारम्भ होती है। उसकी जड़ें वही पर मिलेगीं।' . . . बाल अदालतें कायम कीजिए, बाल सुधार गृह कायम कीजिए, मनोवैज्ञानिक केन्द्र खोलिए—यह सब कीजिए, इनसे काम भी होता है, पर इस प्रकार का इलाज केवल गौण है। असली रोकथाम के लिए आवश्यकता है सामाजिक दृष्टि से चैतन्य तथा अच्छे माता-पिता या अभिभावक वाले पारिवारिक जीवन की। ऐसे परिवार की रचना की शिक्षा भी बचपन से ही मिलनी चाहिए।"[1]

माता-पिता का महत्त्व

अन्ततोगत्वा सभी वैज्ञानिक हमारे प्राचीन भारतीय मत के होते जा रहे हैं। आज हम भारतीय भी "माता" तथा "पिता" का महत्त्व भूल गये है। हम स्वयं अपना महत्त्व भूल गये है माता कौन है? शास्त्र का वचन है—

"मान्यते पूज्यते इति माता;"
विनान्नान्नश्वरो देहो न नित्यः पितुरुद्भवः।
तयोः शतगुणा पूज्या माता मान्या च वन्दिता ॥[2]

पिता से सौगुनी अधिक वन्दनीय माता है, यदि वही माता हमारे तिरस्कार की वस्तु बन जाय या यदि वही माता अपने महान् पद के महत्त्व को भूल जाय तो सन्तान की क्या गति होगी?

पिता का भी बड़ा महत्त्व है—

"पाति रक्षत्यपत्यं यः स पिता;"
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत्।
अहो यस्य प्रसादेन सर्वान् पश्यति मानवः॥
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम्।
तातो विस्तीर्णकरणात् कल्पनात् सा प्रजापतिः॥[3]

१. Warden Ragen का भी यही मत है।
२. ब्रह्मवैवर्त पुराण
३. वही

पिता के प्रसाद से ही मनुष्य सब कुछ देख समझ पाता है। यदि वही पिता अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाय, यदि वही अंधा हो जाय तो बच्चे की क्या गति होगी ?

चरित्रनिर्माण में त्रुटि

ऊपर निर्दिष्ट कई विद्वानों ने साफ़ कह दिया है कि बाल-अपराध में वृद्धि का कारण परिवार के संगठन में त्रुटियाँ हैं। प्रधान कारण यह होते हुए भी और कारण भी हैं। हम भारतीय तो बार बार यह कहते आ रहे हैं कि यदि परिवार में धार्मिक बुद्धि होगी, धार्मिकता होगी तो उसका बच्चों पर बड़ा अच्छा असर पड़ेगा। आजकल चारों ओर धर्म के प्रति रुचि तथा आस्था समाप्त हो गयी है। कुछ ऐसे राज्य हैं जहाँ धर्म का नाम लेना भी गुनाह है। ऐसी दशा में केवल 'समाज'-'समाज' की रट लगाने से काम नहीं चलेगा। पिछले पचास वर्षो में बाल-अपराध बहुत बढ़ गये हैं और यही समय है जब धर्म के प्रति आस्था तथा श्रद्धा सभ्यता की चकाचौंध में गिरने लगी है। इंग्लैण्ड के लेसेस्टर नगर के रैटक्लिफ क्लब के अध्यक्ष श्री क्लाड लीथम[1] का कहना है कि पिछली दो पीढ़ियों से हम अपनी धार्मिक भावना को खोते जा रहे हैं। इसी लिए अपने बच्चों को हम सदाचार का वह दृढ़ मंत्र नहीं दे पाते जिसके मूल में धर्म है। इसी लिए वे जीवन का तात्त्विक सिद्धान्त भी नही समझ पाते। लीथम का यह भी कहना है कि सन् १९५६ में डाक्टरों की यह राय प्रकाशित हुई थी कि आज के लड़के-लड़कियाँ अपनी वास्तविक उम्र से पाँच वर्ष अधिक हैं। उनमें उम्र की अपेक्षा यौवन पाँच वर्ष पहले आ जाता है। "यौवन पहले आ जाता है और बुद्धि उस अनुपात में विकसित नही हुई रहती। इसी लिए मानसिक हलचल सँभाले नही सँभलती।" ऐसे अवसर पर यदि धार्मिक बुद्धि पैदा हुई रहती तो कितनों का जीवन बच जाता।

चेशायर की कुमारी डोरोदी पैटेन प्राइस[2] ने भी वर्तमान परिस्थिति पर खेद प्रकट करते हुए इसका कारण बतलाया है—"हमारे ईसाई धर्म में आत्मसंयम को जो महत्त्व दिया गया था, वह समाप्त हो गया है। आज के कल्याणकारी राज्य में सुख तथा विलास के साधन सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाते हैं। कम परिश्रम से ही सब कुछ प्राप्य है। आज अपने बल-पौरुष तथा गुणों के बल पर प्रगति करने में कोई शोभा नहीं समझी जाती। आज के युग में तो यही मत है कि हमको जब जो चाहिए, तुरन्त मिल

१. Sunday Times, London, 16th March, 1958.

२. वही

जाय। बाल-अदालतें बड़ा अच्छा काम कर रही हैं, पर वे वह काम नहीं कर सकतीं जो ठोस तथा संयमशील बालजीवन से प्राप्त हो सकता है।"

ब्रिटिश पार्लमेन्ट के सदस्य जे० आर० एच० हचिंसन[1] का कहना है कि "आज का युवक उत्तेजना चाहता है, उसके भीतर काम करने की, संघर्ष की अपरिमित आग है। इसलिए उसको अपने वेग के अनुकूल काम नहीं मिलता तो वह उच्छृंखल, उद्दंड तथा अपराधी हो जाता है। इधर हमारा अनुभव है कि हमने कम उम्र के सिपाहियों को कोरिया या मलाया ऐसे ख़तरनाक स्थानों में भेजा तो वे अधिक अच्छे आचरण के बने रहे; बमुकाबले कम खतरे के, शान्त वातावरण में। एक कारण और है, अंतर्राष्ट्रीय रूप में हिसा की भर्त्सना की जाती है पर फ़िल्म की दुनिया में हिंसा अनिवार्य समझी जाती है।"

लन्दन के एक मनोवैज्ञानिक ने अपना नाम न प्रकट करते हुए लिखा है[2] कि "सभी बच्चों के हृदय में एक श्रेष्ठ चरित्र का स्रोत है पर संयम तथा धार्मिक शिक्षा के अभाव से वह सूख जाता है। बहुत कुछ सोचने पर बाल-अपराध का कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव प्रतीत होता है। वाल्टर बीलीज़[3] का भी यही मत है। वे स्कूल-कालेजों की धर्मविहीन तथा सूखी, निर्जीव शिक्षा को दोषी ठहराते हैं। उनको वर्तमान सिनेमा तथा फिल्मों से बड़ी शिकायत है। वे कहते हैं कि अपराधी पैदा करने के लिए यही पाठशालाएँ हैं जिनको हम सिनेमाभवन कहते हैं। राबर्ट बार्टलेट[4] को शिकायत है कि हम आजकल अपने बच्चों को यह सिखाते हैं कि वे स्वयं अपने माता-पिता तथा परिवार वालों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बुज़ुर्गों की उपेक्षा करने की नसीहत हम देते हैं। और यह भी ध्यान रखने की बात है कि घर के बुज़ुर्गों का ही नैतिक स्तर नीचा है। यदि वे ही ख़राब आदर्श उपस्थित कर रहे हैं तो हमारे बच्चों का नैतिक स्वास्थ्य अवश्य ख़राब होता जायगा।"

कौन जाने किस कारण से बच्चे का दिमाग़ ख़राब होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलोराडो प्रदेश में जोज़ेफ़ केलाब्रीज की शादी के तीन महीने बाद एक मोटर दुर्घटना हो गयी। उनकी पत्नी एलिजेबेथ गर्भवती थीं। जब उनका बच्चा डोनाल्ड

१. Sunday Times, London, 9th March, 1958.
२. वही
३. वही
४. वही

पैदा हुआ, उसका मस्तिष्क निकम्मा साबित हुआ। अभी तक वह स्वस्थ नहीं हुआ। डोनाल्ड का छोटा भाई लारी पाँच साल बाद पैदा हुआ। उसका भी वही हाल रहा। केवल इन बच्चों की चिकित्सा के लिए, रक्षा के लिए, दुर्बल मानसिक बच्चों के लिए एक पाठशाला ही सन् १९४८ में खोल दी गयी। इसमें इस समय ४६ बच्चे रहते हैं। १७ बाहर से आते है। यही पर एक बालक डैविड है। जब वह तीन वर्ष का था, एक ट्रक से उसे चोट लग गयी। असर उसकी ज़बान पर हुआ। वह हकलाने लगा। आज वह भला चंगा हो गया है। दूसरा बच्चा रोनी, चलती मोटर से गिर पड़ा था। वह चोट खा गया। आपरेशन हुआ और उसके बाद वह उद्दंड तथा राक्षसों जैसी प्रवृत्तिवाला हो गया था। अब वह ठीक हो रहा है। अतएव प्रश्न समुचित चिकित्सा का है। हमारे देश मे लाखों बच्चे ऐसी चिकित्सा के अभाव में नष्ट हो रहे हैं। इनके लिए श्री लेखराज उल्फ़त की "नन्हीं दुनिया"[1] ऐसी संस्थाएँ बनी भी हैं तो वे धन के अभाव में दम तोड़ रही हैं।

आज अपराध की समस्या भयंकर रूप धारण करती जा रही है। इंग्लैण्ड ऐसे सम्पन्न तथा मध्यवर्ती देश में सन् १९३८ में ६८,००० अपराधी दंडित थे। १९५६ में १,०२,०० थे। ब्रिटिश पुलिस रिपोर्ट के अनुसार सन् १९३९ में कुल अपराधियों की संख्या ३ लाख थी। १९५६ में ४,८०,००० हो गयी। शायद ऐसी परिस्थिति ही मनुष्य की आँखे खुलवा देती है। ब्रिटेनकी उप-गृह-मंत्रिणी कुमारी पैटहार्नवो स्मिथ ने सन् १९५८ में लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर हाल में "अनुदार-दल-महिलासम्मेलन" में कहा था—"अपराधों की अत्यधिक वृद्धि देख कर हम माता-पिता, धर्म तथा व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी के पुराने सिद्धान्तों पर वापस आते जा रहे हैं।" और बिना इन सिद्धान्तों को अपनाये कोई चारा भी नहीं है।

स्कूलों में दलबन्दी

आधुनिक सभ्यता की एक नयी बीमारी है दलबंदी। घर में भी, बाहर भी। घर में कुछ बच्चे माता के पक्ष में होते है, कुछ पिता के। पाठशालाओं में भी लड़के लड़कियाँ अपनी अपनी पार्टी बना लेते है। इसका बड़ा बुरा प्रभाव होता है। अच्छे लड़कों के या लड़कियों के दल से निकाले गये लड़के लड़कियाँ अपना गिरोह बना लेते हैं, और फिर अनायास अपने को "तिरस्कृत" समझनेवाला भी तिरस्कार करनेवाले के प्रति

१. नन्हीं दुनियाँ, इन्दर रोड, देहरादून

हिंसात्मक भावना बना लेता है। "शिकागो अमेरिकन" पत्र के नगर-विभाग के सम्पादक बेजली हर्जेल का कथन है—[1]

"अच्छे लड़के तिरस्कृत बच्चों को अपराध के गढ़े में ढकेल देते हैं। हर अपराधी बालक-बालिका के अपराध की पृष्ठभूमि में हो, चाहे वह परिवार से प्राप्त तिरस्कार हो या अपने ही सहपाठियों द्वारा अपनी पाठशाला में प्राप्त हो—यह दूसरा कारण और भी भयंकर है। ऐसे तिरस्कृत बच्चे एक साथ 'ग़ैर क़ानूनी जमात' वालों की तरह से एकत्रित होते है"। लोरिंग के महिलाविद्यालय की प्रधान मार्गरेट यूलर ने लड़कियों की पाठशाला के बारे में यही बात दुहरायी है। अब इस दिशा की ओर हर एक अध्यापक तथा अभिभावक का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। यह बड़ी भयंकर चीज है। बिना कारण ही अपने स्कूलों में तिरस्कृत बच्चे अपराधी बने चले जा रहे है। इनकी रक्षा का प्रबंध होना ही चाहिए।

अपराधी का वर्गीकरण

हर उम्र वाले अपराधियों के वर्गीकरण का प्रयत्न फ़िलप्पीन देश मे बड़े अच्छे ढंग से किया गया है। सन् १९५६-५७ में "अपराध समीक्षण केन्द्र" में ३८०३ व्यक्ति दाख़िल हुए, उनका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ—[2]

१. अपराध— व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध—४०·७ प्रतिशत;
मम्पत्ति के अपराधी—३८·१२ प्रतिशत;
विशेष नियमों को भंग करने पर—९·११ प्रतिशत।
विगत वर्ष की तुलना में प्रथम श्रेणी के अपराध—८ प्रतिशत और द्वितीय श्रेणी के ७ प्रतिशत बढ़े हैं तथा तृतीय के ६·७ प्रतिशत घटे है। यानी हिंसात्मक तथा चोरी डकैती के अपराध काफ़ी बढ गये हैं।

२ दंड— प्रथम अपराधी—८७ ६ प्रतिशत;
दुबारा अपराधी—१२·४ प्रतिशत।

१. Wesley Hartzell, City Editor, The Chicago American, May 29, 1958.

२. Rufino Recaido, Chief, Reception and Diagnostic Centre in Guide Post, Manila, Philippines, 15th June, 1958.

(दुबारा में दूसरी बार जेल आनेवाले ६·१ प्रतिशत थे। तीसरी बार जेल आनेवाले २·४ प्रतिशत थे, चौथी बार जेल आनेवाले १·१ प्रतिशत थे तथा बिना इस प्रकार वर्गीकरण किये ३·८ प्रतिशत थे।)

३. विवाहित या
अविवाहित— अविवाहित १६५३, विवाहित १७८६, विधुर १०४, (रखेल औरत या बाज़ाब्ता शादी नहीं हुई) ४६

४. बुद्धि— बोदे तथा भोंदू प्रकार के—५६·८ प्रतिशत, शेष साधारणतः प्रखर बुद्धि के।

५. शिक्षा— अशिक्षित—२६·८ प्रतिशत
प्रारम्भिक शिक्षा—३८·६६ प्रतिशत
मध्यम वर्ग शिक्षा—१७·३६ प्रतिशत
हाई स्कूल तक—१२·७५ प्रतिशत
कालेज ग्रूप—२·१४ प्रतिशत

६. धर्म— कैथोलिक-सनातनी ईसाई—८६·८ प्रतिशत
मुसलमान ४·५ प्रतिशत
प्रोटेस्टेंट—सुधारवादी ईसाई—२·६ प्रतिशत

७. जेल में आने के समय उम्र—अधिकांश बंदी २० से २५ वर्ष की उम्र के।

८. अपराध के
स्थान— सबसे ज्यादा अपराध राजधानी मनीला में हुए, १०·२ प्रतिशत

९. व्यवसाय— ५० फीसदी बन्दी किसान, मछुए, शिकारी आदि लोग हैं। उसके बाद दूसरा बड़ा वर्ग है कारीगर तथा मज़दूरों का। ४ प्रतिशत अध्यापक का पेशा करनेवाले लोग है।

बहुत से देशों की जेल-रिपोर्ट मैंने देखी है पर इतने अच्छे ढंग का वर्गीकरण मुझे देखने को नही मिला। भारतवर्ष के अनेक प्रदेशों में तो यह भी पता नहीं है कि कितने क़ैदी विवाहित हैं तथा कितने नहीं। अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति काफ़ी समय से प्रधान कारागार निरीक्षकों से प्रार्थना कर रही है कि कम से कम इतनी आसान बात तो मालूम हो जाये। पर अभी तक इतना कष्ट भी नहीं उठाया गया है। पश्चिम बंगाल, मद्रास, बम्बई—किसी भी प्रदेश को इसकी जानकारी नहीं है। ऊपर के वर्गीकरण में "धर्म" भी दिया गया है। इसका मतलब यह नहीं है कि वे अपराधी धार्मिक हैं। यह तो केवल उनका पैतृक धर्म दिया गया है। सबसे रोचक बात यह मालूम होती है

कि हमारा नवयुवक समाज (नवयुवतियों का ज़िक्र ऊपर के आँकड़ों में नहीं है) कितनी बुरी तरह से अपराधी हो रहा है, जरायमपेशा हो रहा है और यह तब तक होगा जब तक कि हम इन नवयुवकों को "नैतिक जिम्मेदारी" की नसीहत न दें।

सन् १९२६ में सभी सभ्य देशों के लिए एक सर्वमान्य दंडविधान की रचना का प्रयत्न हुआ था, ब्रसेल्स में प्रथम बार अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन इसी उद्देश्य से हुआ। इसमें सभी देशों के कुल मिलाकर ३५० न्याय-पंडित एकत्रित हुए थे। इस सम्मेलन में "नैतिक ज़िम्मेदारी" का सवाल उठाया गया था पर उसके समर्थक नहीं मिले। श्री फेरी ने अपने भाषण में कहा था कि यह चीज़ हमारे दायरे के बाहर की है। यह भूल गये श्री फेरी कि यदि नैतिक ज़िम्मेदारी की भावना को समाप्त कर दिया जाय तो दंडविधान में किसी प्रकार के संशोधन का स्थान ही नहीं रह जाता। दंड चाहे कितना कठोर हो, सही है, उचित है। जब नैतिक ज़िम्मेदारी नहीं रही तो दंड की कठोरता में कमी करने का कोई तुक भी नहीं है। सन् १९२६ की भूल का आज तक प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है।

अध्याय २०

भिन्न देशों में भिन्न उपाय

वाल-अपराध रोकने के लिए भिन्न-भिन्न देश अपनी-अपनी बुद्धि तथा शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न उपाय कर रहे हैं। परिवार तथा पाठशाला दोनों का महत्त्व बराबर क़ायम रखने की चेष्टा की जा रही है। परिवार के सर्वोपरि महत्त्व को लोग समझने लगे हैं। संयुक्तराष्ट्र-संघ[1] की रिपोर्ट में लिखा है कि बच्चा सुधारक स्कूलों में कितनी ही प्रगति क्यों न करे पर यदि वह अपराधी है तो उसका उपचार तब और सफल प्रमाणित होगा जब स्कूल में रहने के समय उसका घर से सम्बन्ध बना रहेगा तथा उसका परिवार उसे अपनाने के लिए तैयार रहेगा, तभी सुधारक स्कूल की वास्तविक सफलता होगी। ऐसे बच्चों के उपचार के लिए यह आवश्यक है कि जो भी कार्य हो वह परिवार के सहयोग तथा सम्पर्क से हो, परिवार पर इतनी बड़ी जिम्मेदारी लाद देना भी बड़ी ज़रूरी बात है।

पर यदि परिवार अपनी ज़िम्मेदारी न समझे, न माने तो क्या उपाय होगा ? किसे दंड दिया जाय ? प्रायः देखा जाता है कि परिवार में लड़के बड़े शरारती हो जाते हैं। वे अपराध करना जानते भी नहीं। केवल उनमें बाहर घूमने की आदत पड़ जाती है। वे अनायास अपराधी बन जाते हैं। घुमन्तूपन अपराधी बनने की भूमिका है।[2] इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को ज़बर्दस्ती स्कूल भेजने से ही उनका ऐब नहीं समाप्त हो जाता, उनका अपराधी बनना नहीं रोक देता। यह पता लगाना चाहिए कि घर का वातावरण बच्चे को क्यों काटता है। घर के बाहर, घर से दूर उसे क्यों अच्छा लगता है ? जिन देशों में बाल अपराधियों के लिए विशेष संस्थाएँ हैं वहाँ पर यह सोचा जा रहा है कि बिना अपराधी बने बच्चों को अपराधी बच्चों के साथ रखना ठीक नहीं

१. The Prevention of Juvenile Delinquency in Selected European Countries, United Nations, April, 1955, Page 58.

२. वही, पृष्ठ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९

है। अतएव केवल घुमन्तू होने के कारण उन्हें वहाँ नही रखना चाहिए। असल में पता लगाया जाय कि वह अपने पारिवारिक जीवन से क्यों असन्तुष्ट है।

घुमन्तू बच्चे

जो लड़के-लड़कियाँ घर तथा स्कूल छोडकर इधर-उधर आवारागर्दी करते घूमते है या आवारों की तरह से घूमा करते है उनके लिए यूरोपीय देशों में अनेक उपाय किये जाते है। अपढ आदमी के लिए नौकरी मिलना असम्भव है। इसलिए सभी यूरोपीय देशो में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। केवल वे ही अनिवार्य शिक्षा के बन्धन में नही आते जो उन जातियों के है जो हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान घूमा करती है। बहुत से परिवार बड़ी नहरों में नौकाओं पर रहते है। उनके बच्चों की शिक्षा के लिए नीदरलैड्स तथा यूनाइटेड किंगडम (इंग्लैड, वेल्स तथा स्कॉटलैड) ने—जिसे हम ब्रिटेन कहते है—विशेष प्रबंध कर रखा है। यूनान में गडरियों के—चरवाहों के—बच्चों के लिए ख़ास तौर पर स्कूल लगाये जाते है। स्वीडेन के उत्तरी भाग में जिप्सी तथा घुमन्तू लेप्पे लोग काफ़ी रहते है। उनके लिए विशेष पाठशालाएँ तथा छात्रावास लगाये जाते है।

अपराध के पहले उसकी शुरुआत घुमन्तू आदत या आवारागर्दी से शुरू होती है। जहाँ अनिवार्य शिक्षा है, वहाँ स्कूलों में पढ़ना ज़रूरी होने के कारण कुछ थोड़ी बहुत रोकथाम हो जाती है। पर केवल इतने से ही काम नही चलेगा। स्कूल की पढ़ाई के बाद भी वही आदत बनी रहती है। मौलिक कारणों की जाँच, समीक्षा तथा खोज करनी पडेगी और उनका उपाय करना होगा।

ऑस्ट्रिया में स्कूलों की अनिवार्य उपस्थिति के लिए क़ानून है पर ज्यादातर अध्यापक क़ानून से कोई सहायता न लेकर परिवार से सम्पर्क रखते है। उससे भी काम नही चलता तो युवककल्याण कार्यालय से सहायता लेते है। यदि उनसे भी काम न चला तो सुधारगृह तो है ही। बेल्जियम मे स्कूल में हाज़िरी की सूची हर महीने स्कूल इंस्पेक्टरों के पास भेज दी जाती है। जिस लडके की ग़ैरहाजिरी ज्यादा हुई उसके परिवार को चेतावनी भेजी जाती है। यदि इससे भी काम न चला तो सरकारी वकील के पास मामला भेज दिया जाता है। यह वकील अपनी छानबीन करके बच्चे के बुजुर्गो को अदालत में तलब कर सकता है। बेल्जियम में पुलिस का कर्त्तव्य है कि स्कूल में पढ़ने के समय यदि लड़के-लड़कियों को सड़क पर घूमते देखें तो उन्हें पकड़कर स्कूल पहुँचा दें। फ्रांस में लडकों की इस प्रकार की भूल के लिए माता-पिता या अभिभावक को दंड मिलता है। यही नही, यदि पढ़ने के घण्टे में बच्चा कोई खेल-तमाशा देखने चला गया

तो स्कूल के घंटों में उसे अपने यहाँ बिठा रखने के अपराध में तमाशा दिखानेवाले या साथी को दंड मिलेगा।[१]

पश्चिमी जर्मनी में बच्चों को अनिवार्यतः स्कूल लाने के लिए पुलिस की मदद ली जा सकती है। पर आवारा लड़कों के संरक्षण के लिए वहाँ एक विशेष मुहकमा ही है। इससे अधिक काम लिया जाता है। पुलिस का हस्तक्षेप प्रायः हर एक देश में "कम से कम" वांछनीय समझा जाता है। यूनान में आवारा बच्चों के बुज़ुर्गों या अभिभावकों को दंड मिलता है। अगर उसके बार-बार अपराध करने से यह साबित हो जाय कि अब उस पर परिवारवालों का वश नही है, तब वह बाल-अदालत भेजा जाता है। हंगरी में नियम है कि पहले बुज़ुर्गों को चेतावनी दी जाती है और यदि उससे काम न चला तो बुज़ुर्गों या अभिभावकों को दंड देते हैं। यदि इससे भी काम नहीं चला और स्कूल में हाज़िरी न हुई तो अपराधी बच्चों को सरकारी छात्रावासों में ले जाकर रख देते है। आइसलैण्ड में तो ऐसे आवारा बच्चों के लिए, जिनको हर प्रकार से चेष्टा करने पर भी स्कूल लाना असम्भव हो जाता है, परिवार से हटाकर सरकारी छात्रावास में रखने का प्रबंध है। उसी निवासस्थान में पाठशाला भी लगती है। ३० बच्चों के लिए प्रबंध है।

आयरलैण्ड में १० से १४ वर्ष के बच्चों को स्कूल भेजने की ज़िम्मेदारी माता-पिता या अभिभावकों की है। यदि दुबारा ग़ैरहाज़िरी हुई तो बुज़ुर्गों को जुर्माना देना होगा तथा अदालत उस बच्चे का संरक्षक या अभिभावक "किसी अन्य योग्य व्यक्ति" को बना सकती है। इज़रायल में नियम है कि पढने के समय बच्चों से काम लेनेवालों को अथवा बुज़ुर्गों को दंड मिल सकता है। स्कूल की दाइयों या अध्यापकों की ज़िम्मेदारी है कि बच्चों की ग़ैरहाज़िरी की सूचना समाजकल्याण आफ़िस को दें। यदि कोई बार बार भाग जाता हो तो उसे बाल-अदालत के सामने पेश किया जाय। इटली में बच्चों की ग़ैरहाज़िरी की सज़ा बुज़ुर्गों को दी जाती है। नीदरलैंड्स में आवारा बच्चों के बुज़ुर्ग दंडित होते हैं तथा स्कूल की हाज़िरी की जाँच-पड़ताल और स्कूल जाने के लिए बाध्य करने का काम पुलिस का है।[२] उस देश में आवारा लड़कों पर देखरेख रखने के लिए एक "आवारागर्दी-निरोधक समिति" भी है। नार्वे में बच्चों को ही चेतावनी दी जाती है। यदि उससे काम न चला तो उन्हें सुधारगृह भेज देते हैं। स्वीडन में ऐसे बच्चे

१. Act of 1946—La Loi Du Mai, 1946.

२. Loerplicht Wet—Article 30, Law of 7th July, 1900.

बहुत कम मिलेंगे जो पढ़ने के समय पाठशाला न जाकर घूमा करते हैं। यदि बिरले मिले भी तो बाल-समाजकल्याण समिति उनकी देखरेख कर लेती है। स्विटजरलैण्ड में बुज़ुर्ग या अभिभावक ही दंडित होता है। तुर्किस्तान में भी यही स्थिति है। बुज़ुर्ग या अभिभावक पर ही अर्थदंड लगता है। ब्रिटेन में तो माता-पिता या अभिभावक अपने बच्चों को स्कूल न भेजने के अपराध में जेल तक भेजे जा सकते हैं।

आज बालक-बालिका के जीवन में शिक्षा की महत्ता समझने की आवश्यकता नहीं है। पर संसार में अभी तक सर्वमान्य आदर्श शिक्षाप्रणाली तय नहीं हो पायी है। इसी प्रकार यह भी नही तय हो पाया है कि किस प्रकार की शिक्षा देने से अपराधी मनोवृत्ति के अथवा आवारागर्दी करनेवाले बच्चे सँभल जायँ। इस विषय में नये नये प्रयोग हो रहे है। औसतन बच्चे में जो शिक्षणीय कमी रह जाती है, जिसके कारण वह जीवन मे भूलें करता है, उसे दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आवारा से हमारा तात्पर्य बिना उद्देश्य घूमने की लत से है। अनुभव से यह देखा गया है कि ऐसे बच्चों का इलाज दिन की पाठशाला में नहीं होता। इनको ऐसे छात्रावास में रखना चाहिए जहाँ चौबीस घंटे की देखरेख हो सके तथा पढ़ाई भी हो सके।

तिरस्कृत बच्चे

१२ सितम्बर १९५५ को लन्दन में अपराधशास्त्रियों का तृतीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ।[१] उसके एक दिन पूर्व ब्रिटेन की प्रसिद्ध दंडसुधार-समिति, हावर्ड लीग के मंत्री श्री हग क्लेयर ने "आबजर्वर" में एक लेख[२] लिखा था। अपराध तथा बाल-अपराधों की वृद्धि के लिए उनको भी परिवार से ही शिकायत थी। वे लिखते हैं—

"सभी अपराधी भग्न परिवार से नहीं आते पर अधिकांशतः ऐसे परिवारों से आये है जो या तो किसी कारण सुखी नहीं हैं, या भग्न होनेवाले है या कई दृष्टियों से उनका पारिवारिक जीवन दोषपूर्ण है। पर ऐसे ही परिवार का एक बच्चा अपराधी वन जाता है, दूसरा नहीं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इन दोनों बच्चों का भिन्न पैतृक संस्कार हो सकता है। शरीर की रचना में फ़र्क़ होगा, माता-पिता के स्नेह

१. **लेखक भी** Third International Congress of Criminologie **में उपस्थित था।**

२. "The Observer", London, Sept. 11, 1955—Hugh Klare—"Understanding the Criminal".

की मात्रा में अन्तर होगा। वे पृथक् स्थानों में पैदा हुए होंगे, उनका मित्रवर्ग पृथक् होगा, परिवार की किसी विकट स्थिति का उनके मस्तिष्क पर भिन्न प्रभाव पड़ा होगा।

"भग्न, दुःखी या असंतुष्ट परिवार को ही अपराध का कारण नही कहा जा सकता पर यह भी कहना गलत होगा कि अपराध करने पर इनका प्रभाव नही पड़ता। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गत महायुद्ध के बाद बाल-अपराधों में वृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण भग्न परिवार था या बच्चों को अजनबी जगहो मे पहुँचा दिया गया था। ऐसी जगह भी पहुँचाया गया था जहाँ कोई उनको पूछनेवाला भी नही था। यह भी याद रखना चाहिए कि पिछले महायुद्ध के समय-जैसी सामाजिक उथल-पुथल का प्रभाव अपराध और उसके रूप पर भी पड़ता है...कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जिन बच्चों के पिता युद्धभूमि में चले गये थे, उनमें बुरी लतें आ गयी थी, वे बच्चे अप-राधी, अप्राकृतिक प्रसंग के दोषी इत्यादि हो गये थे। पिता की अनुपस्थिति में लड़का किसे अपना आदर्श बनाकर चले, किसका अनुकरण करे? केवल माता का अनुकरण करने से, केवल माता की अनुरक्ति से उसमें स्त्रीजन्य स्वभाव तथा कादरता भी आ सकती है। इसकी प्रतिक्रिया में या तो वह उद्दंडता कर सकता है या सह-योनि-प्रसंग का शिकार बन जाता है।

"अच्छे से अच्छे परिवार मे अपराधी पैदा हो सकते है पर इनकी सबसे उपजाऊ भूमि "समस्यामय परिवार" हैं। वे परिवार हैं जो सामाजिक, आर्थिक या व्यक्तिगत कारणों से प्रसन्न नही है, सुखी नही है। महायुद्ध के पहले भी ऐसे परिवार थे पर आज उनकी संख्या कही अधिक है। आज समाज में सबकी नौकरी का (इंग्लैण्ड में) प्रबंध है। शिक्षा का पहले से अच्छा प्रबंध है, लोग अधिक सम्पन्न है। पर ऐसा लगता है कि इन सुखों ने उनकी समस्या को और बढ़ा दिया है। आज के तीस वर्ष पूर्व अधिक बेकारी, अधिक गरीबी तथा असुविधाएं थीं। आज प्राय. हर एक आदमी के पास काम है, वह बेकार नहीं है। जीवन-स्तर पहले से कही अधिक ऊँचा है...पर ये समस्यामय परिवार बढते ही जा रहे है। इनका बुद्धि का स्तर नीचा है। इनमें व्यभिचार है। इनमें शराबी है, अपनी दुर्बलताओं के कारण ही ये अपने को समाज में गिरा हुआ तथा दूसरों से तिरस्कृत समझते हैं। आत्मग्लानि की इसी आग के कारण ये एक प्रतिशो-धात्मक मनोवृत्ति धारण कर समाज के प्रति अनायास अपराधी बन जाते है। इसमें क्या आश्चर्य है कि ऐसे परिवार में जन्म लेनेवाले बच्चे अपराधी बन जायें या अपराध के प्रति उनकी अधिक रुचि हो। क़ानून ने यह तो साफ़ कर दिया है कि क्या अपराध है और क्या नही है। पर अपराधी और ग़ैरअपराधी का अन्तर स्पष्ट नहीं है। इनमें से कितने ऐसे व्यक्ति हैं जो सीने पर हाथ रखकर कह सकते है कि उन्होंने

कभी अपनी जवानी में क़ानून के ख़िलाफ़ कोई काम नहीं किया या चोरबाज़ार से कोई चीज़ कभी नहीं ख़रीदी। बड़े प्रतिष्ठित लोग अपनी आमदनी तथा खर्च का जो हिसाब तैयार करते हैं, वह क्या एकदम सच्चा हिसाब है? कैदी तथा न्यायाधीश दोनों में कुछ मौलिक कमजोरियाँ समान रूप से है। दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते तथा समझते भी हैं। बार बार अपराध करनेवाले में एक विशेषता प्रतीत होती है।

"यह विशेषता है भावुक अपरिपक्वता, उसका स्वभाव बच्चों की तरह से होता है। वह दूसरे के कष्ट या दूसरे पर अपने काम के प्रभाव की बात नहीं सोच पाता। हाथ-पैर से वह स्वस्थ दीख पड़ता है पर उसके आचरण से भावुक अपरिपक्वता का पता चल ही जाता है। मस्तिष्क से जो विद्युत् प्रेरणा पैदा होती रहती है उसे मशीन पर रेकर्ड किया जा सकता है। ऐसे ही रेकर्ड[1] से ऊपर लिखी अपरिपक्वता का पता चला है। आज ऐसी ही खोजों से यहाँ तक पता चल गया है कि मन तथा बुद्धि के विकास के साथ ही वैसी बुद्धि का विकास होता है। आदतन अपराधियों के हाथ की उँगलियों के नाखूनों के सिरे के चमड़े का फोटो लेने से बच्चों के नाखूनों के फ़ोटो जैसी बनावट मिलती है। ऐसे बहुत से प्रमाण मिल गये हैं जो अपराधी तथा बचपन का स्वभाव समान रूप से साबित कर देते हैं।

"बच्चों की तरह इन बड़े बुज़ुर्ग आदतन अपराधियों में एक ख़ास बात यह है कि ऐसा अपराधी अपने को संसार से तिरस्कृत तथा अवांछित समझने लगता है और ऐसी भावना बड़ी घातक होती है। जिन्हें बचपन मे घर में तिरस्कार तथा प्रेम का अभाव प्राप्त होता है उनमें यह भावना जम जाती है कि वे कभी किसी का आदर नही प्राप्त कर सकेंगे। वे पाठशाला में अपनी ज़रा सी असफलता पर, या कभी कभी काल्पनिक भूल-चूक पर बहुत ही खीझ उठते हैं। इसी लिए वे ऐसा साथ ढूँढ़ते हैं जो उनकी तरह से ही तिरस्कृत है—अपराधी है। यदि समाज को उनकी आवश्यकता नहीं है तो उन्हें भी समाज की आवश्यकता नहीं है। वे ऐसे समाज के शत्रु बन जाते हैं। केवल पैतृक स्नेह के अभाव में ही ऐसी भावना नहीं पैदा होती। जो बच्चे घर में बड़े नियंत्रण में, बड़ी सुरक्षा में, बड़े बंधन में रखे जाते हैं, वे संसार के संघर्षमय जीवन में पड़ कर जब ठोकरें खाने लगते हैं तो उनके मन में भी वही छोटापन, तिरस्कार तथा उपेक्षा की भावना पैदा होने लगती है। लाड़-प्यार में नष्ट बच्चे भी समाज के सामने आने पर अपने

१. Electro-encephalographic Records.

को छोटा तथा उपेक्षित समझकर बार बार अपराधी बन जाते हैं। यह हो सकता है कि मन के भीतर उपेक्षा तथा तिरस्कार की इस भावना के कारण ही अनायास बहुत से अपराधी बनते चले जा रहे हैं।

"इस अहम बात को लोग बहुत कम याद रखते है। प्रसिद्ध जेल-प्रबंधक सर अलेक्ज़ेंडर पेटरसन कहा करते थे कि उनके यहाँ अपराधी दंड-स्वरूप भेजे जाते हैं, दंड के लिए नहीं।"

हमने श्री क्लेयर के मत को कुछ विस्तार से दिया है। इसका कारण है। श्री क्लेयर ने जो कुछ कहा है, वास्तव में उन बातों का निचोड़ है जिसे अनेक पंडितों ने व्यक्त किया है तथा जिनके मत को हम स्थान स्थान पर देते आये हैं। हम भी उनसे बहुत कुछ सहमत हैं। श्री क्लेयर ने बच्चों में उपेक्षा की जिस भावना की इतनी समीक्षा की है, निस्संदेह वह भावना उनकी बड़ी हानि कर रही है।

सुधार की पद्धति

विभिन्न देशों में बाल-अपराधियों के सुधार के लिए जो कार्य हुए उसका संक्षिप्त वर्णन डा० बी० एस० हैकड़वाल ने अपनी पुस्तक के एक अध्याय में बड़े अच्छे ढंग से दिया है।[१] मार्के की बात तो यह है कि पिछले पचास साल में इस दिशा में विचारधारा ही एकदम बदल गयी है। घूम फिरकर लोग प्राचीन भारतीय मत के होते जा रहे है—

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्॥ (हितोपदेश)

पाँच वर्ष तक बच्चे को खूब प्यार करे। दस वर्ष तक उसके ऊपर कठिन अनुशासन करे और १६ वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करे, उसे मित्र के समान परामर्श दे।[२]

पश्चिमी देशों में पचास वर्ष पूर्व बाल-वृद्ध सभी अपराधियों को एक साथ रखते थे। जेलों में वे घोर से घोर अपराध सीख जाते थे। अब तो ७ वर्ष से कम के बच्चे

१. Dr. B. S. Haikerwal—"A Comparative Study of Penology—" Pub. 1954.

२. **संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपनी रिपोर्ट** Comparative Survey on Juvenile Delinquency—Part IV **पृष्ठ ५ पर इसे उद्धृत किया है।**

को कानूनन अपराधी मानते ही नहीं। इस सम्बंध में हम पिछले पन्नों में लिख आये हैं। ७ से १२ वर्ष की उम्र के बीच के बच्चों को किसी न किसी प्रकार का दंड मिलता ही है। पर यदि उनका मस्तिष्क खराब हुआ तो कोई दंड नही मिलता। प्रायः सभी देशों में बाल-अधिनियम बन गया है। भारतवर्ष में भी कई प्रदेशों में बाल-अधिनियम लागू है। जिन प्रदेशों में बाल-अधिनियम चालू नही है, वहाँ सन् १८९७ का रिफार्मेटरी स्कूल्स ऐक्ट काम देता है। इसके पहले भी एक कानून ब्रिटिश हुकूमत ने बनाया जो वास्तव मे मालिक तथा बाल-मजदूरों से सम्बंध रखता था। इसे अप्रेंटिस ऐक्ट, १९, १८५० का कहते है। अखण्ड भारत में यानी आज के पाकिस्तान में तथा बर्मा में यह नियम लागू था। सन १९१९–२० की जेल जाँच कमेटी ने यही सिफारिश की थी कि १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को जेलों में न रखा जाय। उनके लिए बाल-सुरक्षागृह, जिसे रिमांड होम कहते हैं, खोले जायँ। इस कमेटी की यह भी सिफारिश थी कि ब्रिटिश कानून के ढंग पर भारतवर्ष में भी बाल-अधिनियम बनें।

उत्तर प्रदेश में अभी तक बाल-सुरक्षागृह नहीं खुल सका है यद्यपि सन् १९५३ में यहाँ बाल-अधिनियम बन गया था। उत्तर प्रदेश में बाल-अपराधी को रिफार्मेटरी स्कूल (सुधारक संस्था) में भेज देते है पर चूँकि ऐसे स्कूल दो ही है अतएव अब भी जेलों के एक कोने में बाल-अपराधी कक्ष मिलेगा। रिफार्मेटरीज में आना दो आना प्रति सप्ताह जेबखर्च भी मिलता है। धार्मिक विश्वास के अनुसार बाल-अपराधी को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। दिल्ली, अमृतसर, बम्बई, मद्रास आदि में बड़े अच्छे सुधारगृह मिलेगे। पश्चिम बंगाल का अलीपुर का बालसुधारगृह तथा बरेली का सुधारगृह बहुत आदर्श समझे जाते हें। दोनों में हथियार या बेंत लिए पहरेदार नही हैं। जेल की वर्दी के बजाय साधारण भद्र पुरुष की खाकी पेन्ट तथा सफेद कमीज है। इनका औद्योगिक शिक्षणकेन्द्र बहुत अच्छा काम कर रहा है। यहाँ से दस्तकारी सीखकर निकले लड़के बेकार नहीं रह सकते। इनमें रहनेवाले 'अपराधियों' को किसी भी स्कूल के विद्यार्थियों के समान स्वच्छन्दता प्राप्त है। यह ध्यान रखने की बात है कि १८ वर्ष के ऊपर के बच्चे इनमें नहीं रखे जा सकते। हर रिफार्मेटरी में रहने की मीयाद तीन वर्ष से अधिक नही रखी जाती। यह इसलिए कि समझा जाता है कि इतनी अवधि में रहनेवाले को कोई न कोई कला या गुण आ ही जायगा। इसका एक दूसरा रूप भी है; यदि साधारण अपराध के लिए भी बच्चे यहाँ भेजे जाते हैं तो उनको तीन वर्ष तो यहाँ रहना ही पड़ता है।

जिन प्रदेशों में बाल-अधिनियम लागू हो गया है, बाल-अपराधी को 'सर्टिफाइड स्कूल' (सरकार से स्वीकृत) में भेजते हैं, जैसे बम्बई प्रदेश का माटुंगा का प्रसिद्ध

स्कूल या डैविड सासून स्कूल है। यहाँ बच्चों को बाहर भाग जाने से बचाने का प्रबंध तो है पर उतना नहीं है कि उनको यह प्रतीत हो कि वे जेल में हैं। बाकायदा स्कूल लगता है। बच्चों के आमोद-प्रमोद का पूरा प्रबंध रहता है। नैतिक विषयों पर अच्छे अच्छे व्याख्यान होते हैं। लड़कियों के लिए अलग स्कूल है। बायकुला (बम्बई का उपनगर) में शेपर्ड आफटर केयरहोम है जिसमे वे 'अपराधी' बच्चे जिनकी "शिक्षा" की अवधि समाप्त हो गयी है, पर जिनको वापस जाने के लिए घर नहीं है या जीविका का साधन नही है, रखे जाते हैं तथा उनके लिए नौकरी का प्रबंध हो जाता है। एक महीने तक यहाँ मुफ्त में रहने का तथा रोटी का प्रबंध रहता है। इसके बाद जब काम लग जाता है तो अपने ऊपर किया गया व्यय वे चुका देते है।

बाल-अधिनियम हर प्रदेश में लागू होना चाहिए। हर प्रदेश में ही नही, हर नगर में लागू होना चाहिए। १४ से १६ वर्ष का प्रत्येक लड़का या लड़की इस नियम के अन्तर्गत देखरेख में रहे, गृह-विहीन, आश्रयहीन बच्चों की रक्षा का भार इस नियम के अन्तर्गत काम करनेवालों पर हो। मुझे तो ऐसा लगता है कि एशिया महाद्वीप में बाल-अधिनियम के सिलसिले में सबसे अधिक कार्य जापान तथा थाईलैंड यानी स्याम देश में हुआ है। भारतवर्ष में पराधीनता के दिनों में कुछ विशेष कार्य नही हुआ।[१] यों, हमारे यहाँ जो कुछ नियम बने वे ब्रिटिश ढंग पर बने थे। बहुत धीरे धीरे हमने बच्चों के प्रति उदारता की नीति अपनायी है। जापान तथा थाईलड (स्याम) तथा फिलप्पीन देशों के नियमों पर संयुक्त राज्य अमेरिका का असर प्रत्यक्ष है।

१. राष्ट्र-संघ की रिपोर्ट, पृष्ठ ४

अध्याय २१

एशियाई देशों में बाल-अपराध निरोध

एशिया के जिन देशों में बाल-अधिनियम यानी चिल्ड्रेन्स ऐक्ट जिस रूप में लागू है, उसकी तालिका इस प्रकार है—

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
१. भारतवर्ष	१. अप्रेंटिस ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट XIX–१९५०) २. रिफार्मेटरी स्कूल्स ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट VII १८९७) ३. बाम्बे चिल्ड्रेन्स ऐक्ट १९२४	१. रिफ़ार्मेटरी स्कूल्स ऐक्ट, १८९७ २. चिल्ड्रेन्स ऐक्ट, वम्बई १९४८, मद्रास १९५०, पश्चिमी, बंगाल १९५१, आंध्र[1] १९५१, दिल्ली १९४१, केरल[2] १९४५, कोचीन[3] १९४६, मैसूर[4] १९४३	मध्यप्रदेश का बाल-अधिनियम[5] अभी पूरा नहीं हुआ है। बिहार प्रदेश भी ऐसा ही अधिनियम बनाने जा रहा है।

१. उस समय हैदराबाद

२. उस समय ट्रावन्कोर

३. आज केरल में

४. आज आंध्र प्रदेश में

५. Children's Act.

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
		पंजाब १९४९, उत्तर प्रदेश १९५३, प्रोबेशन आव आफ़ेंडर्स ऐक्ट —— बम्बई १९३८, मद्रास १९३६, मध्यप्रदेश १९३६, उत्तर प्रदेश १९३८, मैसूर १९४३, केन्द्रीय सरकार का ऐक्ट १९५८	
२. पाकिस्तान	१. अप्रेंटिस ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट XIX १८५०)	वही पुराने ऐक्ट लागू है	इस विषय में संयुक्त राष्ट्र-संघ को भी कोई जानकारी नही है।
	२. रिफार्मेटरीज़ स्कूल्स ऐक्ट, (इंडिया ऐक्ट VII १८९७)	नया अभी नहीं बना	
३. बर्मा	१. अप्रेंटिस ऐक्ट (इंडिया ऐक्ट XIX १८५०)	यंग आफ़ेंडर्स (बाल अपराधी) ऐक्ट, बर्मा ऐक्ट —१९५०	सन् १९५२ में बाल अधिनियम बिल का मस्विदा बन गया था। इस समय तक वह अवश्य लागू हो गया होगा।
	२. रिफार्मेटरीज स्कूल्स ऐक्ट १८९७		
४. लंका	यूथफुल आफ़ें-डर्स (बाल अप-राधी) आर्डिनेंस १८८६ तथा १९२८	१. यूथफुल आफ़ें-डर्स आर्डिनेंस, १८८६, १९२८	चिल्ड्रेन्स एंड यंग पर्सन्स आर्डिनेंस—४८—१९३९ तथा १९५१ का

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
		२. यूथफुल आफ़ें-डर्स (ट्रेनिंग-स्कूल) आर्डि-नेंस, नं० २८–१९३९ का	विचाराधीन था।
		३. प्रोबेशन आव आफ़ेंडर्स आर्डि-नेंस, नं० ४२–१९४४-४७ का	आज की स्थिति ठीक से ज्ञात नहीं है।
५. जापान	१. रिफार्मेटरी ला, १९००	१. जुवेनाइल ला १९४८	
	२. जुवेनाइल (बाल) ला (कानून) १९२२	२. चाइल्ड वेल्फेयर (शिशु कल्याण) कानून १९४७	कोई नहीं
	३. जुवेनाइल कंट्रोल एंड प्रोटेक्शन ला (बाल नियंत्रण तथा संरक्षण नियम) १९३३	३. आफ़ेंडर्स प्राबे-शन एंड रिहै-बिलियेशन (रोकथाम तथा पुनर्वास) क़ानून १९४८	
६. फिलप्पीन	१. सन् १९०६ का ऐक्ट नं० १४-३८ २. सन् १९१९ का ऐक्ट नं० २८१५	जुवेनाइल डेलिं-क्वेंट (बाल अपराधी) ऐक्ट नं० ३२०३ १९२४ का	बाल अदालतों की स्थापना हुई है।
७. थाईलैंड (स्याम)	१. कंट्रोलिंग जुवे-नाइल एंड	१. चिल्ड्रेंस एंड जुवेनाइल कोर्ट	कोई नहीं

देश	पहले का क़ानून	वर्तमान क़ानून	प्रस्तावित क़ानून
	'स्टूडेन्ट्स ऐक्ट १९३९	(बाल अदालतें) ऐक्ट १९५१	
	२. ट्रेनिंग आव जुवेनाइल ऐक्ट १९३६	२. चिल्ड्रन एंड जुवेनाइल कोर्ट प्रोसीड्योर ऐक्ट १९५१	

मामाजिक सेवा

एशिया के विभिन्न देशों में बाल-समाज की सेवा के लिए सार्वजनिक तथा सरकारी काम भिन्न मात्रा में हुए हैं। अभी कुछ वर्ष पहले तक ब्रिटेन के अधीन देशों में, जैसे भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका अथवा डचों के अधीन हिन्द एशिया में यह काम एक प्रकार से हुआ ही नहीं था और हुआ भी तो बहुत कम। अब जाकर कुछ-कुछ चालू हुआ है।

भारत--सरकारी तौर पर बाल-समाज का कार्य काफ़ी कम मात्रा में भारतवर्ष में भी हुआ है। जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं, ३१ दिसम्बर १९५८ को उत्तर प्रदेश के जेलों में, जिनमें बाल-सुधारगृह यानी बरेली का सुधारगृह, जिसे किशोर-सदन कहते है, शामिल है, ८६,४५३ बन्दी थे, १,३२,४४५ विचाराधीन क़ैदी थे तथा २३,५९९ बाल-अपराधी थे। इन बाल-अपराधियों के लिए केवल २ सुधारगृह थे जिनमें बरेली का किशोर-सदन शामिल है। मद्रास में बच्चों के लिए एक बोर्स्टल स्कूल है जो पलायम-कोट्टाई में है। बम्बई में ३१ मार्च १९५८ को ७७९० बाल-अपराधी तथा २६९९ बालिका अपराधिनी थी जिनके लिए २७ रिमांड होम (सुरक्षागृह), ३६ सर्टिफ़ाइड स्कूल्स, ९३ "योग्य व्यक्ति संस्थाएँ" तथा २८ बाल-अदलातें यानी १८४ संस्थाएँ थी। बाल-अपराधियों के लिए इतना प्रबंध होने पर भी बम्बई प्रदेश की पुलिस की १०६२ हवालातों को मिलाकर १४५३ जेलों में १३, ५७८ क़ैदी, ५८३५ विचारा-धीन क़ैदी तथा ८४७ बाल-अपराधी थे।[1] ये बाल-अपराधी ऊपर लिखी १८४ संस्थाओं के बावजूद भी जेलों में—मुख्य जेलों में—रखे गये हैं।

१. प्रधान कारागार निरीक्षक, बम्बई का पत्र सं० ६२२, १७ जून १९५९—अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम।

उड़ीसा जैसे छोटे राज्य में, जिसकी आबादी १,४६,४९,००० के लगभग है, ३१ मार्च १९५९ को समाप्त होनेवाली तिमाही में ५८ हत्याएँ, २९ डाके, ४१ डकैतियाँ (सशस्त्र नहीं), १००४ सेंध लगाकर चोरी करने की घटनाएँ, १७१३ चोरियाँ तथा १०८ बलवे हुए। सशस्त्र डाकों का औसत प्रति एक लाख आबादी पीछे ३ था। यही औसत हत्या का भी था। डकैतियों का औसत २७ था। चोरी का औसत प्रति एक लाख व्यक्ति पीछे ६·८ था।[१] इन आँकड़ों से बाल-अपराधियों की संख्या स्पष्ट नहीं होती पर यह जरूर पता चलता है कि जेबकटी के ४०, चलती गाड़ी से चोरी के ४४ तथा छिटपुट चोरी के ८ मामले हुए। अवश्य ही इनमें बाल-अपराधी हैं पर उड़ीसा में बाल-अपराधियों के लिए कोई विशेष प्रबंध नहीं है।

बाल-कल्याण के कार्यो की ओर प्रथम तथा द्वितीय दोनों पंचवर्षीय योजनाओं में नियोजकों का ध्यान नही गया था। अब तीसरी पंचवर्षीय योजना की तैयारी में हमारा नियोजन विभाग विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। हमारे देश में १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या लगभग १५ करोड़ है।[२] यदि इतनी बड़ी संख्या की ओर से हम उदासीन रहेंगे तो हमारा कल्याण कैसे होगा? नयी योजना में नियोजकों की राय में परिवार से तिरस्कृत या उपेक्षित, परित्यक्त आदि बच्चों की रक्षा, पालन तथा शिक्षण का प्रबंध होगा। ऐसे सामाजिक कार्यकर्त्ता नियुक्त होंगे जो बच्चों के लालन-पालन आदि की शिक्षा माता-पिता तथा परिवार वालों को देंगे। अन्य सरकारी तथा समाज-कल्याण विभाग द्वारा बाल-कल्याण का जो छिटपुट कार्य होता है वह एक सूत्र में पिरो दिया जायगा और उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आमोद-प्रमोद आदि का कार्य भी एक ही एजेन्सी के द्वारा सम्पन्न होगा। जो सार्वजनिक संस्थाएँ बाल-कल्याण का कार्य कर रही हैं, उनको प्रोत्साहन दिया जायगा, उनकी सहायता की जायगी। बच्चों को पुष्टिकारक भोजन तथा स्वस्थ शिक्षा देने की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा। केन्द्रीय सरकार बाल-अधिनियम तथा ऐसे सभी नियमों की जाँच करके सब प्रदेशों के लिए उपयुक्त नियम बनाने का प्रबंध करेगी।

यह सब काम आगे चलकर होगा। इस समय न तो जनता और न सरकार ही इस ओर विशेष ध्यान दे रही है। सरकार ने तो कुछ किया भी है पर जनसमूह अपने

१. इंस्पेक्टर जनरल पुलिस, उड़ीसा का पत्र सं० ६३२०, २५ मई १९५९, अखिल भारतीय अपराध-निरोधक समिति के नाम।

२. नयी दिल्ली का १५ जून १९५९ का समाचार

ही बच्चों के प्रति एकदम उदासीन है। सब काम सरकार नहीं कर सकती। हमारा भी कुछ कर्त्तव्य होता है। हमारे देश में कुछ ग़ैर-सरकारी संस्थाएँ सरकार से सहायता प्राप्त कर इस दिशा में अच्छा कार्य कर रही है। देश में बहुत से अच्छे अच्छे अनाथालय, महिलाश्रम, बाल-उद्योगभवन, बाल-क्रीड़ा केन्द्र, बाल-सहायक समिति, बाल-कल्याण समिति, बाल-संरक्षण समिति, प्रोबेशन तथा आफ्टर-केयर (उत्तर-रक्षा) असोसियेशन[१], ऐसी संस्थाएँ हैं। इनका काम और भी आगे बढ़ सकता है यदि लोग सरकार की ओर देखना बन्द करके ज़रा अपने बच्चों के नाम पर ऐसी संस्थाओं की सहायता भी किया करें। हमारे उत्तर प्रदेश के बाल-जेलों में या सुधारगृहों में या बरेली के किशोर-सदन में केवल ये बालक रखे जा सकते हैं—

१. ऐसे प्रत्येक बालक को जिसे कठोर कारावास का दंड मिला हो, किशोर-सदन बरेली भेज देना चाहिए।
२. उसकी उम्र १८ वर्ष से ऊपर की न हो, २३ वर्ष की उम्र तक उसको अपनी सजा पूरी कर लेनी चाहिए, तथा किसी की सजा एक वर्ष से कम की न हो।
३. चेहरे से वह बालिग़ न मालूम पड़ता हो।
४. अपराधी जाति का न हो।
५. दफा १०९, ११० या १२३ (भारतीय दंड-विधान) के अंतर्गत दंडित न हो।
६. अप्राकृतिक व्यभिचार के लिए दंडित न हो।
७. जितने दिन तक वह जेल में विचाराधीन रहा है, उसका चालचलन ठीक रहा हो।
८. उसे कोई छुतही बीमारी न हो, उसका स्वास्थ्य ठीक हो, उसकी बुद्धि ठीक हो।

इतनी शर्तों के बाद यदि किसी बाल-भवन में श्रेष्ठ अपराधी यानी अच्छे लड़के इकट्ठा न होंगे तो क्या बुरे लड़के पहुँचेगें? हमारी सम्मति में सुधार-गृहों में प्रवेश के लिए इतनी शर्त्तें अवांछनीय हैं। पर, इस विषय पर हम यहाँ विचार नहीं करेंगे।

बर्मा—बर्मा में सन १९२८ में परित्यक्तों के लिए एक आश्रम की स्थापना हुई

१. Probation and After care Association. **प्रोबेशन के लिए हिन्दी में "परिवीक्षण" शब्द है**; After-care **कहते हैं जेल से छूटने के बाद देखरेख यानी उत्तर-रक्षा।**

थी। सन् १९५१ में इस संस्था ने अपनी जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसमें लिखा है—"यह आश्रम चार प्रकार के लड़कों के लिए है। परित्यक्त और घर से भागे हुए, बाल-अपराधी कहे जानेवाले, विचाराधीन बाल-बंदी तथा घरेलू जीवन में नियंत्रण में न रहनेवाले बच्चे। प्रथम श्रेणी में यानी परित्यक्त इत्यादि वे बच्चे हैं जो अनाथ है, बड़े दरिद्र माता-पिता की संतान है, निर्दोष है, उन्हें सरकार ने हमारे पास नहीं भेजा है। बाल-अपराधी कहे जानेवालों में बहुत से निर्दोष भी होते हैं, वे बाल-अपराधी नियम, धारा २० के अंतर्गत हमारे पास केवल नज़रक़ैद करने के लिए भेजे जाते है। बाल-अपराधियों के लिए सरकार की ओर से २० रुपया फी अपराधी भोजन-व्यय हमको मिलता है जब कि हमारे आश्रम में प्रति व्यक्ति पीछे ३८ रुपया ६ आना ख़र्च पड़ता है।"

लंका—परिवीक्षण (प्रोबेशन) सेवा केन्द्र तथा अनाथालयों में बाल-अपराधी भी रखते है; यों तो साधारण जेलों का एक कोना बाल-अपराधियो के लिए काम आता है। बाल-समीक्षण केन्द्र केवल एक है, राजधानी कोलम्बो में। बाल-अपराधियों को दंड देने के पूर्व उनकी जाँच-पड़ताल का काम परिवीक्षण अधिकारी करता है। अपने कार्य में वह समाजसेवकों से भी सहायता ले सकता है।

पाकिस्तान—कराची में एक बाल-कल्याण समिति है। यह ग़ैर-सरकारी संस्था है। यही कराची के सरकारी बाल-सुरक्षा-गृह का भी प्रबंध करती है। इस संस्था को जनता की उदासीनता के कारण बड़ा कष्ट है। यह सरकारी सहायता से ही जीवित है। वैसे, संयुक्त राष्ट्र-संघ के अनुसार, पाकिस्तान में बाल-सुधार या बाल-अपराधी की देखरेख का कार्य नही के बराबर है।[१]

थाईलैंड—स्याम देश में बच्चों की देखरेख के लिए इससे अधिक उपयुक्त तथा प्रशंसनीय संगठन है। वहाँ नया क़ानून बनने के बाद, जिसका ज़िक्र हम अपनी तालिका में कर आये हैं, बाल-कल्याण केन्द्र तथा बाल-कल्याण समितियाँ एक में मिलाकर केन्द्रीय संगठन के अंतर्गत कर दी गयी है। पर ऐसा संगठन अभी कागज़ पर ही है। राजधानी बैंकाक को छोड़कर और कहीं इसका कार्य, आज से तीन वर्ष पूर्व तक चालू नही हो पाया था, पर यह आशा जरूर करनी चाहिए कि इस बीच में ऐसा संगठन चतुर्दिक् हो गया होगा।

फिलप्पीन—फ़िलप्पीन द्वीपसमूह का सरकारी समाज-कल्याण कमीशन बाल-

१. राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट—पृष्ठ १६

अपराधी, दोषी, अपाहिज, भ्रष्ट तथा परित्यक्त—हर प्रकार के बच्चों की देखरेख करता है। यह कमीशन[१] (संस्था) नज़रक़ैद या सुरक्षागृह में रोके हुए अपराधियों को छोड़कर परिवीक्षण का काम करता है, बाल-अपराधियों के सुधार, शिक्षा तथा पुनर्वास का प्रबंध करता है। परिवीक्षण विभाग बाल-अपराधियो मे सामाजिक अनुसंधान का कार्य करता है। किन्तु यह खोज तभी की जाती है जब मनीला की बाल-अदालत के विचारपति किसी मामले में ऐसा करने का आदेश देते है। आँकड़ों से पता चलता है कि बाल-अदालतें बहुत कम मामलों में इनकी सहायता प्राप्त करती है।

जापान—जापान में सार्वजनिक और सरकारी, दोनों दृष्टियों से बालसेवा तथा बाल-कल्याण का कार्य एशिया में श्रेष्ठ होता है। उसका रूप इस प्रकार है—

१. सुप्रीम कोर्ट (सबसे ऊंची अदालत) के मुख्य सचिवालय के साथ नत्थी पारिवारिक विषयसमिति[२]; इसी के अंतर्गत बाल-अदालतें काम करती है।
२. न्याय मंत्रालय के अन्तर्गत दंड-सुधारसमिति है। इसके अंतर्गत बाल-अपराधियों की नज़रबन्दी, वर्गीकरणगृह (जहाँ पर छानबीन की जाती है कि किस श्रेणी में रखने योग्य अपराधी हैं, उनकी देखरेख, शिक्षा, पुर्नवास आदि का कार्य होता है।
३. न्याय मन्त्रालय के ही अंतर्गत पुनर्वास समिति है जिसके अंतर्गत जिला युवक अपराध-निरोधक तथा पुनर्वास समिति (कमीशन)[३] तथा युवक निरीक्षण कार्यालय है, जिसको निर्णय करना पड़ता है कि निगरानी पर छोड़ा जाय या नही, परिवीक्षण पर छोड़े गये लोगों को उचित आदेश देना, इत्यादि।
४. स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा बालकों-बालिकाओं के स्वास्थ्य सुधार का सब कार्य।

गिरफ़्तारी, अवरोध, निरीक्षण

बाल-अपराधियों की गिरफ्तारी के लिए वर्मा, सीलोन, लंका, फ़िलप्पीन, पाकिस्तान तथा थाईलैंड (स्याम) देशों में कोई विशेष नियम नही है। भारत के कई प्रदेशों में यही बात है। फिलप्पीन की राजधानी मनीला तथा वर्मा की राज-

१. Social Welfare Commission

२. Family Affairs Bureau

३. District Youth Offenders' Prevention and Rehabilitation Commission called Dyopar

धानी रंगून में वेश्याओं, महिलाओं, लड़कियों तथा छोटी उम्र के बच्चों की गिरफ्तारी के लिए विशेष महिला पुलिसदल नियुक्त है। मनीला में पुलिस का बाल-विभाग भी अलग है। यह विभाग ही गिरफ्तारी के बाद तय करता है कि कौन मामला अदालत में जाने के काबिल है और कौन डरा-धमकाकर या चेतावनी देकर छोड़ देने के योग्य है। बाल-अपराधियों की गिरफ्तारी के लिए मनीला पुलिसविभाग में हाई स्कूल के लड़के या लड़कियाँ (छात्राएँ) नियुक्त कर दी जाती है। सन् १९४८ में इस नगर में ऐसे २५०० छात्रा-छात्र कास्टेबुल थे जिनका काम था कि बच्चों के लिए हानिकारक स्थानों में, जैसे शराबखाने, रात्रि के क्लब, नाचघर इत्यादि में उनका जाना रोकें या यदि जा रहे हों तो मना कर दें।

बम्बई में बाल-अपराधियो के लिए एक विशेष पुलिस जत्था है, जिसमें पुरुष, स्त्री दोनों ही है। अगस्त १९५२ में इस जत्थे की स्थापना हुई थी। यह जत्था बम्बई प्रदेश की नीम सरकारी बाल-सहायक समिति के सहयोग से केवल गिरफ्तारी का ही काम नही करता, पर बाल-अपराध रोकने, या नियंत्रण का तथा अनाथ, तिरस्कृत या दरिद्र बच्चों की रक्षा का भी काम करता है।

फ़िलप्पीन में बाल-अधिनियम धारा १०-अ के अनुसार प्रोबेशन अफ़सर यानी परिवीक्षण अधिकारी को पुलिस अफ़सर के अधिकार प्राप्त हैं। बर्मा में पुलिस विभाग के अतिरिक्त भी, वास्तविक अपराध करने के पूर्व अपराधी प्रवृत्ति के लड़के-लड़कियो को गिरफ्तार करने के लिए नागरिकों मे से कुछ व्यक्तियों को यह अधिकार प्राप्त रहता है। इनकी नियुक्ति ज़िलाधीश करते हैं। शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियों को आवारा लड़कों को गिरफ्तार करने का अधिकार होता है। बम्बई में भी परिवीक्षण अधिकारी को आवारा घूमनेवाले, बुरे चाल-चलन के, सड़क पर भीख माँगनेवाले, गृहविहीन, वेश्यावृत्ति करनेवाले, अनाथ, शराबी आदि लड़के-लड़कियों को पकड़ने का अधिकार है। कुछ नागरिकों को भी यह अधिकार प्राप्त है। बाल-अधिनियम १९४८, धारा ७८-१ के अनुसार सब-इंस्पेक्टर के ओहदे से नीचे का पुलिसमैन बाल अपराधियों को गिरफ्तार नही कर सकता। धारा ६६ के अनुसार ऐसी गिरफ्तारी के बाद परिवीक्षण अधिकारी को तुरत सूचना देनी चाहिए। थाईलैंड के बाल-अधिनियम की धारा २४ के अनुसार गिरफ्तारी के बाद बाल-कल्याण केन्द्र अथवा समिति के संचालक तथा माता-पिता या अभिभावक को तुरत सूचना देनी चाहिए। मोटे तौर पर, यह मान लेना चाहिए कि ऊपर लिखे देशों में बाल-अपराधियों की गिरफ्तारी के बारे में कोई खास नियम नहीं चालू है—कुछ स्थानों को छोड़कर—केवल एक बात ज़रूर है कि बर्मा, भारत, पाकिस्तान तथा लंका

के दंड-विधान में इतना अवश्य लिखा है कि ऐसे "गिरफ्तार व्यक्ति पर उतना ही प्रतिबंध रहना चाहिए जितने से वह भाग न जाय।" यदि गिरफ्तार करनेवाला अफ़सर चाहे तो नरमी बरत सकता है।[1]

जापान में भी साधारण दंडविधान के अंतर्गत बाल-अपराधियों की गिरफ़्तारी आम पुलिस द्वारा ही होती है पर बाल-अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तारी का कार्य "बाल-अनुसंधक" तथा अदालत के क्लर्क आदि करते है। ऐसी दशा में गिरफ़्तारी का वारण्ट बाल-अनुसंधक के हस्ताक्षर से जारी होता है। "परिवार अदालत" की आज्ञा से राष्ट्रीय ग्रामीण पुलिस अफ़सर, म्युनिसिपल पुलिस अफसर या कोर्ट क्लर्क वारंट की तामील कर सकता है। अन्य अपराधियों की भाँति बाल-अपराधी भी प्रत्येक देश में, ज़मानत पर छोड़ा जा सकता है। पर बर्मा में ज़मानत के नियम इतने कठोर हैं कि बच्चों के लिए ज़मानत पर छूटने में बड़ी कठिनाई होती है।[2]

हम यह ऊपर ही लिख आये हैं कि एशिया के अधिकांश देशों में गिरफ़्तार होने-वाले बाल-अपराधियों को बड़ों के जेलों में ही रखने का नियम है। कुछ देशों या प्रदेशों में इन्हें बन्द करने के लिए विशेष आवास भी हैं। केवल जापान में, देश भर में ऐसे विशेष अवरोधगृह[3] बने हुए हैं। भारतवर्ष में दिल्ली, पश्चिमी बंगाल, मद्रास तथा बम्बई में विशेष अवरोधगृह हैं। अन्यथा हमारे यहाँ भी पुलिस की हवालात तथा बड़ों के जेल से काम लिया जाता है। हफ्तों, महीनों तक इनमें बाल-अपराधी सड़ते और नष्ट होते रहते हैं। बर्मा, पाकिस्तान, लंका तथा स्याम देश में भी यही दशा है। रंगून में बहुत से बाल-अपराधियों को "घुमन्तू बालकों या आवारा लड़कियों के लिए" दो आश्रमों में, उनके अलग कक्ष में रखने का प्रयास होता है। पर सभी बन्दी इन आश्रमों में नहीं रखे जा सकते। फिलप्पीन की राजधानी मनीला में ऐसे अवरोधगृह बन गये हैं जहाँ विचाराधीन बाल-अपराधी रखे जाते हैं। वही उनका मुकदमा होता है और छोटी मीयाद की सजा भी वहीं भोग लेते हैं। पाकिस्तान में, केवल कराची में एक अवरोधगृह है, बाकी तो आम जेलखाना ही काम देता है। कराची नगर में बम्बई का बाल-अधिनियम, (१९२४ का) अभी तक लागू है जिसके अनुसार "यदि १६

१. **राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट, पृष्ठ १९**

२. J. C. F. Hall—"Boy Crime in Burma", Pub. American Baptist Mission Press, Rangoon, 1939—Page 29.

३. Detention Homes.

वर्ष के नीचे का गिरफ्तार व्यक्ति दफा १८ के अनुसार छोड़ नहीं दिया गया तो उसे सरकार द्वारा निर्धारित रूप में बन्द किया जायगा।" यह निर्धारित रूप है अवरोध-गृह या सुरक्षागृह में बन्द रखना। पर, जब ऐसे निवास ही नहीं हैं तो उनकी चिन्ता कौन करेगा ?

बम्बई, मद्रास, जापान तथा स्याम के कुछ भागों में ऐसे सुरक्षागृह हैं जहाँ बाल-अपराधी केवल बन्दी ही नहीं रखा जाता, वहाँ पर उसके बारे में आवश्यक छानबीन तथा जाँच-पड़ताल भी हो जाती है। उसका परीक्षण-निरीक्षण भी हो जाता है। पर जो सुविधा बम्बई में बाल-अपराधियों को प्राप्त है, वह बम्बई प्रदेश में और कहीं नहीं है। अन्य भाग में, वे साधारण जेलों में, उनके एक अलग कक्ष में, रखे जाते हैं।

मद्रास बाल-अधिनियम की धारा १९-२० के अनुसार तथा बंगाल के बाल-अधिनियम की धारा १८-१९ के अनुसार यदि बाल-अपराधी की दफ़ा १७ के अंतर्गत जमानत नहीं हो गयी तो उसे पुलिसथाना या जेल के अतिरिक्त निश्चित स्थान में बन्दी रखा जायेगा। ऐसे अपराधी का मुकदमा जल्द से जल्द सुन लेना चाहिए। यदि अदालत किसी अपराधी को छोड़ने के बजाय उसका मुकद्दमा करना चाहती है तो ऐसी जगह उसे बन्दी रखे जो न तो जेल हो और न पुलिस की हवालात (धारा १९)। मद्रास बाल-अधिनियम इस विषय में बहुत उदार तथा आदर्श है। उसके अनुसार बाल-अपराधी को किसी सम्मानित व्यक्ति, परोपकारी संस्था या समाज-कल्याण करनेवाली समितियाँ, गाँव का मुखिया या जहाँ सुरक्षागृह हो वहाँ रखना चाहिए। लड़कियों के लिए भी यही नियम है, बल्कि कुछ अधिक कठोर है। किसी भी दशा में लड़की को पुलिस की हवालात में नहीं रखा जा सकता। मजिस्ट्रेट चाहे तो लड़की को किसी ऐसे भद्र पुरुष के ज़िम्मे कर सकता है जो उसे समय पर अदालत में पेश कर दे।

बम्बई तथा मद्रास के बाल-अधिनियमों के अनुसार किसी भी स्थान को अवरोध-गृह घोषित किया जा सकता है। जिस कन्या या बालक को किसी के पास रख दिया जाय, उसका घर ही अवरोधगृह मान लेना चाहिए। कन्याओं के लिए निश्चित अवरोधगृह का निरीक्षण यथाशक्य महिलाओं द्वारा ही होना चाहिए और उन्हीं के प्रबंध में होना चाहिए। बम्बई सरकार ने कुछ अस्पतालों को भी, अंध आश्रम, महिला-आश्रम, अनाथालाय इत्यादि को भी "अवरोधगृह" के रूप में स्वीकार कर लिया है। बम्बई में इस समय ऐसी ४३ संस्थाएँ सरकार से मान्यता प्राप्त हैं जिनके द्वारा न केवल बाल-अपराधियों के नियंत्रण का बल्कि उनके सुधार का कार्य भी होता है। इन संस्थाओं का प्रबंध ग़ैरसरकारी समितियों के हाथ में है। इनमें प्रमुख बम्बई प्रदेश

बाल-सहायक समिति को सरकार से पूरा खर्च मिलता है तथा अन्य समितियों को भी सहायता मिलती है।

अवरोधगृह अथवा सुरक्षागृह[1] का संगठन बम्बई तथा मद्रास में समान रूप से है। मद्रास में छः अवरोधगृह हैं। पश्चिम बंगाल में लड़कों के लिए तथा लड़कियों के लिए अलग-अलग एक-एक सुरक्षा (अवरोध) गृह हैं। ये दोनों ही कलकत्ता में हैं। परिवीक्षण अधिकारी बाल-अपराधियों को जमानत पर छोड़ने के विरुद्ध है। उनका कहना है कि इस प्रकार छोड़ देने से उनकी निगरानी से जो बातें मालूम होती हैं, जो परीक्षण होता है, उसका लाभ नही प्राप्त होता ।[2]

परिवीक्षण (प्रोबेशन) का कार्य उत्तर प्रदेश में भी काफ़ी उन्नत है। यहा के १४ जिलों में परिवीक्षण अफसर हैं और अन्य जिलों में भी योजना को लागू करने का विचार है। इस सम्बन्ध मे हम आगे चलकर विचार करेंगे। बाल-अपराधियों के लिए उचित परामर्श देने के लिए तथा आम तौर पर सभी समस्यामय बच्चों के उचित मार्ग-निर्देशन के लिए जिस प्रकार की "क्लिनिक" होनी चाहिए वह हमारे देश में प्रायः नही है। कुछ थोड़ा बहुत कार्य बम्बई तथा पूना की दो संस्थाएँ—दो "क्लिनिक" कर रही हैं। बाल-अपराधियों को दस्तकारी, शिक्षा, कला तथा अनेक उपयोगी कार्य सिखलाने के लिए उत्तर प्रदेश, बम्बई, मद्रास आदि में बड़े अच्छे केन्द्र हैं। उत्तर प्रदेश का किशोर-सदन तथा बम्बई का उमरखेडी का केन्द्र इसके लिए प्रसिद्ध हैं। मद्रास में भी बालकेन्द्र तथा कन्याकेन्द्र में ऐसी शिक्षा का समुचित प्रबंध है।

स्याम देश में अवरोधगृह को बाल-कल्याण केन्द्र कहते हैं। बाल-कल्याण समिति का पदेन अध्यक्ष उस "चांगवाद" यानी ज़िले का कमिश्नर होता है। सभापति "मुआंग" यानी नगर की म्युनिसिपल कौंसिल का चेयरमैन होता है। इसके तीन सदस्य न्याय मंत्रालय से नियुक्त होते हैं तथा "चांगवाद" का हेल्थ अफ़सर और जिला विद्यालय निरीक्षक इसके पदेन सदस्य होते हैं। थाई बाल-अधिनियम की धारा ३३ के अनुसार यदि अदालत उचित समझे तो बाल-अपराधी को बाल-कल्याण समिति की देखरेख में भेज सकती है। जापान के बाल-अधिनियम की धारा १७ के अनुसार "गृह

१. Detention Centres & Remand Homes.

२. Sectional Conference of Probation Officers, Bombay, 1947.

या पारिवारिक अदालतें" यह निर्णय करेंगी कि विचाराधीन बाल-अपराधी परिवीक्षण अफ़सर या "अवरोधगृह" या "वर्गीकरणगृह" कहाँ रहेगा। स्याम देश की तरह जापान में भी अवरोधगृह सरकारी प्रबंध में हैं। अवरोधगृह अथवा "वर्गीकरण" (किस श्रेणी में रहने योग्य है) गृह में केवल पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक परीक्षा ही नहीं होती, डाक्टरी जाँच, पारिवारिक जाँच आदि सभी कुछ होता है।

बच्चें को ऐसे आश्रमों में रखना जहाँ पर निकट से उसका "अध्ययन" किया जा सके, यह पता लगाया जा सके कि यदि वह नटखट है, दुष्ट है तो क्यों है—या क्यों उसकी प्रवृत्ति अपराधों की ओर जा रही है, इसकी जाँच की सहूलियत—अपराधी बनने के पूर्व की समीक्षा की सहूलियत भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका, थाईलैंड तथा फ़िलप्पीन देशों में नहीं है। भारत में बम्बई में ऐसा कुछ प्रबंध है पर जिस प्रकार की ऐसी संस्थाएँ या गृह होना चाहिए वैसा प्रबंध नहीं है। जापान में अवश्य इसका बड़ा अच्छा संगठन है। ऐसे केन्द्र उस देश में चारों ओर हैं जहाँ सज़ा के पहले या बाद में लड़का या लड़की बारीक जाँच के लिए भेजा जाता है, रखा जाता है। वहीं पर यह निश्चय होता है कि उसकी व्यक्तिगत चिकित्सा किस प्रकार से हो, उसे किस श्रेणी में रखा जाय—यानी किस प्रकार की शिक्षा उसे दी जाय। अदालत यह भी आदेश दे सकती है कि बच्चे की किस विषय में छानबीन हो, जाँच हो, सूक्ष्म परीक्षण हो। धारा १६ के अनुसार बाल अपराधी के "स्वभाव" की जाँच कराना काफ़ी ज़रूरी है। उसके बारे में, उसके परिवार के बारे में, उसके साथियों के बारे में—हर प्रकार की जाँच की जाती है। तब यह निश्चय हो पाता है कि उसने अपराध क्यों किया और उसे स्वस्थ नागरिक किस प्रकार बनाया जाय। स्पष्ट है कि इतनी जाँच-पड़ताल के बाद उस लड़के या लड़की के हृदय की तसवीर सरकार के सामने होती है और जहाँ पर गन्दगी हो, उसे दूर कर उसे स्वस्थ नागरिक बनाया जा सकता है।

अध्याय २२

बाल-अदालतें

बाल अपराधी को सुधारने या दंड देने के लिए आजकल विशेष अदालतें नियुक्त हैं जिन्हें 'बाल-अदालत' कहते हैं। सब एशियाई देशों में ऐसा नहीं है। अधिकांश देशों में साधारण अदालतें ही उनका अभियोग सुनती हैं।

जापान—जापान में वही साधारण फ़ौजदारी की अदालतें उनका मुक़दमा सुन सकती हैं जिनको ऐसा अधिकार प्राप्त है तथा इनके अलावा (१) विशेष पारिवारिक अदालतें तथा (२) बाल-कल्याण केन्द्र भी यही कार्य करते हैं। जापान की पारिवारिक अदालतें सन् १९४७ के नियम ५९ तथा सन् १९४८ के बाल-अधिनियम सं० १६८ के अनुसार संगठित हुई थीं। ये पारिवारिक अदालतें २० वर्ष के नीचे के लड़के लड़कियों के मुक़दमे सुनती हैं। उन बालिग़ लोगों का मुक़दमा भी यहीं होता है जिन पर बच्चों को बिगाड़ने का, भ्रष्ट करने का अभियोग होता है। पारिवारिक झगड़े, माता-पिता की लड़ाई या अभिभावक की ख़राबी के कारण दूसरे अभिभावक की नियुक्ति आदि का काम भी इन्हीं के द्वारा होता है। बाल-कल्याण अधिनियम के अनुसार संगठित बाल-कल्याण समितियों का अधिकार १४ वर्ष से नीचे के बच्चों पर है और ये ग़ैर-अदालती संस्थाएँ हैं जिनमें प्रथम अपराधी छोटे-मोटे अपराध के आते हैं। इनके सामने घुमन्तू तथा आवारागर्दी के मामले, बच्चों के साथ निर्दयता, पारिवारिक मत-भेद आदि के मामले भी आते हैं। जापान में पारिवारिक अदालतों तथा बाल-कल्याण केन्द्रों का ही बाल-अपराधों के सम्बन्ध में अधिकतम उपयोग होता है। ऐसे केन्द्र के प्रधान को "तो" या "दो" कहते हैं।

भारत—स्याम की राजधानी बैंकाक, पाकिस्तान की राजधानी कराची तथा भारतवर्ष में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विशेष बाल-अदालतें हैं। पर आदर्श बाल-अदालत, भारतवर्ष में, केवल बम्बई में है जिसमें एक महिला विचारपति बैठती हैं, जिनका अन्य किसी न्यायालय से सम्बन्ध नहीं होता तथा जिनके इजलास में पुलिस कर्मचारी बाल-अभियुक्तों के साथ अपनी वर्दी में नहीं आ सकते, यानी उनको सादे लिबास में आना पड़ता है ताकि बच्चे पर बुरा प्रभाव न पड़े। बम्बई तथा मद्रास

प्रदेश में बाल-अपराधी के सम्बन्ध में सभी कार्य सर्टिफाइड स्कूल्स, अवरोधगृह, सुरक्षागृह, सुधारगृह, परिवीक्षण विभाग आदि "चीफ इंस्पेक्टर सर्टिफाइड स्कूल्स" के अन्तर्गत हैं। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में परिवीक्षण-विभाग प्रधान कारागार-निरीक्षक के अधीन है। पर स्याम देश में, जहाँ केवल बैंकाक में एक बाल-अदालत है तथा अन्य नगरों के लिए अन्य अदालतों में काम करनेवाले विचारपतियों को "बाल-अदालत" का अधिकार दे दिया गया है, सम्राट् द्वारा नियुक्त समस्त बाल-अदालतों का एक प्रधान न्यायाधीश होता है। बाल-अपराध तथा बाल-कल्याण का समस्त कार्य इस पदाधिकारी के अधीन है। बिना इस अधिकारी की अनुमति के ग़ैर-सरकारी बाल-छात्रावास, बाल-अस्पताल, बाल-सदन या लड़के-लड़कियों के लिए स्कूल नहीं खोला जा सकता। जापान, भारत—एशिया के प्रायः सभी देश अन्य अदालतों के जज लोगों को या मैजिस्ट्रेट को "बाल-अदालत" का अधिकार देकर काम चलाते हैं। उत्तर प्रदेश में हर ज़िले में, जहाँ पर प्रोबेशन सेवा लागू है, एक प्रोबेशन मजिस्ट्रेट होता है। पर यह अधिकारी और भी काम करता है। बम्बई के बाल-अधिनियम १९४८ की धारा ३८ के अनुसार "परिवीक्षण अफसर" इस अधिनियम के अन्तर्गत अदालत का एक कर्मचारी होगा तथा बाल-अदालत के नियंत्रण में ही कार्य करेगा।" बंगाल तथा मद्रास के बाल-अधिनियमों में इस प्रकार की कोई स्पष्ट धारा नही है।

जापान में, सन् १९४८ के बाल-अधिनियम के अनुसार, पारिवारिक अदालतों के अधीन जो विचारणीय बाल अपराधी आते हैं, उनकी व्याख्या क़ानून की धारा ३ के अनुसार निम्न प्रकार से है। बाल-अपराध में रुचि रखनेवालों को यह व्याख्या रोचक प्रतीत होगी।

१. कोई बालक या बालिका जिसने कोई अपराध नही किया हो।

२. कोई बालक या बालिका जिसने किसी दंडविधान या आर्डिनेन्स की अवज्ञा की हो।

३. नीचे लिखे कारणों से जिससे यह आशंका हो कि अपने चरित्र या वातावरण के दोष से वह अपराधी बननेवाला है।

४. (क) अपने अभिभावकों के साधारण नियंत्रण में भी नहीं रहता।
   (ख) बिना किसी ख़ास कारण के घर छोड़कर भाग जाता है।
   (ग) पहले से बदनाम और बदचलन लोगों का साथ करता है या ऐसे स्थान पर जाता है जहाँ नियम-विरुद्ध काम होता है।

(घ) वह आदतन ऐसा काम करता है जिससे उसके अथवा दूसरों के चरित्र की हानि होती है।

बम्बई, कराची, स्याम तथा जापान में यह उपयोगी नियम है कि वाल-अपराधियों का नाम न तो जाहिर हो, न उसका विज्ञापन हो और न ऐसा कोई काम हो जिससे उनका भविष्य ख़राब हो जाय। बाल-अदालतों की कार्यवाही देखने की इजाजत नहीं है। अखबार वाले भी ऐसी अदालतों में नही जा सकते।[१] मद्रास तथा बंगाल के बाल-अधिनियम इस विषय में मौन है पर व्यवहार में बम्बई की प्रथा का ही वहाँ पर पालन होता है। थाईलैंड में बाल-अदालत कार्य-प्रणाली अधिनियम धारा ३९ के अनुसार—

बाल-अदालतों की कार्यवाही बन्द कमरे में होगी और ऐसे मुक़दमों के समय केवल निम्नलिखित लोग ही उपस्थित रह सकेंगे—

१. अभियुक्त, उसके कानूनी सलाहकार तथा वह व्यक्ति जो उसको (अभियुक्त को) अदालत की ओर से अपनी निगरानी में रखे हो।

२. उसके माता-पिता, अभिभावक, या वह व्यक्ति जिसके साथ वह रहता हो।

३. अदालत अपने जिन अधिकारियों को वहाँ मौजूद रहने की इजाज़त दे।

४. सरकारी वकील।

५. गवाह, विशेषज्ञ गवाह तथा दुभाषिया।

६. परिवीक्षण अधिकारी या बाल-कल्याण केन्द्र के अन्य अधिकारी या बाल-कल्याणसमिति के पदाधिकारी या सदस्य।

७. या अन्य कोई व्यक्ति जिसे उपस्थित रहने की अदालत अनुमति देती है।

बम्बई बाल-अधिनियम १९४८ की धारा १५ के अनुसार—

इस धारा में निर्दिष्ट के अतिरिक्त बाल-अदालत की किसी बैठक में वही व्यक्ति उपस्थित रहने पायेगा यदि वह—

(अ) अदालत का सदस्य या अधिकारी हो।

१. जापान का बाल अधिनियम, धारा ६२ और २२, थाईलैंड बाल-अदालत अधिनियम, धारा ५७, ६२ और ३९; बम्बई प्रदेश बाल-अधिनियम, धारा २३ और २४, पाकिस्तान में लागू बाल अधिनियम बम्बई, १९२४ धारा २७ बी०।

(आ) मुकदमे से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो, ऐसे लोगों में पुलिस कर्मचारी भी शामिल है।

(इ) जिसे अदालत विशेष अनुमति दे।

भारतवर्ष में, जहाँ भी बच्चों के मुक़दमे होते हैं, आम तौर पर खुली अदालतें नही होती और चेष्टा की जाती है कि बाल-अपराध का विज्ञापन न हो। बच्चों को कोड़ा मारने की सज़ा भारत में एकदम बन्द कर दी गयी है। बच्चों को अर्थदंड भी नहीं दिया जाता। माता-पिता या अभिभावकों पर उस दशा में अर्थदंड हो सकता है जब यह साबित हो जाय कि बाल-अपराधी के क़सूर में उनकी भी जिम्मेदारी थी। यह नियम १४ वर्ष के नीचे के बच्चों के लिए है। १४ से १६ वर्ष के बच्चों पर जुर्माना होता है, पर मद्रास तथा बंगाल के क़ानून के अनुसार यह जुर्माना परिवार वालों को अदा करना पड़ता है या वे जुर्माना न देने पर जेल भी भेजे जा सकते है। जापान, थाईलैंड तथा पाकिस्तान में बाल-अपराधी को दूसरे के प्रति की गयी हानि के लिए क्षतिपूर्ति नही करनी पड़ती। बर्मा, लंका, फ़िलप्पीन द्वीपसमूह तथा भारत में अदालत की अनुमति से क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। भारतीय दंड-विधान की धारा ५४५ के अनुसार अपराधी पर लगाये गये अर्थदंड में से पीड़ित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति की जा सकती है, पर नये बाल-अधिनियम में इसका कोई जिक्र नही है। फिर भी हमारा कानून इस दृष्टि से दोषपूर्ण है कि उसमें स्पष्ट नही किया गया है कि अर्थदंड कौन चुकायेगा, बाल अपराधी या उसका अभिभावक।

बाल-अपराधी अदालतों में, भारत तथा कराची नगर में, अभियुक्त की ओर से कानूनन कोई वकील रखने की ज़रूरत नही है। बम्बई में तो नियम है कि यदि वकील रखना है तो बाल-अदालत से अनुमति लेनी पड़ेगी। जापान में बाल अभियुक्त के लिए "पैरोकार" रखा जा सकता है। यदि वह पैरोकार वकील है तो अदालत से अनुमति लेने की ज़रूरत नही है, अन्यथा ज़रूरत पड़ेगी। पर स्याम देश में नियम है कि यदि बाल अभियुक्त अपने व्यय से वकील नहीं रख सकता तो वह चाहे या न चाहे, सरकारी ख़र्च से उसके मुकदमे की पैरवी के लिए वकील रखना आवश्यक है।

कोड़े लगाना

भारतवर्ष में बच्चों को कोड़ा लगाने की प्रथा एकदम बन्द कर दी गयी। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का इस सम्बन्ध में सन् १९५८ में आदेश जारी हो चुका है। पर बर्मा, लंका तथा पाकिस्तान में लड़कियों को छोड़कर, कोड़े लगाने का दंड दिया

जा सकता है। स्याम देश में मंत्रिमंडल के आदेश सं० ७ के अनुसार कोड़े लगाने के नियम निम्नलिखित हैं—

"किसी बच्चे या बाल अपराधी को कोड़े की सजा देने के समय यह आवश्यक है कि बाल-कल्याण केन्द्र के संचालक नीचे लिखी बातों का ध्यान रखें—

१. बिना डाक्टरी जाँच तथा सर्टिफिकेट के कि अभियुक्त कोड़ा खाने के योग्य है, कोड़े न लगाये जायँ।

२. कोड़ा लगाने की आज्ञा संचालक के सामने दी जाय।

३. गोल बाँस या रतन बेंत की छड़ी हो जो एक सेंटीमीटर से ज्यादा मोटी न हो तथा लम्बाई में एक मीटर से बड़ी न हो।

४. बेंत तब लगाया जाय जब अपराधी खड़ा रहे तथा पैर के पीछे यानी चूतड़ों पर लगे।

५. छः बार से अधिक बेंत से प्रहार न किया जाय और उसके बीच में भी यदि डाक्टर मना कर दे तो कोड़ा लगाना बन्द कर दें।

६. कोड़ा लगाने के बाद अपराधी की डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिए।

प्रोबेशन (परिवीक्षण)

प्रोबेशन (भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हिन्दी शब्द परिवीक्षण) का बड़ा महत्त्व है। इस प्रणाली द्वारा न केवल बाल-अपराधी का जीवन जेलों में नष्ट होने से बचता है, बल्कि उसका सुधार भी हो जाता है। प्रोबेशन अफसर का कार्य बड़ा नाजुक तथा कठिन है। पर उसके द्वारा समाज का बड़ा कल्याण होता है। उदाहरण के लिए हम उत्तर प्रदेश में, जहाँ १८ वर्ष तक केवल १२ ज़िलों में ही प्रोबेशन अधिनियम लागू था, सन् १९३९ से १९५७ तक इस विभाग के द्वारा कितना कार्य हुआ है, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा —

१ अक्टूबर १९३९ से ३१ दिसम्बर १९५७ तक उत्तर प्रदेश में नीचे लिखी संख्या में बाल-अपराधी प्रोबेशन अफसरों की देखरेख में छोड़े गये तथा उसका निम्नलिखित परिणाम हुआ। इन अपराधियों में रेलवे ऐक्ट धारा १२२ के अन्तर्गत भी अपराधी हैं।

१. परिवीक्षण अधिकारियों के अधीन परिवीक्षणीय अपराधियों की संख्या—२३८०

२. परिवीक्षणीय अपराधियों की संख्या जो अपनी निगरानी तथा परिवीक्षण अवधि में असफल साबित हुए—१३५ यानी ५·६ प्रतिशत।

३. परिवीक्षणीय अपराधी जो अपने सुधार की अवधि में सुधर गये, सफल हुए—१८४४ या ७७·४ प्रतिशत।

४. ३१ दिसम्बर १९५७ को परिवीक्षण अफ़सरों की निगरानी में परिवीक्षणीय अपराधियों की संख्या ४०१ या १७ प्रतिशत।

२ अक्टूबर १९५४ से ३१ दिसम्बर १९५७ तक २४ वर्ष की उम्र के नीचे के वे प्रथम अपराधी जो परिवीक्षण में छूटने के अधिकारी थे तथा जिनको परिवीक्षण अफसर की निगरानी में रखा जा सकता था। (जितने अपराधियों का चालान हुआ, वही संख्या उपलब्ध है)।

(१) २-१०-१९५४ से ३१-१२-१९५४ तक	२६४
(२) १९५५	१,०९५
(३) १९५६	८२३
(४) १९५७	६११[1]

उपरिलिखित अपराधियों के सम्बन्ध में कितने अपराधियों के विषय में (२४ वर्ष की उम्र से कम के प्रथम बाल अपराधी) परिवीक्षण अफसरों ने उनके चरित्र, परिवार, अपराध करने के पूर्व का जीवन, पारिवारिक वातावरण, शारीरिक तथा मानसिक स्थिति इत्यादि की जाँच कर अदालत को सूचना दी—

(१) २-१०-१९५४ से ३१-१२-१९५४ तक—	१५८
(२) १९५५	७०३
(३) १९५६	५६१
(४) १९५७	३९५

अब हम नीचे वह तालिका दे रहे हैं जो इस तालिका का सबसे रोचक अंग है। २ अक्टूबर १९५४ से ३१ दिसम्बर, १९५७ तक परिवीक्षण के अंतर्गत, २४ वर्ष से कम उम्र के जितने प्रथम अपराधी परिवीक्षण अफ़सर के अंतर्गत रखे गये थे, उनका क्या परिणाम हुआ—

१. इन आँकड़ों से यह भी स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश में बाल अपराध घटा है।

वर्ष	परिवीक्षणीय अपराधियों की संख्या जिनका मामला समाप्त हुआ	परिवीक्षणीय अपराधी जिनका परिवीक्षण काल सफलतापूर्वक समाप्त हुआ	परिवीक्षणीय अपराधी जिनको सुधारने में सफलता नहीं मिल सकी
२-१०-५४ से ३१-१२-५४ तक	१७	१७ या १००%	एक भी नहीं
१९५५	११७	११५ या ९८·३%	दो या १·७%
१९५६	३८७	३८४ या ९९·२%	दो या ०·८%
१९५७	५७२	५६९ या ९९·५%	तीन या ०·५%
योग चार वर्ष का	१०९३	१०८५ या ९९·२ प्रतिशत	आठ या ०·८ प्रतिशत

जेल में न भेजकर, जीवन तथा चरित्र को नष्ट न कर, नये ढंग से समाज तथा खुले वातावरण में रखकर सुधार करने के तरीके की महत्ता को स्थापित करने के लिए ऊपर दिये गये आँकड़ों से बढ़कर और क्या प्रमाण दिया जा सकता है ? उत्तर प्रदेश के १०९३ बाल अपराधियों को जेल में रखकर सड़ाने के बजाय, उन पर करदाता का औसतन दो रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से खर्च करने के बजाय तथा इतने ही "दुबारा अपराधी" बनाने के बजाय, हमारे-आपके इन बच्चों को सुधारने का यह कितना अच्छा उपाय है, यह पाठक स्वयं समझ जायँगे।

बर्मा में परिवीक्षण प्रथा नहीं है, लंका में है। भारतवर्ष में बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल के कुछ भाग में, मध्य प्रदेश, आंध्र तथा दिल्ली में प्रोबेशन प्रणाली है। बिहार तथा राजस्थान में भी शीघ्र चालू होनेवाली है। जापान में "परिवीक्षण पर (१) पारिवारिक अदालतों तथा (२) अपराधी की पुनर्वास संस्था के द्वारा अपराधी को छोड़ा जाता है। पाकिस्तान में असली प्रोबेशन प्रणाली केवल कराची नगर में लागू है। फिलप्पीन में अभी तक यह प्रथा राजधानी मनीला में ही लागू हो सकी है। थाईलैंड याने स्याम देश में अभी तक केवल राजधानी बैंकाक की बाल-अदालत के अधीन, केवल एक नगर के लिए, प्रोबेशन सेवा आयोग है।

भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न प्रदेशों ने अपना अलग-अलग प्रोवेशन ऐक्ट बना रखा था। सब जगह इसका विभाग तथा संगठन भी भिन्न था। जैसे, पश्चिम बंगाल में (कलकत्ता में) प्रोबेशन का मुहकमा केन्द्रीय बाल-अदालत के अधीन

था। मई १९४६ में मद्रास सरकार ने इसे प्रधान कारागार-निरीक्षक के अधीन कर दिया। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी सन् १९५६ से यही कर दिया है। बम्बई में प्रोबेशन सेवा बाल-सहायक समिति नामक नीम-सरकारी संस्था के अधीन है। जापान में ८०३ प्रोबेशन अफसर हैं।[1] इतने समूचे भारतवर्ष में नहीं हैं। हर प्रदेश में इनके अधिकारों में भी भेद है। कहीं २१ वर्ष तक के प्रथम अपराधी छोड़े जाते हैं और कहीं २४ वर्ष तक के प्रथम अपराधी परिवीक्षण अफसर के अधीन होते है।

जार्डन—पश्चिमी एशिया के राज्यों में केवल जार्डन में प्रोबेशन सर्विस है और कहीं नहीं है—मिस्र या सीरिया में भी नही है—वैसे ही भारत के बहुत से प्रदेशों में इस नाम की कोई चीज नहीं है। जार्डन में बाल-अधिनियम धारा १२—नियम सं० ८३, ५१—के अनुसार १५ वर्ष की उम्र के नीचे के बच्चों को सरकारी प्रोबेशन अफसर या समाज-कल्याण अफसर बाल-अदालत के सामने पेश कर यह सूचित कर सकता है कि "उस बच्चे की रखवाली तथा संरक्षण" की आवश्यकता है। पर इस श्रेणी में निम्न प्रकार के ही बच्चे आ सकते है—

१. वह बच्चा ऐसे परिवार या अभिभावकों द्वारा पाला जा रहा है जो शराबी हैं तथा बच्चे की देखरेख करने में असमर्थ हैं।
२. बालिका किसी ऐसे पिता की लड़की है, चाहे वह जायज या नाजायज हो, जो अपनी जायज या नाजायज किसी कन्या के साथ व्यभिचार करने के लिए दंडित हो चुका है।
३. बालक या बालिका किसी प्रमाणित चोर या वेश्या का साथ देता या देती हो, बशर्त्ते कि वह वेश्या स्वयं उसकी माता न हो।
४. वह लड़की किसी वेश्या के मकान में रहती हो या उसके एक कक्ष में रहती हो, जिससे उसके बर्गलाये जाने का खतरा हो।

बाल-अदालत ऐसे बच्चों को प्रोबेशन अफसर की निगरानी में रख सकती है। बाल अपराधियों को भी वह परिवीक्षक की निगरानी में छोड़ सकती है।

भारत—भारत सरकार का "प्रोबेशन आव आफेंडर्स ऐक्ट, १९५८"[2] अपराधी

१. A Guide to the Japanese Family Court, Page 7—**१९५३ में यह नियुक्तियाँ हुई थीं।**

२. The Probation of Offenders Act, 1958, No. 20 of 1958, The Gazette of India, Delhi, May, 19, 1958.

परिवीक्षण अधिनियम अब सारे देश में लागू हो गया है। कई दृष्टियों से यह बड़ा व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण नियम है। अभी तक के चालू नियमों में काफी संशोधन तथा परिवर्तन हो गया है और अपराधी के लिए अधिक उदार नियम बन गया है। इस कानून में दोष भी हैं पर हम यहाँ पर कानूनी विवेचन नहीं करना चाहते। इस नियम के अनुसार —

धारा ३—दफा ३७९, ३८०, ३८१, ४०४ या ४२० (चोरी-जालसाजी आदि) के अन्तर्गत अपराध करनेवाला या ऐसा कोई अपराध करनेवाला जिसमें दो वर्ष तक की कैद हो सकती है, या जुर्माना हो सकता है, या दोनों हो सकते हैं। यदि अदालत ने उसे दोषी पाया पर जिस परिस्थिति में उसने अपराध किया है तथा उसके पूर्व के चरित्र का विचार कर अदालत उस अपराध के लिए लागू होनेवाली तत्कालीन दंडविधान की धाराओं में या इस अधिनियम की दफा ४ में परिवीक्षण पर छोड़ने के स्थान पर केवल 'भर्त्सना' करके अपराधी को छोड़ सकती है।

धारा ४—यदि कोई व्यक्ति ऐसे अपराध के लिए अदालत द्वारा दोषी पाया गया है जिसमें प्राणदंड या आजन्म कारावास की सजा न हो पर अपराध की परिस्थिति और उसके रूप को ध्यान में रखते हुए उसे नेकचलनी के प्रोबेशन पर छोड़ देना उचित हो तो दंड-विधान की इस अपराध सम्बंधी धारा का बिना खयाल किये अदालत उसे तुरन्त कोई सजा न देकर यह आदेश दे सकती है कि उससे जामिन लेकर या बिना जामिन के यह इकरारनामा लेकर परिवीक्षण पर छोड़ सकती है कि जब कभी अदालत का आदेश होगा वह सजा प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष के भीतर हाजिर हो जायगा और इस अवधि में वह अमन और अमान (शान्ति और व्यवस्था) कायम रखेगा तथा अपना चालचलन ठीक रखेगा।

बशर्ते कि अदालत ऐसे किसी अपराधी को परिवीक्षण पर नहीं छोड़ेगी जिसमें उसे संतोषजनक प्रमाण न मिल जाय कि अपराधी या यदि उसका कोई जामिन है तो वह जामिन किसी निश्चित स्थान पर रहता है, उसका नियमित कोई व्यवसाय या कामकाज है तथा वह स्थान अदालत के नियंत्रण के दायरे में है और अपने इकरारनामे की मीयाद तक अपराधी उसी स्थान में रहेगा।

धारा ६—यदि २१ वर्ष की उम्र से नीचे के किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा अपराध किया है जिसमें आजन्म कारावास के अतिरिक्त अन्य मीयाद का कारा-

वास मिलना चाहिए, (१) तो जब तक अदालत को यह विश्वास न हो जाय कि जिस परिस्थिति में उसने अपराध किया है तथा जैसा उसका चरित्र रहा है उसे देखते हुए उसका कारागार के बाहर रहना ठीक नहीं है, वह अपराधी जेल न भेजकर परिवीक्षण पर छोड़ दिया जायगा।
(२) अपने इस सन्तोष के लिए धारा ३ तथा ४ के अन्तर्गत उसे छोड़ना उचित है या नही, अदालत उस व्यक्ति के सम्बंध में प्रोबेशन अफसर से रिपोर्ट तलब करेगी जो उस व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा चरित्र की स्थिति के सम्बंध में होगी......

इस कानून में कुल मिलाकर १९ धाराएँ है। पर तीन मुख्य धाराएं इसलिए दी गयी हैं कि कानून की मंशा समझ में आ सके। नये नियम ने परिवीक्षण पर छोड़ने के लिए "अधिक से अधिक" २४ वर्ष की उम्र का बंधन समाप्त कर दिया है। उसके द्वारा "जघन्य अपराध", जैसे हत्या या सशस्त्र डकैती को छोड़कर प्रायः सभी अपराधों में अपराधी, चाहे वह किसी उम्र का हो, चाहे उसे दुबारा सजा भी क्यों न मिली हो, चाहे वह एक बार परिवीक्षण पर ही क्यों न छोड़ दिया गया हो, पुनः परिवीक्षण पर छोड़ा जा सकता है तथा परिवीक्षण अफसर से कोई भी अदालत अपने लिए रिपोर्ट आदि प्राप्त करने का काम ले सकती है। दूसरे महत्त्व की बात यह है कि बहुत ही विकट बात यदि न हुई तो २१ वर्ष के नीचे हर एक अपराधी को, चाहे वह आदतन अपराधी क्यों न हो, परिवीक्षण पर छोड़ना अनिवार्य है। इस नियम का अपराधी-जगत् पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ेगा। हमारा ऐसा विश्वास है कि यदि समुचित संख्या में प्रोबेशन अफ़सर नियुक्त हो गये तो एक ओर जेलों की आबादी में काफ़ी कमी होगी, दूसरी ओर मनुष्य को अपना चरित्र सुधारने का अधिक अवसर प्राप्त होगा। युगों तक अपराधी को जेल में सड़ाकर नष्ट करने के बाद अब समाज जेल के बाहर उसकी चिकित्सा कर, समाज का उपयोगी अंग बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

यूरोप में प्रोबेशन सेवा

प्रोबेशन यूरोप की चीज़ नहीं है। अपराधी-जगत् के उद्धार के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की यह बहुत बड़ी देन है। इसका प्रारम्भ बड़े रोचक ढंग से हुआ। आज के प्रोबेशन अफसरों का गुरु जॉन आगस्टस नामक एक मोची था। सन् १८४९ में, संयुक्त राज्य अमेरिका के मासाचुसेट नामक प्रदेश के बोस्टन नगर के रहनेवाले इस मोची ने पुलिस की अदालत से एक शराबी आदमी को जमानत पर छुड़ा लिया। वह शराबी कुछ ही दिनों में एकदम सुधर गया और शिष्ट नागरिक बन गया। इस

अनुभव से प्रोत्साहित होकर १८४९ से १८५६ तक, सात वर्ष में १५,३२० डालर (एक डालर पाँच रुपये का) की जमानत देकर जान आगस्टस ने २५३ पुरुषों तथा १४९ स्त्रियों को जेल से छुड़ाया था और उसकी जमानत की एक पाई की भी हानि नहीं हुई। उसके छुड़ाये हुए सभी स्त्री-पुरुषों का पूरी तरह से सुधार हो गया। इस प्रकार अवैतनिक परिवीक्षण अफसर की श्रेणी तथा परम्परा का प्रारम्भ हुआ।[1] सरकारी तौर पर बोस्टन नगर तथा मासाचुसेट प्रदेश में इस प्रथा का प्रारम्भ सन् १८७८ में हुआ। बोस्टन की अदालतों में १८७२ से ही पादरी कुक बहुत जाया करते थे और उन्होंने विचारपतियों का इतना विश्वास प्राप्त कर लिया था, कि जब वे यह देखते कि किसी अभियुक्त को सजा से अधिक एक सहानुभूतिपूर्ण मित्र की आवश्यकता है, तो वे उस अपराधी को पादरी कुक के सुपुर्द कर देते थे। सन् १८७८ में सफक प्रान्त में, जिसमें बोस्टन नगर था, इस प्रकार निगरानी पर छोड़ना कानूनी तौर पर जायज मान लिया गया। १८८० से यह नियम समूचे प्रदेश के लिए लागू हो गया है।[2]

सन् १८९९ में रोड्स द्वीप ने तथा मिन्नेसोटा और इलनाय प्रदेशों ने "बाल तथा वयस्क" अपराधियों को प्रोबेशन पर छोड़ने का नियम बनाया। सन् १९२१ तक ३५ प्रदेशों में यह नियम लागू हो गया था और अब तो समस्त संयुक्तराज्य में लागू है। इंग्लैंड में प्रोबेशन ऐक्ट सन् १९०७ में पहली बार बना। सन् १९१४ के नियम ने अदालतों को आदेश दिया कि परिवीक्षण की अवधि में बाल-अपराधी को सरकार द्वारा स्वीकृत, मान्यता-प्राप्त अथवा सहायता-प्राप्त संस्थाओं में रखा जाय और वहीं उसका चरित्र सुधारा जाय। सामाजिक दृष्टि से परिवीक्षण का बड़ा महत्त्व है। एक प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है—

"सामाजिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि परिवीक्षण मैत्रीपूर्ण देखरेख में शिक्षणीय निर्देशन तथा मार्गप्रदर्शन है। केवल निगरानी करना ही देखरेख करना नहीं है। परिवीक्षण में बाल अपराधी के जीवन से इतनी घनिष्ठता प्राप्त कर ली जाती है, विशेषकर उसके पारिवारिक जीवन से बड़ी निकटता प्राप्त कर ली जाती है। परिवीक्षण का यह प्रधान कार्य है—निकटता तथा आत्मीयता प्राप्त करना तथा इसके

१. Sutherland—"Criminology"—Lippincott, London, 1924—Page 562.

२. Robinson—Penology in the United States, The John Co., Winston Co., Philadelphia, 1923, Page 195.

लिए आवश्यकता है बड़े सुलझे हुए, शिक्षित, सहानुभूतिपूर्ण अनुभवी पुरुष—स्त्री प्रोबेशन अफसरों की।"[१]

सन् १९२५ में इंग्लैंड में अंतर्राष्ट्रीय दंड सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में प्रोबेशन पर काफी गम्भीरता तथा गवेषणापूर्ण विचार हुआ। इंग्लैंड के प्रधान न्यायाधीश लार्ड हिवर्ट ने इस प्रणाली का समर्थन करते हुए कहा था—

"....समस्या यह है कि हमको एक ऐसा अधिक लाभदायक तथा सन्तोषजनक उपाय चाहिए जिससे हमारे समाज-कल्याणकारी राज्य का वह उद्देश्य पूरा हो सके जिसके लिए आज हम कारागार का दंड देते है...हमें समूचे समाज का कल्याण देखना है। हमे यह देखना है कि वैसी ही भूल और लोग न करें...समाज वर्गो से नही, व्यक्तियों से बनता है, अतएव हर एक व्यक्ति का मामला अथवा गुण-दोष अलग-अलग देखना तथा समझना पड़ेगा। हम अक्सर लोगों को "निश्चित दंड" की बात करते सुनते हैं (यानी एक प्रकार के अपराध में एक प्रकार का ही दंड होना चाहिए) पर, इसका मतलब है विचारपति अपना काम ही, कर्त्तव्य ही छोड़ रहा है। मानव-जाति के लिए यह सौभाग्य की बात है कि न तो अपराधी एक प्रकार का होता है और न दंड ही, और सार्वजनिक हित की उसी दृष्टि से जिससे हम किसी को दस बरस के लिए जेल भेजते हैं, दूसरे को एकदम जेल न भेजें......आम तौर से लोग इस बात को नही समझते कि अपराधी बनाने का, तैयार करने का आसान तरीका है किसी बाल अपराधी को अनायास जेल भेज देना। जेलों में उनको आशा से अधिक आराम से रहने को मिलता है। वहाँ पर वे ऐसे लोगों के सम्पर्क में आते तथा ऐसे उपाय सीखते हैं जिनसे उनका जीवन नष्ट हो जाता है...उन लोगों पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है जो विशेष परिस्थिति को छोड़कर किसी नवयुवक या नवयुवती को जेल भेज देते हैं।"

इंग्लैंड—सन् १९२५ में ही क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट इंग्लैंड में पास हुआ जिसके अनुसार परिवीक्षण क्षेत्र बना दिये गये तथा गृहसचिव को इस सम्बंध में क्षेत्र-विभाजन का अधिकार दे दिया गया था। जिस नगर या कसबे में परिवीक्षण के मामले काफी कम हों, वहाँ पूरे समय के लिए प्रोबेशन अफसर नियुक्त करना जरूरी नहीं था। समाजसेवा करनेवाले किसी भी सम्भ्रान्त व्यक्ति को यह कार्य सौंपा जा सकता था। आज ब्रिटेन में प्रोबेशन सेवा बहुत ही संगठित तथा उन्नत दशा में है। प्रोबेशन अफसर केवल

१. Flexner and Baldwin—"Juvenile Courts and Probation." The Century Co., New York, 1916, Page 79.

सरकार या अदालतों द्वारा प्राप्त बच्चों की ही जिम्मेदारी नहीं लेते, वे गैर-सरकारी तौर पर भी, अपने मन से भी, अपराधी प्रवृत्ति के या सहायता के योग्य बच्चों की देख-रेख अपने जिम्मे ले लेते हैं। देश के कुछ भागों में, जैसे डरहम में, प्रोबेशन अफसर बच्चों को अपने से मिलने के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं, स्वयं स्कूल तथा छात्रावासों में जाकर उनसे सम्पर्क स्थापित करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि सरकार के समाज-कल्याण विभाग के कर्मचारियों की तुलना में केवल बाल अपराधियों से सम्पर्क रखने-वाले प्रोबेशन अफसरों का कार्यभार हलका होता है। उन्हें साल में ५० से ७० विषय सँभालने पड़ते है इसलिए वे एक-एक बच्चे पर अधिक ध्यान भी दे सकते हैं।

प्रोबेशन अफसर द्वारा निगरानी समाप्त होने पर बालक-बालिका को शिष्ट जीवन में बसाने का बड़ा भारी काम होता है। ये लड़के या लड़कियाँ प्रोबेशन अफसर की अनुमति से ही मान्यताप्राप्त स्कूलों मे "दाखिल" किये जाते है। इन स्कूलों के प्रबंधक से ही लैसेंस प्राप्त होने पर वे स्कूल के बाहर आयेंगे। वही प्रबंधक निश्चय करेगा कि "छूटने के बाद" वे कितने समय तक किस क्षेत्र में रहें। ऐसे अवसर पर उनकी निगरानी तथा देखरेख अवैतनिक सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा गैर-सरकारी संस्थाओं के हाथ में होती है। वे भी बड़ा काम कर सकती है और कर भी रही है। समाजसेवा की दृष्टि से इस दिशा में काम करनेवाला स्वयंसेवक भी बड़ा महत्त्व रखता है। गैर-सरकारी सामाजिक संस्थाओं का भी अपना बड़ा भारी स्थान है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति बच्चों के सुख-कल्याण के लिए जिम्मेदार है। यह कार्य परोपकार का नहीं आत्म-रक्षा का भी है। प्रोबेशन अफसर प्राय: हर देश में, सरकार तथा समाज-कल्याण करनेवाली संस्थाओं के बीच मे एक माध्यम, मध्यस्थ मात्र, है। सरकार इन संस्थाओं का उपयोग कर इनके द्वारा लड़के-लड़कियों का सुधार करा, देश के नागरिकों की रक्षा कर रही है। सभ्य देशों में प्रोबेशन अफ़सर की बड़ी प्रतिष्ठा है, बड़ा आदर है। हमारे देश में हमने अभी इस पद का महत्त्व नही समझा है। अधिकांश देशों में प्रोबेशन अफसर केवल बाल-अपराधियों के लिए नही होता। उसका काम—और ज्यादा मेहनत का काम—है अपराधी प्रवृत्तिवाले, जिनसे अपराधी होने का भय हो, जो खतरे में हों, उनकी सेवा करना। ऐसों की रक्षा करना भी उनका धर्म है पर अपने कर्तव्य का वे तभी पालन कर सकेंगे जब सामाजिक संस्थाएँ तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ उनके साथ पूरा सहयोग करें।[1]

१. परिषद् की रिपोर्ट, अप्रैल १९५५, पृष्ठ ३८

स्विटजरलैंड—स्विटजरलैण्ड में बालक-बालिकाओं की रक्षा के लिए एक अलग विभाग है[1], उसी के अन्तर्गत प्रोबेशन अफसर भी हैं। भिन्न भिन्न नगरों में भिन्न प्रकार की प्रोबेशन प्रणाली है पर केन्द्रीय विभाग भी है। यह विभाग गुरुजनों, अभिभावकों तथा माता-पिता को परामर्श भी देता रहता है तथा उनकी समस्याओं को हल करने का प्रयास करता है।

स्वीडन-नार्वे—स्वीडन तथा नार्वे में सरकारी बाल-कल्याण समितियाँ हैं। ये समस्या-मय बच्चों को उचित मार्ग पर लाने के लिए तथा अपराधी बच्चों के सुधार के लिए "सुपरवाइजर" नियुक्त करती हैं। नार्वे में ऐसे बच्चों के लिए विशेष पाठशालाएं हैं। इनका एक अलग मुहकमा ही है। अपराधी बालक जब ऐसी पाठशालाओं में से निकलता है, उसके छूटने के बाद की देखरेख की जिम्मेदारी बाल-कल्याण समिति की होती है। नार्वे में "प्रोबेशन तथा पैरोल असोमियेशन" (संस्था) की संख्या ५५ है जो नीम-सरकारी संस्थाएँ हैं तथा १८ वर्ष के उन अपराधियों की देखरेख, रक्षा, नियंत्रण तथा शिक्षा का काम करती हैं जिनकी सजा अदालत ने स्थगित कर दी है अथवा जिन्हें जेल से मीयाद के पहले छोड़ दिया गया है। इनका काम काफी महत्त्वपूर्ण है और इनके द्वारा बाल-जीवन में बड़ा सुधार होता है।

स्वीडन में भी ऐसी ही बाल-कल्याण समिति है। ये समितियाँ १५ वर्ष की उम्र तक के बच्चों की तथा १५ से १८ वर्ष तक की उम्र के बच्चों की निगरानी तथा देखरेख करती हैं। बाल अपराधियों की सज़ा स्थगित कर इनकी देखरेख में भेज दिया जाता है। समिति अपने प्रोबेशन अफसर या समाज-कल्याण कार्यकर्त्ता नियुक्त करती है। इन प्रोबेशन अफसरों का काम वही तथा वैसा ही है जैसा इंग्लैड में। यह समिति ऐसे वैतनिक सामाजिक कार्यकर्त्ता भी नियुक्त करती है—आम तौर पर वे अध्यापक श्रेणी के होते हैं—जो निगरानी की अवधि समाप्त होने के बाद बच्चों की सुरक्षा, शिक्षा, पुनर्वास आदि की जिम्मेदारी लेते हैं। स्वीडन में एक ऐसी संस्था भी है जो पैरोल पर छूटे हुए १५ वर्ष की उम्र के लड़के-लड़की अपराधियों के लिए दस स्कूल चला रही है।[2] स्वीडन के प्रोबेशन अफसर यह भी तय करते हैं कि उनकी निगरानी में रहनेवाले बच्चे कितना जेबखर्च करें। कैसे खर्च करें, यह भी निश्चय करना पड़ता है। स्वीडन, नार्वे तथा फिनलैंड तीनों देशों में १५ वर्ष की उम्र तक के बाल

१. "Service de Protection des Mineurs".

२. Order of Good Templars.

अपराधी अदालत में न जाकर बाल-कल्याण समिति तथा उसके नियुक्त परिवीक्षण अधिकारियों के जिम्मे होते हैं और १५ से १८ वर्ष की उम्र के बीच के बाल अपराधियों को बाल-अदालतों से दंड तो मिलता है पर उनकी सजा स्थगित कर दी जाती है और वे बाल-कल्याण समिति के जिम्मे कर दिये जाते हैं जिसके प्रोबेशन अफसर या समाज-सेवक निगरानी, निरीक्षण, शिक्षण आदि का काम करते है।

फिनलैंड--फिनलैंड में उन पर मुकदमा चलाना ही स्थगित कर दिया जाता है। डेनमार्क में उनकी "सजा" इस शर्त पर होती है कि बाल-कल्याण-समिति उनका सुधार यदि न कर सकेगी तो वे सजा भुगतेंगे। फिनलैंड में सन् १९१८ में सरकारी बाल-कल्याण समिति की रचना हो गयी थी। स्वीडन तथा नार्वे में, इसी प्रकार फिनलैंड में भी इस प्रकार की सरकारी समिति बने ५० वर्ष के लगभग हो चले, प्रोबेशन सेवा भी इन लोगों में उतनी ही पुरानी है। नीदरलैण्ड में प्रोबेशन अफसरों के जिम्मे अपराधी तथा "जिनसे अपराध होने की सम्भावना है"--दोनों प्रकार के बच्चे रहते हैं। पहले वर्ग को तो सँभालना कठिन है क्योंकि वे अपराध करके अदालत के सामने हाजिर हो चुके है, पर जिन्होंने कोई अपराध किया ही नहीं, जो कभी अदालत के सामने गये नहीं, उनकी विरोधी प्रवृत्ति तथा अपने ऊपर बंधन से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना सर्वथा स्वाभाविक है तथा ऐसे बच्चों को सँभालना प्रोबेशन अफसर के लिए बड़ा कठिन काम होता है।

इटली--इटली में भी, देश में चारों ओर प्रोबेशन अफसर हैं जिनको समाज-कल्याण अफसर कहते है। इटली में प्रोबेशन सेवा इंग्लैंड के ही समान है।

आयरलैंड--आयरलैंड के गणतंत्र में भी प्रोबेशन अफसर है, सन् १९०८ से ही। यहाँ पर यह भी नियम है कि सरकारी सुधारगृह तथा सरकारी उद्योगगृह से न्यायमंत्री की अनुमति से या स्कूल के प्रबंधक की इच्छानुसार छः महीने तक अपराधी बालक-बालिका को रखने के बाद प्रोबेशन अफसर की निगरानी में छोड़ा जा सकता है। छोड़ने के बाद अनुमतिपत्र में प्रबंधक "ऐसे विश्वासपात्र तथा सम्मानित व्यक्ति" का नाम लिख देगा जिसके साथ, छूटने के बाद, उस अपराधी को ठहरना पड़ेगा। आयरलैंड में कई धार्मिक तथा समाज-कल्याण संस्थाएँ हैं जो ऐसे मुक्त बालक-बालिकाओं की देखरेख करती हैं।

यूनान--यूनान में सन् १९५१ से ही परिवीक्षण विभाग खुला है। किन्तु वहाँ वैतनिक परिवीक्षण अफसर नही होते। बालसहायक समितियाँ तो नीम सरकारी हैं जिनके साथ यह कार्य संबद्ध है। पर इस कार्य की जिम्मेदारी यानी प्रोबेशन अफसर

का कार्य समाजसेवा में रत, सम्भ्रान्त, सम्मानित नागरिकों पर निर्भर करता है। ये अवैतनिक रूप से यह कार्य अपने ऊपर लेते हैं। किन्तु वैतनिक परिवीक्षण अधिकारी न होने से काम में विशेष प्रगति नही प्रतीत होती। यूनान की सरकार वैतनिक कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति पर विचार कर रही है।

फ्रांस—फ्रांस में बाल अपराधियों के लिए नियुक्त मजिस्ट्रेट कुछ श्रेणी के बाल अपराधियों को "नियंत्रित स्वाधीनता"[१] प्रदान करते हैं, पर वास्तविक अपराध करने के पूर्व, अपराधी प्रवृत्ति के बच्चों के लिए कोई प्रबंध नही है। वैतनिक प्रोबेशन अफ़सर[२] "नियंत्रित स्वाधीनता" में छोड़े गये बच्चों की देखरेख के लिए नियुक्त किये जाते हैं और उनको अधिकार है कि वे अपने कार्य में सहयोग देने के लिए समाजसेवा सहकारी भी नियुक्त कर लें। प्रोबेशन अफसर केवल उन्ही मामलों को लेता है जो अदालत तक पहुँच जाते है। अतएव परिवारवालों को उसकी सेवाओं से, गैर-सरकारी तौर पर, कोई लाभ नही होता। ऐसे परामर्श के लिए स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग आदि से परिवार के लोग सहायता ले सकते हैं। अवैतनिक रूप से संकटशील परिवार में, अपेक्षित तथा तिरस्कृत बच्चों में, नियंत्रण में न रहनेवाले बच्चों में काम करने के लिए देश भर में समाजसेवक तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ भी हैं।

बेल्जियम—बेल्जियम में भी फ्रांस के समान "नियंत्रित स्वाधीनता"[३] पर बाल अपराधी छोड़े जाते हैं जिनके ऊपर प्रोबेशन अफसर[४] नियुक्त है। बेल्जियम में परिवार वालों से बाल-सुधार के कार्य में सहायता लेने का नियम अधिक अच्छे ढंग से काम में आता है। आस्ट्रिया में प्रोबेशन उसी दशा में अनिवार्य होगा जब अपराधी की उम्र १८ वर्ष से कम हो तथा अदालत से उसकी सजा स्थगित की गयी हो। हर जिले या म्युनिसिपैल्टी के लिए एक वैतनिक समाजसेवक (प्रोबेशन अफसर)[५] होता है। अभी इस देश में प्रोबेशन प्रणाली प्रारम्भ हुए कुछ ही वर्ष बीते है।

१. Supervised Liberty
२. Delegues Parmanents
३. Liberate Surveilec
४. Delegues Retribues
५. Fürsorgerin

प्रोबेशन की प्रथा तथा प्रणाली के सम्बंध में इतनी जानकारी से बाल अपराधी की चिकित्सा के संबंध में काफ़ी सूचना हमने दे दी। अमेरिकन प्रथा का कुछ अधिक जिक्र हम आगे चलकर करेंगे। परिवीक्षण या प्रोबेशन मूलतः अपराध-निरोध के लिए है। इस नियम के अन्तर्गत छोड़ने का मतलब ही यह है कि अदालत की राय में अब उस अपराधी से और अधिक अपराध की आशंका नहीं करनी चाहिए। ज़रा-सा ध्यान देने से वह पूर्णतः सुधर जायगा।[१]

१. राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट, अप्रैल १९५५, पृष्ठ ७०

अध्याय २३

तुर्की तथा अरब देशों में बाल अपराधी

तुर्किस्तान में

तुर्किस्तान में सन् १९१४ तक उसमानिया दंडविधान चालू था। किसी रूप में सन् १९२६ तक यही दंडविधान लागू था। इसके अनुसार १३ वर्ष तक के बच्चे निर्दोष समझे जाते थे और यदि कोई अपराध करें तो इन्हें अधिक से अधिक यही दंड मिलता था कि किसी शिक्षण-संस्था में १८ वर्ष तक की उम्र के लिए पढ़ने भेज दिये जाते थे। १५ वर्ष के ऊपर के बच्चे जेल भेजे जा सकते थे। सन् १९२६ में इस कानून में परिवर्त्तन हुआ—विशेष नहीं, साधारण। निर्दोष बच्चे की उम्र १३ से घटा कर ११ कर दी गयी। बाल अदालतें स्थापित हुईं और इन अदालतों को अधिकार मिला कि वे बाल अपराधी को उसके परिवार की निगरानी में सौंप सकते हैं। बाल अपराधी पर जुर्माना हो सकता है और इसे अदा करना पड़ेगा अभि-भावकों को। दंडविधान की धारा १०३ के अनुसार पीड़ित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करायी जायेगी। जो सम्पत्ति चोरी गयी हो, वह भी उसे मिल जायेगी जिसकी चोरी हुई है।

तुर्किस्तान के बाल-अपराधी-"सुधारगृहों" में अथवा "बाल जेलों में" तीन श्रेणी के अपराधी रखे जाते हैं—११ से १५ वर्ष, १५ से १८ वर्ष तथा १८ से २१ वर्ष तक। धारा ५४ से ५७ के अनुसार यदि ११ से १५ वर्ष के बीच का अपराधी बालक या बालिका जान-बूझकर अपराध करे तो उसे—

(१) प्राणदंड के योग्य अपराध हो तो ८ वर्ष का कठोर कारावास का दंड मिलेगा।
(२) आजन्म कारागार के स्थान पर ६ से १५ वर्ष तक कठोर कारावास मिलेगा।
(३) यदि उस अपराध में १२ वर्ष की सज़ा मिलने वाली है तो ३ से ६ वर्ष कठोर कारावास होगा।
(४) ६ से १२ वर्ष तक की सजा में १ से ५ साल की कठोर कैद होगी।
(५) अन्य सब मामलों में बालिग़ों को जितनी सजा मिलनी चाहिए उससे आधे से कम दी जायगी ।

(६) धारा ५५ के अनुसार १५ से १८ वर्ष तक के अपराधी को प्राणदंड के स्थान पर १० वर्ष; यही सज़ा आजन्म कारागार पर भी। १२ से अधिक वर्ष की सजा पर ६ से १० वर्ष, ६ से १० वर्ष की सज़ा पर तीन से छः वर्ष, सभी कठोर कारावास---तथा अन्य मामलो मे ऊपर लिखी सज़ा मिलेगी। धारा ५६ के अनुसार १८-२१ वर्ष के अपराधी को प्राणदंड के वजाय २४ वर्ष, इत्यादि---कठोर कारावास। अन्य मामलों में दंडविधान में निहित सजा में १।६ की कमी हो जावेगी। धारा ५७ के अनुसार १५ वर्ष के नीचे वहरे-गूगे को अपराधी नहीं मानते। यह हो सकता है कि उसको २१ वर्ष की उम्र तक किसी बाल सुधारगृह में रख दिया जाय। १५ वर्ष से ऊपर के वहरे-गूगे अपराधी को, यदि यह साबित हो जाय कि उसने जानवूझकर अपराध किया है तो, वही सज़ा मिलेगी जो हम ऊपर १५ वर्ष से अधिक उम्रवाले अपराधियों के लिए लिख आये है।

तुर्किस्तान मे यह नियम है कि जो माता-पिता या परिवार अपने बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करते है वे अभिभावक वनने योग्य नही हैं। सिविल अदालत ऐसे बच्चों की उचित देखरेख के लिए आवश्यक उपाय करेगी। इसी प्रकार तलाक देनेवाले या पति-पत्नी को छोड़ देनेवाले परिवार के बच्चे की देखरेख का प्रबंध भी सिविल अदालत करेगी। तुर्की दंडविधान की धारा ४६७ के अनुसार किसी को ७ वर्ष से नीचे का बच्चा परित्यक्त मिले तो उसे तुरन्त सरकार को सूचना देनी चाहिए, अन्यथा उसे गहरा अर्थ-दंड देना होगा। धारा ४२०, ४३५ तथा ५७४ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति १८ वर्ष से कम उम्र के लड़के या लड़की को शराब पिलाता है या १५ वर्ष से कम उम्र की लड़की से वेश्यावृत्ति करता या कराता है या किसी लड़के के साथ अप्राकृतिक प्रसंग करता है तो उसे कठोर दंड मिलेगा। धारा ५४५ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति १५ वर्ष के कम उम्र के वच्चों को भीख माँगने के लिए इकट्ठा करता है तो उसे घोर आर्थिक दंड देना होगा। दीवानी धारा १५९३ तथा १५८० के अनुसार हर नगर-प्रशासन को परित्यक्त तथा लावारिस वच्चों को पालने का तथा ६ वर्ष तक उनकी देखरेख का प्रबंध करना होगा।

अरब संघ में

पर, बाल अपराधियों के सुधार के लिए तथा बिगड़ने वाले बच्चों को सही

मार्ग पर लाने के लिए यदि वास्तव में थोड़ा बहुत ठोस काम हुआ है तो मिस्र देश में तथा सीरिया (शाम) में (मिस्र तथा सीरिया मिलकर अरब संघ बनता है)। मिस्र की सरकार ने सन् १८८३ में ही, "बाल अपराधी" की अलग सत्ता स्वीकार कर ली थी। इस समय अरब-संघ में सरकार की ओर से दो महिलाएं नियुक्त हैं जो समाज कल्याण विभाग के सचालक के रूप में बाल अपराधी के सुधार तथा अपराधी मनोवृत्तिवाले वच्चों की रोकथाम का उपाय करती हैं। इस विभाग के अन्तर्गत केवल मिस्र में ही छः अनाथालय हैं, जच्चा-बच्चा की रक्षा के लिए कई ईसाई अस्पताल हैं। राजधानी काहिरा तथा सिकन्दरिया में दो बड़े अच्छे जनाना अस्पताल इसी कार्य के लिए है, काम में लगी हुई माताओं के बच्चों की रक्षा तथा पालन के लिए १७ "शिशु" (नर्सरी) पाठशालाएं थी—जिनमें २,२७५ लडके तथा १,६६५ लड़कियां थीं। शिक्षा विभाग ने बच्चों, नवयुवक-नवयुवतियों के लिए मनोवैज्ञानिक तैयार करने के लिए छात्रवृत्ति देकर अच्छे अच्छे विद्यार्थी विदेश भेजे है तथा कई मनोवैज्ञानिक केन्द्र भी खोले हैं। इनकी निश्चित संख्या ज्ञात न हो सकी। सन् १९४७ में काहिरा मे पहला मनोवैज्ञानिक केन्द्र खोला गया था। सन् १९४८ में इसके द्वारा १,८७७ छात्रों का, जिनमें लड़कियाँ भी शामिल हैं, इलाज हो रहा था।

सीरिया (शाम) में भी सन् १९५३ में राष्ट्रीय कल्याण-समिति की स्थापना हो गयी है और उसने ऐसे केन्द्र खोले हैं जिनमें परित्यक्त, लावारिस या माता द्वारा उपेक्षित बच्चे का पालन-पोषण, सब सरकार के व्यय से होता है। सार्वजनिक संस्थाओ के अलावा सरकार की ओर से काफी कपड़ा और दूध मुफ्त में गरीब बच्चों में बाँटा जाता है। सरकार की ओर से स्वास्थ्य-केन्द्र भी खोले जा रहे है। सीरिया मे पहले ब ल अपराधियों के लिए तुर्की दंड-विधान ही लागू था। अव उसने अपना वाल अधिनियम बना लिया है जिसके अनुसार बाल अपराधी को जेल न भेजकर परिवार वालों को, रिश्तेदारों को या किसी योग्य व्यक्ति को उनके सुधार के लिए सौपा जा सकता है या उन्हें किसी विशिष्ट शिक्षा-संस्था के जिम्मे किया जा सकता है।

वालक-बालिका की रक्षा तथा सुधार के लिए सन् १९५० में यहाँ एक "वाल संरक्षण संघ" स्थापित हुआ था, जिसका उद्देश्य है "बालकों या नवयुवकों, वालिकाओं या नवयुवतियों के नैतिक तथा चारित्रिक बल को ऊँचा करना तथा अपराध की ओर जाने से उन्हें रोकना।" सीरिया की वाल अदालतों को भी ये वाल अपराधी के हितों की रक्षा करने में सहायता देते हैं। बाल समस्या के भिन्न भिन्न पहलुओं की जांच करते कराते हैं, असाधारण बच्चों की परख, परीक्षा तथा जाँच के लिए निरीक्षण-केन्द्र स्थापित करते हैं।

मिस्र, सीरिया, लेबनान तथा ईराक में "बाल अपराधी" उसे कहते हैं जो बाल या नवयुवक अपराध की श्रेणी में आनेवाले अपराधों के दोषी होते हैं। सीरिया तथा लेबनान के दंडविधान में यह आदेश है कि १२ वर्ष की उम्र के ऊपर के उसी बाल अपराधी को बन्द करें जिसपर दुष्टता के कार्य करने का सबूत मिल गया हो। बाल अपराधियों के सम्बंध में लेबनान में अक्टूबर, १९४४ में नया कानून बना जिसके अनुसार बालक को जेल न भेजकर परिवार को, अभिभावक को या सुधारगृह को दे देने की गुंजायश की गयी।

जार्डन में

जार्डन ने अगस्त, १९५१ में बाल अधिनियम बनाया और निस्सन्देह मध्यपूर्व एशिया में उसका अधिनियम बहुत ही सुलझा हुआ, नये अपराध-विज्ञान के अनुसार तथा बड़े बड़े उन्नत पश्चिमीय देशों के मुक़ाबले का है। यह कई दृष्टियों से भारत में प्रचलित बाल अधिनियम से अच्छा है। इसके द्वारा बाल अदालतें, सुधारगृह, अवरोधगृह, निरीक्षणगृह, "सर्टिफाइड स्कूल" तथा प्रोबेशन यानी परिवीक्षण प्रणाली तथा मनोवैज्ञानिक केन्द्र, सभी चीजों की गुंजायश है। पर मध्यपूर्व के सभी देशों में लड़कों को हथकड़ी लगाकर अदालत ले आते हैं।

ईरान, ईराक आदि में

ईरान में कोड़ा लगाने का भी नियम है, यद्यपि ईरान का दंडविधान बहुत कुछ तुर्की दंडविधान से मिलता जुलता है। ईराक का दंडविधान सन् १९१८ में बना था। तब से अब तक उसे पाँच बार दुहराया जा चुका है। अब वहाँ की नयी हुकूमत उसे छठीं बार दुहरा रही है। पुराने कानून का दसवाँ अध्याय बाल अपराधियों से सम्बंध रखता है। सन् १९१८ का वह अध्याय आज तक ज्यों का त्यों है जिसमें बाल अपराधी की व्याख्या है। उसको जेल न भेजकर परिवार, उचित अभिभावक या शिक्षण संस्था को सौंपा जा सकता है। सऊदी अरब तथा यमन में अभी तक क़ुरान शरीफ के ही अनुसार बाल अपराधियों के साथ न्याय होता है और वहाँ अदालत स्वयं निर्णय करती है कि अपराधी को "बाल" मानें या नहीं। जार्डन में नियम है कि गिरफ्तारी के बाद बाल अपराधी को अदालत छोड़ भी सकती है या नहीं, वह जैसा चाहे। यदि छोड़ा नही गया तो उसे ऐसे विशिष्ट स्थान में बन्द किया जायेगा जो बाल अपराधियों के लिए ही निर्दिष्ट होगा। सीरिया, लेबनान, मिस्र तथा जार्डन में बाल अपराधियों को क़ैद में रखने के लिए विशेष स्थान बने हुए है। मिस्र में ऐसा पहला स्थान सन् १९४५

में स्थापित हुआ था। वहाँ पर राजधानी काहिरा से तीन मील दूर गिरजा घर में एक बड़ा अच्छा केन्द्र है। सीरिया में बाल अपराधियों के लिए दो निरीक्षण-केन्द्र हैं। मिस्र में बाल-कल्याण-केन्द्र न्याय मंत्रालय के अधीन है। सिकन्दरिया (मिस्र) में जब बाल-कल्याण-केन्द्र खोला गया तो वहाँ के न्याय मंत्री ने सन्देश भेजा था—

"बालकों के हित में यह नितान्त आवश्यक है कि सार्वजनिक जेलखानों के अपराधियों के साथ से उनको काफ़ी दूर रखा जाय। सरकारी वकील तथा बाल अदालतें और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का यह कर्त्तव्य है कि प्रत्येक बच्चे की परिस्थिति तथा वातावरण की परीक्षा और जाँच करते रहें और यह देखें कि अपराधियों तथा लफंगों का उनके जीवन पर कितना प्रभाव पड़ा है।"

सिकन्दरिया का केन्द्र "निरीक्षण तथा समीक्षा" के लिए है। यह बच्चों के चरित्र, वातावरण, व्यवहार, हर एक चीज़ की परीक्षा करता है। सीरिया तथा जार्डन में १८ वर्ष के नीचे की उम्र वालों का मुक़द्दमा करनेवाली अदालत का नाम बाल अदालत है।[1] सीरिया, लेबनान, जार्डन तथा मिस्र में उस प्रकार की बाल अदालतें नहीं हैं जैसी बम्बई में हैं। यह नियम हर देश में है कि बाल अपराधियों के मुक़द्दमे बन्द अदालत में हों तथा समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को वहाँ जाने की अनुमति न हो। ईराक़ में वही बाल अपराधी मैजिस्ट्रेट के सामने पेश होंगे जिनकी उम्र १६ वर्ष से कम है। इससे अधिक उम्र वालों का मुक़दमा बड़ी अदालत में होता है।

१. सीरिया दंडविधान धारा १७३, लेबनान दंडविधान धारा २३७.

अध्याय २४

यूरोपीय देशों में बाल-अपराध-निरोध

महिला पुलिस

बालिकाओं की रक्षा तथा देखरेख और उन्हें अपराध करने से रोकने के लिए बेल्जियम, यूनान, फ्रान्स, डेन्मार्क तथा ब्रिटेन (यूनाइटेड किंगडम—इंगलैंड, स्काटलैंड और वेल्स) में महिला पुलिस नियुक्त हैं। यूनाइटेड किंगडम में बाल-अधिनियम के अन्तर्गत महिला पुलिस द्वारा बड़ा काम होता है। नार्विच तथा अन्य कई नगरों में यह युवक क्लब बना देती है, जिसमें बालक-बालिका सभी आते हैं। सन् १९४९ से लिवरपूल नामक ब्रिटिश नगर में, जो बाल अपराध के लिए इंग्लैंड में सबसे ज्यादा बदनाम है, एक बाल-सम्पर्क अधिकारी होता है। जिस लड़के या लड़की का चालचलन किसी भी रूप में खराब होने की सम्भावना होती है, समाज-कल्याण का संस्थाएं, अभिभावक, परिवार के लोग, अध्यापक, दूकानदार कोई भी इस अधिकारी को उस बच्चे के बारे में चेतावनी दे देते हैं। यह अधिकारी उस बच्चे से मिलता है तथा उसे सुधारने में परिवार अथवा अध्यापक की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह सभी उपलब्ध साधनों से उस बच्चे का सुधार करने का प्रयत्न करता है। जो संस्था या व्यक्ति इस कार्य में उसे सहायता देता है उसके साथ इस अधिकारी का पूरा सहयोग होता है। काफ़ी समय तक उस बच्चे के साथ, धैर्यपूर्वक प्रयत्न किया जाता है। इस योजना से बड़ा लाभ होता है। तुरंत कार्यवाही करने से गलत रास्ते पर चलने वाले बच्चों की रोकथाम हो जाती है। उनका जीवन नष्ट होने से बच जाता है।

इंग्लैंड—इंग्लैंड में बाल अपराधियों का औसत अमूमन दस हज़ार की आबादी पीछे १७ है। लिवरपूल में २६·८ प्रति १०,००० है। ऊपर लिखी योजना तथा समाज-कल्याण संस्थाओं के प्रयत्न से यह औसत सन् १९५३ में केवल ११ ही रह गया। इंग्लैंड, स्काटलैंड तथा वेल्स के कई बड़े नगरों में अपराधी प्रवृत्ति वाले बच्चों को "सावधान" कर सुधारने की उपयोगी प्रथा चालू है। बर्केनहेड नगर में सन् १९४५ से १९५५ के बीच में ३०० बच्चों को "सावधान" कर सुधार दिया गया। इनमें से केवल ५ प्रतिशत ही न सुधर सके। स्काटलैंड में इस प्रकार की चेतावनी देने के

लिए हर जिले में एक विशेष पुलिस अफसर नियुक्त होता है। इंग्लैंड तथा स्काटलैंड में कुछ नगरों में शनिवार को या हफ़्ते में तीन बार तक ऐसी पाठशालाएँ चलायी जाती है जिनमें अपराधी प्रवृत्ति वाले बालक-बालिकाओं को ऐसे घण्टों में, जब और पाठशालाओं में छुट्टी हो जाती है, अनिवार्यतः पढ़ना पड़ता है। उन्हें सरल व्याख्यानों द्वारा जीवन का कर्त्तव्य सिखलाया जाता है।[१] ऐसे क्लास का उद्देश्य होता है इन बच्चों को सड़क पर घूमने, बुरी सोहबत में पड़ने या अन्य लड़कों को खराब करने का अवसर पाने से बचाना।

नीदरलैंड——इंग्लैंड की इस प्रथा से कुछ अधिक अच्छे ढंग पर नीदरलैंड, मे शनिवार को सायंकाल पाठशाला लगती है जिसे "दंड-शाला" कहते हैं, जिसमे अपराधी ढंग के बच्चों की हाजिरी अनिवार्य होती है।

नार्वे——नार्वे में औसलो युवक समिति में पुलिस, स्कूल तथा परिवार के प्रतिनिधि होते हैं। बाल-अपराध रोकने के लिए इनका लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम होता है। यहाँ की पुलिस का भी एक विशेष दल है[२] जो बच्चों को शराबी होने से बचाता है। स्वेडन में पुलिस ही बच्चों के आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, खेल-कूद आदि कार्यक्रमों की व्यवस्था करती है क्योंकि आज यह सभी मानते हैं कि बाल अपराध तथा अपराधी रोकने का सबसे अच्छा उपाय है बच्चों को उनकी चपलता, चंचलता, क्रियात्मक शक्ति तथा उठते हुए यौवन को अच्छे काम में लगाये रखना। जहाँ बच्चों को साधारण खेल-कूद का भी अवसर नहीं मिलता वहाँ बाल अपराध होना स्वाभाविक है।

पुलिस——इस दिशा में सफलता और अधिक मिलती है जब पुलिस भी इसे अपना कर्तव्य समझती है कि उसका काम केवल अपराध का पता लगाना ही नहीं है, वरन् अपराध की रोकथाम करने के लिए समाज-कल्याण का काम करनेवालों के साथ मिलकर सहयोग भी देना है। बड़े पुलिस अफ़सरों के अंतर्राष्ट्रीय संघ[३] का इस सम्बंध में स्पष्ट प्रस्ताव भी है——

"यह सत्य है कि अधिकांश देशों में सामाजिक कार्यकर्त्ता पुलिस के प्रत्यक्ष सहयोग को अस्वीकार करते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष सहयोग से अविश्वास पैदा होता है जिससे उनके उस कठिन कार्य में बाधा पड़ती है जो निश्चयतः अपराधी में अपने प्रति विश्वास प्राप्त

१. **राष्ट्र संघ की रिपोर्ट, अप्रैल, १९५५, पृष्ठ ८८**

२. K. 2 Group

३. International Federation of Senior Police Officers.

करने के लिए बड़े धैर्य तथा आग्रह के साथ करना पड़ता है। इसलिए, ऐसे व्यक्ति (समाज-कल्याण का काम करनेवाले) तथा संस्थाओं के साथ मिलजुल कर काम करने के लिए तथा उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए यह ज़रूरी है कि ऐसी संस्थाओं से तथा उनकी कार्य-प्रणाली से पूर्ण परिचय प्राप्त किया जाय। बच्चों की पूर्ण रक्षा के लिए इनसे सूचना प्राप्त की जाय तथा इनको सूचनाएँ दी जायँ। ऐसा संरक्षण छिटपुट प्रयत्न से या एक के ही किये से न होगा। पूरे समाज को इसमें साथ देना होगा......स्कूल के प्रधानाध्यापकों से परस्पर जानकारी का आदान-प्रदान होना चाहिए, जिससे बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालनेवाली चीजों का असर रोका जा सके।"

जिन बड़े देशों तथा नगरों में पुलिस बालसुधार के कार्य में बड़ी दिलचस्पी लेती है, उनमें न्यूयार्क की पुलिस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी रखनेवाले पुलिस अफ़सरों की देखरेख में बालकों के हितार्थ काफ़ी काम होता है। उनके लिए (बच्चों के लिए) दंगल तक कराया जाता है।

इटली—इटली में २१ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करनेवाले या उनके साथ उपेक्षा का व्यवहार करनेवाले परिवार को दंड मिलता है। वहाँ पर इटालियन मजदूरों के अनाथ बच्चों के संरक्षण के लिए एक बोर्ड है[१] जो १२,००० बच्चों को शिक्षा दे रहा है। उनके रहने, भोजन, कपड़े—सबका प्रबंध करता है।

सिनेमा पर प्रतिबन्ध

यूरोप में बाल अपराधी तथा अपराधी प्रवृत्तिवाले बच्चों के सम्बंध में जितना कार्य हो रहा है, उसकी लम्बी सूची देने के लिए काफ़ी स्थान चाहिए। यत्र-तत्र हम कुछ न कुछ जिक्र करते आये हैं। पर एक विषय पर थोड़ा प्रकाश और डालकर हम यह प्रकरण समाप्त करेंगे। यह अब सिद्ध हो चुका है कि बच्चों के चरित्र पर सिनेमा का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है और आज बाल अपराध में वृद्धि का बहुत बड़ा श्रेय चल चित्रों को है। इस सम्बंध में यूरोप के अनेक देशों में काफी प्रतिबंध लगा दिये गये हैं कि अमुक प्रकार के खेलों में बच्चों को तमाशा देखने की अनुमति न दी जाय। नीचे हम उन

१. E. N. A. O. L. I.—International Child Welfare Review Vol. III No. 3, 1953.

देशों के नाम दे रहे हैं जिनमें उनके सामने अंकित उम्र के बच्चों के लिए सिनेमा देखने पर प्रतिबंध है—

देश	उम्र की सीमा
आस्ट्रिया	१५
बेल्जियम	१६
डेन्मार्क	१६
फ्रान्स	१६
पश्चिमी जर्मनी	१७
यूनान	१५
आयरलैंड का प्रजातन्त्र	१४
इटली	१६
नीदरलैंड्स	१४ या १८
नार्वे	१६
स्वेडन	१५
स्विटजरलैंड	१६ या १८
तुर्किस्तान	१२
यूनाइटेड किंगडम	१६

इस सम्बन्ध में बेल्जियम का क़ानून बड़ा व्यापक तथा आदर्श प्रतीत होता है। सन् १९३० में एक कानून द्वारा यह आदेश हुआ था कि जिस फ़िल्म को सरकार द्वारा यह स्वीकृति प्राप्त हो जाय कि वह १६ वर्ष की उम्र से कम बच्चों के देखने योग्य है, उसी को वे देख सकते हैं। सन् १९५४ में यह उम्र १६ से बढ़ाकर १८ कर दी गयी। असल में इस नियम की कल्पना सन् १९२० में तत्कालीन न्याय मंत्री ने की थी।[1]

बेल्जियम में फ़िल्म नियंत्रण बोर्ड है जो न्याय विभाग के अधीन है। इसमें दो विभाग हैं—प्रारम्भिक विभाग तथा अपील सुनने का विभाग। दोनों में पाँच पाँच सदस्य होते हैं। एक प्रतिनिधि फ़िल्म व्यवसाय का, एक प्रतिनिधि बाल अदालत

१. La Loi bue I Septubre 1920.

मैजिस्ट्रेट संघ का, एक प्रतिनिधि शिक्षा-संस्थाओं का, एक परिवारवालों का तथा एक सरकारी। इस बोर्ड द्वारा बच्चों के लिए ऐसे सभी चित्रों का निषेध कर दिया जाता है जिनमें चोरी, डकैती, लूटपाट, हिंसा के कार्य, हत्या, फाँसी, राज्यक्रांति, बर्बरता-पूर्ण चित्र, पारिवारिक जीवन की खिल्ली उड़ाना, शासन के प्रति उपेक्षा की भावना पैदा करना, क्रूर रीति रिवाज़ आदि दिखलाये जाते है। वेल्जियम की यह नीति प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। इसका महत्त्व इस बात से और भी समझ में आ जायेगा कि वेल्जियम उन देशों में है जहाँ पर संसार के शायद सबसे अधिक सिनेमा देखने वाले रहते है। इस देश की आबादी केवल ८० लाख है पर हर साल यहां औसतन १० करोड़ टिकट सिनेमावाले बेचते है।[1] यदि ऐसे देश में कठिन सावधानी न बरती जाय तो आबादी के चरित्र पर काफी बुरा प्रभाव पड़ेगा।

फ्रेंच पुलिस

पुलिस बाल अपराधी के लिए कितना कार्य कर सकती है इसकी एक मिसाल फ्रेंच सरकार के एक परिपत्र से मिलती है। १८ मार्च, १९५५ को फ्रास के राष्ट्रीय सुरक्षा विभाग के डायरेक्टर जेनरल ने हर ज़िले के पुलिस अधिकारी तथा डिविजनल कमिश्नर, पुलिस के नाम एक आदेशपत्र भेजा था। उसमें लिखा था—[2]

"२ जुलाई, १९५३ को मैने आपका ध्यान आकृष्ट किया था कि अपने वर्त्तमान साधनों से लाभ उठाकर बच्चो की हर प्रकार की सहायता करो। मैंने कहा था कि जब भी अवसर मिले आप बाल अपराधियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्धित मामलों में विशेष अनुभव प्राप्त करने का अफसरों को अवसर प्रदान कीजिए। बच्चों की रक्षा के लिए आपने भिन्न दिशाओं में जो प्रयत्न किये है उसके फलस्वरूप बड़ी रोचक तथा जरूरी बातें मालूम हो गयी हैं। मैं इन परिणामों से और भी लाभ उठाना चाहता हूँ। आपके काम में सहायक होने के लिए मैं साथ मे एक पुस्तिका भेज रहा हूँ—'बच्चों के नैतिक कल्याण के लिए पुलिस का कार्य....'

१. राष्ट्रपरिषद् की रिपोर्ट, १९५५, पृष्ठ १३१.

२. Revue Moderne De La Police, No. 14. Sept., Oct., 1955 Paris—Page 17, 18, 19—Order of the Directorate General of the Surete Nationale.

"जिन व्यक्तियों या संस्थाओं को बाल-कल्याण में ज़रा भी रुचि हो, उनकी सूची बना लीजिए। इन संस्थाओं के प्रधान, समाज कल्याण कार्यकर्त्ता तथा अध्यापक वर्ग से सम्बन्ध स्थापित कीजिए, फैक्टरी इंस्पेक्टर, बाल मज़दूरों को भर्ती करने वाले कल कारखाने, खेल कूद की संस्थाएं—इन सभी से सम्पर्क स्थापित कीजिए। बच्चों के उद्धार के लिए सभी सार्वजनिक स्थानों की, जैसे सिनेमा, नाचघर, मेला-तमाशा, रेलवे स्टेशन, उद्यान, जलपानगृह आदि की—बराबर गश्त होनी चाहिए।"

अध्याय २५

अमेरिका में बाल-अपराध-निरोध

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-अपराध की समस्या काफ़ी गम्भीर है, पर निश्चयतः उसकी गम्भीरता तथा गुरुता कहीं अधिक होती यदि उसकी रोकथाम के लिए, बाल-सुधार के लिए तथा नवीनतम आधुनिक प्रयोगों के लिए यह देश संसार में सबसे आगे न बढ़ा हुआ होता। इस देश के अनेक प्रदेशों में बाल अपराधी को उसके विशेष अपराधों के लिए दंड नहीं देते बल्कि "अपराधी" होने के कारण उसकी "चिकित्सा" करते हैं। उनका उसूल है कि जिस प्रकार दीवानी के मामलों में नाबालिग़ क़ानूनन ज़िम्मेदार नहीं होता, उसी प्रकार जरायम के मामले में भी जब तक वह बालिग़ न हो जाय उस पर पूरी ज़िम्मेदारी नहीं लादी जा सकती।[१] इसी लिए १६ वर्ष के नीचे के बच्चों को "ट्रेनिंग स्कूल" या "औद्योगिक तथा कृषि स्कूल" में भेजा जाता है।

बोस्टन की संस्था

बाल-अपराधियों के लिए पहली संस्था सन् १८२३ में मासाचुसेट प्रदेश की राजधानी बोस्टन में खुली थी। इसे न्यूयार्क के टामस एडी द्वारा संस्थापित "कंगाली निरोधक समिति"[२] ने स्थापित किया था। कुछ समय बाद बोस्टन की संस्था को सरकार ने मान्यता प्रदान कर दी और यह पहली संस्था थी जिसमें अदालत बाल-अपराधियों को भेज देती थी। यह आगे चलकर बहुत बढ़ गयी, बहुत उन्नति कर गयी। इसमें यह नियम है कि जब तक लड़का स्वयं अपना अपराध दर्ज़ न कराना चाहे, कोई जान भी नहीं सकता कि किस लिए आया है। शारीरिक दंड एकदम मना है। यहाँ के निवासी बच्चे स्वयं अपना प्रबंध तथा शासन करते हैं। वे स्वयं निर्णय करते हैं कि संस्था का संचालन

१. Dr. Haikerwal

२. Society for Prevention of Pauperism.

किस ढंग से हो। लड़कियों के लिए भी "मेगदेलेन" गृह बने। पर ऐसे सुधार-गृहों की रचना एक प्रकार से जेल जैसी ही थी--ऊँची दीवालें, छड़, ताला इत्यादि।

घरेलू वातावरण की आवश्यकता

इनका स्थान अब उन "कुटियाओं" ने ले लिया है जिनमें २०-२५ से ज्यादा लड़के या लड़कियाँ नहीं रखे जाते। छोटे बच्चों की कुटिया में एक "माता" रहती है जो निरीक्षक का काम करती है। बड़े लड़के-लड़कियों की कुटिया के मुखिया बुजुर्ग पति-पत्नी होते हैं। इस प्रकार एक छोटा परिवार बन जाता है, एक प्रकार का पारिवारिक जीवन हो जाता है। आज का अपराध-विज्ञान अब सुधार-गृह आदि में भी रखने के विरुद्ध है। उसका कथन है कि बिना घरेलू वातावरण के असली उद्धार तथा सुधार नहीं होता। इसलिए आज चेष्टा यह की जाती है कि यदि अपराधी बालक बालिका का परिवार इस योग्य न हो तो किसी दूसरे परिवार में उसे रख दिया जाय तथा उसी परिवार के स्वस्थ वातावरण में उसका सुधार हो और किसी अन्य स्थान में उसकी शिक्षा आदि का प्रबंध हो।

सबसे अच्छी और बड़ी चीज़ जो इस देश में है वह है बाल-अपराधी की "परीक्षा।" उसकी मनोवृत्ति, उसका स्वास्थ्य, उसका परिवार, उसका रहने का वातावरण, उसकी प्रेरणा, इच्छा, संकल्प, झुकाव, काम की ओर रुझान--इन सब विषयों में बड़ी वारीक छानबीन करते हैं। सब छानबीन करके बाक़ायदा बोर्ड बैठता है। वह निश्चय करता है कि उसको कहाँ रखा जाय, क्या शिक्षा दी जाय। ऐसी ही एक बोर्ड की बैठक में संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यूयार्क के निकट एक "बाल निरीक्षण" केन्द्र में उपस्थित रहने का अवसर मुझे मिला। जिस लगन के साथ उस बोर्ड के सदस्य, जिनमें "निरीक्षण गृह" के प्रधान, डाक्टर, मनोवैज्ञानिक तथा जेल-निरीक्षक "विज़िटर" मौजूद थे, एक-एक बच्चे के अध्ययन की रिपोर्ट पढ़ी जा रही थी तथा उस पर विचार हो रहा था और फिर उस बच्चे को बुलाकर उससे बातें की जाती थीं। उसे देखकर विश्वास होता था कि वास्तव में बच्चों के जीवन की कद्र करना ये लोग ही जानते हैं।

हमारे सामने वहाँ एक १४ वर्ष का लड़का लाया गया। उसमें बड़ा दोष यह था कि वह उस "गृह" के किसी भी अधिकारी को देखकर उत्तेजित हो जाता था और उससे लड़ने तक पर आमादा हो जाता था। प्रबंधक लोग उस बच्चे की इस उच्छृंखलता से बड़े परेशान थे। जब उसकी समस्या पर विचार हो रहा था, मैंने यह सलाह दी--"उसे ही क्यों न अधिकारी बना दिया जाय? दस पाँच लड़कों पर उसे कप्तान बना दीजिए। स्वयं अधिकारी वन जाने पर

उसके मन का अधिकारी के प्रति विद्रोह समाप्त हो जायगा।" मेरी यह सलाह बोर्ड को बहुत पसंद आयी। बाद में मुझे पता चला कि मेरी बात काम कर गयी।

तीन वर्गों के लिए सुधार-गृह

अस्तु, संयुक्त राज्य में तीन वर्गों के लिए सुधारगृह हैं। पहला तो १६ वर्ष से कम उम्रवालों के लिए है। इसे "ट्रेनिग स्कूल" या "औद्योगिक तथा कृषि पाठशाला" कहते हैं। दूसरी श्रेणी १६ से २१ या ३० वर्ष तक की उम्रवालों के लिए है। इनमें "कुटिया-परिवार-प्रणाली" की बड़ी अच्छी प्रथा है। बड़े-बड़े खेत (फार्म) भी इनके साथ नत्थी हैं। सन् १८५७ में प्रथम "ओहियो राज्य सुधार फार्म" स्थापित हुआ था। यह १८ वर्ष से कम उम्रवालों के लिए था। बालिग़ क़ैदियों के लिए सुधारगृह खोलने का कानून १८६९ में बना और १८७८ में न्यूयार्क स्टेट रिफ़ार्मेटरी या जिसे "एलमिरा रिफ़ार्मेटरी" के नाम से बड़ी ख्याति प्राप्त हो चुकी है, खुली। अब तो देश भर में बन्दी के सुधार के लिए, कल्याण के लिए, सरकारी, ग़ैर सरकारी, निजी प्राइवेट तथा प्रोबेशन प्रणाली के अन्तर्गत कार्यों की भरमार है पर इन सब कार्यों की आधार-शिला यह एलमिरा सुधारगृह का मंत्र है—

१. बन्दी का सुधार हो सकता है।

२. राज्य का कर्तव्य है तथा बन्दी का यह अधिकार है कि उसका सुधार हो।

३. प्रत्येक बन्दी का निजी तथा व्यक्तिगत रूप स्वीकार कर उसके लिए आवश्यक व्यक्तिगत चिकित्सा ही होनी चाहिए। उसकी ज़रूरत के अनुसार उसकी बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक चिकित्सा होनी चाहिए।

४. बन्दी का सुधार उसी के सहयोग से अधिक सरल हो जाता है।

५. बन्दी-सुधार के लिए राज्य के पास एक बड़ा अधिकार तथा हथियार यह है कि उसके सुधार के अनुसार वह उसकी सज़ा की अवधि कम कर सकता है।

६. सबसे बड़ा काम है उसे शिक्षा के द्वारा सुधार देना। किसी भी बंदी को जेल के बाहर ऐसी दशा में नहीं भेजना चाहिए कि वह बुरी बातों में फिर से फँसने के लालच में पड़ जाय।

जो बात बालिग़ अपराधी के लिए है, वही बाल-अपराधी के लिए भी। आज संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल-विज्ञान की नवीनतम खोजों से जितना काम हो रहा है, उतना और किसी देश में नहीं। फिर भी, वहाँ १६ करोड़ की आबादी में दस लाख बाल-अपराधी प्रति वर्ष कैसे और क्यों पैदा होते रहते हैं? सम्भव है, आगे के पृष्ठों में इसका उत्तर मिल सके।

अध्याय २६

बाल-अपराध की समस्या का निदान

बाल अपराधी की समस्या का रूप और उससे लड़ने के लिए भिन्न-भिन्न देशों ने जो तरीके अपनाये हैं, उनका वर्णन करने के बाद हम आम बातों की ओर वापस आते हैं। आखिर इस समस्या का हल क्या है? बच्चों की आबादी बराबर बढ़ती जा रही है। अमीर देशों की बातें जाने दीजिए, अनुन्नत, पिछड़े देशों में इनकी जनसंख्या ७५ करोड़ है। इसमें से ६० फीसदी ऐसे मुल्कों के बच्चे हैं जहाँ पर लोगों की औसत आमदनी ४५० रुपये साल से कम है। १७ फीसदी बच्चे ऐसे अनुन्नत देशों के निवासी हैं जिनकी वार्षिक औसत आमदनी इसकी दुगुनी है। केवल २३ फ़ीसदी ९०० रुपये वार्षिक की आमदनी से ऊपरवाले वर्ग के हैं।[१] अतएव ६० करोड़ बच्चों के लिए पेट और रोटी का भी सवाल है। यदि इनमें बाल अपराधियों की वृद्धि हो तो निष्कारण न होगी।

हम ग़रीबी को अपराध का प्रधान कारण नहीं मानते। पर वह गौण तथा दूसरे नम्बर का कारण तो है ही। इनमें भी लड़कों की समस्या भिन्न है तथा लड़कियों की भिन्न है। लड़कों के लिए जितने उपाय सोचे जा सकते हैं, उतने लड़कियों के लिए नहीं। सन् १९५७ के सितम्बर महीने में संयुक्त राज्य अमेरिका के उपराष्ट्रपति श्री रिचार्ड एम० निक्सन ने न्यूयार्क में बाल-अपराध की बढ़ती हुई समस्या पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा[२] था कि "लड़कों में क्रिया-शक्ति की इतनी अधिकता होती है कि उस शक्ति के समुचित उपयोग का यदि साधन प्राप्त न हो तो वे अपराधी बन जाते हैं। अतएव इसके उपयोग का सबसे अच्छा साधन है शारीरिक व्यायाम तथा क़वायद का अधिक से

१. Unicef Bulletin—United Nations, New York, Vol. 7, No. 2, March, 1959.

२. New York Times, 9th Sept., 1957.

अधिक प्रबंध करना। समूचे देश में अधिक से अधिक व्यायामशालाएँ खोलनी चाहिए।"

न्यूयार्क के कारपोरेशन के चुनाव में उसी वर्ष मेयर वैगनर के खिलाफ़ यही सबसे बड़ा अभियोग विरोधी पक्ष के उम्मीदवार राबर्ट क्रिश्चेनवेरी ने लगाया था कि उनके शासन-काल में बाल-अपराध बहुत बढ़ गये थे। उन्ही दिनों रेडिओ से कोलम्बिया ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन की तरफ से न्यूयार्क के चीफ़ मजिस्ट्रेट श्री जान मुर्त्तघ ने कुछ लोगों के इस प्रस्ताव की निन्दा की थी कि बच्चों में अपराध रोकने के लिए उनको रात के समय घर से निकलने की मनाही कर दी जाय यानी उनके लिए रात को 'करफ्यू' आज्ञा जारी की जाय। मुर्त्तघ ने तो यहाँ तक कह डाला था कि पुलिस का जुआ पकड़नेवाला या मादक-द्रव्य की रोकथाम करनेवाला जत्था अपराध बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार है।

लड़कियों की समस्या

पर लड़कियों की समस्या लड़कों से कुछ भिन्न है। व्यायामशाला से उनका काम नहीं चलेगा। हमारे देश में लड़कियों के लिए बम्बई ऐसे उन्नत प्रदेश में भी अपराध रोकने की दिशा में काफ़ी कम काम हुआ है। उनकी आवश्यकता समझने का प्रयास भी नहीं हुआ है। मद्रास में अवश्य इस सम्बन्ध में अच्छा काम हो रहा है। वहाँ पर मद्रास सरकार द्वारा एक ऐसा महिला आश्रम है जिसमें निगरानी के लिए वे लड़कियाँ रखी जाती हैं जिनको चरित्रभ्रष्ट कहा जाता है तथा जिनकी उम्र १४ वर्ष से ज्यादा है। १ अगस्त १९५६ को इस आश्रम में कुल २६५ लड़कियाँ थीं जिनमें १५ वर्ष से कम उम्र की १० थीं, १५ से १८ वर्ष की १३४, १८ से २५ वर्ष की ७० तथा २५ वर्ष से ऊपर की ५१ स्त्रियाँ थीं। इनमें २२४ हिन्दू थीं, २५ मुसलमान तथा १६ ईसाई थीं। हिन्दुओं में १३ हरिजन, ८ ब्राह्मण तथा २०३ अब्राह्मण थीं। १३१ लड़कियाँ अविवाहित, १२१ विवाहित तथा १४ विधवाएँ थीं।

इन आँकड़ों से कई मार्के की बातें मालूम होती हैं। पहले तो यह कि सबसे कम दुराचारिणी कन्याएँ सबसे छोटी जाति की हैं—ऊँची जातियों में भ्रष्टाओं की संख्या अधिक थी। दूसरे, यह सोचना भी भूल होगी कि विवाह हो जाने के बाद पतन की सम्भावना कम हो जाती है। विवाहित तथा अविवाहित लड़कियों की संख्या बराबर सी है। मद्रास में एक दूसरा सरकारी "उद्धार की गयी कन्या का आश्रम" है जिसे "स्त्री-सदन" कहते हैं। ३ दिसम्बर १९५५ को स्त्रीसदन में ८९ लड़कियाँ थीं जिन

सबकी उम्र २१ वर्ष से कम थी। उसी दिन पहले उल्लिखित महिला आश्रम में २८६ लड़कियाँ तथा १९ शिशु थे। उस समय तक उस आश्रम की १४२ लड़कियों का संस्था की ओर से विवाह कराकर उन्हें सद्-गृहस्थ बनाया जा चुका था। इसी प्रकार स्त्री-सदन की ९७ लड़कियों को कुछ ही वर्षों में सुखी गृहस्थ बना दिया गया था। पर, स्त्रीसदन की २१ वर्ष से कम उम्रवाली लड़कियों के नीचे लिखे वर्गीकरण से स्पष्ट हो जायगा कि आज के समाज में आचरण तथा अच्छाई, अपढ़ तथा "नीची" कही जानेवाली जातियों में अधिक है तथा कच्ची उम्रवाली लड़कियों में अविवाहित ही अधिक होती हैं। अतः भ्रष्टा लड़कियों में अविवाहिताओं की संख्या अधिक है। इस सदन की २० प्रतिशत लड़कियों को "गर्मी" (आतशक) की बीमारी थी। १ अगस्त १९५४ को सदन में भर्ती, २१ वर्ष की उम्र के नीचे की लड़कियों की संख्या ९४ थी। उनका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ —

१.	विवाहित तथा पति द्वारा परित्यक्त	१८
२.	अविवाहित	७६
३.	विधवाएँ	५
४.	एकदम दरिद्र	२८
५.	निम्न मध्यम श्रेणी की	६५
६.	उच्च मध्यम श्रेणी की	१
७.	अपढ़	७
८.	अच्छी तरह से पढ़ी-लिखी	५९
९.	कम पढ़ी-लिखी	२८

इन आँकड़ों से एक और नयी बात मालूम हुई। यह कहना कि दरिद्र की लड़की के पतन की अधिक सम्भावना है, भूल होगी। एक न एक नयी बात मालूम होती रहती है। कुछ समझ में नहीं आता कि अपराध-निरोध का कार्य किस रूप में किया जाय, समस्या की गुरुता को ही देखकर संयुक्त-राष्ट्रसंघ ने यह निश्चय किया कि "बाल अपराधी की समस्या को बड़ी बुद्धिमत्ता तथा रचनात्मक रूप से सँभालना होगा, उसी प्रकार उपेक्षित तथा लापरवाही से पाले गये बच्चों में अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न होने से रोक-थाम करने के लिए उनके साथ आरम्भ से ही बड़ी सावधानी का व्यवहार करना होगा।

आज लगभग ९ वर्षों से संयुक्त-राष्ट्रसंघ इस दिशा में दिलचस्पी ले रहा है और उसने दुनिया के कोने-कोने में इस समस्या का अध्ययन कर अनेक उपाय ढूँढ़ निकाले

हैं और उन उपायों की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट कर रहा है।[१] राष्ट्रसंघ अपराध के कारणों की ओर न जाकर यह जानना चाहता है कि अपराध रोकने के लिए क्या विशेष कार्य किये गये। उसके अनुसार, रोकथाम की तीन श्रेणियाँ हैं—

१. अपराधी बननेवाले बालक बालिकाओं का शुरू से ही पता लगाकर उनकी समस्या विकट होने के पहले ही उनकी चिकित्सा प्रारम्भ कर देना चाहिए।

२. जिन बच्चों का व्यक्तित्व "समस्यामय" प्रतीत हो, उनकी शुरू से ही छान-बीन करके उन्हें अपराध के मार्ग से हटा लेना चाहिए।

३. जो लड़के-लड़कियाँ एक बार अपराध कर चुके हों, उनको दुबारा अपराध करने से रोकने का उपाय करना चाहिए।

रोकथाम और चिकित्सा

रोकथाम और चिकित्सा, इन दोनों का मेल कैसे होगा? इसके सम्बन्ध में राष्ट्र-संघ के सचिवालय की रिपोर्ट है—

"रोकथाम भी किसी मात्रा में चिकित्सा ही है। चिकि सा भी रोकथाम है, जैसे दुबारा अपराधी बनने से रोकना। जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं, समाज-कल्याण के आम कार्य, जैसे अच्छा घर, अच्छा स्वास्थ्य, आर्थिक सहायता आदि बाल-अपराध रोकने में सहायक होते है। पर यही पर्याप्त नही है। सभी भौतिक सुख होने पर भी बच्चों में अपराधी भावना पैदा होती ही है। इस भावना का जल्दी पता लगा लेना चाहिए। उसके कारण का पता लगाकर इलाज शुरू कर देना चाहिए, अन्यथा अनेक प्रकार की दुष्टताएँ पैदा हो जायँगी। इसलिए रोकथाम के किसी भी कार्यक्रम में इलाज का अपना स्थान रहेगा ही। जैसा कि हम कई बार कह आये हैं, समुचित चिकित्सा तभी होगी जब कि इस विषय में सुशिक्षित तथा अनुभवी लोग काम करते हों.....कम उन्नत देशों की आवश्यकता अधिक उन्नत देशों से भिन्न होगी। एक ही देश में स्थान-स्थान की ज़रूरत में फ़र्क होता है। इसलिए कोई कार्य-क्रम चालू करने के पहले वहाँ की हालत पूरी तरह से समझ लेनी चाहिए......।

१. राष्ट्रसंघ के कार्य तथा इस सम्बंध में उसका संकल्प जानने के लिए देखिए—
"The work of the United Nations in the field of Prevention of Crime and the treatment of offenders in International Review of Criminal Policy, United Nations No. 1, January, 1952, Page, 3–27.

"पर केवल रोकथाम के तरीकों से ही बाल-अपराध नहीं रुकेगा। जो बच्चे अपराधी हो गये हैं उनका कुछ इलाज भले ही हो जाय—चाहे प्रोबेशन हो या किसी संस्था में भर्त्ती कर देना हो—पर जब तक वे अपने समुदाय, परिवार, स्कूल तथा वातावरण के अनुकूल अपना जीवन नहीं बना लेते, जब तक अपनी "चिकित्सा" से वह ऐसी शिक्षा नहीं प्राप्त कर लेते, इस बात की पूरी सम्भावना है कि वे पुनः अपराधी बन जायँगे। इसलिए चिकित्सा के साथ उत्तर-रक्षा[१] (बाद में उनकी देखरेख) का काम भी निहायत ज़रूरी है। इस श्रेणी में दो वर्ग है जो अपराध की ओर बढ़ते हैं—एक तो वे बच्चे जो सामाजिक दोष के कारण अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं तथा दूसरे वे जो एक बार अपराध कर चुके है। अतएव बाल-अपराध रोकने के लिए ऐसा कार्य-क्रम होना चाहिए जो इन दोनों वर्गों की रक्षा कर सके।"[२]

अब बाल-अपराधी को दंड देने की बात तो कोई नहीं सोचता। अंतर्राष्ट्रीय रूप से यह चीज़ स्वीकार की जा चुकी है कि प्रतिशोध या प्रायश्चित्त या "उपदेश", किसी भी दृष्टि से बच्चों को, नवयुवकों तथा नवयुवतियों को दंड देना अनुचित है, अवांछनीय है तथा हानिकारक है और बाल-अदालतों को तथा बाल-सुधार का कार्य करनेवाले सरकारी कर्मचारियों को यह सिद्धान्त याद रखना चाहिए।[३] बाल-अदालतों का तथा सरकारी कर्मचारियों का, परिवीक्षण अफ़सर का, हर एक का कर्त्तव्य है कि जो कुछ करे उसका उद्देश्य बच्चों का कल्याण हो, अन्यथा उनकी पुनः शिक्षा हो।

जून १९५१ से न्यूयार्क के निकट कनान में ब्रर्कशायर अंतर्राष्ट्रीय सभा हुई थी। इसने अपने बाल-अपराधी सम्बन्धी प्रस्ताव की भूमिका में लिखा था—

"बाल-अपराधी से किसी प्रकार का सामाजिक बदला लेने की दार्शनिकता तथा दंड के सिद्धान्त पर किसी प्रकार का भरोसा रखना—इन दोनों बातों की हम सर्वसम्मति से भर्त्सना करते हैं। बच्चे को सुधारने के लिए किसी प्रकार का शारीरिक दंड या अपमानजनक उपाय करने की हम विशेष तौर पर भर्त्सना करते हैं।"

१. After Care

२. The Prevention of Juvenile Delinquency-Report by the Secretariat, United Nations–No. 7-8 Geneva-1955–Page 43.

३. Berkshire International Forum, held in the Berkshire Industrial Farm, Canan, New York.

सितम्बर १९५३ में रोम में छठा अंतर्राष्ट्रीय दंड-नियम सम्मेलन हुआ था। इसके अनुसार—"१६ वर्ष से कम उम्रवालों के विषय में हर प्रकार की प्रायश्चित्तात्मक दंड-प्रणाली एकदम बंद कर देनी चाहिए।" अपराध-निरोध तथा अपराधी की चिकित्सा के विषय पर एशियाई तथा सुदूरपूर्व सम्मेलन में यह निश्चय हुआ था कि "हर प्रकार का शारीरिक दंड समाप्त किया जाय।" इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि बाल अपराधी के प्रति उदारता तथा सहानुभूति के साथ ही साथ नर्मी का व्यवहार करने के सभी समर्थक है। कोड़ा लगाना, पीटना, जेलों में बन्द रखना, इन सब पुरानी चीज़ों को बड़ा हानिकारक समझते है। इससे बच्चे की आत्मा मर जाती है। उसका विकास समाप्त हो जाता है। यह प्रश्न हो सकता है कि तब उसके साथ कैसा तथा क्या व्यवहार किया जाय? 'राष्ट्रसंघ का कथन है कि जो लोग दंड न देकर चिकित्सा के हामी हैं उनकी सम्मति में—

(१) बाल अपराधी परिस्थितियों का शिकार है अतएव उसे दंड देने के बजाय उसकी आवश्यकताओं के अनुसार उसे संरक्षण तथा देखरेख प्राप्त होनी चाहिए।

(२) दंड देना या शिक्षा तथा कल्याणकारी चिकित्सा करना, इन दोनों बातों में बड़ा अन्तर है। दंड तब दिया जाता है जब अपराधी की व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी मानी जाती है पर दूसरे प्रकार का उपाय उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के अध्ययन पर तथा उन कारणों पर आधारित है जिनसे उसने असामाजिक कार्य किया है। जब दंडविधान से ही उसका नाम—बाल अपराधी का नाम—इसलिए हटा दिया गया कि वह अपने कार्यों के लिए स्वयं पूर्णतः उत्तरदायी नहीं है, तो फिर बाल-अदालतें या बाल अपराधी के विषय में काम करनेवाले अफ़सर उसके साथ दूसरा व्यवहार कैसे कर सकते है?

(३) ऐसे कुछ बाल अपराधी हो सकते हैं जिन पर चिकित्सा, सुधार, निगरानी आदि किसी का प्रभाव न पड़े। तब ऐसे बाल अपराधियों को बाल-अदालत के दायरे से ही बाहर कर अन्य अदालतों में ले जाना चाहिए।[१]

दंड के हिमायती लोगों का कहना है कि यदि बच्चों को मालूम हो गया कि दंड नहीं मिलेगा तो वे डरेंगे नहीं। बहुत से ऐसे लड़के या लड़कियाँ है जो दंड की भाषा ही समझते हैं। ऐसे अनेक मामले हो सकते है जिनमें दंड से ही उस अपराधी के आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत हो जाती है, अन्यथा नही। सुधारगृहों में भी किसी रूप में दंड तो वर्तमान है, अतएव दंड को अस्वीकार नही करना चाहिए।

१. Prevention of Juvenile Delinquency, Pages 61-62.

राष्ट्रसंघ का कथन है कि इन दोनों बातों को एक में मिलाने का एक ही तरीका है—प्रायश्चित या प्रतिशोध के लिए दंड देना तो नितान्त निकम्मी तथा ग़लत बात है, पर सुधार के लिए जहाँ पर शिक्षा का कार्यक्रम असफल रहा हो, किसी रूप में दंड दिया जा सकता है। कभी-कभी शिक्षा तथा दंड को मिलाकर चलना होगा। दोनों को मिलाकर चलनेसे सुधार, शिक्षा, भय आदि हर एक उद्देश्य की पूर्ति हो जायगी[१] सन् १९५४ में, सितम्बर के महीने में आस्ट्रिया की राजधानी वियेना में अपराध निरोध पर यूरोप के देशों की सभा हुई थी।[२] इस सभा में यह तया हुआ था कि "यदि बाल-अपराध पर क़ानून क़ैदख़ाने की सज़ा देना ही चाहता हो तो थोड़े दिनों के लिए सज़ा को स्थगित कर चिकित्सा का कार्य करना चाहिए। इस प्रकार सुधार का काम भी होता रहेगा, जेल का भय भी बना रहेगा तथा अपराधी को चिन्ता बनी रहेगी।

१. वही, पृष्ठ ६२।

२. World Federation for Mental Health—Federation Mondiale Pour La Sante Mentale Federacion Mundial Por La Salud Mental, 19, Manchester Street, London, W. I. May, 1955.

अध्याय २७

मानसिक स्वास्थ्य के सम्बंध में

सन् १९५५ के जेनेवा कांग्रेस में मन के, दिमाग़ के स्वास्थ्य की चिन्ता करने वाले विश्व संघ ने एक स्मृतिपत्र वितरित किया था। उसमें लिखा था——

"सामाजिक क्रिया तथा प्रतिक्रिया के कारण ही अपराध होता है। उसकी रोक-थाम उस समुदाय के सामाजिक ढाँचे के अनुकूल उपाय करने से ही हो सकती है. . . . इसलिए अपराध निरोध के विषय में हर समुदाय तथा वर्ग को स्वतः सोचना पड़ेगा। पर कुछ ऐसे भी सिद्धान्त हैं जो मानव जाति के लिए आमतौर पर लागू होते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से बाल अपराध के कारणों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। (१) व्यक्तिगत, (२) सामाजिक तथा (३) दोनों मिली-जुली। पहली श्रेणी में वे कारण आते हैं जो व्यक्ति के निजी सम्बन्ध में दोष के कारण पैदा होते हैं। सीधे सादे शब्दों में मानव शिशु के लिए यह स्वाभाविक है कि वह पैतृक स्नेह करनेवालों के समान बनने का प्रयास करते हैं। उनके तद्रूप बन जाते हैं। इस सम्बंध में यदि कोई दोष पैदा हो तो वह स्वाभाविक स्नेह नहीं जाग्रत होता। यही नहीं, वह विरोध, विग्रह तथा घृणा का रूप धारण कर लेता है. . . .सामाजिक कारण वह हैं जिनमें किसी प्रकार के सामाजिक तनाव के कारण अपराधी मनोवृत्ति पैदा होती है। जैसे असमानता, अन्याय, या अपने घर वालों के प्रति अपनी वफ़ादारी तथा समाज की वफ़ादारी में संघर्ष, जैसे अपने माता-पिता को भूखों मरता देखकर कोई बच्चा रोटी चुरा लाये। मिलेजुले कारण वही हैं जिनके ऊपर आज अधिकांश बाल-अपराध की ज़िम्मेदारी है। एक तरफ़ सामाजिक तनाव है और दूसरी तरफ़ प्रेम के सम्बंध में कमी है. . . . यदि केवल सामाजिक चिकित्सा की जाती है तो केवल सामाजिक कारणों के अपराधों पर लाभ होगा. . . .यदि माता-पिता का जीवन संतुलित है, यदि उनके जीवन में कोई बड़ा विग्रह नहीं है, यदि परस्पर के सम्ब्रंध में तथा सामाजिक जीवन में कोई तनाव नहीं है, तो बच्चे के जीवन में कोई विक्षेप नहीं होता। उसकी इन्द्रियां ठीक से काम करती हैं। उसकी बुद्धि का स्तर ठीक रहता है। बच्चे के आरम्भ के जीवन में, जहाँ माता या पिता से ठीक से सम्बन्ध नहीं स्थापित होता, जहाँ माता का स्नेह

ठीक से नहीं प्राप्त होता, उसके ऐसे स्नेह-हीन जीवन में ऐसा मनोवैज्ञानिक विप्लव पैदा होता है कि उसके मानसिक स्वास्थ्य पर, दिमाग़ी तन्दुरुस्ती पर, बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है. . . .बालक-बालिकाओं के सुधार के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि माता-पिता भी परिपक्व हों, अधकचरे अनुभव से अपनी सन्तान का पालन न करें—उन्हें वह स्नेह तथा लगन प्रदान करें जिससे बच्चों का जीवन सुधरता है।"

जेनेवा कांग्रेस में बाल अपराधियों पर एक दूसरा महत्त्वपूर्ण परिपत्र विश्व स्वास्थ्य संगठन का था।[१] उसमें बाल अपराधी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखा है कि उनके निजी व्यवहार, कार्य तथा जीवन में जो अव्यवस्था प्रतीत होती है उसका एक कारण नहीं होता। "कई कारण मिलकर वैसा व्यवहार बनता है। सामाजिक, शारीरिक तथा वातावरण सम्वधी—ये सब मिलकर कारण बन जाते हैं—चोरी, मारपीट, लड़ाई-झगड़ा इन सब आदतों के पीछे समाज या किसी व्यक्ति के विरुद्ध विद्रोह की भावना है। अपराध तो उसे ही कहते हैं जो जानबूझ कर किया जाय। किसी अपराध का मनोविश्लेपण करने के लिए उसे करने की नीयत का पता लगाना चाहिए। नियम तथा व्यवस्था के विरुद्ध जो भी कार्य हो, चाहे उसका पता चले या न चले, हर दशा में वह अपराधी है. . . .व्यवस्था, नियम, समाज या व्यक्ति के विरुद्ध विद्रोह परवार के वातावरण से या माता-पिता के व्यवहार के कारण तो नहीं प्रारम्भ हुआ है, यह बात पता लगाने की है।[२]"

हमने बाल-अपराध के विषय पर, अपनी पुस्तक के संकुचित आकार के दायरे में, अधिक से अधिक बातों को संक्षेप में देने का प्रयास किया है। इसे रोकने के लिए, इसके बढ़ते हुए वेग को कम करने के लिए, इसके मूल-भूत कारणों को दूर करने के लिए जितने मुख्य सिद्धान्त तथा प्रणालियाँ थीं, उनका भी कुछ न कुछ वर्णन किया ही गया है। पर जिस प्रकार हमें स्वयं इस विषय पर लिखने पर सन्तोष नहीं है, जिस प्रकार हमको स्वयं इस समस्या के हल का मार्ग स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ रहा है, उसी प्रकार पाठकों को भी संतोष न हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसका कारण है। सिद्धान्त बनते और मिटते रहते हैं। एक नयी खोज होती है और कटती रहती है।

१. The Detection of the Pre-Delinquent Juvenile—World Health Organisation, 17th Aug., 1955.

२. F. J. Shirley Murphy—"The Incidence of Hidden Delinquency" Vol. XVI—4, Pages 686-696.

पर बाल-अपराध की रोकथाम और वृद्धि को रोकने का सही उपाय समझ में नहीं आ रहा है। काम-वासना या अन्य प्रकार के अपराध का निदान तो समझ में आ सकता है। उसका व्यावहारिक रूप भी प्रत्यक्ष है। उन अपराधों में कमी हुई है, पर जितना ही उपचार होता है, उतना ही बाल-अपराध बढ़ता जा रहा है।

एक विषय में सबकी सम्मति है। प्रत्येक दृष्टिकोण के अपराध-शास्त्री परिवार तथा माता-पिता का, पैतृक तथा पारिवारिक, अभिभावक तथा गुरुजनों का महत्त्व स्वीकार करते हैं, यदि हमारा पारिवारिक जीवन ठीक हो, यदि हमारा विचार तथा हमारी भावना अपने परिवार में शुद्ध रहे तो बालकों का सुधार बहुत कुछ सम्भव है तथा समाज का कल्याण इसी में है कि हम अपने पारिवारिक जीवन की पुरानी मर्यादा को पुनः अपनाएँ, पुनः स्थापित करें तथा अपनी सन्तान की प्रगति, रक्षा, विकास और शिक्षा में स्वयं दिलचस्पी लेना सीखें। सुदृढ़ पारिवारिक जीवन से ही सुदृढ़ समाज की रचना होती है और सुदृढ़ समाज में ही अपराध तथा अपराधी मनोवृत्ति में काफ़ी कमी होती है। समाज की रक्षा परिवार से प्रारम्भ होगी।

तृतीय भाग

वयस्क अपराधी और पुनर्वास

अध्याय २८

अपराध और वयस्क अपराधी

अपराधी का मनोभाव

वायुयान से परिचित लोग चार्ल्स लिंडवर्ग के नाम से परिचित हैं। यह पहले साहसी व्यक्ति हैं जिन्होंने संयुक्तराज्य अमेरिका से पेरिस तक एक छलांग में वायुयान से यात्रा की थी। संसार में उस समय इनकी जो ख्याति थी वह बिरले व्यक्ति के भाग्य में होगी। सन् १९३२ में उनके एकमात्र बच्चे को भगा ले जाने तथा उसकी हत्या करने का अभियोग ब्रुनो हाप्टमैन पर लगा और जब मुक़द्दमा शुरू हुआ, ऐसा प्रतीत होता था कि संसार में और कहीं कुछ नहीं हो रहा है—केवल उस सनसनीदार घटना का ही ज़िक्र है। पर इस मुक़द्मे के कई वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य के न्यू जर्सी नगर में एक भयंकर हत्या हुई। उस हत्या का रोमांचकारी विवरण तथा तत्संबंधी हॉल मिल्स का मुक़द्दमा २४ दिन तक चलता रहा। अदालत की दिलचस्प कार्यवाही १,२०,००,००० शब्दों में समाचारपत्रों को तार से भेजी गयी। यदि इतने शब्द पुस्तकाकार छापे जाते तो किताबों की अलमारी का २२ फुट लम्बा एक ख़ाना भर जाता।[१]

समाचारपत्र वही संवाद विस्तार से देते हैं जो जनता चाहती है, जिसकी जनता को भूख होती है। आखिर आज के समाज में हत्याकांड या भयंकर घटनाओं के प्रति इतना प्रेम क्यों है? ऐसी घटनाओं से भरी लाखों पुस्तकों की इतनी माँग क्यों है? क्या ऐसा तो नहीं है कि सभ्य तथा शिष्ट कहे जानेवालों के दिल और दिमाग़ में, उसकी तह में अपराधी भावनाएँ भरी हुई हैं? समाज या शासन के भय से "अनजाने" ही वह अपराधी नहीं बन गया है पर दूसरे अपराधी की कहानी सुनकर उसे आत्मिक सन्तोष होता है।

१. Charles Merz—"Bigger and Better Murders"—New York, Harper & Bros., 1928—Page 81.

दूसरे, बहुत से लोग यह समझते हैं कि जिसे हम अपराधी कहते हैं, वह समाज का ऐसा शत्रु है जो "दूसरों को" पीड़ा पहुँचाया करता है। फिर भी वे खयाल करते है कि जिसको पीड़ा पहुँचती हो, वह जाने; हर एक को परेशान होने से लाभ ? ऐसा विचार रखनेवाले सोचते हैं कि हम तो अपराधी से कोसों दूर हैं, हमसे क्या मतलब ? पर यह कौन जानता है कि कल वे ही अपराध कर बैठें। किसे मालूम है कि कल वे ही न जाने किस हत्या में, ग़बन में, चोरी में स्वयं शिकार बन सकते हैं या वैसा बुरा काम स्वयं कर सकते हैं। कारागार में अपराधियों को बन्दी रखनेवाला या पुलिस-मैन के रूप में उनको गिरफ्तार करनेवाला स्वयं अपराधी बन सकता है। अपराध का कारण ग़रीबी होगा, अपराध का कारण बुद्धि के विकास में कमी होगी या अपराध उन्माद है, पागलपन है—यह सब भी कहने की बातें है। अपराध का वास्तविक कारण, जितना ही हम उसका अध्ययन करते हैं, उतना ही "कुछ भी समझ में नहीं आता।"

अपराध के कारण

यदि गरीबी के कारण आदमी अपराधी बनता तो आज संयुक्तराज्य अमेरिका ऐसा धनी देश इस परिणाम पर न पहुँचता कि "बहुत कम अपराध **आवश्यकता** के कारण होते हैं। अधिकांश अपराध लालच के कारण होते है, न कि जरूरत के कारण।"[१] मनोवैज्ञानिकों ने काफ़ी छानबीन करके यह पता लगाने की कोशिश की कि अपराधियों की बुद्धि का स्तर कैसा है। अनुमान नही, ठोस परीक्षण से पता चला कि उनमें तथा साधारण जनसमूह की बुद्धि में बहुत कम अन्तर है।[२] एक प्रकार से यह स्वीकार कर लिया गया है कि उनमें से अधिकतर की बुद्धि साधारण व्यक्ति से अधिक तीव्र होती है। यदि यह कहा जाय कि अधिकतर अपराधी उन्माद के शिकार होते हैं तो यह भी भूल होगी, क्योंकि पागलपन के ९९ फीसदी मरीज अपराधी होते ही नहीं। कामुक वासना होने से ही अपराध होता है, यह कहना भी भूल है, क्योंकि वासना का सबसे गन्दा अपराध अप्राकृतिक संभोग समझा जाता है और इस लत का कारण आज शरीर के भीतर की बनावट का कुछ दोष समझा जाने लगा है

१. Harry Elmer Barnes and Negely K. Teeters—"New Horizons In Criminology"—Prentice Hall, New Jersey, 1959—Page 7.

२. वही

और यह भी कहा जाता है—काफ़ी छानबीन के बाद—कि इस प्रकार की लतवाले बहुत ज़्यादा व्यक्ति अन्य सब बातों में बड़े सज्जन, शिष्ट तथा चरित्रवान् मिलेंगे।[1] यह रोग—यानी स्त्री-स्त्रीका अथवा पुरुष-पुरुष का सम्बंध न होने पर भी बहुत से जनाने मर्द तथा मर्दानी औरतें मिलेंगी। जिन औरतों में मर्द की पोशाक की नक़ल करने की आदत होती है या मर्द औरतों की तरह से बाल संवारने, पाउडर लगाने, या जनानी आवाज़ में बोलने के व्यसनी होते हैं, ये दोनों प्रकार के लोग क्रमशः मर्दानी औरतें या जनाने मर्द होते हैं।[2] किन्तु, इनमें अपराध की प्रवृत्ति होती है, यह बात नहीं है। कामवासना और अपराधों का कारण होती है पर स्वतः यह अपराध नहीं है।[3] हम यह बात अपने पहले अध्याय में साबित कर चुके हैं। केवल वासना-वश किये गये अपराधों की संख्या नगण्य है।[4] अमेरिका के प्रसिद्ध सिंगसिंग जेल में वासना के १०२ अपराधियों की समीक्षा की गयी तो पता चला कि उनमें कुछ को मानसिक तथा भावुक व्यतिक्रम था और अधिकांश के बचपन में पारिवारिक या सामाजिक कोई आघात, परेशानी या चोट पहुँची थी।[5] सभी व्यक्ति या सभी अपराधी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से मानसिक रोगी नहीं सिद्ध किये जा सकते। आजकल हर एक बात को मनोविज्ञान से जोड़ देना भी ठीक नहीं है।[6] आजकल वेश्यावृत्ति को भी अपराध माना जाता है। कुछ लोगों का यह ख़याल है कि कम उम्र में किसी कन्या के साथ बलात्कार या दुराचार करने के कारण वह आगे चलकर दुराचारी वेश्या बन जाती है पर, यदि ठीक से पता लगाया जाय तो अधिकांश वेश्याएं कपड़ा, मकान या भोजन की कमी से अपना शरीर बेचने निकलती हैं। एक बार भ्रष्ट हो जाने वाली लड़की सदैव ऐसी रहेगी, यह भाव एकदम गलत है।

१. वही, पृष्ठ ९७

२. वही, पृष्ठ ९७

३. वही, पृष्ठ ९९.

४. वही, पृष्ठ ९९

५. "Study of 102 Sex Offences in Sing Sing"—*Federal Probation*—Vol. 14, No. 3, (September, 1950)—Pages 26-32.

६. Dr. Ben Karpman, "Psychopathy as a Form of Social Parasitism—Journal of Chemical Psychopathology"—Vol. 10, No. 2–April, 1958.

जीवन भर, विवाह न कर, जीवन का सुख लेनेवाले "सदा कुमार" या "सदा कुमारी" आज संसार में ऊँचे से ऊँचे पद पर मिलेंगे। आज के ७० वर्ष पूर्व चार्ल्स लोरिंग ने साबित कर दिया था कि वेश्या और कामुक वासनावालों में बहुत बड़ा अन्तर है।[१]

यदि मादक द्रव्य का सेवन अपराध का कारण समझा जाय तो इसे भी कोई खास कारण मान लेना कठिन है। संयुक्तराज्य अमेरिका में १७,५०,००,००० व्यक्ति रोज शराब पीते हैं। इनमें से, वहां की गणना के अनुसार ३०,००,००० व्यक्ति "अति अधिक" शराब पीते हैं। येल नगर के डा० सेल्डन बेकन के कथनानुसार इनमें से एक चौथाई को मजबूरन ज्यादा पीना पड़ता है और बाकी लती शराबी हैं। ज्यादातर शराबी या तो ऐसी उलझनों के शिकार हैं जिनका व्यक्तित्व दूषित हो गया है, उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।[२] पैतृक परिपाटी से शराबी बन गये हैं। शराबियों में ८५ प्रतिशत पुरुष होते है—२० से ६५ वर्ष की उम्र के भीतर के। यदि इनका इलाज ठीक से हो तो ये सुधर सकते हैं, पर इनको जेल भेजना इनकी मिट्टी खराब करना है।

अपराध का आर्थिक कारण

सन् १८९४ में इटली के विद्वान एतोरे फर्नासारी दि वर्सी[३] ने हिसाब लगाया था कि इटली की ६० प्रतिशत जनता बहुत गरीब है। जेल में बंद अपराधियों में ८५ से ९० प्रतिशत तक दरिद्र थे। इस हिसाब से, वर्सी के अनुसार दरिद्र ही अपराध करता है। नीदरलैंड के अपराधशास्त्री विलियम बौंगर[४] के कथनानुसार समाज की पूंजीवादी रचना के कारण ही दरिद्र समाज बनता है और यही दरिद्र समाज अपराध का घर है। अमेरिकन अपराधशास्त्री चार्ल्स लोरिंग ब्रेस, जैकबरिस आदि का भी यही मत है।

१. Charles Loring Brace—"Gesta Christi"—New York Armstrong 1882—Page 317.

२. Barnes and Teeters—"New Horizon in Criminology"—Page 92.

३. Ettore Fornasari di Verce.

४. W. A. Bonger.—"Criminology and Economic Conditions"—Boston—Little Brown—1916. Page 643.

पर आधुनिक समाज-विज्ञान से यह सिद्ध है कि केवल गरीबी बिरले ही अपराध का कारण होती है।[१] असली कारण बहुत से हैं--निश्चित रूप से हैं। पर ज्यों ज्यों इस विषय का अध्ययन बढ़ता जा रहा है, मनोविश्लेषण करनेवाले तथा दण्डशास्त्री यानी दंडविज्ञान के पंडित का दृष्टिकोण भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न प्रतीत होता है।[२] मनोवैज्ञानिक तो मानसिक परिस्थिति में व्यतिक्रम की बात सोचकर उसी की बात सोचता है। ऐसे अनेक मामले भी सामने हैं जिनमें अपराधी को मार पीट कर, शरीर का दंड देकर ठीक किया जा सकता है। बहुत से ऐसे अपराधी हैं जो बार-बार सजा पाते हैं और हर प्रकार का दंड देने पर भी अदालतें उनको सज़ा देते देते थक जाती है।[३] उनका (अपराधियों का) मन तथा स्वभाव इतनी खराब हालत में होता है कि उनकी रक्षा का कोई उपाय समझ में नहीं आता। मनोविश्लेषण के हिमायती भी ऐसे लोगों से निराश हो जाते हैं। ऐसे अपराधियों की चिकित्सा का उपाय हम आगे चलकर सोचेंगे। यहाँ पर तो यही निश्चय करना है कि क्या दरिद्रता अपराध का कारण है। हम लोग तो यही समझते हैं कि जब किसी अपराधी को दंड दिया जाता है, अपराध करनेवाले के कार्य का कारण, काम की नीयत समझने का प्रयास किया जाता है ताकि जिस सीमा तक उसकी नीयत का पता चले, उस सीमा तक दंड दिया जा सके।[४]

दरिद्रता

इसीलिए नीयत की बात यदि प्रधान है तो स्वयं दरिद्रता नहीं, दरिद्रता की नीयत अपराध का कारण हो सकती है। बार्नेस और टीटर्स का मत है कि वस्त्र के अभाव

१. बार्नेस, टीटर्स--पृष्ठ १४८

२. Edward Glover (London)—"Prognosis or Prediction"—A Psychiatric Examination of the Concept of Recidivism"—The British Journal of Delinquency—Vol. VI Number I, Sept. 1955—Page 117.

३. वही, पृष्ठ ११७

४. Frenz Alexander and Hugo Staub and Gregory Zilboorg—"The Criminal, the Judge and the Public"—The Free Press, Glencoe, Illinosis, U. S. A. Page VIII, 1957.

में कोई चोरी नहीं करता या कोई लड़की कपड़े की कमी के कारण अपना शरीर नहीं बेचती, बल्कि अधिक अच्छे वस्त्र के लालच में ऐसा करता या करती है। भूख से पीड़ित व्यक्ति चोरी बहुत कम करता है। यह सही है कि "अधिक अच्छी स्थिति" "अधिक अच्छा साधन", "अधिक अच्छी सामग्री" के लालच में चोरी की जा सकती है। अतएव गरीबी नहीं, पर "व्यापक दृष्टि से छोटे-मोटे परम्परागत अपराधों का कारण, विशेषकर छोटी चोरियाँ, आर्थिक कारणों से होती है।"[१] पर यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे लाखों नितान्त दरिद्र परिवार हैं जहां खाने का भी ठिकाना नहीं है पर वे लोग नितांत ईमानदारी तथा सच्चाई से, अपनी परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।[२] ऐसा कौन-सा देश है जहाँ गरीबी नहीं है। संसार का सबसे धनी देश संयुक्त राज्य अमेरिका है। उसके विषय में भी लिखा है—"गरीबी बड़ी निराशा तथा चिन्ता की बात है, जीवन के साधारण स्तर से नीचे उतर कर रहने के लिए मजबूर होना बड़ा कष्टदायक है। फिर भी इस देश में ऐसे लाखों आदमी है जो ऐसा कष्टमय जीवन बिताते है। समृद्धि के कार्यों में भी करीब ३० लाख परिवारों की आमदनी साधारण औसतन आय से बहुत कम थी।"[३]

लन्दन के आँकड़े

भारतवर्ष ऐसे गरीब देश में, जहाँ करोड़ों व्यक्ति काफी गरीबी की हालत में रहते हैं, पश्चिम के धनी देशों की तुलना में अपराध बहुत कम होते हैं। पश्चिम के देशों में गरीब मुहल्लों में रहनेवालों के बच्चों में अपराधी भावना पैदा होती है पर उसके साथ रचनात्मक भाव भी कम नहीं होते। इन मुहल्लों की गिरफ्तारियां धनी मुहल्लों की तुलना में कहीं कम होती हैं। ब्रिटेन के डा० सिरिल बर्ट ने हिसाब लगाया है कि "लंदन के समूचे अपराधियों में से केवल १९ प्रतिशत गरीब मुहल्लों के हैं जबकि समूची आबादी का ८ प्रतिशत गरीब मुहल्लों में रहता है। संक्षेप में आधे अपराधी गरीब या "साधारणतः" दरिद्र परिवार के थे पर "साधारणतः" सम्पन्न परिवारों के अधिकांश अपराधी पुलिस की जाँच या कार्रवाइयों से अपने को बचा

१. Barnes & Teeters—पृष्ठ १४८

२. वही, १४८

३. वही, पृष्ठ १४९, इस विषय में Statistical Abstract of the United States में पृष्ठ ३०९ पर सन् १९५४ के बड़े रोचक आँकड़े दिये हैं।

लेते हैं।...यदि अपराधियों में अधिकांश व्यक्ति जरूरतमन्द लोग हैं तो अधिकांश जरूरतमन्द अपराधी नहीं हैं।"[1] डा० हीली का हम पिछले अध्यायों में बार-बार जिक्र कर आये है। उनकी खोज के अनुसार जितने मामले उनके सामने आये उनमें केवल ०·५ प्रतिशत ऐसे थे जिनमें गरीबी ही अपराध का मुख्य कारण थी। ७·१ प्रतिशत मामलों में गरीबी गौण कारण थी।[2] हीली की पुस्तक की आलोचना करते हुए डा० सिरिल बर्ट कहते हैं कि ८०० पन्ने की पुस्तक में गरीबी पर केवल १७ लाइनें (पंक्तियां) लिखी गयीं हैं।

डा० हीली की उपरिलिखित खोज के कई वर्षो बाद उन्होंने तथा उनकी धर्मपत्नी डा० ब्रानर ने ६५६ अपराधियों की जाँच करके पता लगाया कि उनमें से २२ फ़ीसदी दरिद्र परिवारों के थे, ५ फ़ीसदी विस्थापित तथा निराश्रित थे, ३५ फ़ीसदी "साधारण" परिवारों के, ३४ फ़ीसदी सम्पन्न परिवारों के तथा ४ फ़ीसदी अत्यधिक विलास में रहनेवाले परिवारों के थे। इस प्रकार निराश्रित तथा अत्यधिक सम्पन्न—दोनों की परिस्थति बराबर है। सब हिसाब लगाकर डा० हीली तथा डा० ब्रानर का कहना है कि "७३ फ़ीसदी साधारण खाते-पीते परिवार के थे...अतएव आर्थिक परिस्थिति अपराधी भावनाओं के अध्ययन में विशेष महत्त्व नहीं रखती।"[3]

द्वेष की बात

बार्नेस और टीटर्स लिखते हैं—

"भूख और शीत नहीं, द्वेष तथा महत्त्वाकांक्षा ही छोटे अपराधों के लिए प्रेरित करते है। यह उसी प्रकार से है जैसे लालच के कारण ही बड़े-बड़े अपराधी बनते है...गरीबों को दूर कर देना आसान बात नहीं है...आर्थिक अरक्षा, पुष्टिकारक भोजन में कमी, आवश्यकता से कम वस्त्र, आवश्यक औषधिक तथा चिकित्सा-सम्बंधी साधनों की कमी—ये ऐसी चीजें हैं जिनसे अपराधी या विद्रोही भावनाएँ पैदा हो

१. Dr. Cyril Burt—"The Young Delinquent"—Ist Edition—London, University of London Press, 1938—Pages 68, 69, 92 etc.

२. Dr. William Healy—"The Young Delinquent"—Boston—Little Brown, 1915—Page 135.

३. William Healy and Augusta F. Bronner—Delinquents and Criminals—New York—Macmillan, 1926—Page 121.

सकती हैं। इसलिए इसमें क्या आश्चर्य है कि अपराध और गरीबी का प्राय: सम्बंध हो जाता है।"[१]

अपराधी धनी अमेरिका

बेकारी को अपराध का कारण समझना भी उचित नहीं समझा जाता। सिंगसिंग जेल में ८०० कैदियों में केवल ११ प्रतिशत ऐसे थे जो अपराध करने के समय बेकार थे।[२] संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे धनी देश में, जहाँ पर साढ़े सत्रह करोड़ की आबादी में औसतन फी व्यक्ति की आमदनी १५ से २० हजार रुपये साल है, केवल न्यूयार्क के बन्दरगाह से हर साल लगभग २ करोड़ मूल्य का माल चोरी जाता है।[३] संयुक्तराज्य के २२ प्रमुख नगरों में फ़ी हजार की आबादी पीछे नीचे लिखे औसतन व्यक्ति हत्या, चोरी, डकैती, सेंध आदि अपराधों के दोषी थे।[४]

(फ़ी १००० व्यक्ति पीछे)

लॉस ऐंजीलीज़	५१. ७	इंडियानापोलिस	२७. ५
ऐटलांटा	४४. ७	क्लेवलैंड	२३. ०
सेंट लूई	४३. ८	मिन्नेपोलिस	२१. २
डेनवर	३९. ३	बोस्टन	२१. ०
सियाटल	३९. ३	पिट्सबर्ग	२१. ७
नेवार्क	३७. ४	न्यूयार्क सिटी	१७. ७
हाउस्टन	३५. २	फिलाडेल्फिया	१६. ९
डालास	३५. २	सिसिनाटी	१६. ०
सान फ्रेंसिस्को	३४. ८	कैंसस सिटी	१३. ३
न्यू आर्लियन्स	२९. २	शिकागो	१२. ९
डे टायट	२८. ०	बफालो	८. ५

१. Barnes and Teeters—Page 162.

२. वही, पृष्ठ १५३

३. Journal of Commerce, New York, 13 Jan. 1956.

४. Time Magazine, New York, June 30, 1958—Page 18.

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि पहले जो शिकागो नगर अत्यधिक अपराधी समझा जाता था, वैसा अब नहीं है। १९२९–३० के जमाने का शिकागो अब बदल गया है। उसी प्रकार अपराध की सूरत और श्रेणी भी बदल गयी है। "आँख पर पट्टी बाँधे" जिन प्रसिद्ध अमेरिकन बदमाशों की कहानियाँ सुनी जाती हैं, उनका जमाना प्रथम महायुद्ध के समय गिरने लगा। संयुक्तराज्य में मादक द्रव्य निषेध के ज़माने में कानून तोड़कर मादक द्रव्य बनाने और बेचनेवालों की नयी श्रेणी तैयार हो गयी। कई वर्षो तक बदमाशों के लिए येही सबसे लाभदायक काम रह गया। द्वितीय महायुद्ध के जमाने में अपराधियों के गिरोह-गुट बनने लगे। उनका नियमित तथा निश्चित संगठन था और वे समाज का गला काटते थे तथा आपस में भी मारकाट करते थे।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक नयी श्रेणी का अपराधी पैदा हो गया है। वह है "सफेदपोश", सभ्य तथा सम्मानित समझा जानेवाला अपराधी, जो सरकार, व्यवसाय तथा व्यापार सभी क्षेत्रों में फैला हुआ है।[१] संयुक्तराज्य अमेरिका के २०० जेलों के (सुधारगृह मिलाकर) २,००,००० के औसतन सालाना कैदियों में इसकी अच्छी खासी संख्या है। सन् १८७७ में रिचार्ड डगडेल ने जो मीमांसा की थी, वह आज भी सत्य प्रतीत होती है। उन्होंने लिखा था कि तीन प्रकार के लोगों को अपराध करने में लाभ है—

१. अपराध-विशेषज्ञ, इनके अपराध का पता लगाना कठिन है। यदि पता लग भी गया तो ये घूस देकर अपने को बचा सकते हैं।

२. अयोग्य व्यक्ति जो इतने आलसी है कि कुछ काम नहीं कर सकते; इतने घमण्डी हैं कि भीख नहीं माँग सकते; इतनी कम उम्र के हैं कि किसी भिक्षुगृह में नही रखे जाते सकते।

३. एकदम दरिद्र–जो इसलिए चोरी करते हैं कि जेल में भिक्षु-गृह से अधिक आराम है।[२]

अस्तु, संयुक्त राज्य अमेरिका में, केन्द्रीय पुलिस जाँच विभाग से संचालक एडगर हूवर की रिपोर्ट के अनुसार, अपराध की रोकथाम तथा दंड पर १० अरब रुपया साल—प्रति परिवार पीछे २५०० रुपया वार्षिक—व्यय होता है।

१. Barnes and Teeters—Page 18-19.

२. Richard Dugdale—The Jukes—G. P. Putnam and Sons, New York, 1910, Page 199.

चोरी, डकैती, जुआ

इतना व्यय होगा ही। सन् १९५६ में ५,६८,५६१ अपराधों की रिपोर्ट हुई। १,५१,५६१ व्यक्ति पकड़े गये। १,०६,७०९ पर मुकद्मा चला। इनमें केवल ६५,४११ अदालतों द्वारा अपराधी पाये गये। ९,३०८ ने मामूली अपराधों को "स्वीकार" कर लिया, यानी केवल ६९·१ प्रतिशत मुकद्मे सफल हुए। पर सब आँकडा मिलाने पर पुलिस को जितने अपराधों का पता चला था उनमें से केवल १३ २ प्रतिशत साबित किये जा सके तथा गिरफ्तार लोगों में से ५० प्रतिशत पर ही दोष सिद्ध हो सका।[१] संयुक्तराज्य के २,२०० नगरों में सन् १९४७ से १९५१ के बीच में १०,००,००० बड़ी चोरियाँ हुई, १,८४,३५८ डाके पड़े। दस लाख चोरियों में आठ लाख का पता नही लगा। डकैतियों में १,०८,१३४ का कोई पता नहीं चला। पुलिस के पास सब कुछ वैज्ञानिक साधन होते हुए भी वह दक्ष तथा पटु अपराधियों से हार खाती जाती है। उस देश में जुआ खेलने पर लाखों रुपया खर्च होता है। दर्जनों प्रकार के जुए हैं। २ करोड़ ६० लाख व्यक्ति "बिगों" खेलते है, लाटरी खरीदते है, इत्यादि। २ करोड़ २० लाख व्यक्ति पाँसा या ताश का जुआ खेलते हैं। १ करोड़ ९० लाख व्यक्ति दंगलों में पहलवानों पर या फिर राजनीतिक घटनाओं पर सट्टेबाजी करते हैं। १ करोड़ ५० लाख "पंचवोर्ड" है। १ करोड ४० लाख स्लाट मशीनों पर, ८० लाख घुड़दौड़ में तथा ८० लाख लाटरी आदि के जूए खेलते हैं।[२] इन जूओं में जो लागत (धन) खर्च होता है यानी जितनी रकम का वारा-न्यारा होता है वह लगभग २६ करोड़ डालर है यानी १३० अरब रुपये का वारा-न्यारा हो गया। जूआ रोकने में असमर्थ हो जाने के बाद अब उसे रोकने की एक ही तरकीब समझी जा रही है कि उसे कानूनी रूप देकर "सम्मानित" व्यवसाय क्यों न मान लिया जाय। क्या गरीब देश में ऐसा हो सकता है?

१. Uniform Crime Reports, Vol. 28, No. I, (September, 1957) Table 20, Page 61.

२. Barnes and Teeters, Page 30-31. **वही, पृष्ठ ३३**

अध्याय २९

विकृतमना

जिसका मन विकृत हो, उसे विकृतमना[1] कहते हैं। रोजमर्रा की जिन्दगी में हम स्वयं अपने सम्बंध में देखते हैं कि मन विकृत होता रहता है। किन्तु बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनका मन स्थायी रूप से विकृत हो जाता है। ऐसे लोग प्रायः छेड़ करके झगड़ा मोल लेते हैं। बिना इसके उनको चैन नहीं मिलती।[2] ऐसे लोगों की समाज में ऐसी परिस्थिति हो जाती है कि कोई उन्हें पसन्द नहीं करता, कोई उनका साथ नहीं चाहता। ऐसी प्रवृत्ति के लोग अनायास या स्वभाववश ही अपराधी बन जाते हैं। अपराधी भी ऐसा जिससे दूसरों की हानि हो, दूसरों की वस्तु का अपहरण हो। समाज उनके प्रति उदासीन है तो वे समाज के प्रति उद्दंड हो जाते हैं।

सन् १९५५ में ब्रिटेन में एक ऐसा ही विषय विचाराधीन था। साढ़े १८ वर्ष का एक लड़का बहुत ही झगड़ालू प्रवृत्ति का था। उसे पाँच बार सजा मिल चुकी थी—जेल हो आया था। छठीं बार वह हिंसात्मक डकैती तथा जेल अधिकारी को छुरा मारने के अपराध में जेल आया था। इसके बाद उसे सन् १९४९ में १८ महीने की सजा, १९५१ में ६ महीने, फिर २१ महीने, १९५२ में ६ महीने, १९५३ में ६ महीने—ये सभी सजाएँ चोरी या मकान में सेंध लगाने के सिलसिले में मिली थीं— तथा १९५४ में वह प्रोबेशन अफसर की निगरानी में इसलिए रखा गया था कि उसने एक व्यक्ति को, उसकी जान लेने की धमकी का पत्र लिखा था।[3] अब यह सोचने की बात है कि यह युवक स्वतः अपराधी था या यह इसके मन का दोष था।

१. **अंग्रेजी में इसे** Psychopath—**विकृतमना कहते हैं।**

२. The British Journal of Delinquency, Vol. VI, Number II—September, 1958, Page 134.

३. **वही पृष्ठ १३५** Follow-up Study of Criminal Psychopaths—Gibbons, Pond and Stafford Clark.

यदि विकृतमन का कोई इलाज हो सके तो ऐसे युवक की दुनिया ही दूसरी हो सकती है।

कई श्रेणियाँ

विकृतमना में भी कई प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक श्रेणी "अपरिपक्व मोहक विकृतमना"[१] की होती है। प्रयत्न करने पर भी इनमें सुधार नहीं हो सकता पर ये लोग बड़े विनम्र, शिष्ट तथा व्यवहार में मन मोह लेनेवाले होते हैं। ये उद्दंड प्रकार का अपराध नहीं करते, इसीलिए अपरिपक्व कहे जाते हैं। प्रायः विकृतमना लोगों में अपस्मार यानी मृगी की बीमारी का कोई न कोई रूप मिलता है। इनमें वह भी नहीं होता पर झूठा बहाना करके ठग लेना, जालसाजी या सभ्य ठगी में ये लोग बड़े चतुर होते हैं। ऐसे लोग समाज में काफ़ी खतरनाक होते हैं। सन् १९४८ में ६९ विकृतमना बन्दियों की लन्दन में समीक्षा हुई तो पता चला कि इनमें अधिकांश काफ़ी मँजे हुए तथा अनुभवी अपराधी थे। उनको और कुछ नहीं आता था—केवल अपराध की विद्या में वे पण्डित थे। पर उनके अपराध की एक खासियत भी है। वे ज्यादातर, बहुत गम्भीर अपराध नहीं करते, चोरी, लूट-खसोट, मारपीट इत्यादि के दायरे में ही वे रह जाते हैं।[२] उद्दंड विकृतमना अपराधियों की छानबीन करके पता चला कि उन्होंने पाँच वर्ष में ७४ अपराध किये जिनमें १४ उद्दंड अपराध थे। शेष साधारण केवल तीन अपराध गम्भीर थे। अतएव यह मानते हुए भी कि विकृतमना अपराधियों में गम्भीर तथा महान अपराधी भी निकलते है—आमतौर पर उनको गम्भीर अपराधी कहना भूल है।[३]

विकृतमन की चिकित्सा बहुत कठिन है। सज़ा से या उपदेश से, दोनों से ही उनका सुधार बड़ी कठिनाई से होता है। उनकी साधारण प्रवृत्ति बचपन में ही उनके चरित्र को स्पष्ट कर देती है। पिता से लड़ जाना, पिता से बगावत कर बैठना, माता से विरोध, किसी काम पर न टिकना, परिवार तथा कुटुम्बीजनों से

१. Charming inadequate psychopaths. **वही, पृष्ठ १३५**

२. **वही, पृष्ठ १३६.**

३. **इस सम्बंध में और अधिक अध्ययन के लिए देखिए**—L. Landucci & D. A. Pond. Mineroa med (Yorino) 1954—1 x 18. 7.

झगड़ा, स्कूल से भाग जाना[१]—और फिर बार-बार जेल जाना, ऐसे लोगों को अपराध की गुरुता के अनुसार नहीं, व्यवहार के अनुसार दंड मिलता है। लम्बी सजाएं होती हैं। ऐसी लम्बी सजा इसलिए दी जाती है कि उनका सुधार हो जाय पर ऐसी आसानी से सुधार नहीं होता।[२] बार-बार जेल हो आना इनके लिए मामूली बात होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि लगभग ८० प्रतिशत प्रथम अपराधी फिर जेल वापस नही आते। वे सुधर जाते हैं। पर शेष २० प्रतिशत मे ७० प्रतिशत ऐसे होते हैं जो तीन-चार बार जेल का चक्कर लगा ही लेते हैं। यही विकृतमना अपराधी हैं। जो नही सुधरते, उनकी बड़ी दुर्गति होती है। एक व्यक्ति अगस्त १९५३ में हत्या के अपराध में ७ वर्ष की सज़ा भोगकर बाहर आया। अक्टूबर, १९५३ में उसने आत्महत्या की चेष्टा की। उसके बाद से वह सुधर गया। इसके विपरीत एक शिष्ट तथा 'मोहक' विकृतमना अपराधी ३७ वर्ष की उम्र तक १४ बार जेल-यात्रा कर आया था और हर बार छोटी चोरी या जालसाज़ी में जेल गया। सन् १९५० में उसे हिंसात्मक डकैती के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास मिला।

विकृतमना व्यक्ति के बारे में एक बात मार्के की यह है कि ज़्यादातर ऐसे अपराधियों के सर में कभी न कभी चोट ज़रूर लगी होती है, चाहे बचपन की ही चोट क्यों न हो।[३] दूसरे, इनमें बहुत कम ऐसे "रोगी" मिलेंगे जो आत्महत्या करने की चेष्टा करें। ऐसे अपराधियों को लम्बी सजा देने या कोड़े मारने से भी क्या कभी कुछ लाभ होगा? अपनी पुस्तक में बार्नेस और टीटर्स लिखते हैं कि लम्बी सजा या शारीरिक दंड से अपराधी भावना कम नहीं होती।[४] या अपराध करनेवाला सज़ा को सोचकर सहम नहीं जाता।

मनस्ताप

विकृतमन हो या किसी प्रकार की मानसिक उलझन हो इसका सम्बंध मनोविज्ञान से ही है और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की सहायता से अपराधी की प्रवृत्ति

१. वही, पृष्ठ १२६
२. वही, पृष्ठ १२७
३. वही, पृष्ठ १३२-१३३
४. Barness & Teeters—New Horizons in Criminology—Page 6.

समझने का प्रयास किया जाता है। पर मनोविज्ञान स्वयं अभी तक किसी निश्चित बात पर नहीं पहुँच पाया है। विकृतमन के अतिरिक्त मन का एक दूसरा रोग होता है—मनस्ताप।[१] कुछ लोग इसे उन्माद भी कहते हैं पर उन्माद तथा मनस्ताप में बड़ा अन्तर है। जो लोग पुराने ढंग पर मनस्ताप की समीक्षा करना चाहते हैं, वे भारी भूल कर रहे हैं। मनस्ताप में कई बातें ऐसी उलझन की हैं कि उनको समझने के लिए दूर तक जाना पड़ता है। मानव-स्वभाव आज का नहीं बना है। आदि-काल का मानव जितना स्वतंत्र था, उच्छृंखल था, अपने मन की करता था, वैसा आज समाज तथा दंड के भय से नहीं कर सकता। आदि-काल का मानव जो चाहता था, खाता था, जैसा चाहता था, रहता था, जिससे तथा जब चाहता था संभोग करता था। जिससे अप्रसन्न होता था, जिसे अपराधी समझता था, उसे अपने मन का दंड देता था। आज यदि किसी मनुष्य में से समाज तथा शासन का डर उठ जाय तो उसे वैसा ही मानव बनने में कितनी देर लगती है। हम ऐसे मनुष्य को उन्मादी या मनस्तापी कहते है पर इसे प्राकृतिक, आदि-ऐतिहासिक क्यों न कहा जाय? आज यदि नये विज्ञान के यन्त्रों से ऐसे मनस्तापी अपराधी की समीक्षा की जाने लगे तो एक से एक बढ़कर ऐसी बातें सामने आवेंगी जिनको समझना कठिन होगा। शरीर की रचना समझ में आ सकती है। अंग-अंग की बनावट की जानकारी हो सकती है पर सब कुछ समझ लेने के बाद विज्ञान-पंडित को मानव मस्तिष्क का वह कमरा दिखाई पड़ेगा जहाँ सभ्यता की सब कुछ प्रगति होने पर भी आदिकाल की जड़ता, स्वच्छन्दता तथा केवल अपने मन की करने की प्रवृत्ति वर्तमान है। प्रत्येक मनुष्य के मनके पीछे ऐसी उन्मुक्त प्रवृत्ति अपना स्थान बनाये हुए है। प्रत्येक व्यक्ति इस अज्ञात, अस्पष्ट भाव से युक्त है पर समाज, सभ्यता, संस्कार, शिक्षा, इन सबके सामूहिक प्रयत्न से मन नियंत्रित रहता है। उसका विकार सम्हला रहता है, छिपा रहता है। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसके मन में कभी चोरी करने की, किसी को अनायास ही पीट देने की या संभोग की कामना नहीं हुई, तो वह झूठ बोलता है। यह सही है कि उसकी सभी दुष्प्रवृत्तियों की रोकथाम है, नियंत्रण है और उसका मार्ग भी प्रशस्त है। पर जो व्यक्ति इस नियंत्रण या रोक-थाम से बच निकलता है, जिसका मनका संस्कार पूरी तरह से उन्नत नहीं हो पाता वह एक विचित्र पीड़ा या तपन में जलने लगता है। एक ओर उसकी सहज तथा प्राकृतिक स्वतंत्र वासनाएं

१. **मनस्ताप** Neurosis

खींचती हैं। दूसरी ओर समाज खींचतान करता रहता है, उसे रोकता रहता है। जब सामाजिक बंधन शिथिल या दुर्बल पड़ जाते हैं तब चंचल प्रकृति तथा स्वच्छन्द मन उन्माद से भर जाता है। अतएव बचपन से ही उन्माद तथा मनस्ताप की नींव पड़ती है। जिसका बचपन नियंत्रित होता है वही अधिकतर अपराधी नहीं होता है। मनस्ताप की नींव पड़ जाती है। जिसका बचपन अनियंत्रित होता है, वही अधिकतर अपराधी होता है। मनस्ताप तथा उन्माद का रोगी भले-बुरे का विवेक नहीं कर पाता और जो यह विवेक नहीं कर सकता वही अपराधी होता है। इसीलिए ऐसे विकारी पुरुष की काफी परीक्षा की जा रही है और मनोवैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि शरीर-रचना में कुछ कमी, कुछ खराबियों तथा कुछ दोष के कारण मनस्ताप का रोग होता है या निरर्थक, सारहीन मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से भी मनस्ताप हो जाता है और दंड या जेल या मार पीट से उसका रोग अच्छा नहीं हो सकता।[१]

मनस्ताप के रोगियों की कई बीमारियाँ अब मालूम हो गयी हैं। शायद इन बीमारियों का शिकार होने के कारण ही मनस्ताप पैदा हुआ। जिसने मन का संस्कार धो डाला और जंगली प्रवृत्ति को जगा दिया, अपराधी बना दिया। लगातार कब्ज रहने से, कै होने से, साँस लेने में कठिनाई होने से, बदन में मरोड़ होने से, लकवा की बीमारी से, दिल-दिमाग पर चोट लगने से, अंधापन या कम दृष्टि होने पर, बहरेपन से, बदन में रोमांच अधिक होने के कारण, हिस्टीरिया यानी मूर्छा की बीमारी के कारण मनस्ताप का रोग पैदा होता है जिससे अपराधी प्रवृत्ति पैदा होती है। ये बीमारियां उन अचेतन मनोवैज्ञानिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति हैं, जो मनस्तापी सभी लक्षणों के समान, जिन प्रेरणाओं की तृप्ति की मनाही समाज ने कर रखी है, उन्हीं को पूरा करते हैं या फिर उनकी तृप्ति की कामना के लिए दंडस्वरूप स्वयं अपने को चोट पहुँचाते हैं।[२] हिस्टीरिया के बहुत से रोगी का असली कारण जरा पता लगाएं तो मार्के की बातें मालूम होंगी—प्रेम की करुण कहानी, भोग की निन्दनीय गाथा, प्रेमी से मिलने का नाटक, मन के विचार से दुःखी होकर अपना ही सर पीट लेना, इस

१. Alexander, Staub and Zilboorg—The Criminal, the Judge and the Public—The Free Prison, Glencoe, Illenois, 1957—Page 48.

२. वही, पृष्ठ ४९

प्रकार अपराधी के रोगों की छानबीन आसानी से हो जाती है और उनका असली कारण मालूम हो जाता है। किन्तु मानम विज्ञान[1] मन की प्रतिक्रिया का शरीर पर प्रभाव जानते हुए भी स्पष्ट ढंग मे इस विषय को तभी समझ सका जब फ्रायड ने अपनी चमत्कारिक खोज के परिणाम समाज के सामने रखे तथा अचेतन, अन्तरतम, स्वतः मानसिक क्रियाओं की पूरी तस्वीर हमारे सामने रख दी। थोड़े ही समय में एकदम नया मनोविज्ञान पैदा हो गया और आज हर एक के मन तथा बुद्धि की माप-तौल उसके द्वारा ही हो रही है। मनुष्य की बुद्धि की रचना का एक नया शास्त्र खड़ा हो गया। मध्य युग में मनुष्य के शरीर के भीतर की रचना की जानकारी पाप समझा जाता था और चिकित्साशास्त्र को लोग हेय समझते थे। अब तो बुद्धि की, मस्तिष्क की तह तह को खोलकर सोचने तथा समझने का प्रयास किया जा रहा है। मन का तथा शरीर का बड़ा सम्बंध है। वातावरण तथा वायुमण्डल का मन से बड़ा सम्बंध है। इन सबके सम्मिलित परिणाम से मानव-स्वभाव विकसित होता है।[2] मनस्तापी या उन्मादी व्यक्ति आप से आप अपराधी नहीं हो जाता। बच्चा बचपन में अपने पिता-माता या अभिभावक के प्रति विद्रोह की भावना ग्रहण करता है। इस विद्रोह की भावना को शिक्षा, संस्कार तथा प्रेम से यदि शान्त नहीं किया गया, ममता से उसकी स्वच्छंद तथा "जैसा चाहे वैसा करें" प्रवृत्ति को नही जीत लिया गया तो आगे चलकर वह अपराधी निकलेगा ही। दूसरे, कामुकता यानी संभोग की सहज प्रवृत्ति को ठीक रास्ते पर लाना होगा। यदि ऐसा न किया गया तो वयस्क होने पर उसे कौन रोक सकता है?

बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं जिनमें अपने को छोटा या हेय समझने, अपने को दलित, पतित, पीड़ित समझने की प्रवृत्ति होती है। उन्हें ऐसा समझने में सुख मिलता है। उनका अहंभाव मर कर उसका उलटा रूप ग्रहण कर लेता है। इन लोगों को रोगी बनाकर या घोषित कर अस्पताल में भर्ती कर देने से इनको सुख मिलता है लेकिन यदि इनसे कहा जाय कि "तुम अब अच्छे हो रहे हो" तो इनको दुःख होगा। आत्म-संहार, आत्म-विनाश, अपने को मिटा देने की भावना इनके मन में इतना घर किये रहती है कि ये ऊंचे उठ नही सकते। हर एक काम केवल अपने या दूसरे के सर्वनाश

१. Psychiatry मानसविज्ञान

२. वही The Criminal, the Judge and the Public पुस्तक, पृष्ठ ५१.

की दृष्टि से करेंगे। ऐसे भी लोग होते हैं जो चाहते हैं कि वे जो कुछ चाहें सब उनको मिल जाय, जिस किसी वस्तु की उनको कामना हो, वह प्राप्त हो जाय, जिस स्त्री को, जिस भोजन को, जिस वस्त्र को चाहे, वह उनका हो। जब इनकी ऐसी इच्छा को ठोकर लगती है, ठेस पहुँचती है तो उसकी भयंकर प्रतिक्रिया इनके मन पर होती है। एक तरफ उनकी वह इच्छा मर जाती है; दूसरी तरफ वे संसार के शत्रु बन जाते है और प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति के प्रति विद्रोही बन जाते है। उनके मन में ऐसी उदासी छा जाती है कि वे दुनिया में किसी काम के नहीं रह जाते। किसी का भी हँसना उनको खलता है, बुरा लगता है। अपनी घोर उदासी में वे लोग आत्महत्या की सोचते हैं—और आत्महत्या की सोचते-सोचते दूसरे की हत्या कर डालते है।[1]

दंड का बड़ा भय होता है। बच्चा अपने घर के बुजुर्गो से डरता है—उनसे दंड मिलने के भय से। अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिए वयस्क—बालिग—व्यक्ति इच्छा की तृप्ति मे बाधक समाज तथा सरकार के दंड से अपने मन की बात नहीं पूरी कर पाता। अपने को तथा अपने मनकी बात को महत्त्वपूर्ण समझने की उसकी भावना इतनी तीव्र हो उठती है कि वह घोर अहंभाव का शिकार हो जाता है। जो कुछ है, जो कुछ हो, सब उसके लिए, उसके दृष्टिकोण के अनुकूल हो। परिणाम यह होता है कि वह घोर अहंवादी और अपराधी बन जाता है। मनस्ताप के रोगी-अपराधी के विषय में अलेक्जेण्डर, स्टाव तथा जिलबर्ग अपनी पुस्तक में लिखते हैं—

"इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि अपराधी और कानून दोनों ही सामाजिक दृष्टि से एक साथ मिल कर वही काम कर रहे है जो मनस्तापी अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं तथा लक्षणों से अकेले करता है। वह अपराध भी करता है, उसका प्रायश्चित्त भी स्वयं करता चलता है। दोनों में एक और समानता है। मनस्तापी अपनी पीड़ाओं यानी यातना या प्रायश्चित्त को मर्यादा-विरुद्ध कार्य करने का अनुमति-पत्र समझता है। अपराधी, जिसे हम मनस्ताप-अपराधी कहते है, बार-बार दंड पाकर अपनी नैतिक भावना खोता जाता है.. ऐसे अपराधी को सही मार्ग पर लाने का एकमात्र उपाय यह होगा कि उसे अपराध के लिए दंड न देकर, उसके साथ दयालुता का, प्रेम का व्यवहार किया जाय। किसी प्रकार के दंड से यह कहीं अधिक लाभदायक तथा उपयोगी उपचार होगा। दंड में एक खास बात होती है। जिसे दंड मिलता है, वह यह महसूस करता है कि उसने (अपराधी ने) अपने पाप का, अपने

१. वही, पृष्ठ ५३

दुर्गुणों का प्रायश्चित्त कर लिया है। पर दंड के बदले दयालुता तो उसे इस अनुभव से वंचित कर देगी। मनस्ताप के अपराधियों के दिव्य मानस में, यदि अहं की भावनाओं में जो अत्यधिक नियंत्रण भी वर्त्तमान रहता है, उसमें और वृद्धि हो जावेगी।"[१]

महात्मा गांधी ने प्रेम से हिंसा को जीतने की सदैव शिक्षा दी थी। महात्मा जी के सिद्धान्तों की हँसी उड़ानेवाले पश्चिमी विद्वान् आज स्वयं उनकी ही बातों को दुहरा रहे है।

मन की ज़िम्मेदारी

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड से यह प्रश्न पूछा गया था कि "सपना देखने की जिम्मेदारी किस पर है?" फ्रायड ने तुरत उत्तर दिया कि "सपना देखनेवाले पर।" यह हो सकता है कि उस जिम्मेदारी के हिस्सेदार कई लोग हों—दिन की घटना के पात्र, पेट भारी रखने योग्य खाना खिलानेवाला व्यक्ति, इत्यादि। पर प्रकटत: तथा न्यायत: सपना जिसने देखा, वही उसके लिए जिम्मेदार है। किसी आदमी को रक्तचाप की बीमारी है। अब इस प्रश्न का उत्तर कौन दे कि उसकी बीमारी की ज़िम्मेदारी किस पर है? हो सकता है कि घर में किसी कलह के कारण उसका रक्तचाप बढ़ गया हो। पर किसी भी कारण से बढ़ा हो, जो बीमार है, वही अपनी बीमारी का ज़िम्मेदार है।

मन के सभी रोगों की ज़िम्मेदारी मन के स्वामी व्यक्ति की होती है। यह बात दूसरी है कि जिम्मेदारी की सीमा निर्धारित करनी पड़े कि किस हद तक वह व्यक्ति जिम्मेदार है। किसी ने उन्माद में हत्या कर डाली। पर हत्या का दोषी बनाने के पूर्व अदालत यह जरूर देखेगी कि उसे यानी कथित हत्यारे को किस सीमा तक उत्तेजित किया गया, भड़काया गया, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी गयी कि वह बेबस हो गया। उसे हत्या करनी ही पड़ी। आत्मरक्षा में हत्या को हत्या नहीं कहते, यद्यपि प्राण-हरण करने का दोष सदैव बराबर है।

मन की प्रेरणा से ही काम होता है, कार्य-सम्पादन होता है। अतएव मन तथा उसके स्वामी को दोषी मान लेने में किसी को आपत्ति न होनी चाहिए, पर यह सोचने की बात है कि मन के विचार से किसका मन अच्छा और पक्का माना जाय। बच्चे का मन चंचल होता है, पक्का नहीं होता। अधकचरे अनुभव से वह जो भी कुछ

१. वही, पृष्ठ ५७

काम करता है, उससे समाज की हानि भी हो सकती है। इसीलिए बच्चे को सुधारने का बड़ा ध्यान रखा जाना चाहिए। उसकी बुद्धि को विकसित कर देने में ही समाज का कल्याण है। पर जो बालिग हो गया है, वयस्क है, वह तो कच्चा व्यक्ति नहीं रहा। उसे जितना पकना था, पक चुका। यदि बाल अपराधी को सुधार के मार्ग पर चला दिया जाय तो वह जल्दी सुधरेगा। पर वयस्क अपराधी तो कच्चा है नहीं कि उसे नये साँचे में ढाला जा सके। अतएव निचोड़ यही निकला कि वयस्क अपराधी को सुधारा नहीं जा सकता, चाहे दंड दीजिए या उसके साथ सुधार का व्यवहार कीजिए। किन्तु बुढापे में भी आदमी की बुद्धि बदल जाती है। बचपन के बड़े-बड़े अपराधी जवानी में एकदम सुधर जाते हैं। बाल-बच्चों में पड़कर, नये वातावरण में आकर, मन पर से पर्दा उठ जाने के कारण, उनका नया जीवन हो जाता है। इसलिए स्पष्ट हुआ कि मन की गति को मोड़ा जा सकता है। कैसे?

एक उदाहरण लीजिए। मन का, चित्त का स्वभाव है आत्म-रक्षा करना। जरा सी विपत्ति पड़ने पर माता भी अपनी सन्तान को फेंककर अपनी जान बचाने की चेष्टा करती है। पर जब पानी में कोई जहाज डूबने लगता है, जहाज का कप्तान क्यों एक तरफ खड़ा हो जाता है और हर एक की रक्षा हो जाने के बाद या तो अपनी रक्षा कर पाता है या मर जाता है? उसने ऐसा क्यों किया और उसके इस कार्य की जिम्मेदारी किस पर है? कर्तव्य की इतनी महान् भावना उसमें कैसे आयी? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है। उसे जहाज पर काम करने की जब शिक्षा मिली थी तो उसके कर्तव्यों का ज्ञान उसे इतना गम्भीररूपेण करा दिया गया था कि अब वह कर्तव्य-भाव उसके स्वभाव का अंग बन गया है और आत्मरक्षा की भावना से अधिक प्रबल हो गया है। उसी प्रकार अपराधी मन का भी संस्कार बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जैसा समाज होगा, वैसा मन का संस्कार होगा। संस्कार के विषय में एक बात जरूर ध्यान में रखनी चाहिए। हम जितना काम करते हैं, सभी सोच-विचार कर नहीं करते। एक अज्ञात शक्ति, एक अज्ञात प्रेरणा हमसे काम कराती चलती है। यह अज्ञात प्रेरणा ही वास्तव में हमारे कार्यो के लिए ज़िम्मेदार है। पर यह अज्ञात प्रेरणा हमारे वातावरण, संस्कार, समाज, शिक्षा, पास-पड़ोस तथा संगति से बनती है। अतएव इसकी स्वतः कोई महत्ता नहीं है। महत्ता तो हमारे चारों तरफ के वातावरण की है। अलेक्जेण्डर आदि का कहना है—

"समाज में ज़िम्मेदारी का नैतिक सिद्धान्त लागू होना अनिवार्य है। जिस व्यक्ति को ज़िम्मेदारी के उसूलों पर शिक्षित किया जावेगा वह अपने चित्त के भीतर उन नसीहतों को इतने ठिकाने से रख लेगा कि वह अपने तथा दूसरों के प्रति भी

अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करता रहेगा। जिम्मेदारी की इसी भावना से व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है। केवल ऐसे समाज में जहाँ निरंकुश शासन है तथा एक व्यक्ति का ही राज्य है व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी की भावना समाप्त हो जाती है। उस समाज के सदस्यों को विचार-विमर्श की भी स्वाधीनता नही रहती...... अपने तथा समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना केवल स्वतंत्र समाजों में ही पैदा होती है।"[१]

विकृत अपराधी

चाहे मनस्तापी हो या विकृतमना, दोनों प्रकार के अपराधी "शोख" या विकृत अपराधी को जन्म देते हैं। यानी इनमें से ही शोख तथा विकृत अपराधी निकलते हैं। माता से वासना का सम्बंध करनेवाला पुत्र, बेटी से सम्बंध करनेवाला पिता, बहिन से प्रसंग करने वाला भाई—ऐसे विकृत तथा पतित अपराधी का सबसे बड़ा अपराध क्या है। संभोग की इच्छा सर्वदा स्वाभाविक इच्छा है। मन मे ऐसी भावना पैदा होना कदापि बुरा नहीं समझा जा सकता। यदि बुरी बात है तो केवल इतनी कि इसके लिए समाज ने जो मर्यादा बना रखी है, उसे तोड़ दिया गया। यदि बात बुरी बात हो सकती है तो केवल इतनी ही कि सभ्यता तथा धर्म ने, संस्कार तथा संस्कृति ने पारिवारिक जीवन में जिस सम्बंध को स्थापित किया था, वह तोड़ दिया गया। पर, मूल अपराध यानी संभोग की वासना कोई बुरी बात नहीं है—बुरी बात है परिवार में वैसा करना। अतएव विकृत अपराधी को जो रोग लगा है, उसका कोई खास कारण होगा। आमतौर पर यह साबित हो गया है कि ऊपर लिखे प्रकार का विकृत संभोग करनेवाले लोग उतने बड़े अपराधी नही हैं जितना हम समझते है। यदि इनकी वासना की पूर्त्ति का, चाहे माता हो या पुत्र, बहिन हो या भाई, कोई भी अन्य साधन मिल जाता तो वे ऐसा भ्रष्ट सम्बंध न करते। चूकि समाज ने उनको एक स्वाभाविक प्यास बुझाने का अवसर नहीं दिया, वे लोग भ्रष्ट हो गये। यदि विधवा माता को या नपुसक की पत्नी को अपनी वासना की शान्ति में बाधा न मिलती तो काहे को अपने ही पुत्र से संसर्ग करती ? कहने तथा सोचने में रोमांच हो जाता है पर बात जो है, वह तो है ही और उसका अपना महत्त्व है। अपराधशास्त्र का विद्यार्थी उमसे नेत्र नही मूँद सकता। पुरुष-पुरुष का या स्त्री-स्त्री का संभोग, अप्राकृतिक प्रसंग, ये

१. The Criminal, the Judge and the Public, पृष्ठ १३१

सभी किसी कारण पैदा होते हैं। अतएव जब भी हम ऐसे विकृत अपराधी की बात सोचें, देखें, तो हमको उसके मन तथा चित्त पर पड़े संस्कार तथा समाज के प्रहार का भी ध्यान रखना होगा। यदि समाज ने उसे ऐसा भ्रष्ट बनने दिया तो समाज उसे सही मार्ग पर ला भी सकता है, एक दो प्रतिशत का सुधार नहीं हो सकता। पर जब यह साबित हो गया कि विकृत अपराध पैतृक नहीं, खानदानी देन नहीं, समाज की देन है, तब फिर ऐसे अपराधी का सुधार हो सकता है। हमने इधर के पृष्ठों में जिस पुस्तक का उद्धरण दिया है, उसके अनुसार ऐसे विकृत अपराध का कारण ढूंढ़ने के लिए पता लगाना होगा कि बचपन में उस व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार हुआ? क्या उसके साथ बहुत ज्यादा सख्ती बरती गयी थी? क्या उसकी वासना की इच्छा को बहुत कुचल कर, दबा कर रखा गया था, क्या उसके लालन पालन में सामाजिक पाखंड तथा असत्यता का सहारा लिया गया था। यह सही है कि ऐसी परिस्थिति में पाले गये सभी बच्चे खराब नहीं निकलते। पर इसमें उन बच्चों का श्रेय कम है, उनके वातावरण तथा उनके रहन-सहन का श्रेय अधिक है। अतएव विकृत अपराधी दंड का पात्र नहीं है। दोष उसका नहीं है—दोष है उसके लालन-पालन के तरीके का।[१] इसलिए दंड किसे दीजिएगा? इस सम्बंध में ध्यान रखना चाहिए कि:—[२]

"वासना सम्बंधी विकृत अपराधी को सहन करना पड़ेगा। जो बहुत ही गिरे अपराधी हो गये हैं, उनको अलग कर दीजिए, अलग रख दीजिए। पर असली काम है बचपन से ही उचित मनोवैज्ञानिक शिक्षा देना तथा उनकी साधारण कामुक भावना को एकदम दबा न देना।"

हमारे जीवन की कौन सी साधारण घटना कितना बड़ा तूफान खड़ा कर सकती है, इसे आसानी से समझना कठिन है। पर मनोवैज्ञानिक लोग जिसे "विकृतमना" या "मनस्ताप" का रोगी कह देते हैं, उसकी तह में बहुत साधारण कारण छिपा है। अलेक्जेंडर तथा स्टॉब ने २१ वर्ष के एक युवक का उदाहरण दिया है। वह असाधारण प्रतिभा का युवक था। उसका अपराध भी विचित्र था। वह कोई टैक्सी गाड़ी लेकर उस पर खूब घूमता-घूमता चक्कर लगाया करता और जब टैक्सी ड्राइवर तथा शराब का पैसा देने को नहीं रह जाता, वह गिरफ्तार हो जाता। इस विचित्र अपराध का कारण किसी ने न समझा। जब उसके पारिवारिक जीवन की खोज की गयी तो मालूम

१. वही पुस्तक, पृष्ठ ११३
२. वही पुस्तक, पृष्ठ ११८

हुआ कि कुछ वर्ष पहले, सन् १९२९ में, उसने किस्त पर एक साइकिल खरीदी। एक किस्त चुका भी दी। उसकी माता की दूसरी शादी थी—यानी उसका पिता सौतेला था। पिता ने अपने असली लड़के को साइकिल खरीदने की इजाजत दे दी पर इस सौतेले लड़के की किस्त पर खरीदी गयी साइकिल जबर्दस्ती छीन कर वापस कर दी। इस घटना का इस लड़के पर इतना बुरा असर हुआ कि वह मन ही मन अपने पिता को पीटने की सोचने लगा। पर उसे साहस नहीं हुआ। वह अपनी जीविका स्वयं कमा लेता था। साइकिल उसने अपने जेब से खरीदी थी। होटल के वेटर का काम वह करता था। "तब उसकी साइकिल क्यों छिन गयी?" वह एकदम उत्तेजित होकर घर से निकल गया और होटल चला आया। वहाँ पर, शाम को उसकी माता मिलने आयी। माता को देखते ही वह युवक आवेश में काँपने लगा। बाहर निकलकर एक टैक्सी पर बैठकर अनिश्चित स्थान के लिए चल पड़ा। जब पैसा खत्म हो गया, पकड़ा गया। इसके बाद जब उसे आवेश आता, इसी प्रकार टैक्सी पर निकल जाता, पकड़ा जाता, जेल जाता। अब इस विकृतमना अपराधी का जीवन कितनी साधारण सी घटना से नष्ट हो गया? साइकिल की बात ने कितना तूल पकड़ लिया। जीवन में साधारण घटनाएँ मनुष्य को इसी प्रकार अपराधी बना देती हैं।

त्याग और अपराध

आदि काल से मनुष्य ने एक बड़ा पाठ सीखा है कि बिना त्याग के सुख नहीं मिलता। पिता-माता यदि अपने परिवार को सुखी रखना चाहते हैं तो उनको कुछ न कुछ त्याग करना ही होगा। माता अपना पेट काटकर बच्चों को भरपेट खिलाकर मातृ-सुख का अनुभव करती है। मनुष्य समाज में अपनी स्वच्छन्दता तथा स्वतन्त्रता का कुछ भाग सरकार को, राज्य को देकर निश्चिन्त जीवन का सुख उठाता है। ऐसा कौन मनुष्य है जिसे पीड़ा का भय न हो, कष्ट का भय न हो? सुख की आशा की दो भावनाओं के बीच से ही वास्तविकता का, वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान होता है। आम के वृक्ष का फल खाने में सुख की आशा करनेवाले को इस बात का भय भी है कि कहीं उसके वृक्ष के फल लोग तोड़ न ले जायँ। इसलिए वह इस परिणाम पर पहुँचा कि आम के बाग का एक रखवाला होना चाहिए जिसके हाथ में डंडा भी हो ताकि फल तोड़ने (चुराने) वाले को डर बना रहे कि चोरी करेंगे तो मार खा जायँगे। चोरी करने पर पिटने के भय से राहचलतू लोग आम खाने का सुख उसी समय न उठा कर, उस सुख को तब तक के लिए स्थगित कर देते हैं जब तक वही आम बाजार

में सबके सामने बिकने न आ जाय। अतएव पीड़ा के भय तथा सुख की आशा दोनों ने मिलकर ऐसी वास्तविक परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिसमें आम खाने के इच्छुक लोगों ने आम तोड़ लेने की अपनी सहज इच्छा को दबा कर उस फल के खाने के सुख को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जब तक वह फल बाजार में पैसा देकर खरीदे जाने की स्थिति में न पहुँच जाय। इस प्रकार परिस्थिति की वास्तविकता, आवश्यकता, और कुछ नही केवल सुख के सिद्धान्त का समुचित समन्वय है। मनुष्य सुख चाहता है, आनन्द चाहता है। इसमें उसे बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इन बाधाओं का वैध रूप से निवारण करनेवाला ही अच्छा नागरिक कहा जाता है और अवैध तथा नाजायज तरीके से सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करनेवाला अपराधी कहलाता है। सुख-प्राप्ति को स्थगित कर देना, छोटे, साधारण सुख का त्याग करना तथा समाज के सुख के आगे अपने सुख को गौण समझना, यही असली नागरिक शिक्षा नागरिक शास्त्र है। जो इसके विपरीत करता है, अपराधी समझा जाता है।

त्याग का सौदा भी आदि काल से होता चला आया है। मनुष्य त्याग करता है और उसके बदले में प्रेम चाहता है। माता-पिता परिवार के भरण-पोषण के लिए अपने सुख का त्याग करते हैं पर उसके बदले में वे अपनी सन्तान से प्रेम की, स्नेह की आशा भी करते हैं। प्रेम का सबसे प्रथम वरदान संतान को अपनी माता से प्राप्त होता है। वह उसे दूध पिलाती है, पुचकारतीहै, प्यार करती है, रक्षा करती है और इस प्रेमका उत्तर संतान भी प्रेम से ही देती है। किन्तु माता की ममता में जहाँ लाड़-प्यार है वहाँ दंड देने की शक्ति भी है। वह स्नेह भी देती है, सुधारती भी है। बच्चे को फटकार भी देती है। पर उसकी एक पुचकार के बाद सब फटकार समाप्त हो जाती है। इसीलिए मातृसुख तथा माता का प्रेम बड़ी मधुर, बड़ी सरल वस्तु है। इसके विपरीत पिता का स्थान है। पिता का अपने सन्तान के जीवन से केवल अनुशासन का ही सम्बंध रहता है। बच्चा अपनी मां से प्रेम करता है, बाप से डरता है। उसे इस भयावह वस्तु यानी पिता के सामने जी खोलकर बातें करना भी नहीं आता—माता से वह सब कुछ कह-सुन सकता है। माता का भी अनुशासन होता है पर वह अनुशासन तथा प्रेम को जिस प्रकार मिलाये रहती है, पिता वैसा नही कर सकता। इस प्रकार माता सुख तथा आनन्द का स्रोत है, पिता जीवन का कटु सत्य है, वास्तविकता है। जिस बच्चे के जीवन में ऐसे कटु सत्य तथा प्रेम का सामंजस्य बन गया, ठीक से जीवन चला, वह सुखी तथा सच्चरित्र होता है। बच्चा अपने बचपन में हर बात के लिए माता पर निर्भर करता है, आश्रित रहता है। भोजन, निद्रा, सब कुछ मां से प्राप्त होती है। पिता कुछ नहीं देता—अनुशासन करता है। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता

है, अपने सुख के लिए माता पर आश्रित रहना समाप्त होता जाता है और एक दिन वह इतना बड़ा हो जाता है कि अपनी इच्छाओं को स्वयं तृप्त कर ले। अपनी भूख प्यास स्वयं शान्त कर ले—अपना जीवन बिना किसी के सहारे चला ले। उसके इसी जीवन के लिए माता ने और पिता ने भी उसे प्यार किया है। उनके त्याग, परिश्रम तथा देखरेख से आज वह दिन आया कि बालक या बालिका बालिग होकर अपना जीवन स्वतः चलावेंगे। इस दिन के लिए घर में जितनी तथा जैसी शिक्षा मिली होगी, वैसा ही चरित्र बनेगा। इसीलिए मनुष्य के जीवन में माता का स्थान सबसे बड़ा है। उसके बाद पिता का। जिस पिता ने अनुशासन के साथ वात्सल्य को भी मिला दिया है, वह अपनी सन्तान का विश्वास भी प्राप्त कर सकता है। तब उसके अनुशासन का महत्त्व भी होता है। जब बच्चा बड़ा हो गया, उसी समय दंड की निषेधात्मक शक्ति, माता-पिता की शिक्षा तथा समाज के वातावरण का सामूहिक प्रभाव पड़ता है। अपने सुख की पूर्त्ति के लिए जब युवक का मन मचलता है, उसे दंड का भय, समाज की निषेधात्मक आज्ञाएँ, परिवार की सीख सब एक साथ नियंत्रण में रखती है। जब इसमें शिथिलता हुई, बालक या युवक, लड़की या नवयुवती, अपराधी बन जाते है।

भय का महत्त्व

मनुष्य के जीवन में भय का बड़ा भारी महत्त्व है, भय से मनुष्य बहुत सी विपत्तियों तथा कुकृतियों से बचा रहता है। यदि चार आदमी के देख लेने का डर न हो तो लोग वेश्या के कोठे पर दिन में या सामने के दरवाजे से चले जायें। वे चोर की तरह छिपकर जाते हैं या समाज के भय से जाते ही नहीं। यदि परिवार की परम्परा या परिपाटी का डर न हो तो लोग विवाह के सामाजिक बंधन आसानी से तोड़ दें। माता-पिता के भय से घर का सामान चुराने में बच्चे को हिचक होती है। जेल तथा पुलिस के डर से अपराध करने की हिम्मत नहीं होती। जेल जेल ही है, चाहे उसमें रहने की कितनी ही सुख-सुविधा क्यों न हो। हाथ जलने के डर के कारण हम आग में हाथ नहीं डालते। बीमार पड़ने के भय के कारण स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन नहीं करते। नित्य प्रति के जीवन में ऐसे अनगिनत काम है जिनको हम करना चाहते हैं पर केवल "भय" हमारे ऊपर रोक-थाम किये हुए है।

भय क्या है? आनेवाले खतरे का संकेत ही भय है।[1] अमुक कार्य करने से

१. The Criminal, the Judge and the Public, पृ० ८

यह खतरा पैदा होगा—इसी भावना का नाम भय है। यदि मनुष्य में ऐसी भावना न रहे तो उसकी कोई रोक-थाम नहीं हो सकती।

यह इसलिए कि शुरू से ही वह अपने को स्वतंत्र तथा स्वच्छन्द बनाने का प्रयत्न करता रहा है, अपने अधिकार के लिए लड़ता रहा है। आदिकाल से मनुष्य का समाज के साथ अपने अधिकार के लिए, अपनी आजादी के लिए संघर्ष रहा है और उसी संघर्ष की भावना आज भी उसके मन में वर्त्तमान है। जरा-सी बात ऐसी हुई जिसमें उसके अधिकार पर आघात पहुँचा कि उसके मन में बेचैनी पैदा हो जाती है। वह कदापि यह नही चाहता कि वह जिस चीज को चाहता है, उसे प्राप्त करने में समाज उसे रोके। किन्तु जब अपनी इच्छा पूरी करने के लिए वह आगे बढ़ता है, उसका मन डर जाता है। वह सोचता है कि समाज ने अमुक सीमा तक ही उसे इच्छा की पूर्ति का अधिकार दिया है—उसके आगे बढ़ने पर दंड मिलेगा। जिसमें दंड को समझने की बुद्धि होती है, वह डर कर मनमानी नही करता। जिसको दंड से डर लगता है, वह हाथ-पैर सम्हाल कर चलता है। जिसकी बुद्धि जड़ है, जो कुछ समझता ही नहीं, वह बेधड़क होकर समाज की मर्यादा तोडकर अपनी इच्छा पूरी करता है। जो समझता भी है पर निर्भय है, वह भी सामाजिक नियमों की अवज्ञा करता है। इस प्रकार समाज के नियमों को तोड़नेवाले यानी अपराधी तीन प्रकार के हुए—

१. समाज के नियमों से अनभिज्ञ, अज्ञानी या मूढ।

२. समाज के नियमों से परिचित पर निर्भय।

३. स्वच्छन्द वृत्ति के मनुष्य जो बिना नियमों को तोड़े नहीं रह सकते।

पागल कोई नियम नही जानता। वह हत्या भी कर सकता है। पर अपराधी नही कहा जा सकता। कानून का अज्ञान स्वतः अपराध है पर अबोध बालक यदि दीपक उलट कर मकान में आग लगा देता है तो वह अपराध नहीं है। असली अपराधी तो वही है जो समाज या शासन के नियमों को जानता है और फिर भी निडर होकर उन्हें तोड़ता रहता है—अपराध करता रहता है। ऐसे अपराधी की समस्या ही सबसे महत्त्वपूर्ण है और अपराध-शास्त्र ऐसे ही अपराधी से उलझना चाहता है। उसे सुधार कर सही मार्ग पर लाना चाहता है।

पर, आज अपराधी को समझने में बड़ी भूल की जा रही है। असली भूल तो न्यायाधीश करता है। दंड के आज अनेक प्रकार है पर उसकी, यानी दंड की भावना, उसकी आधार-शिला ही गलत है। देखिए—

"साधारण आदमी के सामने उसकी जिम्मेदारियाँ है। उसे तो न्याय करना है पर यह न्याय अपराधी की मनोवैज्ञानिक रीति से समीक्षा के द्वारा ही हो सकता है।

उसे इस जिम्मेदारी का बड़ा भारी बोझ सम्हालने के समय यह ध्यान रखना होगा कि अपनी निजी प्रेरणा तथा मनोवृत्ति से किये गये फ़ैसले का परिणाम भी भोगना होगा। उसे अपने काम में सहायता मिलेगी, यदि वह ध्यान रखे कि (१) उसका फैसला एक व्यक्ति से नहीं, समूह मात्र से, समूह मात्र के हित से सम्बंध रखता है। अधिकांश दंड-विधान के नियम न्यायाधीश पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी छोड़ देते है ......"[१] और यह जिम्मेदारी इतनी बड़ी है कि जरासी भूल से समाज की अपार हानि हो सकती है।

विक्षिप्त और प्रमादी

ऊपर हमने जिम्मेदारी की भावना का ज़िक्र किया है। साधारण मनुष्य की अपने जीवन के प्रति ज़िम्मेदारियां होती है। समाज तथा शासन के प्रति ज़िम्मेदारी होती है। अपने काम की, कर्त्तव्य की ज़िम्मेदारी को समझते हुए भी, उसके परिणाम को जानते हुए जो काम किया जाता है, उसका पाप-पुण्य उस व्यक्ति के जिम्मे होता है। किसी व्यक्ति को उसी समय अपराधी समझा जाता है जब वह अपना अपराध का कार्य करने के समय यह जानने या समझने के योग्य होता है कि वह काम बुरा है या कर्त्तव्य के विपरीत है—ऐसा कार्य है जो समाज के नियमों या उसकी व्यवस्था के प्रतिकूल है।[२] उस व्यक्ति का यह जानना ज़रूरी नही है कि वह कार्य समाज के तत्कालीन नियम या व्यवस्था के प्रतिकूल है। कानून की जानकारी न होना कोई दलील नहीं है। अपराध के निरूपण के लिए क़ानून की जानकारी का होना या न होना कोई तर्क नहीं माना जाता। हर समाज या देश में यह बात मान ली जाती है कि नियमों की जानकारी हर एक को है। नैतिकता तथा उचित व्यवहार के आम सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य अपराध है, कानून तो ऐसे अपराधों की व्याख्या मात्र करता है।[३]

पर ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनको किसी अपराधी कार्य करने के समय उचित-अनुचित समझने की शक्ति ही नही रही हो। मन ही तो ठहरा। हो सकता है कि

१. वही, पृष्ठ १८.

२. "क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः क्षिप्ताद् विशिष्टं विक्षिप्तमिति मणिप्रभा"—पातञ्जल भाष्य, ५५३.

३. P. K. Sen—Penology, Old and New–1943–Page 201.

नैतिकता की कल्पना करने की शक्ति ही उनमें समाप्त हो गयी हो या लुप्त हो गयी हो? भले-बुरे की, अच्छे काम या बुरे काम में भेद करने की शक्ति न रह गयी हो? सन् १८३५ में प्रिचार्ड ने ऐसे लोगों के लिए "नैतिक विक्षिप्त" शब्द गढ़ा था, पर नैतिक विक्षिप्तता तथा "नैतिक दुर्बलता" में अन्तर ही क्या है। जो नैतिकता को न समझ पावे, वही नैतिक दुर्बलता का रोगी होगा। ऐसे लोगों में नैतिक भावना का अभाव माना जायेगा। पर "नैतिक भावना" नामक कोई चीज है भी? डा० हैमब्लिन स्मिथ का कथन है कि "नैतिक बुद्धि" नामक कोई वस्तु है ही नहीं। नैतिक विवेक या नैतिक बुद्धि को हमने गढ़ लिया है। उचित और अनुचित के बारे में हमारे विचार सामाजिक निर्णयों पर तथा सामाजिक सम्बंध के क्रमागत विकास पर निर्भर करते है। यदि किसी का यह विश्वास हो कि हमारे हृदय में आत्मा, चेतना, संकल्प नामक कोई वस्तु है जो हमारी इच्छाओं तथा कामनाओं के औचित्य तथा अनौचित्य का स्वतः निर्णय करती चलती है तो उसे "नैतिक विवेक" तथा "नैतिक दुर्बलता" में विश्वास करना चाहिए। किन्तु जिसे मानसिक निश्चय के सिद्धान्त पर विश्वास हो, वह इन चीजों को नहीं मानेगा।[१] किन्तु हम भारतीय आत्मा को, चेतना को, मन तथा बुद्धि और संकल्प सबको मानते हैं। हमारी इच्छाओं पर हमारी आत्मा तथा विवेक का अंकुश सदैव रहता है। इस विवेक का विकास समाज के नियमों से ही होता है। पर एक ऐसी स्थिति आती है जब मन या शरीर के रोग से विवेक खो जाता है। ऐसी अवस्था को मूढ़ावस्था या पागलपन की अवस्था कह सकते हैं। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो बचपन से ही, जन्म से ही, विवेक-शून्य होते हैं। इन्हें मूढ़[२] कहिए या बुद्धिहीन कहिए। बहरहाल, चाहे आन्तरिक प्रेरणा से हो या सामाजिक संस्कार से, मनुष्य में विवेक का होना आवश्यक है। विवेक के रहते जो अपराध करता है, वही अपराधी है। ऐसे अपराधी को दंड मिलता है अपने "विवेक से काम न लेने के लिए।" पर जिसके पास विवेक ही नहीं है, उसे किस लिए दंड दिया जायेगा?

मूर[३] ने जिसे "अभागा मस्तिष्क" कहा है, जिसका मस्तिष्क काम नहीं करेगा, उसे पागल या प्रमादी कहेंगे। विक्षिप्त वह है जो तर्क-शून्य है, जिसकी

१. Dr. M. Hamblin Smith—"Psychology of the Criminal"–Methuen & Co., London, 1922–Page 153-154.

२. Idiots.

३. John H. Moore–Clergy.

बुद्धि में तर्क करके, विचार करके उचित या अनुचित का निर्णय करने की शक्ति नहीं रहती। यह सही है, जैसा कि जॉन हॉलम ने कहा है, कि पागल व्यक्ति दूसरे की मूर्खता को बड़ी अच्छी तरह से पहचान लेता है, पर अपनी मूर्खता उसकी समझ में नहीं आती। पागल की व्याख्या करते हुए ड्राइडन लिखते है—"वह बड़बड़ाया करता है। बालू के ढेर के समान उसके शब्द भी ढीले होते है। वे (शब्द) बुद्धि से बहुत दूर, अस्त-व्यस्त बिखरे रहते है। वह अपने हवाई घोड़े या गद्दी पर इतना ऊंचे उड़ता रहता है कि उसके दिमाग पर पाला पड़ जाता है।"[१] दार्शनिक लॉक[२] के अनुसार पागल तथा मूर्ख मे यह बड़ा अन्तर है कि मूर्ख सही सिद्धान्तों से गलत नतीजे निकालता है और पागल गलत सिद्धान्तों से सही नतीजे निकालता है। मूर्ख की मिसाल लीजिए। एक आदमी सो रहा है। मूर्ख ने उसका सिर काट लिया, सिर काट कर छिपा दिया। अब वही बैठकर वह यह तमाशा देखना चाहता है कि जब वह आदमी सोकर उठेगा और देखेगा कि उसका सिर ही नही है तो उसे कितना अधिक तथा कैसा विस्मय होगा। मूर्ख ने यह तो ठीक सोचा कि सिर के सहित सोने वाला जब जागेगा और अपने सिर को नहीं पायेगा तो उसे बड़ा अचम्भा जरूर होगा। उसने भूल यही की कि वह सोच रहा है कि विना सिर का आदमी जाग भी सकता है? पागल आदमी विचार-शून्य नहीं होता। वह खूब बहस भी कर सकता है। उसकी भूल इतनी ही है कि वह जिस आधार पर, जिस भूमि पर अपने तर्क की दीवाल खड़ी कर रहा है, उसका वजूद (विद्यमानता, अस्तित्व) ही नही होता। वह स्वयं अपना आधार बनाता है और फिर उसे बिगाड़ता रहता है।

इसलिए क्या विवेक-शून्य व्यक्ति का, क्या विक्षिप्त या मूढ़ या प्रमादी द्वारा किया गया कार्य दंडनीय है? हमारे शास्त्रों ने भी स्पष्ट आदेश दिया है कि अपराध, देश, काल, अवस्था, कर्म, धन—इन सबको जानकर, इनके अनुसार ही दंड देने योग्यों को दंड दे। "दंड देने योग्यों को ही दंड दे"—

ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा।
वयः कर्म च वित्तं च दंडं दंड्येषु पातयेत्॥

—याज्ञवल्क्य, ३६८.

१. The New Dictionary of Thoughts—Universal Text Books–London. Page 363.

२. John Locke, Philosopher.

म-नाटेन का मामला

"योग्य को ही दंड देने का सिद्धान्त" हमारे देश में हज़ारों वर्ष पहले से था पर इंग्लैंड तथा अमेरिका ऐसे सभ्य देशों में इसकी कल्पना बहुत बाद मे आयी। संयुक्त-राज्य अमेरिका में सन् १६७० तक कानून की जानकारी बहुत कम थी। "लोगों में कानूनी शिक्षा बहुत कम थी।"[१] पर, मानसिक रोगी को दंड दिया जाय या न दिया जाय, यह सवाल सबसे पहले इंग्लैंड में १८४३ मे उठा। डेनियल म-नाटेन[२] नामक व्यक्ति ने ब्रिटेन के विदेश मंत्री सर राबंटपाल के निजी सहायक एडवर्ड ड्रमंड को २० जनवरी, १८४३ को ४ बजे तीसरे प्रहर गोली मार दी। गोली मारने का कारण यह था कि उस व्यक्ति को यह प्रेरणा हुई कि अमुक मत्री राज्य के लिए अहितकर है। मारना था मंत्री को। मारे गये निजी सहायक। मुकद्दमा चला। म-नाटेन की ओर से सफाई दी गयी कि जिस समय उसने गोली चलायी, उसकी बुद्धि ठिकाने नही थी। स्वस्थ मस्तिष्क वाले के मन में भी अस्वस्थ विकल्प उत्पन्न हो सकते है। उसकी "सही और गलत" समझने की ताकत नष्ट हो सकती है। उसके मनमें एक ऐसा भय समा गया जिसने आत्म-नियंत्रण की शक्ति को भी समाप्त कर दिया था। इस प्रकार के रोग ने उसका सब कुछ विवेक भी समाप्त कर दिया था। अभियोग पक्ष के सरकारी वकील सर विलियम फोलेट ने इस तर्क का घोर विरोध किया।

न्यायाधीश टिडल ने जूरी लोगों को मामला समझाते हुए कहा था—

"हमे यह तय करना है कि जिस समय विचाराधीन कार्य (गोली मारना) हो रहा था, अभियुक्त अपनी समझदारी से काम ले रहा था या नहीं ताकि हम यह जान सकें कि वह एक गलत और दुष्ट कार्य कर रहा था। यदि जूरी (पंच) लोग इस विचार के है कि जिस समय बंदी अपराध कर रहा था, मनुष्य तथा ईश्वर के नियमो के विरुद्ध कार्य कर रहा था, वह अपने होश मे नही था, उसका दिमाग सही नही था, तो निर्णय उसके पक्ष में होगा। यदि इसके विपरीत यह प्रकट हो कि अभियोग के समय उसकी बुद्धि बिलकुल ठीक थी तो उसे दंड मिलना चाहिए।"

१. The American Review, New Delhi, July, 1959, Page 43.

२. यह प्रसिद्ध मामला ब्रिटेन के सर्वोच्च न्यायालय हाउस आव लार्ड्स तक पहुँचा। ६ और १२ मार्च १८४३ को उस सरदार सभा में इस पर बहस हुई, देखिए Hansard's Debates, Vol. LXVII–Page 288, 714.

न्यायाधीश टिंडल ने बौद्धिक विवेक पर ज़ोर दिया था। पंचों की—जूरी की राय में म-नाटेन "निर्दोष" था। नैतिक उन्माद में आदमी की ज़िम्मेदारी बनी रहती है। किसी दूसरे धर्म वाले की हत्या करना भी नैतिक उन्माद है। इस प्रकार धार्मिक दंगों में सभी हत्याएं अदण्डनीय हो जावेंगी। पर, वही उन्माद अदंडनीय होता है जिसमें यह सिद्ध हो जाय कि बुद्धि के ऊपर ऐसा पर्दा पड़ जाय कि यह विवेक ही न रह जाय कि क्या भला है, क्या बुरा है। क़ानून की दृष्टि में वही कार्य "जान बूझकर किया गया" नहीं समझा जाता जिसे करने के समय मनुष्य में सही या ग़लत समझने की शक्ति नहीं रह जाती।[1]

किन्तु, म-नाटेन मामले में विचारपति के आदेश से अनेक तर्क उत्पन्न होते हैं। उस प्रसिद्ध निर्णय में यह भी था कि—

"मानसिक रूप से रोगी होते हुए भी कोई व्यक्ति अपने अपराधी कार्य के लिए जिम्मेदार होगा यदि उसे अपने कार्य की "प्रकृति और गुण" मालूम है तथा उसे इतनी समझ है कि वह उसे ग़लत समझता है।"

पागल, प्रमादी या विक्षिप्त में 'उचित तथा अनुचित" की पहचान रहती है या नहीं, यह बड़ा कठिन सवाल है और आज सैकड़ों वर्ष से इस पर बड़े-बड़े विचारवान् तर्क करते चले आ रहे हैं। उस मुक़द्दमे के सिलसिले में जो सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ उसमें यह कहा गया है कि—

"पागलपन के नाम पर अभियुक्त की पैरवी करते समय यह स्पष्टतः सावित करना चाहिए कि उक्त "अपराध" करने के समय अभियुक्त का मन इतना रोगी था कि उसका विवेक लुप्त हो गया था और वह जो कार्य कर रहा था उसकी सीमा, उसका रूप, उसका प्रकार—यह कुछ नहीं समझ रहा था। यदि यह उसे पता भी रहा हो तो वह यह नहीं समझ रहा था कि वह सब अनुचित है।"

किन्तु, "अनुचित" का क्या अर्थ है? इस शब्द की व्याख्या कैसी होगी? कोई चीज़ कहीं पर उचित है, कहीं पर अनुचित है। कोई मूर्त्ति की पूजा करता है, कोई उसे तोड़ता है। अतएव, यह कौन निर्णय करेगा कि क्या उचित है, क्या अनुचित है? बहुत से लोगों में एक ही प्रकार के अवगुण हो सकते हैं। एक ही प्रकार की समस्याएं हो सकतीं हैं। पर वे अपनी समस्याओं को अलग-अलग सुलझाते हैं। यदि भिन्न

१. Penology–Old & New, पृष्ठ २०२

श्रेणी के, पर एक ही प्रकार की समस्यावाले लोग आपस में मिलें[1] तो एक सामूहिक बात भी निकल सकती है। पर उचित-अनुचित का निर्णय मर्यादा के अनुसार, सामाजिक पद के अनुसार भी होता है। अक्सर काफ़ी बड़े तथा धनी लोगों में आदत होती है कि दूकान पर सामान खरीदने गये, और दो-एक चीजें उठा कर जेब में डाल ली। जानबूझ कर नहीं, आदतन वे ऐसा करते थे। ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री बाल्डविन ने कभी किसी की दियासलाई लेकर वापस नहीं की। सिगरेट जलायी और सलाई जेब में रख ली। यदि छोटा आदमी किसी दूकान से एक चम्मच भी अपनी जेब में डाल ले तो उसे "चोर" कहा जायेगा। उसे चोर की सज़ा मिलेगी। मनोविज्ञान अपराधी की यह कहकर समीक्षा करता है कि समाज में वह अपने को ठीक तरह से मिला न सका, सामाजिक नियमों में अपने को अभ्यस्त न कर सका। किन्तु इतना ही कह देने से काम नहीं चलेगा। हर एक के जीवन की सांस्कृतिक समस्याएँ होती हैं।[2] हर एक जीवन की निजी आवश्यकताएँ तथा पहेलियाँ होती हैं। इन बातों को भी न देखने से मनुष्य की वास्तविकता का पता नहीं चल सकता। एक ही सिद्धान्त हर एक के लिए लागू नहीं हो सकता। स्त्री या पुरुष के लिए भी भिन्न सिद्धान्त बन जाते है। उदाहरण के लिए ज़्यादातर स्त्री अपराधिनें "कामवासना" तथा तत्सम्बंधी अपराधों की शिकार होती है। ज्यादातर पुरुष अपराधी चोरी, सम्पत्ति सम्बंधी तथा हत्या, डकैती आदि के दोषी हो सकते हैं।[3] स्पष्ट है कि दोनों के अपराधों तथा कार्यों के औचित्य में अन्तर है, भेद है। तो फिर सामाजिक रोग की दवा क्या है ? कोहन अपनी पुस्तक में, बाल अपराध के सम्बंध में लिखते है—[4]

"अपराध की मलेरिया ज्वर से तुलना कीजिए। हम मलेरिया का कारण जानते हैं कि किस कीटाणु से यह उत्पन्न होता है। जिस मच्छड़ से यह रोग फैलता

१. Albert K. Cohen—"Delinquent Boys" (The Culture of the Gang) Routledge & Kegan Paul Ltd., London 1956, Page 71.

२. वही, पृष्ठ १५६

३. वही, पृष्ठ ४५–४६

४. वही, पृष्ठ १७५

है, हम उससे तथा उसकी आदतों से परिचित है। हम जानते हैं कि किस दशा मे मच्छड़ पैदा होते हैं। इस जानकारी के सहारे हम मलेरिया से बचने का उपाय ढूढ निकालते है. . .हम उन परिस्थितियों को वदल सकते हैं जिनमें मच्छड पैदा होते है, हम मच्छड़ों का संहार भी कर सकते है। हम मच्छड़ तथा उसके शिकार के बीच मे दीवार खड़ी कर सकते है, मच्छड़ से वचने की औषधियां बना सकते है। पर इन सब सम्भावनाओं के साथ नये-नये सवाल भी उठते जाते है। क्या यह सब सम्भव है? किस प्रकार? कैसे? हर उपाय मे काफी समय तथा द्रव्य की आवश्यकता है तथा जिसे नष्ट करने का उपाय किया जायगा वह अपने बचाव का भी उपाय करेगा। यह आवश्यक हो सकता है कि समूचे समुदाय तथा समाज के साधन और प्रयत्न, त्याग तथा सहयोग की आवश्यकता हो। "श्रेष्ठ उपाय" आबादी के भिन्न वर्गो के दृष्टिकोण से अपनी श्रेष्ठता में भी भिन्न हो सकता है।"

इसी प्रकार उचित या अनुचित की सर्वमान्य व्याख्या भी भिन्न भिन्न वर्गो के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगी। म-नाटेन मामले में हाउस आव लार्ड्स में जब बहस होने लगी तो लार्ड ब्राउघम ने कहा था—"उचित तथा अनुचित की केवल एक ही व्याख्या है। उचित वह है जब तुम क़ानून के अनुसार काम करते हो।" सन् १८४७ में, जून के महीने में पार्लामेन्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए लार्ड ब्रामवेल ने कहा था—"आज का कानून जिस प्रकार पागलपन की व्याख्या करता है, उसके अनुसार शायद ही कोई पागल मिले।" सही भी है—जब क़ानून के विरुद्ध हर एक कार्य अनुचित है तो पागल को उसके काम का दंड तो मिलना ही चाहिए। पागल वह है जो अनुचित को समझ न सके। लेकिन जब अनुचित को समझना जरूरी नहीं है तो हर एक व्यक्ति दंडनीय है। पर लार्ड ब्रामवेल की बात अधिक व्यापक रूप में विचारपति स्टेफन ने सन् १८८८ में, डैविट डेवीज़ के मुक़द्दमे में, जूरी लोगों को समझाते हुए कही थी—

"कहा जाता है कि क़ानून के अनुसार अपने कार्यो के लिए वही व्यक्ति ज़िम्मेदार है जो यह जानता हो कि वह काम ग़लत है, अनुचित है। यह बात सही है। पर डाक्टरों की राय है कि बहुत से लोग, जो वास्तव में पूरे पागल है, यह जानते हैं कि अमुक काम अनुचित है। इसलिए यदि आप अपने विचार से काम लेंगे तो आपको स्यात् यह प्रतीत होगा कि काम का औचित्य या अनौचित्य जानना इससे अधिक और कोई मानी नहीं रखता कि सही बुद्धिवाले मनुष्य की तरह उसके बारे में सोचने

की शक्ति है, हत्या करने के भयंकर काम को पूरी तरह से सोचकर करने की शक्ति है; यह समझने की शक्ति है कि तुम जो काम करने जा रहे हो, उससे किसी का जीवन नष्ट होगा, तुम्हारी आत्मा नष्ट होगी, उससे लोगों को पीड़ा होगी, आतंक पैदा होगा और उसके अनेक अनर्थकारी परिणाम हो सकते हैं। यही सब सोचने की शक्ति एक साधारण विवेकशील पुरुष में भी होती है। जितना मैं समझ सका हूं, कानून यही कहता है। उसके अनुसार दोषारोपण तब होगा जब जिम्मेदारी की पहचान हो जाय यानी गलत और सही में भेद करने की क्षमता का पता चल जाय। ......आपने इस बेचारे की परिस्थिति के बारे में सुन लिया। उसे कैसे मालूम होता कि वह जो कर रहा है, अनुचित है? अपस्मार (मृगी) के दौरे में वह यह सब नही सोच सकता था। उसे जानकारी नही थी कि वह क्या कर रहा है। वह तो यह कार्य वैसे ही साधारण ढंग पर कर रहा था जैसे शरीर में कही दर्द होने पर आदमी करता है।"

इसी विचारपति ने इस निर्णय के पूर्व, ९ नवम्बर १८८५ को विलियम बर्ट के मुक़द्दमे मे कहा था—

"रोगी होने के कारण यदि उत्तेजना उत्पन्न हो और उसी उत्तेजना में अत्यधिक क्रोध आ जाय तो आदमी में भले बुरे की सोचने की शक्ति नही रह जाती और वह अपने हिंसात्मक कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं होता।"[१]

स्टेफन का कथन था कि यह देखना ज़रूरी नहीं है कि वह अपराधी रोगी है या नही। इतना ही देखना पर्य्याप्त है कि उसमें विवेक था या नही। क्या काम करने जा रहे है और उसका क्या परिणाम होगा, यह लोगों को मालूम हो सकता है, फिर भी वे दोषी नही हो सकते। उदासी की बीमारी वाली महिला को मालूम हो सकता है कि अपना बच्चा मार कर वह बुरा काम कर रही है पर उसे मारने के समय यदि उसके मन में यह भाव है कि उसका प्राण लेकर वह उसे एक भयानक विपत्ति या भविष्य से बचाने जा रही है तो उसके मन में ऐसी हत्या का सर्वथा उचित आधार है। आत्महत्या करनेवाला व्यक्ति यह भली प्रकार समझता है कि अपनी जान लेना बडी भारी भूल है, अपराध है। फिर भी वह इस भ्रम में है

१. Edited by L. Radzinowiez and J. W. C. Turner—"Mental Abnormality and Crime"–Macmillan & Co., London—1949–Page 54-55.

कि अपना प्राण देकर वह अपना छुटकारा कर रहा है, अपना उद्धार कर रहा है—अपनी रक्षा कर रहा है। कौन कहेगा कि उसके मन में पूर्ण औचित्य का भाव नहीं है। पर वह उदास स्त्री, वह भ्रमित आत्मघाती, दोनों ही उन्मादी हैं, विक्षिप्त हैं, मानसिक रोगी हैं। हम उनको वास्तव में अपराधी नहीं कह सकते।"

सन् १९२४ में ब्रिटेन में "पागलपन और अपराध" पर एक जाँच कमेटी बैठी। उसमें ब्रिटिश चिकित्सकीय—मनोवैज्ञानिक संघ ने[१] एक स्मृतिपत्र दिया था। उसके अनुसार—

(१) "म-नाटेन नियमों में अपराध की जो क़ानूनी ज़िम्मेदारी निर्धारित की गयी है, उसे समाप्त कर देना चाहिए और बन्दी की जिम्मेदारी का निर्णय जूरी (पंच) लोगों को उस मामले की घटनाओं की छानबीन करके करना चाहिए।

(२) जिस किसी मामले में अपराधी के मन की स्थिति का निर्णय करना हो विचारपति को जूरी से निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने का आदेश देना चाहिए–

(क) क्या बन्दी ने अभियोग वाला कार्य किया है?

(ख) यदि हाँ, तो क्या उस समय वह पागल था?

(ग) यदि हाँ तो क्या यह साबित हो गया है कि उसका अपराध उसके मानसिक व्यतिक्रम से सम्बंधित नहीं है?

तात्पर्य यह कि सबसे बड़ा निर्णय यह करना है कि क्या उसका अपराध उसके मानसिक रोग का परिणाम है? किन्तु, कुछ लोगों का यह कहना भी गलत नहीं है कि ऐसा कौन सा असामाजिक कार्य है जो मानसिक रोग का परिणाम नहीं है। स्काटलैंड के विचारपति क्लार्कने १८६३ में कहा था कि "शुद्ध क़ानूनी दृष्टि से कोई पागल अपराधी नहीं हो सकता। पागलपन के दायरे में हर एक हत्या का अपराध आ सकता है।" इसीलिए पागलपन या विक्षिप्तता की ठीक से व्याख्या नहीं हो सकती। प्रत्येक चिकित्सक की इसकी भिन्न व्याख्या होती है।[२] हम इसका निर्णय भी नहीं कर सकते। हम तो इतना ही मान कर चलते हैं कि पागल का अर्थ है पागल।

१. Royal Medico-Psychological Association of Great Britain.

२. Mental Abnormality & Crime—Page 60.

इससे ज्यादा और क्या व्याख्या करें ? प्रायः हम ऐसे लोगों को देखते हैं जो अनियंत्रित भावावेश में ऐसा कार्य कर बैठते हैं जिससे उन्हें रोकने के लिए शारीरिक शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। अगर कोई यकायक अपना मुँह पीटना शुरू करे तो सिवा उसका हाथ बाँध देने के दूसरा क्या उपाय है ? किसी के मन पर यकायक भूत चढ़ बैठे तो उसकी रोकथाम करना बड़ा कठिन होता है। ऐसा भूत चढ़ने पर आदमी को अपनी स्थिति, अपनी शक्ति, अपने चारों ओर के वातावरण, किसी का ध्यान नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति को, उसका मन शान्त होने पर दंड देने से कोई लाभ नहीं। जिस प्रवृत्ति में अपराध हुआ था, जब वही नही रही तो दंड से क्या लाभ? मन की ऐसी बहुत सी बीमारियाँ है जिनका आजतक उपाय नहीं हो सका है। इसीलिए अपराध की ज़िम्मेदारी लादने के लिए क़ानून ने जो सिद्धान्त बना रखे हैं, वे दोषपूर्ण हैं। फिर भी, विचारपति लोग उसी क़ानून का ऐसी मानवता के साथ उपयोग करते हैं कि किसी के साथ उनकी जानकारी में अन्याय न हो।[१]

हमने अपनी पुस्तक में चार्ल्स गोरिंग का उल्लेख किया है। लोम्ब्रोजो नामक इटालियन अपराधशास्त्री का साधिकार खंडन गोरिंग ने सन् १९१३ में लंदन में प्रकाशित किया था। लोम्ब्रोज़ो ने प्रतिपादित किया था कि अपराधी प्रवृत्तिवाले का विशेष प्रकार का नाक-नक्शा होता है। गोरिग लोम्ब्रोज़ो को "विज्ञान का राजद्रोही"[२] मानते थे। पर, एक प्रकार से गोरिंग भी लोम्ब्रोज़ो के सिद्धान्त के शिकार बन गये। वे अपराधी को सर्वसाधारण की "मनोवृत्ति" से भिन्न मानते थे। उसके मन की स्थिति को साधारण से भिन्न स्वीकार करते थे। यदि ऐसी बात मान ली जाय तो हर एक अपराधी "असाधारण मानसिक स्थिति" का माना जायेगा। अतएव मानसिक दुर्बलता के नाम पर किसी के साथ रियायत नहीं की जा सकती। किन्तु मानसिक दुर्बलता को विना माने मनुष्य की ठीक से पहचान भी नहीं हो सकती।

दुर्बल मस्तिष्क

बीसवीं शताब्दी के शुरू में इंग्लैंड में दुर्बल मस्तिष्कवालों पर विचार करने के लिए एक शाही कमीशन बैठा था। सन् १९१३ में वहाँ दुर्बल मस्तिष्कवालों के लिए

१. **वही, पृष्ठ ७०**

२. "Traitor to Science".–**वही, पृष्ठ १४७**

एक कानून[१] बना जिसके अनुसार ऐसे "अपराधियों को अलग रखने तथा उनकी पृथक् देखरेख का आदेश दिया गया था। इसके अनुसार चार प्रकार के व्यक्ति दुर्बल मस्तिष्क के माने गये थे—(१) बुद्धू या मूढ़—जन्म से ही इतने बेवकूफ कि वे मामूली खतरे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे; (२)निरर्थक—ऐसे व्यक्ति या बच्चे जो एकदम बुद्धू नही है, फिर भी जिनका दिमाग़ इतना ख़राब है कि वे अपने को ज़रा भी सम्भाल नही पाते; (३) दुर्बल मस्तिष्क—जिनकी बुद्धि इतनी दोषपूर्ण है कि सदैव इनकी रक्षा की, हिफ़ाज़त की ज़रूरत पड़ती है; (४) नैतिक दुर्बल—जो बचपन से ही इतने विकृत स्वभाव के है तथा दुष्ट और अपराधी स्वभाव के हैं कि दंड तथा अनुशासन का उन पर कोई प्रभाव नही पड़ता। इस क़ानून के दायरे में परिवार, अनाथालय या आश्रम, जेल, स्कूल—कही से भी प्राप्त दुर्बल मस्तिष्क-वालों की रक्षा, सेवा तथा चिकित्सा का प्रबंध था। और सन् १९१३ के बाद १९१९ में, फिर १९२५ में, फिर १९२७, १९३८, ४८ में —इस प्रकार कई बार इस क़ानून में संशोधन होते रहे। फलतः दुर्बल मस्तिष्कवालों की चिकित्सा, उनके उपचार तथा उनकी रक्षा का समुचित प्रबंध है। भारतवर्ष में हमारी गुलामी के दिनों में इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। सन् १९१९-२० में जेल जॉच कमेटी ने दुर्बल मस्तिष्कवालों के लिए जेल से पृथक् स्थान रखने की सिफ़ारिश की थी।[२] फलतः कुछ अलग पागलख़ाने बने। पर दुर्बल मस्तिष्क वालों के लिए हमारे देश में अभी एक प्रकार से कुछ नहीं हुआ है और लाखों पागल या उन्मादी बच्चे-बड़े बूढ़े अरक्षित तथा चिकित्सा के अभाव से अपना अमूल्य जीवन नष्ट रहे हैं।

जिस म-नाटेन नियम का युगों तक इतना प्राधान्य था, उसे अब वह मर्यादा तथा स्थान नहीं प्राप्त है। नवीन मनोवैज्ञानिक खोजों ने उसे बहुत पीछे छोड़ दिया है। आधुनिक मानसिक विकृतियों के विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकों ने "उचित तथा अनुचित" की उसकी नाप तौल को "अमानवी" घोषित कर दिया है। आजकल संयुक्त राज्य अमेरिका की एक अदालत का निर्णय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सन् १९५४ में डरहम बनाम संयुक्तराज्य अमेरिका के मुक़द्दमे में, कोलम्बिया प्रदेश में जो फ़ैसला हुआ है उसने बड़ी सरल भाषा में पागलपन की दशा में किये गये अपराध

१. Mental Deficiency Act, 1913 (3 & 4, Geo, V. C. 23)
२. Penology—Old & New—पृष्ठ २०८

की ज़िम्मेदारी स्पष्ट कर दी है। उसके अनुसार—"यदि अभियुक्त ने मानसिक रोग या दोष के कारण ग़ैर क़ानूनी कार्य किया है तो वह उस अपराधी कार्य के लिए जिम्मेदार नहीं है।" इस निर्णय पर संसार के सभी अपराध-शास्त्रियों ने काफ़ी लम्बी बहसें की हैं। इस पर लेख पर लेख लिखे गये हैं और रेडियो व्याख्यान भी प्रसारित हुआ है।[१]

म-नाटेन तथा इस फ़ैसले को, इनके अन्तर को, समझने के लिए हमें मन का रोग तथा अपराध की ज़िम्मेदारी के सवाल पर एक बार फिर सरसरी तौर पर विचार करना पड़ेगा।

१. Sheldon Glueck, Ph. D., LL. D., Roscoe Pound Professor of Law, Harvard Law School—"Mental Illness and Criminial Responsibility"—The Journal of Social Therapy—3rd Quarter—1956. Vol. 2. No. 3.

अध्याय ३०

क्या मानसिक रोगी अपराधी है ?

सन् १८३५ में लार्ड हेल ने अपने एक प्रसिद्ध लेख में[1] लिखा था—"ऐसे व्यक्ति में, जिसके मन में उदासीनता या अन्य प्रकार की बीमारी हो, अपने कार्यों को समझने की उतनी शक्ति होती है जितना १४ वर्ष के एक बच्चे में।" पर लार्ड हेल के इस तर्क को काटते हुए सन् १८३८ में अमेरिका के न्याय पंडित डा० इज़ाक रे ने एक लेख लिखा। वे लिखते हैं—"पागलों के बारे में जो क़ानून बने हैं उनके काफ़ी बाद में चिकित्सकों को मन की बीमारी का सही पता लग पाया है। इसलिए क़ानून के पवित्र नाम पर काफ़ी भूलें की जा चुकीं हैं।"[2] सन् १८४३ में प्रसिद्ध म-नाटेन मामला आ गया। म-नाटेन के वकील काकबर्न ने लार्ड हेल तथा लार्ड कोक की प्राचीन दलीलों की धज्जियां उड़ा दीं। उन्होंने कहा कि डा० इज़ाक रे ने उन लोगों को काफ़ी अच्छा जवाब दे दिया है। उनका (लार्ड हेल का) तर्क तो पागलख़ाने के कुछ अभागों को देखकर उसी अनुभव के आधार पर बना था। सवाल तो यह है कि वास्तव में पागलपन क्या है? और, काकबर्न ने कहा—

"यह नहीं भूलना चाहिए कि इसके बारे में, इस रोग के बारे में, हमारी जानकारी बहुत नयी है। सरकारी वकील ने कहा है कि यदि अभियुक्त एकदम पागल है तो उसे छोड़ा जा सकता है पर इस सम्बंध में मैं उनका ध्यान हैडफील्ड नामक एक पागल के मामले की ओर दिलाना चाहता हूँ जिसने सम्राट् जार्ज तृतीय को गोली मारने का प्रयास किया था। उसकी सफाई में बोलते हुए लार्ड अर्स्काइन ने कहा था—यदि यह कहा जाय कि किसी व्यक्ति को पागलपन के नाम पर दंड से बचाने के लिए यह साबित करना होगा कि उसकी बुद्धि तथा होशोहवास इतना लुप्त हो गया रहेगा कि

१. Lord Hale—Pleas of the Crown

२. Dr. Isaac Ray of Boston—"A Treatise on Medical Jurisprudence of Insanity."

उसे अपना नाम भी याद न रहे, अपनी दशा का ध्यान न रहे, वह अपने रिश्तेदारों को भी पहचान न सके—तो इस प्रकार का पागलपन कभी नहीं रहा है और न रहेगा।"

प्रधान विचारपति टिडल ने जूरी से उनकी राय पूछी। सबने एकमत होकर म-नाटेन को "पागलपन के कारण निर्दोष" घोषित किया था। महारानी विक्टोरिया के शासनकाल में म-नाटेन का निर्दोष घोषित होना एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। कानून तथा अपराध-शास्त्र के लिए इसका अत्यधिक महत्त्व है। हाउस आव लार्ड्स (सरदार सभा) में प्रधान न्यायाधीश ने इस सम्बन्ध में क़ानून का स्पष्टीकरण किया।

"आपका पहला सवाल है कि यदि कोई व्यक्ति साधारण तौर पर पागल न हो पर उसके मन में किसी एक या दो व्यक्ति के प्रति उन्माद तथा प्रमाद हो और वह अपराध करे तो क़ानून क्या कहता है। महारानी के न्यायाधीशों का उत्तर है कि वह व्यक्ति उसी समय दडनीय है जब वह अपना अपराध करते समय यह जानता हो, समझता हो कि देश के नियम के विरुद्ध कार्य कर रहा है। आपका अन्तिम प्रश्न है कि जूरी लोगों पर पागलपन की व्याख्या करने का काम किस सीमा तक छोड़ा जा सकता है। हमारा उत्तर है कि जूरी लोगों से यह बतला देना चाहिए कि वे हर एक व्यक्ति को विवेकशील समझें। उसमें इतनी समझ मान लें कि वह अपने अपराध की ज़िम्मेदारी समझता है—जबतक कि उनके सन्तोष के अनकूल यह साबित न हो जाय कि ऐसा नही था। पागलपन की दलील देनेवालों को यह साबित करना पड़ेगा कि अभियुक्त को अपराध करने के समय इतनी बुद्धि नहीं थी कि उसे अनुमान हो सके कि वह क्या करने जा रहा है तथा उसके कार्य का क्या परिणाम होगा और इसकी जानकारी हो भी तो वह यह न समझता हो कि जो कर रहा है वह अनुचित है।"

विचारपति टिडल का बयान कमसे कम ५० वर्ष तक न्यायालयों के सामने आदर्श रूप में था। पर धीरे-धीरे यह प्रकट होने लगा कि मन की उपरिलिखित समीक्षा में कई दोष है। मौलिक दोष तो यही है कि इस प्रकार के प्रयोग में मानसिक रोगों तथा मन की गति से आंतरिक एकता नहीं स्वीकार की गयी है। तीस वर्ष पूर्व ग्लूक शेल्डन[1] ने एक साधिकार पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने टिंडल के दोषपूर्ण

१. Sheldon Glueck—"Mental Disorders and Criminal Law"—Harvard, U. S. A.

"मानसिक प्रयोग" का बड़े अच्छे ढंग से खंडन किया था। शेल्डन का कहना था कि इस प्रयोग के द्वारा "काम के गुण, स्वभाव तथा अनौचित्य" तीनों की सही ढंग से जाँच नही हो सकती। शेल्डन ने डा० इज़ाक रे के इस सिद्धान्त का समर्थन किया है कि "उचित-अनुचित" का नियम काफी दोषपूर्ण है। मनुष्य के मानसिक जीवन मे ज्ञान का, जानकारी का 'भी बड़ा भारी स्थान है। ज्ञान हमारी क्रियाओं तथा कार्यों को प्रोत्साहित करता रहता है। इसलिए बुद्धि को उचित तथा अनुचित की जानकारी होते हुए भी वह असंतुलित, रोगी तथा विकृत हो सकती है। शेल्डन उन अमेरिकन क़ानून पंडितों के घोर विरोधी है जो कहते है कि चूँकि अपराधी को उचित-अनुचित का ज्ञान है, अतएव उसे ज़रूर दंड मिलना चाहिए। लेकिन एक प्रत्यक्ष उदाहरण से इस भ्रम का खंडन हो जायेगा। पागलख़ाने में कुछ थोडे से नौकर या रखवारे होते है पर पागलों की संख्या रक्षकों से कहीं अधिक होती है। केवल दंड के भय से, दंड के आतंक से पागल व्यवस्था में, अनुशासन में रहता है। अतएव उसे उचित-अनुचित का भास रहता है किन्तु फिर भी वह पागल है। इंग्लैंड में, क्रायडन के निकट एक पागलखाना है। उसके मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने हाल में अपने एक बयान में कहा है कि "वास्तव में सब मानसिक रोगों का एक मात्र कारण है एकाकीपन। चूकि ये व्यक्ति अपने साथी पुरुष-स्त्रियों के साथ, समाज, में परिवार में सन्तोष जनक रूप से नही रह सकते अतएव वे अपने को अपने भीतर खीच लेते है जिसका परिणाम होता है उनका अत्यधिक एकाकीपन—और फिर वे पागल हो जाते हैं। इन सब बातों से विचारपति टिडल का मानसिक प्रयोग सदोष प्रकट हो जाता है।

पर डरहम के मामले ने, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आये है, कानूनी दृष्टिकोण को और भी स्पष्ट कर दिया। डरहम को इस बिना पर छोड़ दिया गया कि वह पागल था अतएव अपने कार्यो के प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता। कोलम्बिया जिले की अपील की अदालत के विचारपति बाज़ेलॉन ने अपना फ़ैसला सुनाते हुए कहा—"पश्चिमी जगत की यह नैतिक तथा वैध परिपाटी रही है कि जो अपनी स्वतंत्र इच्छा से, बुरी नीयत से ग़ैरक़ानूनी काम करता है वह दंडनीय होगा। हमारी परिपाटी भी यही रही है कि जो कार्य मानसिक दोप या रोग के कारण किया जाय उसकी अपराधी पर ज़िम्मेदारी नहीं हो सकती। जिन नियमों का हम जिक्र कर रहे हैं, वे इसी उद्देश्य से बनाये गये है।"

यह कहा गया था कि पागलख़ाने में अभियुक्त तब तक रहेगा ही जब तक वह एकदम अच्छा न हो जाय अतएव सार्वजनिक रक्षा, जनता की हिफाज़त तो बराबर होती रहेगी। राज्य को अपराधी के प्रति इससे अधिक और क्या चाहिए? विचार-

पति बैज़ोलॉन के फ़ैसले की शेल्डन ग्लूक ने बड़ी प्रशंसा लिखी है। उन्होंने कहा कि "मन के सम्बंध में जो नवीनतम ज्ञान प्राप्त हो चुके हैं उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि यदि यह साबित हो भी जाय कि मानसिक रोगी का अपराध एकमात्र मानसिक रोग के कारण नही था, फिर भी अपराधी को मानसिक रोगी जानते हुए भी दंड देना अनुचित है।"

पर, डरहम के फ़ैसले का महत्त्व एक दूसरी अमेरिकन अदालत के फ़ैसले ने कम कर दिया। विचारपति लेमन ने, न्यू हैम्पशायर की अदालत में, अपना फ़ैसला देते हुए कहा था कि "हमको कोलम्बिया की अदालत से अपने को नत्थी करके म-नाटेन सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह नहीं करना है।" पर, इस भिन्न निर्णय से कोई चिन्ता की बात नही है। कानून के मामले मे इस प्रकार के मतभेद तो होते ही रहते है। सन् १८१० में उस युग में बन्दियों के सबसे बड़े रक्षक, सर एस० रोमिली ने लन्दन से लिखा था कि "यह प्रायः होता है कि एक ही प्रकार की घटना, एक ही प्रकार के वातावरण में घटित होकर एक विचारपति द्वारा क्षमा का कारण बन जाती है और दूसरी अदालत से उसके लिए दंड मिलता है।" सर हेनरी हार्किंग्स, ब्रिटिश जज ने भी इस बात पर खेद प्रकट किया था कि "एक ही प्रकार की घटना, एक ही प्रकार का कारण, एक ही प्रकार का मामला और फिर भी भिन्न प्रकार का दंड होना बड़े खेद की बात है। हमको एक ही दृष्टिकोण से एक प्रकार के मामले को देखना-समझना चाहिए। एक ही प्रकार का दंड-विधान बनाने की नीयत से प्रो० एरिक फेरी ने इटली में एक ऐसा दंडविधान तैयार किया था कि जिसमें सभी दृष्टिकोण का ध्यान रखा गया था । फेरी ने उस समय कहा था कि अपराधी का यह अधिकार है कि एक ही प्रकार के अपराध के लिए एक ही प्रकार का दंड मिले।" संयुक्तराज्य अमेरिका में एक ऐसा आदर्श दंड-विधान तैयार हो रहा है जिसमें अपराधी के भिन्न प्रकार के अपराध तथा व्यवहार मे समानता के उसूल पर दंड देने का नियम होगा।

शेल्डन ग्लूक ने अपनी पत्नी एलीनर ग्लूक के साथ मिलकर सन् १९३० मे, ५०० अपराधियों पर पुस्तिका प्रकाशित की थी।[१] इसमें उनके अपराधी जीवन की पूरी समीक्षा करके उनमें जो सामाजिक तथा सांस्कृतिक, वैयक्तिक

१. Sheldon Glueck & Eleanor Glueck—"500 Criminal Careers".

एवं सामूहिक एकता, एक भावना, समानता प्राप्त हो सकी, वह प्रकट में व्यक्त कर दी गयी है, ताकि समाज यह भी समझ जाय कि उनमें तथा हमारे में (अपराध न करनेवालों में) कितनी समानता है। जब इतनी अधिक समानता हो तो दंड में भी समानता होनी चाहिए। अत्यधिक कठोर तथा अत्यधिक उदार विचारपति दोनों ही किसी प्रकार की दोषपूर्ण धारणा बनाकर काम करने के दोषी हैं। क़ानून तब तक कठोर नहीं हो सकता जब तक उसकी व्याख्या करनेवाला स्वयं कठोर न हो। इन सब बातों को ग्लूक पति-पत्नी ने अच्छे ढंग से प्रतिपादित किया है। यह सही है कि ५०० अपराधियों में उन्होंने मानसिक विकृति पर ही अधिक ध्यान दिया है। उनकी छानबीन के अनुसार कारागार में भेजे जाने के समय ७५ फ़ीसदी बंदियों में कोई मानसिक रोग नहीं मिला। पर जेल के भीतर की बंदी-संख्या की परीक्षा करने पर ८७ फ़ीसदी बंदी मनस्ताप के रोगी या विकृतमना मिले। इससे तो यही सिद्ध होता है कि कारागार में मन का रोग पैदा भी होता है, और बढ़ता भी है।

कौन अपराधी है और कौन नहीं, यह कहना बड़ा कठिन है, क्रासी की राय में हर एक बालक अपराधी होता है। क्लिनार्ड ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "यह पूछा जा सकता है कि अमुक व्यक्ति अपराध की ओर बढ़ा तथा दूसरा क्यों नहीं बढ़ा? दोनों में अन्तर क्यों हो गया? जीवन के संघर्ष में, जीवन के तनाव में, कोई व्यक्ति घटनावश अपराध की ओर खिंच आता है और कोई उससे दूर बह जाता है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि अपराध का काम मनुष्य ही करता है।" इसी लिए मानव के व्यवहार के गम्भीर परीक्षण के बाद, रोरशाश[1] प्रयोग से यह सिद्ध हो गया है कि मानसिक विकृतियों के परीक्षण से जो लोग आदतन ज़िद्दी मालूम पड़े उनमें ८५ प्रतिशत अपराधी निकले। जो लोग जिद्दी स्वभाव के नहीं थे, उनमें केवल ३९ प्रतिशत अपराधी प्रवृत्ति के निकले।

इन सब बातों से यह साबित हो जाता है कि किसी न किसी अंश तक हर एक व्यक्ति में कोई असाधारण बात ज़रूर मौजूद है। मानसिक रोगी में यह असाधारणता बढ़ जाती है, उसमें उत्तेजना अधिक होती है। उसका व्यक्तित्व ही उत्तेजित तथा उग्र प्रकट होता है। इसलिए ऐसी दशा में उसके मन का विचार किये बिना उसके कार्यों के लिए उसे दोषी ठहरा देना अनुचित होगा।

१. Rorchach Test

विश्व स्वास्थ्य संघ की चेष्टा

आज सभ्यता इतनी तीव्र गति से आगे बढ़ रही है कि मनुष्य के पास अपने को समझने के लिए अवकाश नहीं है। जीवन में इतना संघर्ष है तथा तनाव है कि मन तथा शरीर की इन्द्रियाँ जल्दी थक जाती हैं। उनका धैर्य, उनका सम्बल टूट जाता है। ऐसी दशा में उन्माद, प्रमाद या विक्षिप्तता का होना एक प्राकृतिक क्रम प्रतीत होता है। सभ्य तथा धनी यूरोप में लगभग २० लाख व्यक्ति अस्पतालों में मानसिक रोग से पीड़ित पड़े हुए हैं। यूरोप के कल-कारखानों में सबसे ज़्यादा गैर-हाजिरी ज़ुकाम की बीमारी के कारण होती है। उसके बाद दूसरा नम्बर मानसिक रोग, विशेष कर मनस्ताप का है। यूरोप के अस्पतालों में लगभग १० लाख मरीज़ मनस्ताप तथा उसी प्रकार की बीमारी[१] के शिकार हैं। ऐसे भयंकर वेग से मानसिक रोग में वृद्धि को रोकने के लिए विश्व स्वास्थ्य संघ ने फिनलैंड की राजधानी हेलसिंकी में इसी वर्ष, १९५९ में २४ जून से ३ जुलाई तक एक सम्मेलन किया था। इसमें मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषक, चिकित्सक, महिलाएँ, सभी उपस्थित थे। सम्मेलन में उन सभी उपायों पर विचार किया गया जिन्हें भिन्न देश मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अपनाये हुए हैं। किस प्रकार कहीं घर घर जाकर बच्चों के दिल और दिमाग़ की परीक्षा की जाती है, उन्हें औषधि दी जाती है। कहीं पर इनके अस्पताल खुले ढंग के हैं, कहीं पर बंद हैं। सम्मेलन का सर्व-सम्मत निर्णय था—

१. मानसिक रोगियों के साथ जितना अच्छा व्यवहार अस्पताल में या घर पर होगा, उतना ही शीघ्र वे स्वस्थ हो जायँगे।

२. दोषी बच्चों की शिक्षा का अधिक उत्तम प्रबंध होना चाहिए, अन्यथा उनको अस्पताल आदि में रखने का प्रबंध करना होगा।

३. चिकित्सकों का ऐसा प्रबंध रहे कि मन के रोग की प्रारम्भिक दशा में ही उसका पता चल जाय; जितनी जल्दी इस रोग का पता चलेगा, उतनी अच्छी चिकित्सा होगी।

४. बच्चों तथा बूढ़ों के लिए जो "अस्पताल" या पागलखाने हैं उनमें जितना कम बंधन होगा उतना ही लाभ होगा।

५. जनता को, अधिकारियों को तथा स्वास्थ्य-अधिकारियों को मानसिक रोग की समस्या को अधिक सहानुभूति से देखना चाहिए।

१. Schizophrenia, Neurosis. Neurosis—**मनस्ताप**

इस सम्मेलन ने स्कूलों में, परिवारों में तथा कारखानों में जाकर ऐसे रोगियों का पता लगाने तथा उनकी सेवा का निश्चय किया था। इसने यह भी राय दी है कि भयंकर अपराध वाली पुस्तकें, चित्र तथा नाटक आदि से भी मनुष्य के---बच्चे से लेकर बूढ़े तक के---स्वभाव पर काफ़ी तनाव पैदा होता है, जिससे मानसिक रोग तथा अपराध की प्रवृत्ति पैदा होती है। सम्मेलन ने निश्चय किया है कि मन के रोगों की चिकित्सा के लिए विशेषतः शिक्षित तथा दीक्षित लोग तैयार किये जायँ।

अपराधी की बुद्धि

ऊपर लिखी बातों से पाठक यह निष्कर्ष न निकाल लें कि अपराध करनेवाला रोगी-मस्तिष्क का ही होता है या उसकी बुद्धि साधारण मनुष्य की तुलना में कमज़ोर होती है। अपराधी तथा अपराधी प्रवृत्तिवाले की बुद्धि की परीक्षा कुछ समय से की जाने लगी है। ज्यों-ज्यों परीक्षण का ढंग सही रास्ते पर आता जा रहा है, इस सम्बंध में मत-वैभिन्न्य काफ़ी हो रहा है। पहले जो परीक्षाएँ होती थी उनमें मानसिक दोष और नैतिक दोष को मिला देते थे। दोनों को मिला देने से यह निचोड़ निकलता था कि ग़ैर अपराधी की तुलना में अपराधी की बुद्धि दुर्बल होती थी। किन्तु बात ऐसी नहीं है। इंग्लैंड के वेकफील्ड नामक स्थान के प्रसिद्ध कारागार के बंदियों की परीक्षा हुई। उन पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग के परिणाम को पूरा नही कहा जा सकता, क्योंकि बंदियों के बीच ही प्रयोग हुआ और साधारण व्यक्ति की कोई परीक्षा नही हुई थी। अतएव तुलनात्मक जाँच तो हुई नहीं। पर, अगर यह साधारण विश्वास हो कि बन्दी या अपराधी व्यक्ति की बुद्धि साधारण नागरिक की बुद्धि से दुर्बल होती है, तो वेकफील्ड जेल की जॉच से यह पता चलता है कि अपराधियों में जिसके कारनामे जितने काले होंगे वह अन्य अपराधियों की तुलना में बुद्धि में उतना ही कमज़ोर होगा। यह प्रयोग १९५२ - ५३ में हुए थे। ९५५ अपराधियों को तीन श्रेणी में बाँट दिया गया था। ३४४ वासना के अपराधी थे, १४३ हिंसा के अपराधी थे और ४६८ चोरी आदि छोटे अपराधों के दोषी थे। प्रयोग से पता चला कि इन सव अपराधियों में सबसे अधिक बुद्धिमान् चोरी तथा छोटे-मोटे अपराधों के दोषी थे। बुद्धि का औसत सबसे कम--तुलनात्मक रूप में वासना के तथा कभी घोर हिंसा के अपराधियों में मिला। पर, यह तो हम सिद्ध कर चुके हैं कि वासना का अथवा घोर हिसात्मक कार्यों का अपराधी उतना बुरा व्यक्ति नहीं होता तथा उसकी वैसी अपराधी वृत्ति नही होती जितनी कि चोर, बदमाश तथा लुच्चे की। तो फिर, यह क्यों न कहा जाय कि जो जितना पक्का बदमाश होगा उसकी बुद्धि उतनी ही प्रखर

होगी। अपराध की गुरुता अपराधी की नीचता नहीं सिद्ध कर सकती। आवेश तथा उन्माद में किसी का गला काट लेनेवाला कम बुद्धि का, नादान, व्यक्ति भी हो सकता है। पर, जो जितना ही चतुर तथा शरीफ ढंग से बदमाशी करनेवाला होगा उसका अपराध भी हलका मालूम होगा किन्तु वह नम्बरी शातिर बुद्धिमान् भी होगा। और भी बहुत सी परीक्षाएँ की गयी। सबका निष्कर्ष यह निकला कि "बुद्धिमत्ता तथा जीवन की दुर्बलताओं" का कोई सम्बंध नही है।[1] यह कहना भी भूल है कि बार-बार अपराध करनेवाला बुद्धि में किसी से कम है। इस निरूपण की पुष्टि में काफ़ी प्रमाण हैं। उदाहरणार्थ श्री रोपर ने वेकफील्ड जेल के ८०० मुक्त बंदियों की परीक्षा की और उनका भी यही कथन था कि "बुद्धिमत्ता तथा अपराधी भावना मे कोई सम्बन्ध नहीं है।"[2]

इसलिए बुद्धि तथा अपराध का सम्बंध जोड़ कर कोई गलत तर्क या सिद्धान्त बना लेना वास्तविकता का अनादर करना होगा।

१. The British Journal of Delinquency—Vol. VI—Number 2, September, 1955—Page 149-150.

२. W. F. Roper—"A Comparative Survey of the Wakefield Prison Population in 1948."—The British Journal of Delinquency, Vol. I, No. 1, July, 1950.

अध्याय ३१

दण्ड का सिद्धान्त

अपराधी या अपराध की ज़िम्मेदारी निर्धारित किये बिना दंड कैसे दिया जा सकता है। किन्तु ज़िम्मेदारी का प्रश्न आज का है। पुराने ज़माने में "ज़िम्मेदारी" की कल्पना भी नहीं की जाती थी। जिसने अपराध किया, व्यक्ति या समाज को हानि पहुँचायी, वह दंडनीय था। बचपन, पागलपन, रोगी, उन्माद, उत्तेजना, वातावरण, परिस्थिति—इन सबमें से किसी भी बात का विचार नहीं किया जाता था।

पहले लोग स्वयं अपनी शक्ति के अनुसार दंड दे देते थे। यदि अपराधी शक्तिशाली हुआ तो वह निर्भय भी रह सकता था। पर जब समाज में दंड की प्रथा चली तो दंड देनेवाले निर्धारित किये गये। उनका काम था दंड देना—दंड की कोई सीमा नहीं थी। विचारपति के मन में जो और जैसा आया, काज़ी जी के मन में जैसी भी भावना उठी, वैसा दंड सुना दिया। "कम से कम" या "अधिक से अधिक" दंड का कोई विधान नहीं था। ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन ऐसे सभ्य देश में या मिस्र में भी राजा या विचारपति जैसा मन हो सज़ा देते थे। जेलखाने का नियम ही नहीं था। बन्दीगृह बनते ही नहीं थे। प्राण-दण्ड मिलता था। या फिर शारीरिक दंड, जैसे हाथ, कान, नाक काट लेना या कोड़े मारना आदि।

इंग्लैंड में एलिजबेथ के ज़माने से प्रथा चल निकली थी कि जो अपने प्राण बचाना चाहे, वह देश छोड़ दे—या फिर इंग्लैण्ड के नये उपनिवेशों में बस जाय। जार्ज प्रथम के शासनकाल में सन् १७१८ में एक क़ानून द्वारा ऐसे अपराधियों को उत्तर अमेरिका में जाकर बसने का अवसर दिया गया था, पर हम बात कर रहे हैं हज़ारों वर्ष पहले की प्रथा की। चीन में दंड के सम्बंध में कुछ परम्पराएँ चल पड़ी थीं पर उनका सम्बंध धर्म से अधिक था; जैसे, चीन में क़ब्र में सोनेवाले मुर्दे को छेड़ना, उसकी आत्मा को अपार कष्ट पहुँचाना तथा उसकी सद्गति को समाप्त कर देना समझा जाता था। अतएव यदि किसी जज को किसी मुक़दमे के सिलसिले में क़ब्र में से मुर्दे को निकाल कर पुनः परीक्षा करानी पड़ती

थी और यह कार्य निरर्थक साबित होता था तो जज को ही प्राणदंड हो सकता था। वहाँ पर सम्राट् द्वारा "निरीक्षक" नियुक्त थे जो हर ज़िले का दौरा करते थे और सम्राट् के "विचारपतियों" का काम देखते थे।

दंड का अर्थ

दंड के सम्बन्ध में प्रतिशोध भावना बिल्कुल स्पष्ट है। जिसने दूसरे को हानि पहुँचायी, उसे उस हानि को चुकाना पड़ेगा, भुगतान करना होगा। हो सकता है कि इस भुगतान में जिसकी हानि हुई हो, मुआवज़ा केवल उसी व्यक्ति के लिए नहीं चुकाना है, समाज के लिए भी चुकाना है। अतएव उस व्यक्ति की यातना को ही भुगतान मान लेना चाहिए। किन्तु क्षति-पूर्ति की इस भावना के पीछे उस ज़माने में जो भाव था, वही आज भी किसी न किसी रूप में वर्तमान है। वह भाव था प्रायश्चित्त का। जिससे अपराध हुआ है, उसने नियम के उल्लंघन का पाप किया है। इस पाप का प्रायश्चित्त करना ही होगा। प्रायश्चित्त अर्थ-दंड के रूप में या शारीरिक दंड के रूप में—किसी भी रूप में हो सकता है। पश्चिमी पंडितों में अरस्तू शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने व्यक्तिगत प्रतिशोध के विरुद्ध लिखा था। अरस्तू ने कहा था कि व्यक्तिगत प्रतिशोध की बात नहीं सोचनी चाहिए—समाज की जो हानि हुई है, उसका निराकरण होना चाहिए। प्लेटो ने इससे भी आगे बढ़कर कहा कि "यह अनुचित बात है कि यदि किसी ने पीड़ा पहुँचायी है तो दूसरे को इतनी पीड़ा देने से ही प्रतिशोध होगा। वास्तव में प्लेटो ने "पीड़ा का प्रतिशोध पीड़ा नहीं है" यानी "हिसा का उत्तर हिंसा नहीं है" का महान् सिद्धान्त प्रतिपादित किया था।

सामाजिक संतुलन

पर, क्रमागत सभ्यता की ओर विकसित होते हुए समाज के सामने सामाजिक संतुलन की भावना अस्पष्ट रूप में उपस्थित थी। अपराध हुआ, दंड दिया, सामाजिक संतुलन स्थापित हो गया। इस प्रकार समाज दंड देकर अपने न्याय का संतुलन करता चलता था। इसी के साथ धीरे-धीरे "सभी अपराधी समान रूप से दण्डनीय हैं" की बात भी पैदा हो गयी। आज हम यही बात क़ानूनी भाषा में इन शब्दों में कहते हैं—

"न्याय के सामने सब बराबर है"

यदि न्याय के सामने सब बराबर हैं तो बड़े-बूढ़े, पागल, रोगी आदि किन्हीं बातों

का विचार नहीं किया जा सकता—सबको सामान रूप से दंड मिलना चाहिए। इस प्रकार "न्याय की दृष्टि में सब बराबर" के सिद्धान्त का अनर्थकारी फल भी हुआ। धीरे-धीरे जो दंड-विधान बना भी, उसमे भयंकर त्रुटि यह थी कि केवल अपराध की परख होती थी। चाहे किसी भी दशा मे अपराध किया गया हो, उस पर निश्चित दंड देना ही होगा। "न्याय के सामने तो सब बराबर है।" "स्वाधीनता, बंधुत्व तथा समानता" के महान् मंत्र को संसार के सामने रखनेवाले फ्रेंच राज्य-क्रान्तिकारियों ने भी न्याय के नाम पर वही भूल की। सन् १७९१ में फ्रांस का जो दंड-विधान बना तथा १८१० में उसका जो संशोधित रूप बना—यूरोप का यह प्रथम सुव्यवस्थित दंड-विधान था—उसमें न्यायाधीश को ऐसा जकड़ दिया गया था कि वह अपनी बुद्धि का उपयोग ही नहीं कर सकता था। यदि किसी अपराध में कालकोठरी की · जा देनी है तो उसे सपरिश्रम कारागार की सज़ा में नहीं बदला जा सकता था। अपराधी पर अपराध की पूरी-पूरी ज़िम्मेदारी मान ली जाती थी, शुद्ध निजी, व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी का प्रश्न था। और कुछ नहीं हो सकता था। न तो सज़ा घट सकती थी, न बढ़ सकती थी। किन्तु यह स्थिति उससे तो अच्छी ही थी जिसमें मनमानी सज़ा देने की रीति थी तथा जिस रीति के विरुद्ध प्रथम विद्रोही थे सीजारे बक्कारिया (सन् १७३५ से १७९४)। इस इटालियन अपराधशास्त्री ने यूरोप में सबसे पहले मनमानी सजा के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी और सन् १७६४ में इन्होंने बड़े ज़ोरदार शब्दों में मनमानी सज़ा देने का विरोध किया था। उन्होंने दंड देने के सम्बंध में कम से कम ८० प्रस्ताव या तरीके बतलाये थे जिनमें से शारीरिक यातना को समाप्त करना, प्राणदंड समाप्त करना आदि भी था। आज के दंडविधान ने उनकी बतलायी प्रायः ७० बातों को मान लिया है।[१] किन्तु बक्कारिया ने भी "निजी ज़िम्मेदारी" को मान लिया था। उनके सामने ऐसा कोई सवाल नही था कि अपराध करते हुए भी मनुष्य घटना या परिस्थिति के कारण उसके प्रति जिम्मेदार नही हो सकता। अपराधी का "व्यक्तित्व" भी विचारणीय है। केवल अपराध ही नही, अपराधी भी विचार का विषय है। ऐसी बात तो पहले पहल लोम्ब्रोज़ो ने उठायी, जिनका ज़िक्र हम पिछले अध्यायों में कई बार कर चुके हैं। जिस प्रकार मनुष्य ने ग़लत काम करनेवाले को जिसके प्रति ग़लत काम किया गया है, उसी के प्रति जिम्मेदार न समझकर समाज

१. C. Bernaldo de Qurros—"The Modern Theories of Criminality'—Little, Brown & Co., London—1912–Page 125.

के प्रति भी जिम्मेदार समझना शुरू किया, उसी प्रकार दंड भी व्यक्ति-विशेष का प्रतिशोध या अपराधी का प्रायश्चित्त न रहकर समाज की "रक्षा" का साधन बन गया, उसकी रक्षा का "यंत्र" या "अस्त्र" बन गया। आज भी जेल विभाग को "सामाजिक सुरक्षा विभाग" कहते हैं। अपराधी समाज के लिए एक खतरे की वस्तु है। इस खतरे से बचाने का उपाय दंड है। दंड देने की क्रिया को सम्पादित करनेवाला विभाग सामाजिक सुरक्षा विभाग हुआ।

पीड़ा का महत्त्व

किन्तु, इस सुरक्षा की भावना का प्रारम्भ प्राचीन भावना से ही हुआ। प्राचीन भावना थी कि यदि किसी की हानि की जाय तो उसका मुआवजा चुकाना और यदि किसी से लाभ हो तो उसका भी किसी न किसी रूप मे मूल्य देना होगा। यानी, यदि राजा समाज के जीवन को सुरक्षित करता है तो वह कर के रूप में, टैक्स के रूप में हमसे भी कुछ लेने का हक़दार है। यही प्रकार दंड के सम्बंध में है, जैसा कि सिजविक ने लिखा[१] है—"ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी यही धारणा है कि न्याय का तक़ाज़ा है कि जिससे भूल हुई है, उसे पीड़ा पहुँचायी जाय, उसे पीड़ा पहुँचाने से उसको तथा किसी अन्य को कोई लाभ न भी पहुँचे तो कोई आपत्ति नहीं है.... लेकिन मेरा ऐसा खयाल है कि सभ्य समाज में पढ़े लिखे लोग अब इस बात को नैतिकता की दृष्टि से अच्छा नही समझते।"

पीड़ा देकर मनुष्य को सुधारने के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। ब्रिटिश जेलों में अपराधी को इतनी यातना देते थे कि उसे निरर्थक काम दिया जाता था। लोहे के एक बड़े पहिये को निश्चित घंटों तक, निश्चित रफ्तार से घुमाते रहना पड़ता था। ऐसी बातें उस समय के समाज की मनोवृत्ति का भी परिचय देती है। समाज की रचना उस समय के "कार्य के लिए एक विश्वसनीय पथप्रदर्शक" होती है। जब परिवर्तन का सवाल उठता है, उस रचना में परिवर्तन की बात उठती है तो वह रचना ही, उस समय का उसका ढाँचा ही एक ओर परिवर्तन के लिए दबाव डालता है, दूसरी ओर उससे "रक्षा" का भी उपाय करता है।[२]

१. Sidgwick—"Methods of Ethics"—Macmillan & Co., London—Fifth Edition 1893, Page 281.

२. S. F. Nadel—The Theory of Social Structure—Cambridge University, 1956—Page 147-148.

समाज की रचना में भी क्रमशः परिवर्तन हुआ और समाज ने अपनी ही रक्षा के लिए दंड का रूप भी बदलना शुरू किया। आधुनिक अपराध-शास्त्र तथा दंड-शास्त्र के सबसे प्रथम नेता तथा समाज-विज्ञान और सामाजिक अपराध-शास्त्र के अग्रणी क्वेटलेट का जन्म हुआ। इस पंडित ने[1] वह दीक्षा दी जो हम आज अपने विषय का सबसे महान् मंत्र समझते हैं। उन्होंने कहा था—"समाज अपराध तैयार करता है। अपराधी उसे कार्यरूप में परिणत करता है।" क्वेटलेट ने कांट और हीगल ऐसे विद्वान् दार्शनिकों के भ्रम का निवारण कर दिया। हीगल ने अपनी पुस्तक 'फिलासफी आफ राइट्स' में हिंसा को हिंसा से ही नष्ट करने का उसूल साबित किया था। वे तो कहते थे कि "यह उचित ही नही है, आवश्यक भी है कि शक्ति के प्रथम आक्रमण को शक्ति के द्वितीय आक्रमण से समाप्त किया जाय... समाज की व्यवस्था पर अपराधी एक आक्रमण है। इस आक्रमण का मुक़ाबला दंड से करना चाहिए।" कांट ने भी कहा था कि "राजा को नियमों के तोड़नेवाले को दंड देने का दुःखद अधिकार है।" ऐसे सिद्धान्तों के विपरीत क्वेटलेट का यह कहना कि "समाज अपराध तैयार करता है"—अपराधी व्यक्ति की ज़िम्मेदारी को बहुत कम कर देता है।

भारतीय दंड-प्रथा

पिछले अध्यायों में हम भारत की दंडनीति की व्याख्या कर चुके है। उसे दुहराने की ज़रूरत नहीं है। पर क्वेटलेट ने १८६९ में समाज की अपराध के प्रति ज़िम्मेदारी की जो बात लिखी थी, उसको ५००० वर्ष पूर्व महाभारत में अधिक अच्छे ढंग से समझाया गया है। धर्म-प्राण भारत में "पाप" तथा "पुण्य" की भावना प्रत्येक कर्तव्य के साथ निहित है। इसी लिए "प्रायश्चित्त" का भाव भी अपराध के साथ है। किन्तु, समाज का रक्षक, माता, सेवक—सब कुछ राजा ही होता था। अतएव समाज में व्यवस्था को क़ायम रखना भी उसका कर्तव्य था। इसी से राजा "दंड की मूर्ति" भी था। किन्तु दंड की कल्पना प्रतिशोध के रूप में नहीं प्रायश्चित्त तथा समाज की रक्षा के रूप में ही है। महाभारत, शांतिपर्व में "कारागार" का वर्णन है। हज़ारों वर्ष पहले, जब दुनिया के लोग बन्दीगृह की कल्पना भी नहीं करते थे, हमारे देश में कारागार थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में निर्देश किया है कि

१. **क्वेटलेट**—"Social Physics" १८६९

कारागार ऐसी जगह पर हो जहाँ आम रास्ता हो और लोग देखें कि अपराध करने वाले की क्या दशा होती है। पर दंड की भावना कैसी हो, इस पर कौटिल्य ने लिखा है —

न हि एवंविधं वशोपनयनम् अस्ति भूतानां यथा दंड इति आचार्याः। नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदंडो हि भूतानाम् उद्वेजनीयः, मृदुदंडः परिभूयते, यथार्थदंडः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दंडः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति।

"आचार्य लोगों का मत है कि लोगों को अपने वश में (अधीन) रखने के लिए दंड से बढ़कर और कुछ नहीं है। किन्तु कौटिल्य का मत है कि इतना ही कह देने से वास्तविकता नहीं ज्ञात हो सकेगी। यदि दंड बहुत कठोर होगा तो लोग भयभीत (आतंकित) हो जायँगे। यदि बहुत कोमल दंड होगा तो उसका उद्देश्य पूरा नहीं होगा। यथायोग्य, समुचित दंड देना ही उचित है। काफ़ी सोच विचार कर दिया गया दंड प्रजा में धर्म, अर्थ, काम तीनों की रक्षा करता है।"

अशोक ऐसे अहिंसा के पुजारी भी, अपने चतुर्थ शिला-लेख में, प्राणदंड का आदेश देते हैं। उनकी आज्ञा के अनुसार मृत्यु के तीन दिन पूर्व अपराधी को बतला देना चाहिए ताकि वह तीन दिन तक व्रतोपवास द्वारा आत्म-शुद्धि का प्रयास कर ले। इस प्रकार दंड तथा तथा का अद्भुत सम्मिश्रण भारतीय मत में है। दंड को धर्म के साथ मिलाने का प्रयत्न ईसाई पादरियों ने ढाई सौ वर्षों तक किया था। ईसाई जगत् के प्रधान आचार्य पोप क्लिमेन्ट ग्यारहवें ने सन् १७०४ में रोम में एक कारागार बनवाया जिसका नाम "साधु मिकायल का अस्तपाल" रखा। जेलख़ाने को चिकित्सालय का नाम देने का संसार में यह पहला कार्य था।

अस्तु, भारतीय धर्मशास्त्र में दंड को जिस प्रकार सामाजिक तथा धार्मिक दोनों रूप दिये गये हैं उसका थोड़ा वर्णन हम पिछले अध्यायों में दे आये हैं। यहाँ पर उसका किंचित् रूप दे देना अप्रासंगिक न होगा।

मनु का कथन

मनुस्मृति में दंड के सम्बंध में एक बड़ा मार्के का श्लोक है —

यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् दुर्बलान्बलवत्तराः॥ अ० ७, श्लोक २०

यदि राजा सावधान होकर दंड देने योग्य अपराधी को दंड न देता तो बलवान् दुर्बलों को लोहे के काँटों में गूँथी हुई मछलियों की भाँति भून डालते।

अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम्।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम्॥ अ० ८, श्लो० १९८

पराये का धन बेचनेवाला, धन के स्वामी का सम्बंधी हो तो राजा उसे ६०० पण दंड दे। यदि उस धन के स्वामी से इस व्यक्ति का कोई सम्बंध न हो, न उससे किसी प्रकार का उस धन से सम्बध हो, तो पराये का धन बेचनेवाला चोर के समान अपराधी है, इसलिए उसे चोर का दंड मिलना चाहिए।

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति॥ अ० ८, श्लो० ३२३

कुलीन पुरुषों को, विशेष कर कुलीन स्त्रियों को (अपराध करने पर) तथा बहुमूल्य रत्न चुरानेवाले को राजा प्राण-दंड दे।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥ अ० ८, श्लो० ३३६

जिस अपराध में साधारण मनुष्य को एक कार्षापण दण्ड होता है उसी अपराध में राजा को एक हज़ार पण दंड होना चाहिए। यह शास्त्र का सिद्धान्त है।

राजा को दंड की सीमा में केवल भारतीय धर्म—धर्मशास्त्र ने बाँधा है। ब्रिटिश सिद्धान्त तो है कि "राजा कोई भूल कर ही नहीं सकता।" पर भारतीय ऐसा नहीं मानता। हमारे यहाँ सभी के लिए पाप या अपराध के लिए प्रायश्चित्त का भी निर्देश है। मनु कहते हैं—

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत्॥ अ० ११, श्लो० २२६

प्रकट पाप की शान्ति के लिए, द्विजों को पूर्वोक्त चान्द्रायण आदि व्रत करना चाहिए और गुप्त पाप की शान्ति के लिए मन्त्रों का जप और होम करें।

अपराध से बचने की बात कितने अच्छे ढंग से की गयी है—

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्॥ अ० १२, श्लो० ३३

अधिकाधिक धन की लालसा, निद्रालुता, कातरता, क्रूरता, नास्तिक्ता, अनाचार, याचनशीलता, धर्माचरण में प्रमाद, ये सब तमोगुण के लक्षण हैं।

याज्ञवल्क्य का मत

मनुस्मृति ईसा से ४०० वर्ष पूर्व यानी २३५० वर्ष पूर्व की रचना है। याज्ञवल्क्य की स्मृति ईसा से १०० वर्ष पूर्व यानी २१०० वर्ष पूर्व की रचना है। याज्ञवल्क्य ने राजा को तथा प्रजा को समान रूप से कर्तव्य शास्त्र में बाँध दिया है। राजा के लिए तो वे यहाँ तक लिखते हैं—[1]

अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोशं योऽभिवर्धयेत्।
सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबांधवः॥ याज्ञ०, ३४०

अन्याय से अपने कोष को बढ़ानेवाला राजा थोड़े ही समय में लक्ष्मी-हीन होकर बांधवों सहित नष्ट हो जाता है।

अधर्मदंडनं स्वर्ग कीर्त्तिं लोकांश्च नाशयेत्।
सम्यक्तु दंडनं राज्ञः स्वर्गकीर्त्तिजयावहम्॥ –३५७.

अधर्म से दिये हुए दंड का पाप राजा के स्वर्ग, कीर्ति और इस लोक के जीवन को नष्ट कर देता है। शास्त्रोक्त रीति से भली प्रकार दिया गया दंड राजा के लिए स्वर्ग, कीर्ति और जय का देनेवाला है।

वशिष्ठ का मत है कि यदि राजा दंड नही देता तो उसे पाप लगता है और फिर पाप का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। शास्त्रीय विधान है कि दंडनीय को छोड़ देने पर राजा एक रात्रि तथा पुरोहित तीन रात्रि उपवास करे। यदि अदंडनीय को दंड दे दिया तो राजा और पुरोहित दोनों तीन रात्रि उपवास करें। याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि "जो राजा दंड के योग्य लोगों को दंड देता है और मार डालने योग्य लोगों को मार डालता है वह अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों का फल प्राप्त करता है।"

यो दंड्यान् दंडयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्।
इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः॥ याज्ञ०, ३५९
ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापि वा।
वयः कर्म च वित्तं च दंडं दंड्येषु पातयेत्॥ –३६८

देश, काल, अवस्था, कर्म, धन इन सबको जानकर अपराध के लिए, इनके अनुसार ही दंड देने योग्य को दंड देना चाहिए।

१. याज्ञवल्क्य—आचाराध्याय, राजधर्मप्रकरण

इस श्लोक में याज्ञवल्क्य ने आज के दंडशास्त्र का मंत्र कह दिया है। हम आजकल यही कहते हैं कि अपराधी की अवस्था, परिस्थिति आदि सब देखकर दंड देना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने उसी बात को बड़े सुन्दर रूप में स्पष्ट कर दिया है। अपनी स्मृति में याज्ञवल्क्य ने दंड के चार प्रकार बतलाये हैं। आज हमने प्रोबेशन (परिवीक्षण), अर्थ-दंड, कारागार आदि की जो प्रणाली बनाकर अपराधी को सुधार का कई प्रकार का मौक़ा दिया है, याज्ञवल्क्य ने भी उसी का अपने समय के अनुसार बड़ा अच्छा क्रम रखा है। पहले धिक्कार का दंड दे। धिक्-धिक् कहकर बुरे काम की निन्दा करे। फिर भी न माने तो कठोर वचन कहकर दंड दे। यह बेकार जाय तो अर्थदंड दे। फिर भी न सुधरा तो वध कर दे—शरीर ही समाप्त कर दे। वे लिखते हैं—

धिग्दंडस्त्वथ वाग्दंडो धनदंडो वधस्तथा।
योज्या व्यस्ता समस्ता वा ह्यपराधवशादिमे॥

अर्थ यह है कि धिक् दंड, वाक् दंड, धन दंड या वध दंड राजा अपराध के अनुसार दे। अस्तु, ऊपर जितने श्लोक दिये गये हैं वे राजधर्म प्रकरण के थे। व्यवहार-अध्याय में[1] दंडविधान का बड़ा अच्छा रूप दिया गया है। अपराध की साधारण सी बातों की भी व्याख्या कर दी गयी है। जैसे, यदि दो आदमी आपस में गाली-गलौज करें, झगड़ा करें तो दोष किसका है। नारदस्मृति में लिखा है कि जो पहले अपराध करे वही नियमतः दोषी है। यानी पहले गाली देनेवाला अपराधी है। पर याज्ञवल्क्य के अनुसार कलह और साहस में अभियोग के साथ प्रत्यभियोग की भी सुने और वादी तथा प्रतिवादी से कहे कि किसी को मध्यस्थ बनाकर अपने झगड़े का निर्णय करा लें। यदि कोई निर्णय न हो तो राजा को निर्णय करना होगा। यदि वादी के लगाये गये अभियोग को प्रतिवादी स्वीकार न करे और गवाही आदि देकर वादी अपना अभियोग सिद्ध कर दे, तो प्रतिवादी को झगड़े के धन की रक़म वादी को तथा उतनी ही रक़म राजा को देनी पड़ेगी। ऐसे मामले ऋण आदि के सम्बंध मे हो सकते हैं। जो क़र्जदार ऋणदाता के अभियोग को अस्वीकार कर दे और यह न माने कि उसने ऋण लिया है और इस ऋण को ऋणदाता सिद्ध कर दे तथा जो अभियुक्त राजसभा में बुलाये जाने पर कुछ न कह सके, उसे साबित की हुई रक़म देनी होगी और दंड का भागी भी बनना पड़ेगा। इन बातों को नीचे के तीन श्लोकों में दिया गया है। अर्थ हम ऊपर की पंक्तियों में दे चुके हैं—

१. व्यवहाराध्याय—असाधारण व्यवहारमातृकाप्रकरण

कुर्यात् प्रत्यभियोगं च कलहे साहसेषु च।
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये ॥१०॥
निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे च तत्समम्।
मिथ्याभियोगी द्विगुणमभियोगाच्छादनं वहेत् ॥११॥
संदिग्धार्थस्वतंत्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत्।
न चाहूतो वदेत्किंचिद्धीनो दंडयश्च स स्मृतः ॥१६॥

वधदंड के विषय में

प्राणदंड के विषय में हमारे शास्त्रकारों ने बहुत कुछ कहा है। ब्राह्मण को वध का दंड नहीं है पर उसे वध के स्थान पर देश-निकाला है। आपस्तम्ब ने लिखा है कि ब्राह्मण को देश से निकालते समय उसके नेत्र बन्द कर दे। अर्थात् न तो वह लोगों को देखे और न लोग उसे देखें। ब्राह्मण को अक्षत यानी शरीर पर बिना घाव हुए देश से निकालना चाहिए। नारद ने ब्राह्मण का "वध" "उसका सब कुछ हरण कर देश से निकालना, उसके शरीर को दागकर निकालना" भी लिखा है। उसका सिर मूड़कर नगर से निकाल दें, गधे पर चढ़ाकर नगर के बाहर कर दें। यदि उसने गुरुपत्नी से या गुरु की शय्या पर प्रसंग किया हो तो उसके मस्तक पर भग का चिह्न बना दें। मदिरा पीने का दोषी हो तो मदिरा की ध्वजा बना दें। चोरी में कुत्ते के पैर का, ब्रह्महत्या में सिर से हीन पुरुष का चिह्न बना दें—दाग दें।

अन्य जातिवालों के लिए वधदंड दस प्रकार का है। लिंग, उदर, जिह्वा, हाथ, नेत्र, नाक—जिससे अपराध हुआ हो उसको काटकर अलग भी कर सकते हैं। यह भी वधदंड हुआ।

वधदंड, प्राणदंड तथा दंड के साधारण स्वरूप के सम्बंध में महाभारत के शान्तिपर्व, २६७वें अध्याय में युधिष्ठिर के प्रश्न पर भीष्म पितामह ने सत्यवान् तथा उनके पिता द्युमत्सेन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण संवाद दिया है। पाठकों को उसे ध्यान से पढ़नेपर अपने देश की विचारधारा का पता चलेगा। महाभारत मनु आदि की स्मृतियों से कहीं प्राचीन ग्रंथ है। संवाद इस प्रकार है—

युधिष्ठिर:—

कथं राजा प्रजा रक्षेन्न च किंचित् प्रघातयेत्।
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

युधिष्ठिर ने पूछा—सत्पुरुषों में श्रेष्ठ पितामह, मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ

कि राजा किस प्रकार प्रजा की रक्षा करे, जिससे उसको किसी की हिंसा न करनी पड़े। मुझे बताने की कृपा करें।

भीष्म:——

अव्याहृतं व्याजहार सत्यवानिति नः श्रुतम्।
वधायोन्नीयमानेषु पितुरेवानुशासनात् ।।३।।

हमने सुना है कि एक दिन सत्यवान् ने देखा कि पिता की आज्ञा से बहुत से अपराधी शूली पर चढ़ा देने के लिए ले जाये जा रहे हैं। उस समय उन्होंने पिता के पास जाकर उनसे ऐसी बात कही, जो पहले किसी ने नही कही थी।

अधर्मतां याति धर्मो यात्यधर्मश्च धर्मताम्।
वधो नाम भवेद् धर्मो नैतद् भवितुमर्हति।।४।।

पिताजी, यह सत्य है कि कभी ऊपर से धर्म सा दिखाई देनेवाला कार्य अधर्म रूप हो जाता है और अधर्म भी धर्म के रूप में परिणत हो जाना है, तथापि किसी प्राणी का वध करना भी धर्म हो——ऐसा कदापि नही हो सकता।

द्युमत्सेन:——

अथ चेदवधो धर्मोऽधर्मः को जातुचिद् भवेत्।
दस्यवश्चेन्न हन्येरन् सत्यवन् संकरो भवेत्।।५।।

पुत्र सत्यवान्! यदि अपराधी का वध न करना भी कभी धर्म हो तो अधर्म क्या हो सकता है। यदि चोर वा डाकू मारे न जायें तो प्रजा में वर्णसंकरता और धर्मसंकरता फैल जाय।

सत्यवान्——

दस्यून् निहन्ति वै राजा भूयसो वाप्यनागसः।
भार्या माता पिता पुत्रो हन्यन्ते पुरुषेण ते ।।
परेणापकृते राजा तस्मात् सम्यक् प्रधारयेत्।।१०।।

राजा डाकुओं अथवा दूसरे बहुत से निरपराध मनुष्यों को मार डालता है और इस प्रकार उसके द्वारा मारे गये पुरुष के पिता-माता-स्त्री और पुत्र आदि भी जीविका का कोई उपाय न रह जाने के कारण मानो मार दिये जाते हैं। अतः किसी दूसरे के अपकार करने पर राजा को भली-भाँति विचार करना चाहिए, जल्दबाजी करके किसी को प्राणदंड नहीं देना चाहिए।

असाधुश्चैव पुरुषो लभते शीलमेकदा।
साधोश्चापि ह्यसाधुभ्यः शोभना जायते प्रजा ॥११॥

दुष्ट पुरुष भी कभी साधु-संग से सुधरकर सुशील बन जाता है तथा बहुत से दुष्ट पुरुषों की संतान भी अच्छी निकल आती है।

न मूलघातः कर्त्तव्यो नैष धर्मः सनातनः।
अपि स्वल्पवधेनैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥१२॥

इसीलिए अपराधी को प्राणदंड देकर उसका मूलोच्छेद नहीं करना चाहिए। किसी की जड़ उखाड़ना सनातन धर्म नही है। अपराध के अनुरूप साधारण दंड देना चाहिए। उसी से अपराधी के पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है।

उद्वेजनेन बन्धेन विरूपकरणेन च।
वधदंडेन ते क्लिश्या न पुरोहितसंसदि ॥१३॥

अपराधी को उसका सर्वस्व छीन लेने का भय दिखाया जाय अथवा उसे क़ैद कर लिया जाय या उसके किसी अंग को भंग करके उसे कुरूप बना दिया जाय। परन्तु प्राणदंड देकर उसके कुटुम्बियों को क्लेश पहुँचाना उचित नही है। इसी तरह यदि वे पुरोहित ब्राह्मण की शरण में जा चुके हों तो भी राजा उन्हें दंड न दे।

द्युमत्सेनः—

अहन्यमानेषु पुनः सर्वमेव पराभवेत्।
पूर्वे पूर्वतरे चैव सुशास्या ह्यभवन् जनाः ॥१८॥
मृदवः सत्यभूयिष्ठा अल्पद्रोहाल्पमन्यवः।
पुरा धिग्दंड एवासीद् वाग्दण्डस्तदनन्तरम् ॥१९॥

यदि धर्म का उल्लंघन करने पर भी लुटेरों का वध न किया जाय तो उनसे हमारी सारी प्रजा को कष्ट पहुँच सकता है। पहले और बहुत पहले के लोगों पर शासन करना सुगम था। क्योंकि उनका स्वभाव कोमल था। सत्य में उनकी विशेष रुचि थी। और द्रोह तथा क्रोध की मात्रा उनमें बहुत कम थी। पहले, अपराधी को धिक्कार देना ही बड़ा भारी दंड समझा जाता था। तदनन्तर अपराध की मात्रा बढ़ने पर वाग्दंड का प्रचार हुआ। अपराधी को कटु वचन सुनाकर छोड़ दिया जाने लगा।

आसीदादानदंडोऽपि वधदंडोऽद्य वर्तते।
वधेनापि न शक्यन्ते नियन्तुमपरे जनाः॥२०॥

इसके बाद आवश्यकता समझकर अर्थदंड भी चालू किया गया और आजकल तो वध का दंड भी प्रचलित हो गया है। बहुत से दुष्टात्मा मनुष्यों को तो प्राणदंड के द्वारा भी काबू में लाना या मर्यादा के भीतर रखना असम्भव सा हो रहा है।

इस संवाद में सबसे मार्के की बात यह है कि महाभारतकाल में, हज़ारों वर्ष पहले उस ज़माने को लोग बहुत बुरा समझते थे और अपने से पहले के लोगों को अधिक पवित्र तथा कर्तव्यशील समझते थे। आज हम भी वही कहते हैं--पहले के लोगों को अच्छा और अपने को बुरा समझते हैं। इसलिए क्या ऐसा नहीं है कि बुरा भला कोई नहीं, केवल समझ का फेर है।

अध्याय ३२

कारागार का विकास

अस्तु, यह मानकर हम अपने विषय पर और अधिक विचार करने के लिए आगे बढ़ें कि समाज के नियम, व्यवस्था तथा अनुशासन के विरुद्ध काम करनेवाला अपराधी कहलाता है। उस अपराधी को किस प्रकार दंड दिया जाय, कहाँ रखा जाय, यह सवाल रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में कारागार की प्रथा सबसे पहले शुरू हुई। बन्दीगृह में निश्चित या अनिश्चित काल के लिए रखना भी दंड था। यूरोप में, विशेष कर सभ्यता की ओर कदम उठानेवाले इंग्लैण्ड ऐसे देशों में, १५वीं १६वीं सदी में जो बन्दीगृह थे, वे आज के समान या प्राचीन भारतीय कारागार के समान नहीं थे। किसी भी सुरक्षित मकान या किले में वे लोग बंद कर दिये जाते थे। जो राजद्रोही, शरारती, बदमाश या लफंगे होते थे, सजा होने के बाद उनको जेल में रखने का सवाल ही नहीं उठता था, क्योंकि प्राणदंड या पिटाई के अलावा दूसरी कोई सजा नहीं थी।

बन्दीगृह केवल "क़ैद" कर रखने का स्थान था और सरदार, रईस या निरंकुश शासकों ने इसे यातना का भीषण साधन बना रखा था। अदालती कार्यवाही के पहले क़ैद रखने के स्थान मात्र के बजाय वे पीड़ा, आतंक तथा ज़ोर-ज़बर्दस्ती के नरकगृह बन गये थे।[१] इंग्लैंड तथा फ्रान्स के कारागार हमेशा भरे रहते थे पर एक बार जेल में पहुँच जाने के बाद छूटने में काफ़ी समय लगता था। प्रायः बेचारे २०-२५-४० वर्ष तक जेलों में पड़े रहते थे। भारत में देशी नरेशों के जमाने में, ब्रिटिश शासनकाल में, आज के बीस वर्ष पूर्व ३०-४० वर्ष पुराने क़ैदी वर्तमान थे। इन जेलों में हर एक के, चाहे किसी प्रकार का अपराध हो, हथकड़ी-बेड़ी लगी रहती थी। इनके कमरों को काल-कोठरी कहना उचित होगा, न उनमें प्रकाश था न शुद्ध वायु आने के लिए कोई प्रबंध। कमरे की सफ़ाई, झाड़ू आदि का प्रबंध बहुत दूर की बात थी। भोजन क्या था, गन्दगी का घर था। जेलर को घूस देकर या पादरियों या धनी-मानी सज्जनों की उदारता

१. Sen's Penology—Old and New—Page 30.

से कभी कुछ मिल जाय तो बड़ी गनीमत थी। यूरोप के प्रायः सभी देशों में, एशिया के अधिकांश देशों में, कारागार की यही स्थिति थी।

बंदियों के उद्धार के लिए जान हावर्ड ने १८वीं सदी में अवतार लिया था। इंग्लैड तथा यूरोप के जेलों की यात्रा तथा निरीक्षण कर इन्होंने अपनी पुस्तक[१] संसार के सामने जब रखी, तब अभागे वन्दियों के प्रति संसार का ध्यान आकृष्ट हो गया और उनके प्रति सहानुभूति का स्रोत उमड़ पड़ा।

वन्दी वर्ग के लिए फ्रान्स की राज्यक्रान्ति ने भी बड़ा भारी काम किया। सन् १७८९ में यह राज्यक्रान्ति हुई थी। इसके पूर्व फ्रान्स में सम्राट् लुई १४वें का सन् १६७० का दंडविधान लागू था। इस विधान के अनुसार जेलखाना कोई क़ानूनी सजा नही था। दंड के तीन ही प्रकार थे—प्राणदंड, यातना या कुछ समय या जन्म भर के लिए जहाज पर गुलाम की तरह से सेवा करना। दंड का रूप जेल भेजना ऐसी कोई वात नही थी। सन् १७९१ में फ्रांस की पार्लमेन्ट ने जो दंड-विधान पास किया, उसमें वहुत कुछ त्रुटियाँ अवश्य रही हों पर मार्के की वात भी थी। उसने यह निश्चित कर दिया कि किसी व्यक्ति को जीवन भरके लिए जेल में नहीं रखा जा सकता। जेल भेजना भी दंड का एक प्रकार होगा तथा जेल की यातना केवल निश्चित काल के लिए होगी। आज यह बात हमारे लिए विशेष महत्त्व न रखे पर फ्रान्स ही नहीं, यूरोप भर के बंदीगृहों के जीवन में इसने एक क्रान्तिकारी सुधार का श्रीगणेश कर दिया। सन् १८१० में सन् १७९१ के क़ानून का संशोधन हुआ और उसके अनुसार विचारपति को, मजिस्ट्रेट को यह अधिकार दिया गया कि "कम से कम या अधिक से अधिक" के बीच में, यथोचित दंड दे।

वन्दी सुधार की बात

किन्तु कारागार का काम दंड देना ही नही है, मनुष्य का जीवन सुधारना भी है, यह बात उस समय तक भी लोगों के दिमाग में नही आयी थी। यह तो तव ध्यान में आता जव अपराधी में "व्यक्तित्व" की सत्ता भी स्वीकार की जाती। जिसने अपराध किया, वह केवल "अपराधी" समझा जाता था, मनुष्य भी नहीं। पर,

१. John Howard—"The State of Prisons in England and Wales, with Preliminary Observations, and an Account of some Foreign Prisons"—1777

धीरे-धीरे जेल-सुधार के काम आप से आप समाज में होने लगे। पहले लोग स्त्री तथा पुरुष बंदी को अलग रखने की बात भी नहीं सोचते थे। पर पश्चिमी देशों मे स्त्रियों के लिए पहला पृथक् जेल सन् १५९३ में डच राजधानी ऐम्सटर्डम में बना। वाइन्स ने अपनी पुस्तक में जेल सुधार के आन्दोलन पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है।[१] उन्होंने उसमें लुई चौदहवें के जमाने में अपनी अधार्मिकता के लिए प्रायश्चित्त करने वालों को प्रधान फ्रेंच पादरी द्वारा दिये गये दंड का उल्लेख किया है। इसके अनुसार—

"पश्चात्ताप करनेवालों को अलग कोठरियों में बन्द कर दिया जाय और इनको तरह-तरह का परिश्रम का कार्य दिया जाय। इनकी कोठरी के सामने छोटा-सा बाग हो जिसमें निश्चित समय पर ये हवाखोरी कर सकें तथा जमीन को गोड़ने, बोने का काम करें. . . .बाहरी दुनिया से कोई आदमी इनसे मिलने न पाये. . . . . ."

उस समय प्राणदंड देना मामूली बात थी। धार्मिक अदालतों के जमाने मे[२] स्पेन, फ्रान्स, जर्मनी आदि मे, मध्ययुग में घोर अत्याचार हो रहे थे और इन अत्याचारों के प्रणेता थे ईसाई पादरी। इनकी धर्म-बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो गयी थी कि ये अपने महा‍् धार्मिक मंत्रों का अनर्थकारी अर्थ लगाते थे। ईसाई धर्म में रक्तपात का निषेध है, अत. किसी को गला काटकर, या गोली से मारने मे रक्तपात का दोष होता था। इसलिए अभागे दंडित व्यक्ति को ऐसी कालकोठरी में डाल देते थे कि वह दम घुट-घुटकर मर जाय और इसे "शान्ति के साथ प्रयाण"[३] कहते थे। ऐसी ही कालकोठरियों की दशा को देखकर एडवर्ड लिविग्स्टन ने लिखा था कि हर कोठरी पर यह लिखकर टाँग देना चाहिए कि—

"इस कोठरी मे श्री क श्री ख की हत्या के दंड मे जन्म भर के लिए अपना जीवन एकान्त तथा दुःख मे बिताने के लिए बन्द है। सबसे मोटे प्रकार की रोटी इनका भोजन है, आँसुओं से मिला पानी पीने को है, दुनिया के लिए वह मर गया है। यह कोठरी उसकी कब्र है। उसे दुनिया में इसलिए जीवित रखा गया है कि वह अपने अपराध को याद रखे और उसके लिए पछताता रहे। उसके दंड को देखकर और लोग

१. Dr. Frederick Howard Wines—"Punishment and Reformation"—Thomas Y. Crowell Co., New York—Page 148-152.

२. Inquisition

३. Vade in Pace–Depart in Peace.

घृणा, लोभ, वासना तथा उत्तेजना के उन भावों से बचना सीखें जिनके वशीभूत होकर इस अभागे ने अपराध किया है।"

इस दर्दनाक वर्णन का लेखक लिविंग्स्टन प्राणदंड की प्रथा के ही विरुद्ध था। दंड के साथ यातना तथा प्राणदंड—दोनों के विरोधी बक्कारिया (१७३५-१७९४) भी थे। इनका ज़िक्र हम ऊपर कर आये हैं। जेल में यातना के विरोध में जेल को बन्दी के सुधार का साधन बनाने के पक्ष में जान हावर्ड, श्रीमती एलिजबेथ फ्राई, सर टामस बक्सटन ऐसे अंग्रेज तथा जे० ए० दी ब्यूमौंट और ए० दी तेक्केविले लोगों ने मार्ग-प्रदर्शन का बड़ा भारी कार्य किया है।

पर, आदर्श जेल की रचना तथा उसे "जेल" न कहकर "अस्पताल" कहने का कार्य सन् १७०४ में पोप क्लिमेंट ग्यारहवें ने किया था। रोम में उनका "साधु मिकायल का अस्पताल" स्थापित हुआ था। पर आधुनिक कारागार की नवीन भावना तथा जेल-सुधार के साथ जेलखानों को बन्दी के सुधार का स्थान बनाने के हिमायतियों के नेता तथा पथप्रदर्शक, आज के दो सौ वर्ष पूर्व पोप विलेन चौदहवें थे। दंड-शास्त्र के पंडित उनको आज उसी आदर से देखते हैं जैसे होम्योपैथी के चिकित्सक प्रो० हैन्नमान को। घेंट में उन्होंने अलग-अलग कोठरीवाला जेल बनवाया। उन्होंने जेलों में चुने हुए उद्योगधंधे जारी कराये। कैदियों को छूटने के बाद ईमानदारी से जीविकोपार्जन के लिए कुछ काम, दस्तकारी आदि की शिक्षा देनी शुरू की। जेल में बनाये हुए सामान की बिक्री की आमदनी से कुछ पैसा कैदी को अपने पास रखने को अनुमति दी। कैदियों का वर्गीकरण होने लगा। उनकी चिकित्सा का तथा धार्मिक शिक्षा का प्रबंध हुआ। सबसे बड़ी बात यह कि जेल के अधिकारियों को यह अधिकार मिला कि जिस कैदी के चालचलन में काफ़ी सुधार इत्यादि देखें, उसको सजा की अवधि से पहले छोड़े जाने की सिफ़ारिश कर सकते हैं। इस प्रकार विलेन ने उस समय के लिए कल्पना से भी परे तथा आज भी जो बातें सब जगह, सब जेलों में लागू नहीं हो सकी हैं—ऐसी अत्यंत महत्त्व की तथा बन्दी और साधारण समाज के लाभ की बातें कही थीं। उन्होंने "चरित्र सुधारने पर कैदी को छोड़ दिये जाने की" बात कहकर, आज हम जिसे "अनिश्चित काल के लिए सजा" कहते हैं, उस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

बन्दी-सुधार की पुरानी ब्रिटिश योजनाएँ

१८वीं सदी में बन्दी के सुधार पर भी ध्यान दिया जाने लगा, यह हम ऊपर लिख आये हैं। १८वीं सदी के मध्य में इंग्लैंड में बड़े पादरी यानी बिशप बटलर

ने आवाज उठायी कि क़ैदी को अलग-अलग कमरे में रखकर उसका सुधार किया जाय, क्योंकि "मृत्यु के लिए तैयारी करने से अधिक आवश्यक है जीवन की तैयारी करना।" जेरेमी बेंथम का कहना था कि क़ैदियों को अलग-अलग रखकर उन पर कड़ी निगरानी रखी जाय। जेलसम्बंधी एक समिति के अध्यक्ष टामस ब्रे की राय थी कि—१८वीं सदी के प्रारम्भ में—क़ैदियों को अलग अलग रखा जाय। जान हावर्ड भी इसी विचार के थे। हावर्ड ऐसे चतुर विचारक का भी खयाल था कि "यदि दिन में एक साथ मिल भी जायँ तो रात में उनको अलग अलग जरूर सोना चाहिए।" इन विचारकों के आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश पार्लमेंट ने सन् १७७९ में क़ानून बनाकर अलग-अलग कोठरीवाले जेलों की रचना का आदेश दिया। जेल से छूटने पर जीविकोपार्जन की योग्यता प्राप्त करने के लिए क़ैदियों को कुछ काम सिखाने का आदेश भी १७७९ के क़ानून ने दिया। सन् १८१६ में इंग्लैण्ड का मिलबैंक का प्रसिद्ध कारागार बना जिसका प्रबंध एक समिति के हाथों में था। इस समिति के अध्यक्ष थे ब्रिटिश पार्लमिन्ट के अध्यक्ष। इस कारागार को भी "अलग कोठरी" के आधार पर बनाया गया था पर इसमें काम सिखाने तथा धार्मिक शिक्षा पर पार्लमिन्ट की साधारण सभा की एक विशेष समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसने भी अलग कोठरी की प्रथा की सिफ़ारिश की। सन् १८४२ में १००० क़ैदियों को रखने योग्य पेंटोनबिले का "आदर्श" जेल इंग्लैंड में बना। ऐसी कोठरियाँ बनीं जिनमें हर एक बन्दी एकान्त में रहकर अपने पाप के लिए पश्चात्ताप करे तथा भूतकाल की घटना के लिए प्रायश्चित करे। पेंटोनबिले यूरोप तथा भारत ऐसे देशों के लिए आदर्श जेल बन गया। पर धीरे धीरे लोग किसी व्यक्ति को अकेले बन्द रखने की भूल महसूस करने लगे। एकान्त कोठरी की प्रथा में परिवर्तन भी हुआ। पहले यह संशोधन हुआ कि १८ महीने से अधिक किसी को एकान्त कोठरी में न रखा जाय। फिर, एकान्त कोठरी ९ महीने, ६ महीने, ३ महीने, तीन हफ्ते तक घटते-घटते अब विशेष दंड के रूप में सप्ताह दो सप्ताह से अधिक नही प्राप्त होती। इस प्रकार की कोठरी का नाम एकान्त कोठरी से बदलकर काल कोठरी हो गया। पेंटोनबिले का "आदर्श जेल" भी ब्रिटेन के सन् १९३८ के नवीन दंडविधान के पास होने के बाद गिरा दिया गया और उमके स्थान पर एक नये प्रकार का जेल बना।

बन्दीगृह का विरोध

बन्दीगृह में सुधार की चर्चा एक ओर समाज पर असर करती जा रही थी, दूसरी ओर बन्दीगृह का तथा बन्दी रखने का ही विरोध हो रहा था। जेल में जाने

पर मनुष्य सुधरने के बजाय बुरा भी बन जाता है। सन् १८८८ में इमिले जाटियर नामक एक फ्रेन्च ने बड़े गहरे अध्ययन के बाद बन्दी के मस्तिष्क पर जेलजीवन के प्रभाव की छानबीन की थी और उनके अनुसार मनुष्य जेल में जाकर बहुत बदल जाता है। आर्थर होम्स ने सन् १९१२ में अपनी पुस्तक में[१] लिखा था—"जेल में ज्यादा दिन तक रहने पर मनुष्य की आकृति क्यों बदल जाती है? उसकी आवाज़ कठोर तथा अप्राकृतिक क्यों हो जाती है? उसके नेत्र चंचल, मक्कार और जंगली क्यों बन जाते है? यह सब इसलिए नही होता कि उसे कठोर परिश्रम करना पड़ता है...यह सब उस प्रणाली का दोष है जिसके कारण आत्मा तथा बुद्धि दोनों का हनन हो जाता है।" डेवन अपने कथन में होम्स से भी आगे बढ़ गये। वे लिखते है कि "मेरी राय में, इसमें कोई संदेह नही है कि हमारी वर्तमान प्रणाली अपराधी बनाती है। अधिकांश मामलों में क़ैद से कोई लाभ ही नही होता—निश्चित रूप से गम्भीर हानि होती है।"[२] गेब्रील तार्दे ने क्रोध से कहा है—"कुछ तो अपने अपराध के कारण तथा कुछ अपराधी न्याय के कारण अपराधी व्यक्ति का निर्माण होता है।"[३] प्रसिद्ध अपराधशास्त्री लोम्ब्रोज़ो ने (मृत्यु सन् १९०९) यहाँ तक कह डाला था कि "अपराध के सबसे प्रमुख कारणों मे कारागार भी है।" "जेल अपराध की पाठशाला है...बहुत से लोग जेलों मे ही जाकर जेबकटी, गिरहकटी सीख कर लौटते है।"[४]

यह विवाद आज तक जारी है। जेल में रखा जाय या न रखा जाय? जेलजीवन हितकर है या अहितकर? यदि जेल में रखना ही है तो किस प्रकार के जेल हों? ऐसे विषयों पर विचार करने के समय भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण होते है समाजशास्त्र का मनोवैज्ञानिक पंडित मानसिक विकृतियों के विशेषज्ञ की तुलना मे

१. Arthur Homes—"Conservation of the Child"—Philadelphia—Lippincolt—1912—Page 342.

२. J. Devon—"The Criminal and the Community"–Lane, London, 1912–Page 348.

३. Gabriel Tarde—"Penal Philosophy"–Little, Brown & Co., Boston–1912–Page 581.

४. Cesare Lombrose—"Crime, Its Causes and Remedies"—(Translation) Little, Brown & Co.,

अधिक व्यापक तथा साहसपूर्ण दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार करता है। समाजशास्त्र के पंडित को अपराधी की विकृतियों का व्यक्तिगत निजी ज्ञान नहीं होता। "मानसिक विकृतियों का जानकार कहता है कि मानसिक या शारीरिक व्यतिक्रम से अपराधी प्रवृत्ति पैदा होती है, अतएव दंड के स्थान पर इन रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए। पर समाजशास्त्री अपने सिद्धान्तों तथा आदर्शों के बल पर बातें करता है। इसी लिए समाज के रोगो का समाजशास्त्री द्वारा वर्णित निदान साधारण बुद्धिवालों के समान ही होता है। समाजशास्त्री के सामने चिकित्साविज्ञान की बाधा नहीं है कि वह मानसिक रोग की नाप जोख करे। वह प्रत्येक बात को समाज की आवश्यकता को सामने रखकर देखता है और इसी लिए मानसिक विकृतियो के विशेषज्ञ तथा समाजशास्त्री के अपराध सम्बंधी दृष्टिकोण मे बड़ा अन्तर होता है। समूह या वर्ग के हितों का चिन्तन करनेवाला चाहे व्यक्ति के निजी कल्याण की बात कितनी भी सोचे, उसकी समूची विचारधारा व्यक्ति के स्थान पर समूह के लाभ को सोचने में लगी है। इसीलिए अपराधी के व्यक्तित्व की बात को वह "सद्भावना-सहित" भूल सकता है। इसी लिए "आदतन अपराधी" भी बार-बार अपराध करके जेल जानेवाले यानी विराराधी[१] की समस्या समाजशास्त्री के लिए उतनी चिता का कारण नही है, जितनी मानसिक विकृति के विशेषज्ञ के लिए, क्योंकि उसे तो शारीरिक तथा मानसिक कारण ढूढ निकालने है। इसलिए हो सकता है कि बहुत छानबीन करने के कारण बन्दीगृह-सुधार के मामले मे भी मानसिक-विकृति-विशेषज्ञ साहस के साथ कदम न बढ़ाये। समाजशास्त्री से इस दिशा में अधिक साहसिक उपयोगों तथा कार्यो की आशा है।[२]"

पुलिस और जेल

जेल के जीवन के सम्बंध में आज के युग में भी व्यापक भ्रान्तियाँ है। आज भी ऐसे लोग अधिकार के स्थान पर है जो पुलिस तथा जेल के मुहकमे को एक-दूसरे

१. राध् = "अप-राध्" शब्द से, बार-बार अपराध करनेवाले यानी Habitual Offender या Recidivist के लिए संस्कृत व्याकरण से शुद्ध शब्द होगा "विराराधी", हम इसी शब्द का उपयोग करेंगे।

२. The British Journal of Delinquency—Sept., 1955—Page 118-119.

से एकदम पृथक् तथा विरोधी सा भी मानते हैं। ऐसे लोग कम नहीं हैं जो समझते हैं कि पुलिस का जेल से क्या सम्बंध है ? यदि पुलिस का काम समाज की रक्षा है तो जेल का काम समाज की हानि करनेवालों को समाज की रक्षा करनेवाला बनाकर वापस भेजना है। यदि दोनों विभागों में सहानुभूति न होगी तो समाज का बड़ा अकल्याण होगा। इस पर विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक रिचार्ड हैरिसन लिखते हैं:—[१]

"ज्यों ही क़ैद की सज़ा सुना दी जाती है, क़ैदी को अपना दंड भुगतने के लिए जेल भेज देते हैं। वहाँ पर उसके साथ क्या होता है, उससे इस पुस्तक से कोई मतलब नही है। पुलिस का जेल से कोई सम्बंध नहीं है......जेल तथा उसके उद्देश्य के बारे में १५० वर्षों में विचार बिलकुल बदल गये है....बहुत शुरू जमाने में क़ैद-ख़ाने दंड के स्थान नहीं थे। अपराधियों को सज़ा सुनाये जाने तक कहीं भाग जाने से रोक रखने के लिए उन्हें बनाया गया था। उस समय आम तौर पर (मैं मिस्र, बैबीलोन, रोम तथा यूनान के दिनों की बात कह रहा हूँ) दंड का अर्थ होता था प्राणदंड, देश-निकाला, यातना या अर्थ-दंड। आजकल की तरह से उस समय यह नियम नहीं था कि जनता के पैसे से अपराधी को पाला जाय। धीरे-धीरे अपराधी की स्वाधीनता का अपहरण कर उसे बन्द कर रखना भी दंड का रूप बन गया। दो सौ वर्ष से कम हुए कि इंग्लैंड में अपराधियों के साथ बड़ा जंगली व्यवहार होता था। दो चार रुपये मूल्य का सामान चुराने के अभियोग में छोटे-छोटे बच्चे फाँसी पर लटका दिये जाते थे। जब एक भेड़ चुराने पर किसी आदमी को फाँसी हो सकती थी तो अपने को गिरफ्तार करने आनेवाले की जान लेने की चेष्टा वह क्यों न करे? आखिर फाँसी तो एक ही बार होगी······

"क्या आपने कभी यह सोचने का प्रयास किया है कि लोग जेल क्यों भेजे जाते हैं? जेल भेजे जाने के बहुत से कारणों में सबसे छोटा कारण है बदला लेना। समाज की हानि हुई है। वह बदला ले रहा है। पिछली सदी के प्रारम्भ तक जेलों के विषय में यही धारणा थी। आज जेल भेजने के कारण या किसी प्रकार के क़ानूनी दंड में केवल प्रतिशोध की भावना नही रहती, जनता को उस अपराधी के अन्य कुकार्यों से बचाने का भी विचार रहता है, अन्य भावी अपराधियों के सामने उदाहरण उपस्थित करना रहता है तथा स्वयं अपराधी के मन में यह भाव उत्पन्न करना होता है कि अप-

१. Richard Harrison—The World's Police–Phoenix House, London, 1954—Page 111.

राध करने से कोई लाभ नहीं—संक्षेप में, अपराधी का सुधार करना ही मूल उद्देश्य है। आजकल कम उम्र के लोगों को तभी जेल भेजते हैं जब सब उपाय विफल हो जाते हैं।......लेकिन क्या जेल में नर्मी का व्यवहार करने से महाशय "क" में सुधार हो गया, क्या उनकी आदत छूट गयी? कम-से-कम उसे जेल में रखने से यह तो निश्चित है कि जितने दिनों तक भीतर बंद रहेगा, कोई चोरी नहीं कर सकेगा। इसी लिए पुलिस उसे वहाँ पहुँचाकर उसके "शरीर की सुपुर्दगी" की रसीद प्राप्त कर लेती है......जेल की सज़ा में इस बात की चिंता नहीं की जाती कि क़ैदी के बीबी बच्चों का क्या होगा।"

अमेरिका तथा ब्रिटिश जेलों का जीवन

ब्रिटिश जेल-जीवन का वर्णन करते हुए श्री हैरिसन लिखते हैं—[१]

"जो आदमी पहली बार जेल जाता है उसे "स्टार" बन्दी कहते हैं। उसे यही श्रेणी प्राप्त रहेगी जबतक उसके आचरण में कोई खराबी नहीं आ जाती। पहले महीने के बाद वह कुछ आना कमाकर उसे अपनी सिगरेट-तम्बाकू आदि पर खर्च कर सकता है...बन्दीगृह का दिन आम तौर से ६-३० बजे सबेरे प्रारम्भ होता है। "स्टार" बन्दी अपने कमरे में ९-३० बजे रात तक पुस्तकें पढ़ सकता है। साढ़े छः बजे उठकर हर एक क़ैदी को अपनी कोठरी साफ़ करनी पड़ती है। इसके बाद उसके पास जलपान आ जाता है। बन्द कमरे में ही वह जलपान कर लेता है। ८ बजे सुबह खुले स्थान में क़ैदी व्यायाम कर सकते हैं तथा एक दूसरे से बातें कर सकते हैं, इसके बाद दोपहर तक कारख़ाने में काम करना पड़ता है। वे अपने कमरे में ही भोजन के लिए भेज दिये जाते हैं। उस समय फिर उनके कमरे का ताला बन्द हो जाता है। डेढ़ बजे दोपहर को उन्हें आध घंटा फिर व्यायाम का अवसर मिलता है। फिर साढ़े पाँच बजे तक काम होता है। उसके बाद वे अपने कमरे में १३ घंटे के लिए बन्द कर दिये जाते हैं। क़ैदियों के लिए इतने लम्बे समय के लिए एकान्त सेवन तथा सोचने के लिए छोड़ देना सबसे कठोर दंड हो जाता है...बावजूद इसके कि आजकल जेलख़ानों के बारे में बड़े प्रगतिशील विचार हैं। अधिकांश कारागारों की इमारतें उदास, नीरस, ठंडी तथा मानव के प्रति कम उदार भावना के जमानों की बनी हुई हैं। सबसे बदनाम जेल डार्टमूर का है। सन् १८०६

१. वही पुस्तक—११३

में इसका बनना शुरू हुआ था और १८०९ में समाप्त हुआ। पहले इसमें फ्रांस के साथ युद्ध में पकड़े गये बंदी रखे जाते थे। सन् १८१२-१८१५ तक अमेरिका के साथ युद्ध में पकड़े गये १००० अमेरिकन बन्दी रखे गये थे। यहाँ आपस में क़ैदियों में प्रायः लड़ाई-झगड़ा हुआ करता था। एक झगड़े में अमेरिकनों ने फ्रेंच क़ैदियों को खूब पीटा। इसमें ५० कैदी मारे गये। अमेरिकन तथा फ्रेंच युद्ध की समाप्ति पर इस जेलखाने का उपयोग समाप्त हो गया। १८५० तक यह बेमरम्मत पड़ा रहा पर, उस साल इसमें मरम्मत करायी गयी और यह फिर चालू हुआ—इसलिए नहीं कि अपराध वढ़ गया था, पर इसलिए कि ब्रिटिश उपनिवेशों ने आजन्म क़ैदियों को अपने यहाँ लेना अस्वीकार कर दिया. . . .अधिकांश अंग्रेजी जेल १०० वर्ष या इससे अधिक पुराने है, ये क़ैदियों को बन्द रखने के लिए बने है—उनके ठीक से रहने के लिए नहीं· · · ·

". . . . . .मैंने न्यूयार्क प्रदेश का प्रसिद्ध सिंगसिंग जेल देखा है। मेरे विचार से अमेरिकन क़ैदियों का जीवन ब्रिटिश क़ैदियों से अधिक अच्छा है। सिंगसिंग हडसन नदी के किनारे पर बना है। इसके "निवासी" (उनको बन्दी नहीं कहते) कभी-कभी नदीतट का सुन्दर दृश्य देखने का अवसर पा जाते है—कोई भाग नहीं सकता। काफ़ी पहरा है और थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पहरेदारों के लिए मीनारें बनी हुई हैं. . . .यहाँ के गवर्नर[1] से मेरी बातें हुई। उन्होंने कहा कि उनके क़ैदियों को शिक्षा दी जाती है कि "उनका काम समय काटना नही है बल्कि समय से अपनी सेवा कराना है।" इस बन्दीगृह में बड़े अच्छे-अच्छे कारखाने है तथा सुन्दर पुस्तकालय है। आमोद-प्रमोद का कमरा है। जेल की अपनी दूकान भी है। कोठरियाँ अंग्रेजी जेलों के बराबर हैं पर उनकी तरह तंग नही है। यहाँ के क़ैदियों को अपने कमरों को चित्रों से सजाने की अनुमति है। वे मछली या चिड़ियाँ भी पाल सकते है। लेकिन सब कुछ होते हुए भी सिंगसिंग कारागार ही है। गवर्नर ने मुझसे कहा—"अगर वे (क़ैदी) कठोर अनुशासन के योग्य होंगे तो हम उसमें भी चूकनेवाले नही है। बिना अपनी सजा पूरी किये आप जेल के फाटक के बाहर नहीं निकल सकते।

". . . . . .आप प्राणदंड के बारे में भी मुझसे जानना चाहेंगे। इंग्लैंड में जब जूरी लोग अपराधी घोषित कर देते है तो जज को प्राणदंड सुनाना पड़ता ही है. . . गृहसचिव सम्राज्ञी से "दयालुता" की सिफ़ारिश कर सकता है। ऐसी दशा में फाँसी के बजाय आजन्म कारावास यानी १५ वर्ष की सजा होती है। ऐसा भी होता है कि

१. जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट

जूरी लोग अपराधी घोषित करते हुए भी दया की सिफ़ारिश कर सकते हैं। पर इस सिफ़ारिश का कोई क़ानूनी मूल्य नही है, क्योंकि ब्रिटिश क़ानून में हत्या के लिए जो दंड निर्धारित है, उसमें परिवर्त्तन नही हो सकता......पर, क्या प्राणदंड से, उसके भय से और लोगों द्वारा हत्याओं में रोकथाम होती है? किसी दिन आपको यह सवाल सोचना होगा......अन्ततोगत्वा फाँसी एक भयंकर दर्दनाक काम है। फाँसी देने का मतलब ही यह है कि समाज ने, हमने, आपने यह स्वीकार कर लिया कि हम उस मनुष्य के जीवन का उपयोग करने में असफल रहे......

"......मुझे एक चीज साफ़ मालूम पड़ी। जेल से छूटने के बाद इंग्लैंड के मुक़ाबले में संयुक्त राज्य अमेरिका में मुक्त बन्दी के कहीं अधिक सहायक मिलेंगे। हमारे यहाँ तो उस बेचारे के साथ जेल-जीवन का कलंक सदैव बना रहेगा। अमेरिका में यदि वह अपने जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ करना चाहे तो आसानी से कर सकता है। इससे अपराध में कमी होती है, क्योंकि प्रायः मुक्त बंदी अपने जीवन का और कोई उपयोग न पाकर निराशावश अपराधी जीवन दुहरा देता है।"

पुलिस विभाग के एक प्रसिद्ध व्यक्ति का कैदी तथा जेल के प्रति दृष्टिकोण हमने कुछ विस्तार से दिया है ताकि पाठकों को यह भी मालूम हो जाय कि बंदी के प्रति जिनके मन में प्रायः सहानुभूति नही होती—यानी पुलिसमैन—वह भी आज बन्दी के सुधार तथा उसके प्रति मानवोचित व्यवहार की हिमायत कर रहा है।

क़ैदी भी मनुष्य है

अमेरिकन क़ैदी तथा कारागार के विषय मे "खुले ढंग के जेल" के विश्व-विख्यात अमेरिकन हिमायती केनियन जे० स्कडर ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। वे स्वय बन्दी-गृह शासन विभाग से कर्मचारी के रूप में, घनिष्ठ रूप से सम्बंधित हैं और इस विभाग की हर ऊँची-नीची बात से परिचित हैं। वे लिखते है—

"मनुष्य का उद्धार स्वाधीन वातावरण में ही हो सकता है। मनुष्य का पुनर्वास उसके हृदय के भीतर से प्रारम्भ होना चाहिए, जोर जबर्दस्ती से नही।"[१]

"हमको धीरे धीरे प्रयोग, परीक्षण तथा भूलचूक की परवाह न कर आगे बढ़ना होगा, बन्दी-सुधार के कार्य में हमको स्मरण रखना होगा कि कैदी भी आदमी है

१. Kenyon J. Scudder—"Prisoners are People"—Doubleday & Co., Inc. Garden City, N. Y. 1952—Page 50.

और इसके साथ ठिकाने का, शिष्टता का व्यवहार किया जायेगा तो वह उसका लाभ उठायेगा।"[१]

"साधारणतः जेलों में बन्दी के साथ ऐसा व्यवहार होता है कि उसका व्यक्तित्व ही उससे छिन जाता है। उसके मन में ऐसी प्रणाली के प्रति इतनी भर्त्सना उत्पन्न हो जाती है कि उसका दिल ही टूट जाता है।"[२]

"अमेरिका अपनी अपराध की समस्या को कुछ लोगों को जेल भेजकर हल नहीं कर सकता। सन् १९३९ की पुलिस रिपोर्ट से पता चलता है कि १,३०,००,००० की आबादी के ७८ नगरों में प्रति १०० बड़े अपराधों में, जिनका कि पुलिस को पता चला था, केवल २७ मामलों में गिरफ्तारियाँ की जा सकीं। इनमें से केवल १९ पर मुक़दमा चलाया जा सका और केवल १४ को सजा मिली। लास ऐंजीलीज़ नगर में पुलिस को यदि १०० अपराधों का पता चलता था तो उनमें से केवल १२ में गिरफ्तारियाँ की जा सकती थीं—यह सन् १९४६ का औसत है। सानफ्रांसिस्को में जहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्मेलन-भवन है, प्रति १०० अपराध पीछे सन् १९४६ की रिपोर्ट के अनुसार, ११ में ही गिरफ्तारी हो सकती थी।"[३]

श्री स्कडर फिर लिखते हैं—

"हम छोटे और साधारण लोगों को पकड़ लेते हैं पर हज़ारों अपराधी पुलिस की गिरफ्त में नहीं आते। वे हमारे अमेरिकन समाज में बड़े भोग-विलास के साथ सुरक्षित जीवन बिताते हैं। हम, आप और पुलिस जानती भी नहीं कि ये कौन हैं, इनके विषय में किसी को कोई जानकारी नहीं होती। इतना होते हुए भी हमारे अमेरिकन जेल तथा सुधारगृह भरे पड़े हैं। हम जितना अधिक जेल बनाते जा रहे हैं, उतना ही उनको भरते भी चले जा रहे हैं।"[४]

अपराध और अपराधी प्रवृत्ति के विषय में स्कडर लिखते हैं कि—"अपराध या अपराधी मनोवृत्ति तब तक कम न होगी जब तक समाज स्वयं इस विषय में ध्यान न देगा। केवल लोगों को जेलों में वन्द कर देने से काम नही चलेगा। हमको ठोस अपराधी के पास जल्दी पहुँचना चाहिए, विपत्ति में पड़ जाने के पहले उसका

१. वही, पृष्ठ ५२
२. वही, पृष्ठ ५७
३. वही, पृष्ठ २७२
४. वही, पृष्ठ २७४

उद्धार कर लेना चाहिए। उसमें नैतिक भावना, नैतिक विचार को उत्पन्न करना चाहिए।"[१]

स्कडर की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि दण्ड का पात्र केवल बन्दी ही नही है, हम भी हैं। समाज भी अपराधी के प्रति, उसके अपराध के लिए ज़िम्मेदार है। यदि अपराधी मनोवृत्ति का उदय होते ही समाज चौकन्ना होता और उसे बचा लेने का प्रयत्न करता तो उसका पतन, उसका अपराधी जीवन बच जाता, रुक जाता।

वह युग चला गया जब हमारा ऐसा विश्वास था कि तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं, (१) प्रतिभाशाली, (२) साधारण, (३) साधारण से नीचे की श्रेणी की बुद्धि-वाले। इस तीसरी श्रेणी के लोगों में अपराधी रखे जाते थे। अब तो यह विदित हो गया है कि चाहे प्रतिभाशाली व्यक्ति हो, चाहे अपराधी ही प्रतिभाशाली हो, उसके व्यवहार में कोई असाधारणता जो दिखाई पड़ती है वह साधारण जीवन के व्यवहार से भिन्न नहीं है, उसका स्वरूप भले ही भिन्न प्रतीत हो। मनुष्य का हर एक कार्य निश्चयतः उसके शरीर, मन तथा समाज की रचना पर निर्भर करता है। अपराधी किसी विशेष वर्ग या समुदाय की उपज नहीं है। उसके व्यवहार में औरों से विभिन्नता कतिपय कारणों से आ गयी है। उसके चरित्र तथा व्यवहार में जो भीतर छिपा हुआ अन्तर है, उसे भी ढूँढ़कर निकाला जा सकता है। अच्छे से अच्छा चरित्रवान् व्यक्ति भी व्यवहार में उसी चरित्र के विरुद्ध काम करने के लिए विवश हो सकता है। अतएव दोष व्यक्ति का नही उसकी विवशता का है। श्री हॉलकाम्ब लिखते हैं[२]—

"यह भली प्रकार से विदित है कि बालिग हो जाने के बाद हमारे जीवन के बहुत से अनुभव उन्हीं अनुभवों के आधार पर होते हैं जिन्हें हमने अपने बचपन में प्राप्त किया है। वैज्ञानिक अनुसंधान ने यह साबित कर दिया है कि बड़ी उम्र में हमारे अधिकांश आचरण की जड़ में बचपन में हमारे जीवन की वे छोटी छोटी घटनाएँ हैं जिनको हम कोई महत्त्व नहीं देते। इस बात को ध्यान में रखने के बाद हमारी यह बात सही मालूम होगी कि पुलिस के लिए बच्चों से सम्पर्क रखना कितना जरूरी है। बच्चों को उचित बातें समझा देना बड़ा आसान है। कम उम्र में उनके चरित्र

१. वही, पृष्ठ २८१

२. Richard L. Holcomb—The Police and the Public—Charles C. Thomas Springfield, Illinois–1954—Page 13.

को आसानी से सही ढंग से ढाला जा सकता है। यदि पुलिस अफ़सर बच्चों के सुधार में रुचि लें तो बच्चों का बड़ा कल्याण हो।"

सामाजिक परिस्थितियाँ

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द ने लखनऊ में हुए प्रथम अपराधी तथा मुक्तबन्दी सम्मेलन मे (१२-१४ नवं०,१९५७) अपने उद्घाटन भाषण मे कहा था[१]—

"अपराधशास्त्र उन विषयों में से है जो सभ्य समाज के लिए बड़ा महत्त्व रखते हैं। उसके द्वारा मनुष्य का उन परिस्थितियों मे अध्ययन किया जाता है जिनमें वह साधारण व्यक्ति के समान नही किन्तु असाधारण व्यक्तित्व से काम करता है। ऐसे अध्ययन के परिणामों का समाज तथा साधारण व्यक्ति के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सब आदमी पैदायशी एक दूसरे के समान नही है। उनके शारीरिक तथा बौद्धिक अन्तरतम में विभिन्नता है। यों देखने मे एक दूसरे के समान प्रतीत होता हुआ मनुष्य समान सासारिक तथा आध्यात्मिक परिस्थितियों में भिन्न रूप से आचरण करता है। यदि समाज का संगठन ऐसा हो कि उसमें मानव-स्वभाव को भली प्रकार से समझ लिया गया है और उसकी विभिन्नताओं के प्रति पूरी सहानुभूति बरती गयी है, तो "एक ही प्रकार का" सामाजिक ढॉचा बनाने के मसले पर जोर देने की ज़रूरत ही नही रह जायगी। दुर्भाग्यवश समाज की रचना दार्शनिक दृष्टिकोण से नही हुई है।......यदि कोई व्यक्ति उसके आदेशों तथा निषेधो को हर तरह से नहीं अपना सकता तो उसका जीवन एक प्रकार से उच्छृङ्खल हो जाता है और यदि उसे कुछ करना है तो उसका कार्य अ-सामाजिक बन जाता है, समाज-विरोधी बन जाता है। इसके अलावा, प्रकृति ने तो हमारे स्वभाव मे असमानता बरती ही है। फिर आदमी ने स्वयं सामाजिक तथा आर्थिक बंधन बना रखे हैं। बच्चे ऐसे समाज तथा परिस्थितियों मे पैदा हुए तथा पलते है जिनमें बचपन से ही यह शिक्षा मिलती है कि यदि उनको अपनी अत्यन्त आवश्यक तथा प्रारम्भिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी है तो उनको समाज के विरुद्ध अनवरत संघर्ष करते रहना चाहिए......

१. Dr. Sampurnanand--Inaugural Address at First Convicts and Ex-Convicts Conference, Lucknow Nov., 12-14—1957—Information Deptt., U. P. Govt., Pages 1-5-6.

इस प्रकार हमने प्राय: ऐसे व्यक्ति को, जो अच्छा नागरिक बन सकता था, समाज का विद्रोही बना दिया है। तब हम उसे जेल में रख देते हैं और हम उसके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं मानो हम केवल उसके कुकार्यों के प्रति प्रतिशोध नहीं चाहते बल्कि उन हज़ारों के कुकार्यो का भी बदला ले रहे हैं जो हमारी पकड़ में नहीं आ सकते हैं।"

अधिकतर अपराधी पकड़ में नही आते, यह भी सत्य है। हॉलकोम्ब अपनी पुस्तक में लिखते हैं[१]—

"पक्षपात से बचना बड़ा कठिन है। हम सभी मनुष्य हैं और मनुष्य होने के नाते हमारे मन में, जन्म से ही, वर्षो से घोषित निश्चित धारणाएँ बन जाती है। पर पुलिस अफ़सर होने के नाते आपको इन पूर्व धारणाओं से ऊपर उठना होगा... धनी लोगो को गिरफ्त मे लाना पुलिस के लिए कठिन होता है। वे लोग प्रभावशाली होते है। उनमें से कुछ लोग अपने प्रभाव के द्वारा पुलिस की कार्यवाही से बचने का उपाय करते हैं। वे औरों की तुलना में अधिक रियायत की आशा करते है। पर यह न भूलना चाहिए कि कानून की दृष्टि में धनी तथा निर्धन दोनों ही बराबर हैं। उनके साथ बराबर का व्यवहार होना चाहिए। आप यह भी जानते है कि पैसेवाला आदमी बढ़िया से बढ़िया वकील नियुक्त कर सकता है।"

अपराध में वृद्धि तथा अपराधी-संख्या मे वृद्धि के बहुत से कारण हो सकते है। एक कारण यह भी है कि नियम तथा व्यवस्था मे रहनेवाले लोग अपराध की रोकथाम मे सहयोग नहीं देते। पुलिस के लिए यह कहा जाता है कि "सद्भावना कही से इनाम मे नही मिलती। इसे प्राप्त किया जाता है, कमाया जाता है। पुलिस को यह सद्भावना जनता से प्राप्त करनी चाहिए......सार्वजनिक सहयोग सार्वजनिक भावना पर निर्भर करता है। जब लोग पुलिसमैन को पसंद नही करते तो उसके साथ सहयोग क्या करेंगे। बहुत से नगरों में पुलिस ने जनता का सहयोग तथा उसकी सद्भावना कमा ली है, प्राप्त कर ली है। ...... यों साधारणत: पुलिस से कोई प्रेम नहीं करता......पर वास्तविक बात यह है कि पुलिस अपराध के हर एक मामले का पता लगा सकती है, यदि कानून के दायरे में रहनेवाले लोग ही उससे वाकयात छिपायें नही, उससे सब कुछ बतला दिया करें।"[२]

१. R. L. Holcomb—The Police and the Public—Page 18.

२. वही, पृष्ठ ५ तथा ७

अपराध तथा अपराधी दोनों के प्रति जनता की उदासीनता प्रकट है। पर, उसके साथ ही अपराध में वृद्धि के बहुत से कारण हैं। स्विट्जरलैण्ड की राजधानी बर्न में १० से १५ अक्टूबर १९४९ को अंतर्राष्ट्रीय अपराधी पुलिस कमीशन का १८वाँ महाधिवेशन हुआ था। इस अवसर पर स्विस पुलिस विभाग के प्रधान स्टीगर ने अपने भाषण में कहा था—[१]

"क्या गत महायुद्ध के कारण अपराधों में चारों ओर वृद्धि हुई है? क्या इस वृद्धि में अधिकता होती ही जायगी? क्या युद्ध के पूर्व जैसी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति हो जाने पर अपराध में कमी होगी? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर प्रत्येक सरकार बराबर विचार कर रही है। अपराधी वर्ग आज की वैज्ञानिक प्रगति से लाभ उठाना अच्छी तरह जानता है।"

पुलिस सम्बंधी वैज्ञानिक तथा यत्रीय उपायों से, जिन्हें हम पुलिस-कला कहते हैं तथा अपराधी के मनोविज्ञान से परिचित होने के कारण हमें वे सब उपाय मालूम है, जिनसे उलझी से उलझी अपराध की समस्या हमारे द्वारा हल हो सकती है।[२]"

पुलिस के पास नये से नये औज़ार कितनी भी मात्रा में आ जायँ, उसके पास सब कुछ साधन तथा जनसहयोग का भी प्रबंध हो जाय, पर अपराध की प्रगति जिन सामाजिक कारणों से हो रही है, वह रुकती नजर नहीं आती। इसमें अपराधी का दोष भी है और समाज का भी। सार्वजनिक मत अथवा विचार के अनुसार ही अपराध पैदा होते हैं। सामाजिक विचारधारा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। उसी प्रकार अपराध भी बढ़ते-घटते रहते हैं। आज से ढाई सौ वर्ष पूर्व इंग्लैंड में सनातनी ईसाइयों के विरुद्ध बड़े कठोर नियम थे। इन रोमन कैथोलिक ईसाइयों के विरुद्ध क़ानून की कठोरता बहुत धीरे धीरे कम हुई। सन् १७७८ तथा १७९१ में उन क़ानूनों में थोड़ा परिवर्त्तन हुआ। पर सन् १८२९ तक[३] सभी धर्मवालों को राजनीतिक तथा नागरिक समानता नही मिली थी। ब्रिटिश जनता ने सिद्धान्ततः यह बहुत पहले स्वीकार कर लिया था कि धार्मिक विश्वास के कारण राजनीतिक

१. International Criminal Police Commissioner's Official Organ "I. C. P. Review"--Number 33, Dec., 1949--Page 6.

२. वही, पृष्ठ १५

३. Catholic Relief Act of 1829--(इसके पहले 18 Geo III. C 60—1778 and 31, Geo III C--32—1791)

तथा सामाजिक अधिकारों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। पर १६६८ के क़ानून के बाद से[1] सन् १८८८ तक पार्लमेन्ट क़ानून बनाती रही, तब जाकर धार्मिक विचार-स्वातंत्र्य इंग्लैंड को प्राप्त हुआ। "आज का मज़दूर क़ानून १९वीं सदी के ४० क़ानूनों का परिणाम है।" इंग्लैंड में पुराने जमाने से अपराधियों के लिए एक भयंकर दंड-प्रथा थी—एक बड़े चौखटे में अपराधी का गला जकड़ देते थे और दोनों हाथों की कलाइयाँ कसकर बाँध देते थे।[2] फिर उसे सार्वजनिक स्थान पर खड़ा कर देते थे ताकि राहचलतू लोग उसे गाली दें, उस पर थूकें, उसका घोर से घोर अपमान करें। इतना निन्दनीय तथा बर्बर दंड भी अपराधियों के प्रति अन्य क्रूर दंडों के समान युगों तक जारी था। जनता का मत इनके विपरीत बहुत धीरे-धीरे हुआ। सन् १८१६ में कुछ अपराधों के लिए यह दंड कायम रह गया।[3] सन् १८३७ में यह क़ानून एकदम समाप्त हुआ। "यदि १६० अपराधों के स्थान पर केवल दो अपराधों में प्राणदंड की सज़ा बची रह गयी है, तो क़ानून में ऐसी मानवोचित उदारता की ओर आने में १९ वीं सदी के प्रारम्भ से ही क़ानून पर कानून बनते चले गये और अधिकांश संशोधन सन् १८२७ तथा १८६१ के बीच में हुए।[4]

क़ानून की पहुँच

स्पष्ट है कि "अपराध" बने रहे, उनकी व्याख्या बदल गयी। सनातनी ईसाई बने रहे, उनका सनातनी होना अपराध नहीं रहा। बाल अपराधी बाज़ार में चोरी करते रहे पर ऐसी चोरी प्राणदंड के योग्य अपराध न रही। ऐसे समाज की रचना की कल्पना जिसे "समाजवादी" कह सकें, अपराधी भावना का प्रतीक थी किन्तु जैसा कि जनवरी १८४८ में तोकेविले ने कहा था—[5] "एक ऐसा दिन भी आयेगा कि आज जिस समाजवाद का लोग मजाक उड़ा रहे हैं वही एक वास्तविकता होकर रहेगा।" बात असल में जनता की विचारधारा की है। जनता ही क़ानून बनाती है,

१. Toleration Act, 1688.

२. Pillory.

३. 56 Geo III C 138.

४. A. V. Dicey—"Law and Public Opinion in England"—Macmillan & Co., London, 1952—Page 29-30

५. वही, पृष्ठ २५५

उसकी पीठ पर रहती है और जब वह अपना विचार बदल देती है, उसका क़ानून भी बदल जाता है। ह्यूम ने लिखा था—[1]

"शक्ति सदैव शासित के हाथों में है अतएव शासक को अपने समर्थन में सार्वजनिक मत-समर्थन प्राप्त करना होता है। इसलिए हर एक सरकार जनता के मत पर निर्भर रहती है। यह बात एकदम निरंकुश तथा सैनिक शासन के लिए भी लागू होती है।"

यह सत्य है कि यदि जनता पक्ष में न हो तो क़ानून का पालन कराना सम्भव नहीं है। निरंकुश तथा एकतन्त्र शासन में भी क़ानून की अवज्ञा कम नहीं है। पर जब हम यह कहते हैं कि कानून बनानेवाले यानी व्यवस्थापक सभी वास्तव में जनता के मत के द्योतक हैं, प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, यह बात कुछ स्पष्ट, कुछ एकदम ठीक नहीं है। जनमत का विकास भी सभ्यता के विकास के समान शनैः शनैः तथा मन्द गति से होता है; बहुत से ऐसे देश हैं जहाँ जनमत जाग्रत भी नहीं हो पाया है या उसे सुलाये रखने का हर प्रकार का प्रयत्न होता रहता है। ऐसे पिछड़े समाज में जो काम होते हैं वे विचार-जन्य नहीं होते, सोच-समझकर नहीं होते बल्कि आदतन होते हैं। उनका जीवन परम्परा तथा प्राचीन विधियों के द्वारा संचालित होता है। प्राचीन परिपाटी में ऐसी आदत बन जाती है कि किसी प्रकार का परिवर्तन बुरा लगता है। जब सभ्यता का विकास होने लगता है, प्रजातंत्र की भावना मन में बैठ जाती है, जनमत सचेत होने लगता है, तभी वह व्यवस्थापकों, विधायकों को प्रभावित करने लगता है। इग्लैंड में १९वीं सदी से वास्तविक जनमत ने विधायकों को प्रभावित करना प्रारम्भ किया था। फ्रान्स में १७८९ की राज्यक्रान्ति के बाद जनमत की मर्यादा बढ़ी। आज के प्रजातंत्रीय युग में जनमत ही असली शासक है। १९वीं सदी से ही जनमत ने क़ानून पर अपना प्रतिबंध लगाना शुरू कर दिया था। जब कलेण्डर में सुधार का सवाल उठा, अज्ञानी जनता में यह विचार भर दिया गया कि उनके साल के ग्यारह दिन छिने जा रहे हैं। बड़ी कठिनाई से लोगों को समझाया गया। सन् १७७८ में जब रोमन कैथोलिक लोगों पर से प्रतिबंध उठाने की चर्चा चली, १७८० में इंग्लैंड में घोर साम्प्रदायिक दंगा हो गया था। अमेरिकन राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने दासता की प्रथा दूर करने का संकल्प लिया था। उत्तरी भाग दास-प्रथा

१. Hume, Essays, Vol. I, Essay IV—Green & Gross—Page, 110.

के विरुद्ध था, दक्षिणी भाग दास-प्रथा रखना चाहता था। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसी प्रश्न पर गृह-युद्ध छिड़ गया था।

"दास-प्रथा में विश्वास महज़ भ्रम था। पर चाहे निजी स्वार्थ के परिणाम-स्वरूप ही भ्रम क्यों न हो, बौद्धिक भूल तो है ही और ऐसी भूल कठोर स्वार्थी भावना से भिन्न वस्तु है। हर दशा में ऐसी भावना भी "विचार" तथा "मत" ही कही जायगी। इसीलिए दक्षिणी अमेरिकनों के लिए भी, जो दास-प्रथा को निर्मूल करने के विरुद्ध लड़ रहे थे (उसी प्रकार अन्य मामलों में भी) यही बात है कि हर एक क़ानून की तह में जनता का मत ही प्रधान है।"[१]

फ़ासिस्त विचार

इसी लिए आज का अपराध-शास्त्री जनता के सामने अपराध तथा अपराधी की समस्या का वास्तविक रूप उपस्थित करना चाहता है, ताकि उसका समर्थन प्राप्त होने से अपराधी कहे जानेवाले मानव को मानव बनाने में बड़ी आसानी हो। चाहे निरंकुश शासन ही क्यों न हो, अपराधी के प्रति जनमत को सचेत करने का सभी प्रयत्न करते हैं। हमारे एक मित्र ने फ़ासिस्त शासन काल में, जब इटली में मुसोलिनी का शासन था, अपराध करनेवालों के प्रति उस देश की भावना की जानकारी के लिए अंग्रेज़ी में अनुवाद करके एक कटिंग भेजी है। लेख का शीर्षक है—"फ़ासिस्त शासन में दंडसुधार।" उसमें लिखा है—[२]

"मैं अब समाज की रक्षा के उस पहलू पर विचार करना चाहता हूँ जिसमें कतिपय निश्चित अपराधी वर्ग से समाज को बचाना है। वे हैं—बाल अपराधी, ऐसे लोग जिनको गहरा तथा ख़तरनाक मानसिक रोग है, तथा जो किसी प्रकार का काम नहीं करना चाहते, विराराधी (आदतन अपराधी)। इनमें से बाल अपराधियों के सम्बंध में मेरी राय है कि उनको बड़ी उम्र के अपराधियों से अलग रखा जाय। इनमें यह भी देखना होगा कि कौन बालक प्रथम अपराधी है और कौन एक बार से अधिक अपराध करने का दोषी है। यह कहना बड़ा कठिन है कि कौन पहला अपराधी है।

१. Dicey—Law and Public Opinion in England--Page 20.

२. La Reforms Penale Fasciste-Extrait de la "Revue Penitentiare de Pologn--Vol. IV—NR 3/1 July, October, 1929—Page 12-15.

"जो लोग भयानक मानसिक रोग से पीड़ित हैं, जो पागल हैं तथा जिन्हें उनके पागलपन के कारण सज़ा नहीं मिली है, उनको पागलख़ाने में, ऐसे विशेष स्थान में जहाँ मानसिक रोगी रखे जाते हों, रखना चाहिए।

"एक ऐसा भी वर्ग है जो न तो एकदम पागल है और न एकदम होश में है। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसी बीच की कोई अवस्था नहीं हो सकती—ऐसी बात नहीं है। विज्ञान भी ऐसी बीच की अवस्था मानता है। ऐसा आदमी भी अपने कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता। हिस्टीरिया, मृगी, अपस्मार आदि के मरीज़ इसी श्रेणी में आते हैं। मेरे विचार से ऐसे रोगी अपराधियों को विशेष संस्थाओं में, अस्पताल या चिकित्सा-गृहों में रख देना चाहिए . . . . . .

"जो लोग आदतन शराबी हैं तथा नशे की दशा में अपराध करते हैं उनके विषय में मेरी एक धारणा है। 'नशे की हालत' सज़ा से छुटकारा पाने के लिए बहाना मानने के मैं विरुद्ध हूँ . . . जो लोग स्वभावत: कोई काम नहीं कर सकते, जो बचपन से ही इतने मूढ़ हैं कि उनसे कुछ नहीं हो सकता, ऐसे लोगों के लिए भी एक विशेष संस्था या आश्रम खोलना चाहिए. . . . .पर इन सब सुधारकार्यों में एक बड़ी कठिनाई है—इनमें ख़र्च अधिक पड़ता है—नयी-नयी संस्था या आश्रम बनाने में बहुत अधिक धन की आवश्यकता होती है. . . .सान स्टेफानो में हम ऐसी संस्था की स्थापना कर रहे हैं जिसमें ऐसे विराराधी रखे जायेंगे जो मन की प्रेरणा से बार-बार अपराध करते रहते हैं। ऐसे ख़तरनाक क़ैदी भी हैं जिनकी विशेष देखरेख करनी पड़ती है। ऐसे भी अपराधी हैं जो किसी भी दशा में सुधर नहीं सकते. . . समाज में जो ख़तरनाक अपराधी हैं, जिनका कभी सुधार नहीं हो सकता, उनको समाज से सदा के लिए अलग कर देना चाहिए, वे फिर कभी भी समाज के बीच में न आने पायें और अगर आयें भी तो काफ़ी लम्बी अवधि के बाद। विराराधी (आदतन अपराधी) के साथ क्या किया जाय, यह एक गम्भीर समस्या ज़रूर है।"

फ़ासिस्त विचारधारा भी अपराध-निरोधक तथा अपराधी-सुधार के कार्य में काफ़ी प्रगतिशील थी, यह तो ऊपर के वाक्यों से स्पष्ट है। उनका तथा हमारा मत-भेद केवल विराराधी के सम्बंध में है। उनके विचार से उसे सदा के लिए समाज से पृथक् कर देना चाहिए।

अध्याय ३३

प्राणदण्ड

दुष्ट अपराधी को, विराराधी को तथा दूसरे का प्राण लेनेवाले को समाज से सदा के लिए पृथक् करने का एक उपाय प्राणदंड है। इस सम्त्रंध में इस पुस्तक में पूरी तरह से प्रकाश डालने का स्थान नहीं है। प्राणदंड पर, उसके इतिहास तथा वर्त-मान रूप पर मैं एक स्वतंत्र पुस्तक लिख चुका हूँ।[1] इस पुस्तक में भी स्थान-स्थान पर प्राणदंड का ज़िक्र किया गया है। यह प्रश्न सदा से हर एक राज्य के सामने है कि दूसरे का प्राण लेनेवाला, बलात्कार करनेवाला, राजद्रोह करनेवाला क्या इस संसार में जीवित रहने का अधिकारी है?

यूनाइटेड किंगडम

इंग्लैंड, वेल्स तथा स्काटलैंड में—जिसे यूनाइटेड किंगडम कहते हैं, सन् १९०० से लेकर १९४९ तक १२१० व्यक्तियों को फांसी लगायी गयी। इनमें से ८३६ व्यक्ति वासना-जन्य हत्या के अपराधी थे। सन् १९४० से १९४९ के बीच में १६६० हत्याएँ हुईं जिनके लिए केवल १२७ व्यक्तियों को प्राणदंड मिला। यूनाइटेड किंगडम में प्रति वर्ष औसतन १७० हत्याएँ होती हैं। प्रति वर्ष लगभग २३ व्यक्तियों को फाँसी होती है। घटते-घटते आजकल १३ प्रतिवर्ष का ही औसत रह गया है। हर फाँसी में कुल मिलाकर सरकार का लगभग १५० रुपया खर्च होता है। प्राणदंड समाप्त करने के हिमायती लोगों की एक ज़बर्दस्त दलील यह भी है कि यदि इन १३ व्यक्तियों की जान न ली गयी तो हरसाल क्या विपत्ति आ जायगी? जेल में क़ैदी काम करता है तब सरकार खिलाती है। अतएव यदि उसे आजन्म कारावास यानी वास्तव में १४ वर्ष की सज़ा दे दी गयी तो समाज की रक्षा भी होगी, एक मूल्यवान जीवन भी

१. परिपूर्णानन्द वर्म्मा, "प्राणदण्ड"—मयूर प्रकाशन, मानिक चौक, झांसी, सन् १९५३

बच जायगा। फाँसी का तख्ता मनुष्यता का सबसे नग्न तथा निन्दनीय अभिशाप है। ब्रिटिश जनमत कुछ इसी प्रकार के विचार का होता जा रहा है। पाँच वर्ष के लिए प्राणदंड की प्रथा को स्थगित करने का निर्णय सन् १९५६ में हो चुका था, पर हाउस आव लार्डस् तथा मैकमिलन प्रधान मंत्री की सरकार ने उसे उलट-पुलट कर दिया था। किन्तु ब्रिटिश जनता इस सम्बंध में प्राणदंड की प्रथा के पक्ष या विपक्ष में है, इसका एकदम सही उत्तर देना कठिन है। सन् १९३८ में जनमत-संग्रह किया गया तो ५० प्रतिशत जनता ने प्रथा समाप्त करने के पक्ष में मत दिया था। शेष मे से बहुतों ने "मैं नहीं कह सकता" उत्तर दिया था। सन् १९४८ में पुनः मत संग्रह किया गया (गैलप-मत-संग्रह प्रणाली द्वारा), तो ६८ प्रतिशत ने प्राणदंड के पक्ष में मत दिया। पर १९५५ में, जुलाई के महीने में पुनः मतगणना करने पर ६८ प्रतिशत प्राणदंड के विरुद्ध निकले। यह गणना लंदन के "डेली मिरर" नामक प्रसिद्ध दैनिक पत्र ने करायी थी।

प्राणदंड के स्थान पर आजन्म कारावास की बात प्रायः कही जाने लगी है। इस संबंध में दो तीन बातें ध्यान में रखने की हैं। आजन्म क़ैद का अर्थ होता है बीस वर्ष। इसमें रविवार की छुट्टी आदि सब काट लेने पर, यदि क़ैदी का व्यवहार दुरुस्त रहा, तो १४ वर्ष में ही छोड़ दिया जाता है। इंग्लैंड में सन् १९२८ से १९४८ के बीच में १७४ व्यक्तियों को आजन्म कारावास मिला था। उनमें से ११२ छूटकर बाहर आ गगे। उनमें से सिर्फ़ एक ही व्यक्ति वाल्टर ग्राहम रोलैंड को दुबारा हत्या के अपराध में पकड़ा गया। इस अभागे का मामला संसार में प्राणदंड की प्रथा के विरुद्ध सबसे बड़ा तथा सबसे ताज़ा प्रमाण है। जब रोलैंड को फाँसी हो गयी तथा बेचारा सदा के लिए विदा हो गया, यह साबित हो गया कि वह निर्दोष था। प्राणदंड में सबसे बड़ा अवगुण यही है। कथित अपराधी निर्दोष होने पर भी इस संसार से विदा हो जाता है। उस भूल का कोई प्रायश्चित्त नहीं है। रोलैंड के मर जाने के बाद जिस व्यक्ति ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था, उसे पागलखाने भेज दिया गया है। वहाँ आजन्म कारावास से छूटे एक भी "अपराधी" ने समाज का कोई अकल्याण नही किया है।

सन् १९३४-४८ के बीच में, इंग्लैंड तथा वेल्स में, हत्या के अपराध में आजन्म कारागार भोगनेवाले १२९ बन्दी सज़ा पूरी करके जेल से छूटे। इनमें से ११२ छूटने के बाद ही स्वस्थ सामाजिक जीवन बिताने लगे। २७ औरतें छूटी थीं। उनमें से १९ स्वस्थ सामाजिक जीवन बिताने लगीं। चार स्त्रियाँ काफ़ी सुखी जीवन व्यतीत करने लगीं। केवल चार का पता नहीं है।

सर जॉन मैकडोनेल, सुप्रीम कोर्ट के "मास्टर" ने १८८६ से १९०५ के हत्या सम्बंधी आँकड़े एकत्रित किये थे। उनकी जाँच के अनुसार ९० प्रतिशत हत्याएँ पुरुषों ने की थी। लगभग दो-तिहाई हत्याएँ अपनी पत्नियों, प्रेयसियों या रखेलियों की की गयी थी। ३० प्रतिशत हत्याएँ नशे की दशा में, विवाद में या अत्यधिक क्रोध में की गयी थी। ४० प्रतिशत हत्याएँ द्वेष, ईर्ष्या या कामवासना-वश की गयी थी। केवल दस प्रतिशत हत्याएँ आर्थिक कारणों से हुई थी। आज भी उस देश मे हत्या के लिए सबसे "व्यस्त" दिन शनिवार है और शनिवार को भी सबसे ज्यादा हत्याएँ रात को ८ बजे से २ बजे तक के बीच में होती है। कामवासना का यही समय होता है। अतएव ज्यादातर हत्याएँ वासना-वश ही होती हैं।

वासना के अपराधों की अधिकता से ही प्रकट है कि प्राणदंड के भय से अपराध कम नही हो सकते। वासना अंधी होती है। भय से मनुष्य ने अपनी वासना को दवाना नही सीखा है। ब्रिस्टल के जेल के पादरी ने सन् १८६६ में शाही कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि वहाँ के जेलों में प्राणदंड की सज़ा पाये हुए १६७ अपराधियों में १६४ ऐसे थे जो दूसरों को फाँसी पर लटकते हुए देख चुके थे। ब्रिटिश जेलों मे पहले खुले आम फाँसी दी जाती थी ताकि दूसरे नसीहत ले सकें। प्राणदंडवाले अपराधों से जनता में क्षोभ के स्थान पर उत्तेजना तथा वासना की भावना पैदा होती है। वह बड़े चाव से ऐसी हत्याओं के समाचार पढ़ती है। सन् १९२८ में अंग्रेज़ी साहित्य के धुरंधर लेखक टॉमस हार्डी की मृत्यु हुई थी। उन्ही दिनों अमेरिका में श्रीमती स्नाइडर पर अपने पति की हत्या का मुक़दमा चल रहा था। वे सिगसिग (न्यूयार्क के निकट) जेल में क़ैद थी। टॉमस हार्डी की मृत्यु का समाचार एक प्रसिद्ध अमेरिकन दैनिक में ५ कालम इंच में छपा—उनकी जीवनी सहित। पर उसी अख़बार ने श्रीमती स्नाइडर तथा श्री ग्रे के प्रेमकांड पर ११६ कालम इंच में संवाद प्रकाशित किया। एक दूसरे दैनिक ने हार्डी पर २ कालम इंच तथा श्रीमती स्नाइडर पर २८९ कालम इंच छापे।[१]

प्राणदंड से हत्या के अपराध कम होते हैं, यह भूल है। सन् १८२८ से १८८९ तक सिंगसिंग जेल में हत्या के अपराध में २००० व्यक्ति आये थे जिनको अन्य जेलों में ले जाकर फाँसी दी गयी।[२] पर, हत्यारों की संख्या बढ़ती ही गयी। गले में रस्सा

१. Warden Lewis E. Lawes—"Meet the Murderer"—Harper & Brother, New York—1940—Page 45.

२. वही

लगाकर भारत या इंग्लैंड में जिस प्रकार फाँसी दी जाती है, उसमें यदि जल्लाद भूल न करे तो सबसे जल्दी मौत होती है। अमेरिका में प्राणदंड के साथ ही "दया" की भावना से प्रेरित होकर "बिजली की कुर्सी" ईजाद हुई। सन् १८८९ में यह कुर्सी पहली बार सिंगसिंग जेल में आयी। सन् १८९० में आवर्न जेल में पहली बार इस कुर्सी से प्राण लिया गया। पहले प्रयोग में प्राण लेने में ३० मिनट लगे। सन् १९२० तक कुर्सी में सुधार होते-होते ८ से १२ मिनट लगते थे। आज भी कमसे कम ३ मिनट लगते हैं। क्या इस प्रकार प्राण लेना मनुष्यता है ?

फिर, प्राणदड में निर्दोष व्यक्ति के भी प्राण चले जाते हैं, जैसा कि हम ३९२ पृष्ठ पर कह चुके हैं। उसे फिर वापस नहीं बुलाया जा सकता। लिविस ने अपनी पुस्तक में ऐसे अनेक निर्दोष व्यक्तियों का उदाहरण दिया है जो जान से हाथ धोने के बाद बेकसूर पाये गये। वे लिखते हैं—

प्राणदंड से हानि

"यदि आदमी जीवित है, वह क़ैद में चाहे एक, पाँच, दस, बीस, पचास वष तक ही क्यों न पड़ा रहे, उसका दृष्टिकोण एकदम निराशापूर्ण नही रहता। यदि कभी आगे चलकर उसका निर्दोष होना सिद्ध हो गया तो चाहे क्षतिपूर्ति कितनी भी कम हो, कुछ तो हो ही सकती है। वह, कम से कम, बंधन-मुक्त हो सकता है, उसे कुछ ठोस प्राप्ति भी हानि के एवज़ में हो सकती है, और कम से कम वह एक वरदान के लिए सदा कृतज्ञ रहेगा—विचारा जीवित तो है।"[१]

दंड के सम्बध में लिविस की सबसे मार्के की बात हमें कभी न भूलनी चाहिए; जैसे उनको भी कभी नहीं भूलती है। वे लिखते हैं—

"मुझे अपने जेल के पादरी की एक बात कभी नहीं भूलेगी—अपने हाथ के बेंत को अपने अधिकार की निशानी समझो, दंड का प्रतीक नहीं।"[२]

राज्य को दंड देने का अधिकार है। समाज को दड देने का अधिकार है, पर उनका दंड केवल अधिकार की निशानी रहे—प्रतीक न बन जाय। "ख़ून के लिए ख़ून तथा जान के लिए जान"—यह हज़ारों वर्ष पुराना इज़रायली क़ानून आज लागू

१. वही, पृष्ठ ३३९
२. वही, पृष्ठ ५

होने योग्य नहीं है। रोमन सम्राट् ईसाई आगस्टीन ने अपने मित्र मार्सेलेनस से कहा था कि जो लोग ईसाइयों की हत्या करने के अपराध में प्राणदंड पा चुके हैं उनको इसलिए फाँसी पर न लटकाया जाय कि "हम ईश्वर के सेवकों को हत्या करने का प्रतिशोध वैसी ही पीड़ा पहुँचाकर नहीं लेना चाहिए।" सन् १८०० में ब्रिटिश सम्राट् जार्ज तृतीय का प्राण लेने की चेष्टा जेम्स हैटफ़ील्ड ने की। उसे यह सनक सवार हो गयी थी कि "यदि जार्ज तृतीय मार डाले जायँ तो मानव जाति का उद्धार हो जायगा।' उसे "भ्रमित" व्यक्ति कहकर छोड़ दिया गया। आज के अधिकांश हत्यारे इसी प्रकार किसी न किसी भ्रम के, वासना के शिकार हैं।

सन् १९०० तक इंग्लैंड में २२० से ३०० तक ऐसे अपराध थे जिन पर प्राणदंड होता था। सन् १८०७ में सैमुयेल रोमिली ने इस पशुता के विरुद्ध आवाज़ उठायी। उस समय उसे लोग ख़ब्ती समझते थे। ब्रिटेन के प्रधान न्यायाधीश लार्ड एलेनबोरो उसके कट्टर विरोधी थे। अपने कार्य में असफल रोमिली ने सन् १८३२ में आत्म-हत्या कर ली। उसकी मृत्यु के एक महीने बाद लार्ड एलेनबोरो भी मर गये। पर, १८३४ में मरकर भी रोमिली विजयी हुए। जिनकी रक्षा के लिए प्राणदंड का नियम था, उन्हीं ने सरकार से अनुरोध किया कि "दंड की कठोरता से कोई लाभ नहीं हो रहा है।" उन दिनों बैंक को धोखा देने पर प्राणदंड होता था। डा० डॉड पर ऐसा ही धोखा देने का मुक़दमा चला। एक जूरी (पंचों में एक) बड़े उग्र शब्दों में डॉड की भर्त्सना कर रहा था। पर वही स्वयं धोखा देने के अपराध में पकड़ा गया और उसे फाँसी हुई।

फाँसी का पर्व

इंग्लैड में किसी का फाँसी पर लटकना एक पूरा त्यौहार बन जाता था। मेला लग जाता था। लोग खूब नाचते, गाते, लड़ते, झगड़ते थे। जिस जेल में फाँसी होती थी वहाँ के सुपरिन्टेन्डेन्ट को अपने ख़र्च से उन पचासों प्रमुख व्यक्तियों को दावत देनी पड़ती थी जो फाँसी का तमाशा देखने आते थे। सन् १८०७ में इंग्लैंड में एक फांसी के अवसर पर आनन्दोन्मत्त भीड़ में गहरा दंगा हो गया और फांसी के बाद लगभग १०० लाशें सड़क पर मिलीं। लन्दन के "टाइम्स" पत्र ने १८६४ में श्रूसबेरी के एक जेल में फाँसी होने का संवाद छापा था—"लोग इस अवसर पर बढ़िया से बढ़िया कपड़ा पहनकर आये थे। दूर-दूर के लोग तमाशा देखने आये थे। हर फाँसी के बाद सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल को दावत देने में बड़ा पैसा ख़र्च करना पड़ता था। इसी लिए न्यूगेट के गवर्नर अपने जेब के दुःख से फाँसी से भी घृणा करते थे।" फाँसी

देने से क्या लाभ है जब कि फाँसी देनेवाला जल्लाद भी, जान प्राइस एक अपराध में अभियुक्त को फाँसी देने के बाद स्वयं उसी अपराध में पकड़ा गया और अपने "प्रिय" तख्ते पर झूल गया।

इसी लिए लोग इस दंड के विरुद्ध होते जा रहे हैं। चार्ल्स डिकेंस नामक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने लिखा था—"काम की ओर मत देखो। नीयत की ओर देखो।" प्रसिद्ध कवि यीट्स ने भी इसी कथन को दुहराया है। पैली ने भी यही कहा है कि अपराध की गुरुता महत्त्व नहीं रखती। इसलिए राज्य द्वारा हत्या करने से क्या लाभ होता है। जिन देशों ने प्राणदंड समाप्त कर दिया है, उनका अनुभव है कि इससे हत्या आदि के अपराध कदापि नहीं बढ़े हैं। निश्चयतः घटे हैं। जब राज्य स्वयं हत्या करना बन्द कर देगा, उसका नैतिक प्रभाव तो पड़ेगा ही। जिन देशों ने प्राणदंड समाप्त कर दिया है, उनकी सूची तथा दंड समाप्त करने का वर्ष नीचे दिया जा रहा है—

देश	प्राणदंड-समाप्ति का वर्ष	विशेष बात
यूरोप		
१. आस्ट्रिया	१९१९—फिर १९५० में	हिटलर ने अपने शासन में पुनः चालू कर दिया था।
२. डेनमार्क	१८९२-१९३३ से एक-दम समाप्त	
३. बेल्जियम	१८६३	
४. फ़िनलैंड	१९२६	
५. आइसलैंड	१९४४	
६. इटली	१८९०-१९४४	मुसोलिनी ने पुनः चालू किया था।
७. नीदरलैंड्स	१८७०	
८. नार्वे	१९०५	
९. पुर्तगाल	१८६७	
१०. स्वीडन	१९२१	
११. स्विट्ज़रलैंड	१८७४—फिर १९४२	
१२. तुर्किस्तान	१९५०	
१३. पश्चिमी जर्मनी	१९४९	

देश	प्राणदंड-समाप्ति का वर्ष	विशेष बात
दक्षिणी अमेरिका		
१४. अर्जेंटाइना	१९२२	
१५. कोलम्बिया	१९१०	
१६. कोस्टारिका	१८८०	
१७. डोमिनिका	१९२४	
१८. इक्वाडार	१८९५	
१९. मेक्सिको	१९२९	
२०. निकारागुए	१८९३	
२१. पनामा	१९०३	
२२. पेरू	१८९८	
२३. न्यूगिनी	१८०७	
२४. वेनेज़ुएला	१८७३	
उत्तरी अमेरिका (संयुक्त राज्य)		
२५. मिचिगन प्रदेश	१८४७	
२६. रोड द्वीपसमूह	१८५२	
२७. विसकौंसिन	१९५३	
२८. मिनिसोता	१९११	
२९. नार्थ डैजोता	१९१५	
३०. क्वींसलैड, आस्ट्रेलिया	१९१३	

इनके अतिरिक्त नेपाल में भी सन् १९३१ से प्राणदंड समाप्त कर दिया गया है।

भारतवर्ष में प्राणदंड

यह सूची पूरी नहीं है। किन्तु इससे कुछ जानकारी तो हो ही जाती है। सन् १९५६ में, जून के अन्तिम सप्ताह में ब्रिटिश पार्लमेंट की लोकसभा में मजदूर दल के सदस्य सिडनी सिलवरमान का प्राणदंड समाप्त करनेवाला बिल १९ के बहुमत से पास हुआ था। १५८ सदस्य पक्ष में तथा १३३ विपक्ष में थे। उस समय भी

प्रथा के पक्ष में वही दलीलें दी गयी थीं, जिनका हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं। हमारे देश में भी इसे समाप्त करने का सवाल उठा हुआ है। पर हमारी विचारधारा भी इस प्रथा के हिमायतियों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ब्रिटिश पार्लमिन्ट के निर्णय पर टीका करते हुए इलाहाबाद के दैनिक "लीडर" ने ३ जुलाई १९५६ के अपने अंक में लिखा था —

"डा० सप्रू (सर तेज बहादुर सप्रू) प्राणदंड समाप्त करने के विरुद्ध थे। इस प्रथा के पक्ष या विपक्ष में कुछ कहते समय देश में अपराध की स्थिति का भी ध्यान रखना होगा। हमारे देश में काफ़ी हिंसात्मक कार्य हो रहे हैं जिनका परिणाम हत्याएँ भी हैं, पर पहले से सोच विचार कर की गयी हत्याओं की संख्या अनुपाततः काफ़ी कम है. . . .हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति में इस प्रथा को समाप्त करना उचित होगा तथा नियम एवं व्यवस्था में रहनेवाले वर्ग के हित में होगा, यह बात सोचने की है।"

हमारी राज्यसभा में प्राणदंड समाप्त करने के पक्ष में ग़ैर-सरकारी विधेयक पेश हुआ था। वह अस्वीकार हो गया। वर्तमान प्रथा के पक्ष में भाषण करते हुए केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्री पं० गोविन्द वल्लभ जी पंत ने २५ अप्रैल, १९५८ को राज्य सभा में कहा था —

"मेरे विचार से हम सभी चाहते है कि देश मे ऐसी परिस्थिति हो कि न तो कोई मारा जाय, न किसी की हत्या हो और न कोई फाँसी पर लटकाया जाय. . . . किन्तु, हमको इस प्रश्न पर व्यावहारिक रूप से विचार करना चाहिए. . . . हत्याएँ होती है, कुछ तो बहुत पाशविक ढंग से होती हैं। यदि हम प्राणदंड बन्द कर दें तो क्या हत्याएँ बढ़ जायँगी या उनकी संख्या कम हो जायगी. . . .मैं समझता हूँ कि प्राणदंड समाप्त कर देने से आपका उद्देश्य पूरा न होगा।"

पं० पन्तजी ने कुछ रोचक आँकड़े पेश किये थे। उन्होंने बतलाया था कि जहाँ कहीं भी यह प्रथा समाप्त की गयी है, उन देशों में दस लाख आबादी पीछे केवल चार हत्या का प्रति वर्ष औसत था, जब कि भारतवर्ष में इससे ७०० प्रतिशत अधिक यानी प्रति दस लाख व्यक्ति पीछे २६ हत्याएँ होतीं हैं। उन्होंने कहा कि सोवियत रूस ऐसे देशों में भी हत्या के अलावा ऐसे बहुत से अपराध हैं जिनके लिए प्राणदंड होता है। पर भारत में ऐसा नहीं है। यह बात सही है कि अन्य देशों की तुलना में, जहाँ प्राणदंड है, भारत में बहुत कम—केवल हत्या—के अपराध के लिए प्राणदंड होता है। अमेरिकन क़ानून या ब्रिटिश क़ानून के अनुसार जिन अनेक अपराधों के लिए प्राण-दंड है, उनमें बलात्कार भी है। हमारे देश में सन् १९५३ से १९५७ तक

हत्या के अपराध में दंडित तथा फाँसी पर लटकाये गये लोगों की संख्या निम्नलिखित थी[1]—

प्रदेश	प्राणदंड प्राप्त	फाँसी दी गयी
आंध्र	३८७	२३
आसाम	५	२
बंगाल	४५	६
बम्बई	२४१	४९
केरल	११५	२५
मद्रास	७६९	१८७
मैसूर	१६३	२२
मध्यप्रदेश	२१५	३७
उड़ीसा	१३	९
पंजाब	२२८	१२८
राजस्थान	६०	१२
	२,१३१	५००

सन् १९५७ के लिए दो प्रदेशों के आँकड़े प्राप्त नहीं किये जा सके। पर यह स्पष्ट है कि सन् १९५३ से १९५७ के बीच में २,१३१ व्यक्ति प्राणदंड के योग्य समझे गये—पर ५०० को फाँसी हुई, यानी औसतन २३ प्रतिशत व्यक्ति जान से हाथ धो वैठे। पिछले वर्ष की फाँसी चालू साल में होती है—पर औसत निकालने के लिए २३ प्रतिशत कहना गलत न होगा। शेष व्यक्ति या तो आजन्म कारावास भोग रहे हैं, या अन्य कारणों से मुक्ति पा गये हैं। सरदार पटेल ने सन् १९४९ में लोकसभा में, गृहमंत्री की हैसियत से कहा था कि ४० प्रतिशत दंडित व्यक्ति फाँसी पाते हैं। सन् १९४९ में ४१९ व्यक्तियों को फाँसी लगी थी।

१. अखिल भारतीय अपराध निरोधक समिति के सौजन्य से प्राप्त आँकड़े।

प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि सबसे अधिक फाँसी पंजाब में हुई—प्राणदंड की सज़ा सुनाये गये लोगों में से ५६ प्रतिशत को फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़ा।

मद्रास का दूसरा नम्बर था यानी २४ प्रतिशत। केरल तीसरा था—२१ प्रतिशत। बम्बई का २० प्रतिशत, मध्यप्रदेश का १७ प्रतिशत, बिहार का ११ प्रतिशत और आंध्र का ७ प्रतिशत। फाँसी की सज़ा पानेवालों की संख्या सबसे अधिक उत्तर प्रदेश की थी—यह प्रदेश सबसे बड़ा है भी। किन्तु भारत के अन्य बड़े प्रदेशों की तुलना में उत्तर प्रदेश में वास्तविक फाँसी कम हुई। इस सम्बंध में नीचे दी गयी तालिका से वास्तविक परिस्थिति की अच्छी जानकारी हो सकती है—

	वर्ष में जितने बंदियों को फाँसी की सज़ा सुनायी गयी					वर्ष में जितने बन्दियों को फाँसी हुई				
	१९५३	५४	५५	५६	५७	१९५३	५४	५५	५६	५७
आसाम	२	—	—	२	१	—	—	—	१	१
उड़ीसा	४	६	—	३	०	४	१	३	१	०
उत्तर प्रदेश	३१६	३९८	३६९	३५५	४५९	४८	३२	४५	३३	३७
मैसूर	२१	२०	६६	४२	१४	७	१	१७	१	१
बम्बई	४३	२९	६५	७५	२९	१९	२	१७	८	३
बंगाल	३	७	२	१८	१५	—	१	२	१	०
बिहार	३३	२५	४५	२४	१७	५	४	५	२	०
मध्यप्रदेश	३३	५१	४१	३३	५७	४	४	९	२	२
पंजाब	७६	३९	३४	५८	२१	४७	३३	१९	२५	४
राजस्थान	१८	१३	६	१२	११	२	४	४	—	२
मद्रास	१९७	१२४	१३५	१९२	१२१	४६	४४	३७	३२	२८
आन्ध्र	५८	६५	१३०	९९	३५	४	१	५	८	५
केरल	३२	२३	२२	२०	१८	४	९	९	३	०

जहाँ पर शून्य बना है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि कोई सूचना प्राप्त नहीं है। जहाँ केवल — ऐसा चिन्ह है, उसका अर्थ है कि एक भी सज़ा या फाँसी नहीं हुई।

अस्तु, भारतवर्ष में प्राणदंड की प्रथा रहे अथवा नहीं, इस सम्बंध में हम यहाँ पर विचार नहीं करना चाहते। ऊपर मैंने अपनी पुस्तक "प्राणदंड" का जिक्र किया है, जिसमें इस सम्बंध में काफ़ी विचार किया गया है। मैं इस प्रथा का, इस दंड-प्रणाली का विरोधी हूँ, यह बात मैंने छिपायी भी नहीं। मेरा विश्वास है कि अधिकांश विचार-

शील व्यक्ति मुझसे सहमत हैं। मनुष्य का प्राण ले लेना आसान है पर जिस वस्तु को हम वापस दे नहीं सकते, उसे छीनने का हमें अधिकार भी नहीं है। और सबसे वड़ी बात है "दया"। जिस समाज में दया नहीं है, वह समाज पशुवत् है।

क्लैरेंस डैरो का मत

शिकागो में क्लैरेंस डैरो नामक एक प्रसिद्ध वकील थे। १३ मार्च १९३८ को ८१ वर्ष की उम्र में इनकी मृत्यु हुई थी। अपराध के सम्बंध में उनका कहना था[1] —

"अपराध का कारण होता है। आज वैज्ञानिक इसी कारण का अध्ययन कर रहे हैं। अपराध-शास्त्री इस विषय में अनुसंधान कर रहे है। पर हम वकील लोग, हम कानूनदाँ लोग इनको दंड देते हुए, इनको फाँसी देते हुए चले जा रहे हैं। हम सोचते हैं कि लोगों में आतंक पैदा करके हम अपराध को समाप्त कर सकते हैं। यदि मानव-हृदय की कठोरता को कोमल बनाने का कोई उपाय है, यदि बुराई और घृणा तथा उनसे सम्बंधित ख़राबियों के हनन का कोई उपाय है, तो वह घृणा या निर्दयता द्वारा नहीं बल्कि दानशीलता, प्रेम और समझदारी से काम लेना है। ऐसा कोई दार्शनिक नही पैदा हुआ, ऐसा कोई धार्मिक नेता नहीं हुआ और ऐसा कोई धर्म नहीं है जो इस बात को न सिखलाता हो. . . . मैं उस भविष्य के नाम पर आपसे अनुरोध करूँगा, जिस युग में मनुष्य तर्क, न्याय, समझदारी और विश्वास से काम लेगा और यह मानेगा कि हर एक का जीवन बचाने के योग्य है और मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है 'दया'।"

क्लैरेंस डैरो ने ये शब्द हत्या के एक अपराधी की ओर से बहस करते हुए शिकागो की अदालत में कहे थे। जब उन्होंने अपनी दलील समाप्त की, विचारपति कैवरली के नेत्रों से आँसू बह रहे थे। समूची अदालत स्तब्ध थी। डैरो ने केवल अपने उपरिलिखित तर्कों से रिचार्ड लोब तथा नथान लियोपोल्ड के प्राण बचा लिये थे। वे सफल हुए क्योंकि विचारपति ने क़ानून की सही व्याख्या समझ ली। क़ानून की पंक्तियों से ही सब कुछ अर्थ नहीं निकलता। उसकी भावना को भी समझना होगा। मानव के इतिहास के अन्य क्षेत्रों के समान क़ानून में भी अतीत की बातें ऐसा अर्थ ग्रहण कर लेती हैं जिनका वर्तमान तथा भविष्य के साथ सामंजस्य नहीं हो सकता। "बीती वातों का बखान करना आसान है पर भविष्य के बारे में कुछ कहना बड़ा

१. Readers' Digest—July, 1959. पृष्ठ ४३

कठिन है. . . .यह तो पता नहीं है कि नवीन तर्कों से ताज़े मामलों में जज के मन तथा बुद्धि पर क्या प्रभाव पड़ेगा। अदालत में न्यायाधीश के व्यक्तित्व की हम पर जो छाप पड़ी है, उससे हमे यह जानकारी कदापि नहीं हो सकती कि अमुक मामले में उनका फ़ैसला क्या होगा। संयुक्त राज्य अमेरिका की केन्द्रीय अदालतों में जो जज नियुक्त होते हैं वे जीवन भर के लिए होते हैं। उन्होंने तटस्थ रहने का संकल्प लिया है। वे तर्क-बुद्धि से ही किसी निर्णय पर पहुँचते है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए अधिक ठोस तथा उचित कानून की रचना ही उचित प्रतीत होती है।"[१]

जुआ की मिसाल

इसलिए, आज की नयी दुनिया में, सभ्यता तथा समाज की नवीन गति में, हमको अपने क़ानूनों को भी दुहराना, सुधारना पड़ेगा। अपराध से अधिक महत्त्वपूर्ण अपराध की व्याख्या है। इस सम्बंध में हम जुआ की मिसाल पेश करना चाहते हैं। आदि-काल से जुआ की, जुआ खेलने की, निन्दा होती चली आ रही है। हार-जीत की बाज़ी लगाना बुरा समझा जाता है। किन्तु "ज़िन्दगी एक जुआ है"—यह कहना हम बुरा नहीं समझते। जिस काम के परिणाम का निश्चय न हो, उसे जुआ समझना चाहिए। आज जुआ की व्याख्या करना इसलिए कठिन हो रहा है कि नये-नये खेल ऐसे बन गये हैं जिनको जुआ कहना चाहिए, पर वे ऐसा कहे नहीं जाते। बहुत सी सरकारें ऐसी हैं जो जुआ खेलने को सरकारी प्रोत्साहन देती है, जिनकी बहुत बड़ी आमदनी जुए के द्वारा है। भारतीय सभ्यता में जुआ सब विपत्तियों तथा पापों की जड़ समझा गया है पर पश्चिमी सभ्यता में ऐसा नही है। वर्षों तक इंग्लैंड में इस बात पर खूब बहस चलती रही कि जुआ अपराध है भी या नहीं। सन् १९५६ में इस विवाद ने काफ़ी ज़ोर पकड़ लिया था। जो लोग जुआ को जायज़ व्यसन मानने के पक्ष में थे उन्होंने तर्क पेश किया कि उसी साल, वित्तमंत्री हैरल्ड मैकमिलन (वर्तमान प्रधान मंत्री) ने स्वयं एक सरकारी जुआ शुरू किया। राष्ट्रीय बचत योजना के नाम पर एक पौंड (चौदह रुपये) के टिकट चालू किये गये। लाटरी डालकर जिसका नाम निकलता उसे १००० पौंड (चौदह हज़ार रुपये) तक इनाम मिलता है। सरकार की ओर से कहा गया कि चूंकि एक पौंड के टिकट वाले को भी अपने रुपये का भुगतान तो मिलता

१. Challenge, New York, Vol. II. No. 6, August, 1959—Page 28.

ही है अतएव यह लाटरी जुआ नहीं कही जा सकती। जुआ केवल उसे कहते हैं जिसमें कुछ खोने की सम्भावना हो।

इंग्लैंड में, फुटबाल के खेल में, हार-जीत पर पहले से ही सट्टा होता है। ऐसे सट्टे के टिकट बिकते हैं। सही भविष्यवाणी करनेवाले को ७५,००० पौंड तक प्राप्ति हो सकती है। सरकार को भी ऐसे सट्टे से लाभ होता है। उसे कर के रूप में काफ़ी रकम प्राप्त हो जाती है। किन्तु जुआ के विरुद्ध जो सबसे बड़ी दलील है उसका उत्तर देना कठिन है। २६ अप्रैल १९५६ को ब्रिटिश पार्लमेंट की सरदार सभा में ब्रिटेन के सबसे बड़े पादरी डा० जियाफ्रे फ़िशर ने बड़ा जोरदार भाषण किया था। उन्होंने कहा था कि जुआ सबसे बड़ा अवगुण है—मनुष्य को हैसियत से कहीं ज्यादा ख़र्चीला बना देना। आकाश से फट पड़नेवाली आमदनी की आशा में वह ख़र्च करता चलता है। कर्ज़दार हो जाता है। फिर वह चोरी, डाका, सभी कुछ कर सकता है।

आज की सभ्यता में आवश्यकताओं के बेतहाशा बढ़ जाने से हर एक व्यक्ति "ऊपर की आमदनी", बिना कमायी आमदनी की तलाश में है। इसी लिए जनमत जुआ के पक्ष में अधिक होता जा रहा है। एक ब्रिटिश पत्र ने लिखा है[१]—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि जुए के प्रति जनसमूह का दृष्टिकोण इधर काफ़ी बदल गया है. . . .एक समय था जब अधिकांश जनता जुए को सबसे भयंकर पाप समझती थी। अब वैसी बात नहीं है। अब उस भावना में परिवर्तन हो गया है।"

जब समाज का विचार इसी प्रकार बदल सकता है कि कल का "सबसे बड़ा पाप" जुआ आज यदि "उतना पाप" नहीं रह गया तो आज के "सबसे बड़े अपराध"—हत्या के विषय में भी भावना बदल सकती है। अपराध के विषय में समाज की मौलिक तथा प्रारम्भिक भावना बदल गयी है। शेल्डन ग्लूक ऐसे प्रसिद्ध अपराधशास्त्री का कथन है[२]—

"सन् १८९७ में, जबसे लोम्ब्रोज़ो ने 'जन्म-जात अपराधी' के सिद्धान्त को प्रकाशित किया था, अपराध के लिए किसी एक कारण की तलाश हो रही है।. . . .

१. Guy Eden's Letter from London—May, 1956—Page Six.

२. Sheldon Glueck in the British Journal of Delinquency, Vol. VII, No. 2, Oct., 1956—Article—"Theory and Fact in Criminology"—Page 92-94.

आज क्या कोई इस बात में विश्वास करता है कि अपराधी प्रवृत्ति पैतृक सम्पत्ति है? क्या लोम्ब्रोजो भी इसमें विश्वास करते थे.....अब तो कोई भी अपराध-शास्त्री यह नहीं कहता कि अपराध पारिवारिक देन, विशिष्टता है। अब वे सिर्फ़ यही कहते हैं कि सामाजिक रूप से इस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है कि जन्तु-शास्त्र की दृष्टि से संसार में प्रकृति ने हर एक मनुष्य को समान नहीं पैदा किया है और कुछ लोगों में अपराधी प्रवृत्ति के ऐसे लक्षण मौजूद होते हैं जो किसी में अन्य लोगों की तुलना में अधिक बलवती अपराधी प्रेरणा पैदा करते रहते हैं....कुछ लोग कहते हैं कि अपराध करने की शिक्षा प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति अपने मन से अपराधी काम नहीं करने लगता। आश्चर्य है कि कोई आजकल ऐसी दलील कैसे पेश कर सकता है। ऐसे लोगों का मतलब तो यह हुआ कि हर एक अपराधी कार्य या तो अन्य अपराधियों द्वारा सिखाया जाता है या उनकी छूत है। पर ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि मनुष्य में आज भी वे आदिकालीन उत्तेजनाएँ तथा प्रेरणाएँ वर्तमान हैं जिन्हें हम किसी दूसरे पर प्रहार करना, प्रेम करना, प्राप्त करना, ग्रहण करना, कामवासना आदि कहते हैं और इन बातों को दूसरों से सीखने के पहले ही बच्चे आपसे आप ग्रहण कर लेते हैं और इनके कारण वे समाज-विरोधी कार्य करने लगते हैं। अशिष्ट, अनियंत्रित तथा समुचित शिक्षा के अभाव में बच्चा झूठ बोलना, बहाने बनाना, क्रोध करना, घृणा करना, मक्कारी, चोरी, लड़ाई-झगड़ा, सभी कुछ करने लगता है। सीधा-सादा झूठ बोलने के लिए, दूसरे का सामान चुरा लेने के लिए या परस्पर कुकर्म करने के लिए कुछ सिखाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। बच्चे को शुरू से ही बालिग़ों के वातावरण में अपने निजत्व को प्राप्त करने के लिए, अपने लिए प्रेम प्राप्त करने के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए, अहंभाव या अपराध के द्वारा नहीं, बल्कि अपराध-विहीन तथा कल्याणकारी कार्यों को लेकर संघर्ष करना पड़ता है.....पर क़ानून के दायरे में रहनेवाला चरित्र बड़ी कठिनाई से क्रमशः प्राप्त होता है।"

समाज को ऐसी परिस्थिति में अपराधी की सहज-सिद्ध मानव-भावनाओं का अनादर करके कौन समाजशास्त्री केवल कठोर दंड तथा प्राण ले लेने के दंड से ही समाज के सुधार की कल्पना करेगा? हमने दंड का सीधा-सादा रास्ता क़ैदख़ाना बना रखा है—पर उसमें मनुष्य रहते हैं, यह नहीं भूलना चाहिए।

अध्याय ३४

बन्दी की समस्या

वंदी के सम्बंध में ट्रेवर फ़िलपॉट ने एक समाचारपत्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण लेख लिखा था। उस लेख की भूमिका में समाचारपत्र के सम्पादक ने लिखा था—

"ज्यों-ज्यों अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है, जनता को यह जानने की चिन्ता हो गयी है कि हमारे जेलों में क्या हो रहा है। क्या जेलों में रहने से आदमी का सुधार होता है, वह भ्रष्ट हो जाता है, या बर्बर हो जाता है?"

फ़िलपॉट लिखते हैं—[१]

"बन्दीगृह में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति भिन्न तथा पृथक् समस्या है। हर एक बन्दीगृह का लक्ष्य होता है आदमी को समाज में पहले से अच्छा बनाकर वापस भेजना, ताकि जिस दिन वह बन्द हुआ था, उस समय के समान अपराध करने की सम्भावना छूटने के समय काफ़ी कम हो जाय...सुधारक तो यह रोते हैं कि हमारे जेलों में से क़ैदी पहले की तुलना में अधिक बर्बर तथा अपराध से अधिक परिचित बनाकर भेजे जाते हैं। और दूसरी ओर, छूटे हुए क़ैदी द्वारा कोई बड़ा अपराध होने पर जनता चिल्लाती है कि जेलों को "अवकाश-गृह" बना दिया गया है। वहाँ क़ैदियों को बड़ा आराम दिया जा रहा है। जब तक अधिक सख्ती से काम न लिया जायगा, अपराधी सुधर नहीं सकता।"

इतना लिखने के बाद श्री फ़िलपॉट ने ब्रिटेन के जेलों की—जिनमें से बहुत से कारागार संसार में आदर्श बन्दीगृह समझे जाते हैं—बड़ी निन्दा की है। उन्होंने छोटी छोटी बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जैसे ३४ स्नानागार १३०० आदमियों के लिए हैं, रहने का स्थान बहुत कम है, कमरे ठीक नहीं हैं, इत्यादि। श्री फ़िलपॉट का मत है कि क़ैदख़ानों में और अधिक सुधार किया जाय। मनुष्य को मनुष्य समझकर

१. Trevor Philpott—"Men in Prison"—Sunday Times, London, Sept. 30, 1958.

रखा जाय। जेल में बन्द आदमी का मनुष्य समझा जाना जितना आवश्यक है, उतना ही ज़रूरी है बाल अपराधियों को वास्तव में बाल समझना। बाल अपराधियों की देखरेख करनेवालों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि अपराधी बालकों के लिए वे माता-पिता या अभिभावक का स्थान ले सकें।[१] तभी वे वास्तव में बाल अपराधी का सुधार कर सकेंगे। इसी प्रकार जेल के कर्मचारियों को अपराधियों का मित्र, सहायक, शिक्षक बनकर रहना सीखना चाहिए, तभी वे उनकी समस्याओं को भली प्रकार समझेंगे। तभी वे बन्दियों के साथी बनकर उनको सन्मार्ग पर ले जा सकेंगे। कैदखाने में बन्द रखने का उद्देश्य केवल सन्मार्ग पर ले जाने योग्य बना देना है। यूगोस्लाविया ऐसे कम्यूनिस्ट विचारधारा के देश भी यही कहते हैं कि "दंड का उद्देश्य अपराध से समाज की रक्षा करना है।" यूगोस्लाविया के जेल सम्बंधी नियमों में स्पष्ट लिखा हुआ है कि "जेल में कुछ समय के लिए दंडस्वरूप भेजने का मुख्य उद्देश्य समाज की अपराध से रक्षा करना है, बालिग़ अपराधी से रक्षा करना भी है तथा बच्चों को पुनः शिक्षित कर जीवन में पुनः स्थापित कर देना है।

"किन्तु हमारी सम्मति में आदमी को दीवार के भीतर दंडस्वरूप बंद कर देने का मतलब यह नहीं है कि बच्चे और बड़े अपराधियों में बड़ा भेदभाव किया जाय। बड़े के लिए तो यह सोचा जाय कि उसके अपराध का बदला लेना है तथा छोटे को पुनः शिक्षित कर जीवन में पुनः स्थापित करना है। प्रत्येक दंड का एक ही उद्देश्य होना चाहिए और वह यह कि हर मामले में, दंड मूलतः जीवन की पुनः शिक्षा देने के लिए है। इस विषय में उम्र का कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए। यह ज़रूर है कि बड़ों के जेल में तथा बाल-सुधार गृह के भीतरी प्रबंध में विभिन्नता होगी, क्योंकि जीवन में पुनः शिक्षित करने का काम दोनों के लिए भिन्न रूप से होगा।[२]"

१. Substitute for Parents **वाक्य का प्रयोग** First Congress of the United Nations on the Prevention of Crime and the Treatment of Offenders, Geneva, 1955 **के अवसर पर** The Training of Specialized Education for Maladjusted Children—International Catholic Child Bureau **के लेख में किया गया था।**

२. Regional Consultative Groups in the Field of the Prevention of Crime and Treatment of Offenders—Standard Minimum Rules for the Treatment of Prisoners—Approved by the International

फिलप्पीन में

फ़िलप्पीन में प्रत्येक बन्दी के मन तथा बुद्धि का अध्ययन किया जाता है। उसके आचरण की प्रत्येक बात की छानबीन की जाती है। यह सब इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति के मन-बुद्धि-शरीर के वास्तविक रोग का पता लग जाय तो उसकी वैसी चिकित्सा की जाय। किन्तु, आम तौर पर जेलखाने में अपराधी को बन्द कर देने का औचित्य यही कहकर समझाया जाता है कि "समाज की अपराध से रक्षा करनी है।"[१] ऐसी सजा का मूलत: मतलब ही यह है कि उस व्यक्ति की स्वतंत्रता छीन ली गयी। उसे समाज से अलग कर दिया गया। जेल का धर्म है कि जब उस बन्दी को समाज में वापस करे, उसे ऐसा बना दे कि वह समाज में व्यवस्थित तथा उचित जीवन व्यतीत करने लगे।[२] यदि ऐसा नहीं होता तो जेल-जीवन को निरर्थक ही मानना चाहिए। ज़्यादातर लोग जेल को दंड का स्थान मानते हैं, सुधार का नहीं। हमने फ़िलप्पीन के जेलों में मानव के मन-बुद्धि-स्वभाव का अध्ययन करने की बड़ी अच्छी प्रणाली का ऊपर उल्लेख किया है। पर उसी देश के अधिकांश नागरिकों का यही मत है, या यही धारणा है कि "अदालत किसी व्यक्ति को जेल इसलिए नहीं भेजती कि उसका सुधार करना है, बल्कि उसे दंड देना है। अदालतों के इस वाक्य से कि "दंड भोगने के लिए—" ऐसी ही धारणा होती है. . . .वह दुर्भाग्य की बात है कि मानव के पुनर्वास के लिए, उसका सुधार करने के लिए, उसको ठीक मार्ग पर लाने के लिए जो कुछ काम होता है वह जेलों के भीतर ही होता है। यदि बाहर हो तो अधिक लाभकर हो। अपराधियों के सम्बंध में सेवाकार्य करनेवाली संस्थाओं में भी आपस में कोई सम्पर्क या सहयोग नहीं है. . . .पुलिस-कर्मचारी की शिक्षा ऐसी हुई है कि वह सोचता है कि चाहे जिस तरीके से हो, अपराधी को पकड़कर जेल में बन्द करा देना ही उसका कर्तव्य है। पुलिस-अधिकारी उस अभागे अपराधी के प्रति ऐसा व्यवहार करता है कि अपराधी के मन में भय, ग्लानि आदि की ऐसी भावना भर जाती है जिससे अपराधी के प्रति अश्रद्धा की मनोवृत्ति का उदय होता है. . .जेलों में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि जो व्यक्ति बन्द है, उस व्यक्ति से

and Penitentiary Commission on July 6, 1951—United Nations Secretariat Publication, Page 19.

१. वही, पृष्ठ १८

२. वही, पृष्ठ १८

ज्यादा समाज के हित में है कि जिस समाज में उस बंदी को छूटकर पुनः वापस जाना है, उसमें उसे उचित, न्यायसंगत तथा सभ्य जीवन बिताने योग्य बना दिया जाय.. अपराधी को दंड देने के लिए जो क़ानून बने हैं उनका वास्तविक उद्देश्य है आदमी की नयी ज़िन्दगी, नयी सुधरी ज़िन्दगी शुरू करा देना....अदालत के रूप में, सरकारी अधिकार से मुक्त जो लोग न्याय करने बैठते हैं उनकी बुद्धि में स्वयं उलझन है। इस-लिए वे अपराधी को ठीक से समझ नहीं सकते....सज़ा काटकर छूटे हुए अपराधी के प्रति समाज भी अपना कर्तव्य नहीं पहचानता। यह समाज का कर्तव्य है कि उसे जीवन के सही मार्ग पर लगा दे।"[१]

केवल पुलिस के द्वारा अपराध नहीं रुक सकता। पुलिस अपराधी का सुधार नहीं कर सकती। लेफ्टिनेन्ट कर्नल तिजेरो का मत है कि—

पुलिस की आलोचना

"यह कहना भूल है कि असंतुलित व्यवहार करनेवाले, दुष्ट प्रकृति के या जिन्हें हम पतित कहते हैं, ऐसे लोग समाज में अधिक संख्या में हैं और अधिक शक्तिशाली हैं, जनसमूह को दुष्ट और दुश्चरित्र बनाते रहते हैं....यह दुर्भाग्य की बात है कि ज्यादातर लोग पुलिस के काम में जिस त्याग तथा योग्यता की आवश्यकता होती है, उससे अनभिज्ञ हैं...पुलिस की अनुचित आलोचना करने की एक आम आदत सी पड़ती जा रही है। बड़ी आसानी से यह कह दिया जाता है कि पुलिस क्या कर रही है.. पेरू में हमने जनता के सामने इतने आँकड़े और इतनी सूचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिससे उसे मालूम हो जाय कि पुलिस उसकी कितनी सेवा कर रही है।"[२]

१. Comments on the Minimum Rules for the Treatment of Offenders— adopted by the Latin American Seminar, Rio De Janeiro, Brazil, April 6 to 19, 1953—By Dr. Alfredo M. Bunye, Director of Prisons, Republic of the Philippines, Oct., 1954—Pages 1-6.

२. Revue Moderne De La Police—**अँग्रेजी संस्करण** Published by the International Federation of Senior Police Officers—Paris—September, October, 1959—Pages 12-13.

समाज को पुलिस को दोष न देकर स्वयं अपने से सवाल करना चाहिए कि दुश्च-रित्रों के सुधार के लिए वह क्या कर रहा है। पुलिस को केवल दो बातों का ध्यान रखकर अपराधी के सम्बंध में अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। ३ से ५ जून, १९५४ में, पेरिस में राष्ट्रसंघ द्वारा "मानव अधिकार सम्मेलन" हुआ था। यह १२वाँ अधिवेशन था। इसमें जो निर्णय हुए थे उनमें धारा १७ बड़े महत्त्व की है। इसके अनुसार[1]—

१. किसी के निजी जीवन में, पारिवारिक जीवन में, पत्र-व्यवहार में, उसके सम्मान या प्रतिष्ठा में मनमाना या ग़ैर-क़ानूनी हस्तक्षेप कदापि न होगा।

२. प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार ग़ैर-कानूनी हस्तक्षेप से अपनी रक्षा का अधिकार है।

जेल में अनुचित दण्ड

अतएव पुलिस किसी भी व्यक्ति की स्वाधीनता का अपहरण करने के पहले भली प्रकार से सोच विचार ले कि क्या वह उचित काम कर रही है। यदि उसे अपने कार्य के औचित्य पर विश्वास जम जाय, तभी किसी को गिरफ्तार किया जाय। यदि इस भाव से काम किया गया तो पुलिस की अनावश्यक आलोचना भी समाप्त हो जायगी। जेल की आलोचना भी तभी समाप्त होगी जब जेलखाने मनुष्य को मनुष्य समझकर, बन्दी को समाज की अमानत समझकर उसके साथ व्यवहार करेंगे। सन् १९५० से ही संयुक्त राष्ट्रसंघ इस बात की ओर सभी देशों का ध्यान दिला रहा है कि ऐसा "कम से कम सर्वमान्य नियम" बना दिया जाय जो हर एक देश के जेलों में मान्य हो तथा जिसके द्वारा हर एक देश के जेलों का शासन हो। बहुत सोच-समझकर ऐसे नियम बनेंगे तो मनुष्य के मौलिक अधिकारों की रक्षा होगी। उसके जीवन में असली सुधार की गुजायश होगी। इसी कार्य के लिए यूरोपीय देशों का एक सम्मेलन संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्त्वावधान में ८-१६ दिसम्बर, १९५२ में जेनेवा में हुआ था। सन् १९५५ में प्रथम अपराध-निरोधक कांग्रेस, जेनेवा, में भी यही कार्य हुआ था। उसके बाद तीन भिन्न-भिन्न सम्मेलन राष्ट्रसंघ द्वारा और हो चुके है। सन् १९५२ के सम्मेलन मे जेल में जो साधारणतः सजाएँ दी जाती हैं, उनकी निन्दा की गयी थी तथा उनके सम्बन्ध में नियम बनाये गये थे। उदाहरण के लिए नियम

१. वही, पृष्ठ १५, Commission on Human Rights.

२६ (४३) है[1]। क़ैदियों को ज़रा से कसूर पर कालकोठरी में बन्द कर दिया जाता है या उनकी खूराक में कमी कर दी जाती है। नियम २६ (४३) द्वारा आदेश दिया गया है कि जब तक जेल का डाक्टर लिखित प्रमाणपत्र न दे दे कि ऐसी सज़ा से क़ैदी के मन तथा शरीर के स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, यह सज़ा न दी जाय। नियम ३० (४७) द्वारा क़ैदियों को यह अधिकार दिया गया है कि जब जेल-निरीक्षक लोग मुआयना करने आयें, उनके सामने वे निर्भय होकर अपनी शिकायतें कह सकते हैं। उन्हे कोई दंड नही दिया जा सकता कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। नियम ३२ (४९) ने जेल-अधिकारियों को हिदायत दी है कि क़ैदी को बाहरी दुनिया से सम्पर्क बनाये रखने में सहायता दें। वे पत्र-व्यवहार कर सकें। उनसे लोग मिलने आ सकें। नियम ३९ (५६) में हिदायत की गयी है कि क़ैदियों को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने में खराब, गन्दी सवारियाँ न दी जायें और उन्हें अनावश्यक कष्ट न दिया जाय।

इस सम्मेलन ने सभी देशों के मानने योग्य नियम बनाने की चिंता में कई उपयोगी सुझाव अस्वीकार भी कर दिये—जैसे नियम ५८ (७५) कि जिन देशों में ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को भाड़े पर कैदी से मज़दूरी लेने का नियम है, वह समाप्त किया जाय या नियम ६० (७७) कि कैदियों से ८ घंटे से ज़्यादा काम न लिया जाय। पर, शुरू से लेकर अन्त तक हर नियम में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि बन्दी के साथ अनावश्यक सख्ती न बरती जाय तथा उसके साथ उदारतापूर्वक व्यवहार हो। जेल के काम से अनभिज्ञ लोगों को जेल का अधिकारी न बनाने के विषय में प्रायः सभी एकमत थे और यह कि जेल-अधिकारियों को विशेष शिक्षा[2] देना ज़रूरी है। क़ैदियों के लिए "खुले जेल" स्थापित करने का प्रस्ताव अगस्त १९५० में पास हो चुका था।[3] सन् १९५२ में इस सम्बंध में एक प्रश्नावली बनाकर हर एक देश को भेजी गयी थी। १६ से १८ अक्टूबर, १९५२ को लंदन में उन उत्तरों पर विचार किया गया और उनसे पता चला कि हर एक देश में "खुला जेल" किसी न किसी रूप में है, पर

१. Conference of the European Regional Consultative Group—U. N. Report, Geneva, 8-16 Dec., 1952—Page 18.

२. वही—The Recruitment, Training and Status of the Staff of Penal and Correctional Institutions—पृष्ठ २२, एजेन्डा का ६वां विषय

३. वही, एजेन्डा का ७वां विषय—पृष्ठ २९

"खुले" की हर एक की अपनी परिभाषा है, अपनी व्याख्या है, अपना तरीका है तथा भिन्न प्रकार के बंदी इनमें रखे जाते हैं। इस विषय पर हम आगे विचार करेंगे।

जेलों के प्रबंधक

जेलों के लिए अधिकारी नियुक्त करने के पहले उन्हें समुचित शिक्षा देने का प्रबंध बहुत कम देशों में है। हमारे उत्तर प्रदेश में, लखनऊ में जेल ट्रेनिंग स्कूल जैसी संस्था है, वैसी भारतवर्ष में केवल एक-दो और हैं। हमने ऊपर फिलप्पीन देश में जेल-सुधार के बारे में कई बार उल्लेख किया है, पर वहाँ भी जेल के अधिकारियों की "ट्रेनिंग" के लिए कोई प्रबंध नहीं है।[१] वर्तमान जेल-अधिकारियों में से "बहुत कम ऐसे है जिनको इस कार्य के लिए समुचित शिक्षा मिली है।[२] संयुक्त राज्य अमेरिका में इसका कुछ प्रबंध है पर इंग्लैंड में काफ़ी दोषपूर्ण प्रबंध है। भारत के पड़ोसी बर्मा में १ अगस्त १९५४ को ८७०२ क़ैदी जेलों में थे जिनमें ५,९६७ सजा-याफ्ता, २,३८२ विचाराधीन, ३४८ नजरकैद तथा ३ ऋण न चुकाने के लिए क़ैदी थे। बड़ी उम्रवालों के लिए ३३ जेल थे, एक बाल अपराधियों के लिए तथा केवल एक बोर्स्टल संस्था थी। वहाँ हाई स्कूल पास व्यक्ति भी जेलर हो सकता है। उसके लिए छः महीने की ट्रेनिंग होती है। बड़े अफसरों के लिए, जो जेल की नीति के प्रति जिम्मेदार हैं, कोई ट्रेनिंग आवश्यक नहीं है।[३] जेलों के प्रबंध में बहुत कुछ खराबी केवल इसलिए है कि उनके कर्मचारी यह जानते ही नहीं कि उनकी नियुक्ति का क्या उद्देश्य है, उन्हें वास्तव में क्या करना है।

क़ैदियों से काम लेना चाहिए या नहीं

जेल के भीतर बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनके बारे में सभ्य जगत् को अपनी नीति निर्धारित करनी है। उदाहरण के लिए, कैदियों से काम लेने का सवाल है। बहुत से देशों में क़ैदियों से जानवरों की तरह काम लिया जाता है। कुछ देशों में गैर-सरकारी लोग, जैसे ठेकेदार आदि अपने काम के लिए, चाहे सड़क पीटना ही क्यों न

१-२. Selection and Training of Personnel—Alfred M. Bunye, U. N. O. Publication—1955—Pages 3 and 5.

३. वही—बर्मा के लिए लेखक Ba Thein—U. N. O. 1955—Pages 1 and 9.

हो, जेल के क़ैदी ले लेते हैं। इन क़ैदियों का उपयोग कराकर सरकार स्वयं अपनी आमदनी कर लेती है। जेल में क़ैदी से "उपयोगी काम" लेना आर्थिक कारणों से शुरू हुआ। सरकार का खर्च होता था उन्हें खिलाने तथा पालने में। उसे उनसे उपयोगी काम भी लेना था।

१९वीं सदी के प्रारम्भ से कैदियों को अलग-अलग कोठरी में बन्द करने से वास्तव में उनके काम की, परिश्रम की विभिन्नता शुरू हुई—जैसे दर्जी का काम इत्यादि। तबसे उपयोगी काम सिखाने का महत्त्व बढ़ता ही गया है। खुली हवा में काम करने के प्रस्ताव ने ऐसे विकास में और भी योगदान किया, यद्यपि इसमें एक खराबी भी पैदा हुई है। खुली हवा में क़ैदी से काम लेने को ही अपराधी की चिकित्सा की एकमात्र औषधि समझ लिया गया है। नागरिक वातावरण में काम करनेवाले मजदूरों (क़ैदियों) को सही ढंग की शिक्षा नहीं प्राप्त हो पाती है। सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं के कारण साम्पत्तिक लक्ष्य दोषपूर्ण हैं—उनसे ऐसे काम लिये जाते हैं जैसे अनुत्पादक क्षेत्रों में खेती कराना। किन्तु उनकी "चिकित्सा" की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। सही ढंग से जेल के उद्योग-धंधे चलाने का काम नहीं हो रहा है, कुछ तो इसलिए कि कारखानों के मालिक विरोध करते हैं तथा व्यवसाय संघ भी जेल के मजदूरों की प्रतिस्पर्द्धा के भयवश विरोध करते हैं। इसके अलावा जिन अधिकारियों के हाथ में कारोबार खोलने के लिए आर्थिक मंजूरी देना है, वे पैसा देने में हिचकते हैं। जेल के क़ैदियों से काम लेने के बारे में आज सभी की राय है कि काम ऐसा हो—

(१) जिससे बन्दी को ऐसी शिक्षा मिले कि वह बाहर निकलकर उचित जीविका चला सके, ऐसा काम हो जो उसके शरीर के अनुकूल हो और उसे मनोवैज्ञानिक सन्तोष प्रदान करे।

(२) ऐसा काम हो जिससे जेल के वातावरण में और अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण उत्पन्न हो जिससे बन्दी के मन को स्थिर करने में सहायता मिले।

....यह कहना ज़रा कठिन है कि जेल में मजदूरी का ऐसा क्या प्रबंध किया जाय कि ऊपर लिखी बातें पूरी हो सकें...डेनमार्क के जेलों में जो आबादी है उसका उम्र तथा निवास के हिसाब से विभाजन इस प्रकार किया गया था[१]—

१. Carl and Hansen—Director of Prison Labour Administration, Denmark—Report on Prison Labour—1955.

३० वर्ष से कम उम्र के	—	४५	प्रतिशत
३० से ४० वर्ष तक	—	३०	"
४० से ५० वर्ष तक	—	१६	"
५० से ऊपर	—	९	"
नगर के रहनेवाले	—	३०	"
कसबों के रहनेवाले	—	२२	"
देहात के रहनेवाले	—	१७	"
अनिश्चित वासस्थान	—	२१	"

इस प्रकार अधिकतर निवासी कसबों के हुए। इनको काम देने के सम्बंध में सबसे ज़रूरी बात यह जाननी चाहिए कि कितने समय तक जेल में रहेंगे। अभी तो स्थिति यह है कि खुले जेलों में कम अवधि के ही कैदी ज्यादा हैं—

सजा की अवधि	खुले जेल प्रतिशत	बन्द जेल प्रतिशत	कुल प्रतिशत
६ महीने या कम	३०	१५	२३
६ से १२ महीने तक	५२	२७	४१
१ से २ वर्ष	१७	२५	२०
२ वर्ष से अधिक	१	३३	१६
	१००	१००	१००

क़ैदी से काम लेने का अधिकार

जेल में स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण के लिए यदि काम लेना आवश्यक है तो क़ैदी के मन के संतोष के अनुकूल भी काम होना चाहिए। कुछ लोगों को यह भी शंका होती है कि क्या राज्य को बन्दी से काम लेने का अधिकार है? क्या उसकी स्वतंत्रता का अपहरण कर लेना ही पर्य्याप्त नहीं है? पर इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि यदि उसे यों ही जेल में निरुद्यमी रहने दिया जाय तो न तो उसका सुधार होगा और न उद्धार होगा। समाज की रक्षा के लिए दोनों ही चीज़ें ज़रूरी हैं। अपराध की समस्या गुरुतर होती जा रही है। अपराध की संख्या में, संयुक्त-राष्ट्रसंघ के

शब्दों में "भयास्पद" वृद्धि हुई है। और यह वृद्धि खास कर बाल अपराधियों में हुई है। संसार के अनेक भागों में यह वृद्धि बहुत स्पष्ट है और इसलिए संयुक्त-राष्ट्रसंघ को चुनौती है कि वह इस दिशा में अपने प्रयत्न को अधिक दृढ़ तथा ठोस करे[१]।

२२ अगस्त से ३ सितम्बर तक, संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से जेनेवा में प्रथम अपराध निरोधक सम्मेलन हुआ था। १२ से १८ सितम्बर तक लन्दन में तृतीय अंतर्राष्ट्रीय अपराध-शास्त्री-सम्मेलन हुआ था। इन दोनों सम्मेलनों में जेल के भीतर बन्दियों के सुधार की समस्या पर विचार हुआ था[२]। संयुक्त-राष्ट्रसंघ कांग्रेस ने निम्नलिखित विषयों पर बिचार किया था—

(१) क़ैदियों की चिकित्सा के लिए कम से कम निश्चित नियम।
(२) खुले या बंद कारागारों के अधिकारियों का चुनाव, उनकी शिक्षा।
(३) खुले जेल तथा सुधारगृह।
(४) जेल में बंदी से परिश्रम।
(५) बाल-अपराध निरोध।

कारागार में बंदियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो तथा उनसे कैसा काम लिया जाय, इस विषय में आलोचना करते हुए शेल्डन ग्लूक लिखते हैं—

"अमानुषिक, अपमानजनक दंड तथा अनुचित प्रतिबंध, इन सब की मनाही कर दी गयी है। बन्दियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे जेल-अधिकारियों के पास, न्याय-अधिकारियों के पास अपनी शिकायतें भेजें तथा जेल-अधिकारी इन शिकायतों को बाहर जाने से रोकें नहीं। परिवार से, परिवार के या अपने मित्र से, धार्मिक अधिकारियों से या क़ानूनी सलाहकार से सम्पर्क की अनुमति है. . . कांग्रेस ने स्पष्ट आदेश दिया है कि जहाँ तक हो सके जेल के प्रबंधकों में मनोविश्लेषक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, अध्यापक तथा व्यवसाय सिखानेवाला अध्यापक अवश्य हो......

"यदि दंड का उद्देश्य समाज की अपराध से रक्षा करना है तो इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब यह सम्भव हो कि जेल से लौटने पर समाज में अपराधी नियम

१. Report of the Ad Hoc Advisory Committee of Experts on Prevention of Crime & Treatment of Offenders—2-5 May, 1959—Page 18.

२. लेखक इन दोनों सम्मेलनों में उपस्थित था।

तथा व्यवस्था के अंतर्गत स्वस्थ जीवन बिताने की केवल इच्छा ही न करे वह इसके योग्य भी हो। वह इस योग्य हो कि अपना भरण-पोषण कर सके। इसके लिए यह ज़रूरी है कि जेल में हर प्रकार की नैतिक, आध्यात्मिक, शिक्षणीय तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हों जिनका बन्दी की निजी आवश्यकतानुसार उपयोग हो सके. . .जहाँ तक हो सके जेल के जीवन में और स्वतंत्र समाज के जीवन में कम से कम अंतर होना चाहिए. . .सज़ा पूरी होने के पहले क़ैदी स्वस्थ सामाजिक जीवन के योग्य बना दिया जाय. . .खुले जेलों का सबसे बड़ा लाभ यही है कि वे दंड को व्यक्तिगत चीज बना देते है और व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार चिकित्सा कर समाज के योग्य बनाते है।"[१]

इस भावना से यदि जेल में बन्दी से काम लिया जा रहा है कि उसको समाज का स्वस्थ नागरिक बनाना है, तो उसे भी आपत्ति नही होनी चाहिए। फिर भी, अभी सब देशों में इस सम्बंध में एक समान नियम नहीं है। कुछ देश ऐसे हैं जहाँ क़ैदी से काम लेना दंड के क़ानून में शामिल है, जैसे—अर्जेन्टाइना, आस्ट्रिया, बेल्जियम, कनाडा (कुछ विशेष वर्ग के क़ैदियों के लिए), चाइल, कोस्टारिका, क्यूबा, फिनलैण्ड, यूनान, हैती, इटली, आयरलैंड, भारतवर्ष, जापान, लिबेनान, लक्जेमबर्ग, न्यूजीलैण्ड, क्वींसलैंड (आस्ट्रेलिया), सीरिया, तुर्किस्तान, दक्षिण अफ्रीका, उरुगुए तथा यूगोस्लाविया।

कुछ देशों में क़ैदी से काम लेने का नियम बनाने का अधिकार जेल विभाग पर छोड़ दिया गया है, जैसे आस्ट्रेलिया महाद्वीप के टसमानिया प्रदेश में, इंग्लैंड—वेल्स—स्कॉटलैंड यानी यूनाइटेड किंगडम में तथा केन्द्रीय क़ानून के अन्तर्गत बंदियों के लिए संयुक्तराज्य अमेरिका में, वहाँ १३ प्रदेश या राज्य ऐसे हैं जहाँ पर न्याय विभाग या जेल विभाग जैसा उचित समझें, नियम बना लें। इनमें से ९ तो कनाडा के सूबे हैं, आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया नामक प्रदेश हैं तथा इजरायल का राज्य है। कुछ राज्य ऐसे हैं जो कतिपय श्रेणी के क़ैदियों से परिश्रम नहीं लेते। आस्ट्रिया, नार्वे, लक्जेमबर्ग, मध्य तथा पूर्वी यूरोप, एशिया में लेबनान, सीरिया, भारत तथा बर्मा ऐसे देश छोटी मियाद की सज़ा वालों से काम नहीं लेते।

१. Sheldon Glueck—Two International Criminologie Congress. A Panorame—The National Association of Mental Health, 10 Columbus Circle, New York–1956–Pages 388-390.

बेल्जियम, फ्रांस और क्यूबा में राजनीतिक बंदियों से काम नहीं लिया जाता। अर्जेन्टाइना में सादी क़ैद वालों से भी काम लेते हैं पर उन्हें सार्वजनिक निर्माण के कार्यों में बाध्य नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक कार्यों में गम्भीर अपराध के दोषी लोगों से सार्वजनिक निर्माण का काम लेने का नियम वास्तव में नैपोलियन विधान १८१० से चालू हुआ है। उस समय उन क़ैदियों को जेल की दीवार से बाहर काम करना पड़ता था। इसे खुले-जेलों की शुरुआत भी कह सकते है पर उस समय तो यह नियम इसीलिए बनाया गया था कि क़ैदियों को कठोर से कठोर परिश्रम का काम करना पड़े और वह काम उपयोगी भी हो।

कुछ देश ऐसे हैं जहाँ पर बन्दी से जेल में काम लेना सरकार का "अधिकार" नहीं समझा जाता—वे हैं हिन्द एशिया तथा मेक्सिको। पर वे जेलों में कार्य करने को उचित तथा "कर्तव्य" अवश्य समझते हैं। मेक्सिको के शासनविधान में है कि बन्दी को अधिकार है कि वह जेल में काम करे या न करे। संसार के अन्य किसी देश के विधान में ऐसी बात नहीं है। जेलों में काम लेने के सम्बंध में १८वीं तथा १९वीं सदी में बहुत से नियम बने। इसके पहले इंग्लैंड के ब्रिडवेल ऐसे जेलों में तथा अन्य जेलों में एक प्रकार से बन्दी को सुधार के लिए भेजा जाता था। पर १८वीं तथा १९वीं सदी के जेलों के नियम विशेष कर इसलिए कठोर बनाये गये कि बन्दी को यातना मिले, दंड मिले, पीड़ा मिले, क़ैदी को इसलिए नहीं काम करना पड़ता था कि उसको संयम की शिक्षा मिले, मेहनत करना सीखे तथा परिश्रम के प्रति उसकी आस्था हो, बल्कि इसलिए भी काम दिया जाता था कि वह उससे कष्ट भी भोगे, दंड भी हो। आजकल एक प्रकार से दंड की भावना छोड़ दी गयी है।[१]

बन्दियों द्वारा परिश्रम

आजकल क़ैदियों के द्वारा बड़े-बड़े उपयोगी कार्य हो रहे है। इटली में सन् १९५३ में ३०,७०० बन्दी जेलों में थे। उनमें से ३,००० भूमि की उत्पादन शक्ति बढ़ाने में, खेती के योग्य नयी भूमि तैयार करने में बड़ा काम कर रहे थे। स्वीडन में सरकारी सड़कें बनाने, जंगलात में काम करने में बन्दी बड़ा उपयोगी होता है।[२] इग्लैंड (यूनाइटेड किगडम) में सरकार जेलों से क़ैदियों को म्युनिसिपल बोर्ड

१. Prison Labour, United Nations, 1955-Pages 1 and 2.

२. वही, पृष्ठ ३१

आदि को—स्वशासन विभाग को—दे देती है जिनसे नगरों के विकास के कार्य में बड़ी सहायता मिलती है। तुर्किस्तान में जेल के बाहर सार्वजनिक निर्माण विभाग की ओर से क़ैदियों से काम लिया जाता है। चिराग जलते ही वे जेलों को वापस कर दिये जाते हैं और उसी काम पर साधारण मजदूर को जितनी मजदूरी मिलती है उसका दो-तिहाई उनको मिलता है। जापान में, सन् १९५३ के आँकड़े के अनुसार जेल में काम करने योग्य लोगों की समूची आबादी का ९ प्रतिशत यानी ३६०० बन्दी १४९ कैम्पों में खेती, मछली मारना, सड़क बनाना, लकड़ी का कोयला बनाना आदि काम करते थे। सन् १९४० से वहाँ पर हौक्केपेडो नगर में इतना बड़ा कारखाना खोला गया कि उसमें ३००० बन्दी मजदूर काम करते थे।[१] भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश में लगभग ८००० बन्दी—प्रदेश के जेलों की जनसंख्या का लगभग १५ प्रतिशत, सावजनिक निर्माण या विकास का कार्य कर रहे हैं, जिनमें से लगभग ६०० तो प्रसिद्ध चुर्क सीमेन्ट फैक्टरी में काम करते हैं। इनको वही मजदूरी मिलती है जो साधारण मजदूरों को प्राप्त होती है। इसके अलावा जितने दिन वे फैक्टरी में काम करते है, उनको अपनी सजा में उतने दिन की छूट मिलती है। सन् १९५३ में पहली बार 'सम्पूर्णानन्द शिविर' के नाम से चन्द्रप्रभा नदी पर बाँध बनाने का काम शुरू हुआ। ऐसे दो बाँध केवल बन्दी गण बना चुके हैं। बर्मा में औसतन ५,०९१ बन्दी रोज़ जेल विभाग का ही कुछ न कुछ काम करते है। कुछ देशों में बन्दियों के उपयोग के आँकड़े इस प्रकार हैं[२]—

राज्य	काम में लगे कुल बन्दी	रचनात्मक तथा निर्माण के काम में	प्रतिशत
डेनमार्क	२९०४	२८०	९·६
फिनलैंड	५६४८	१०६९	१८·९
फ्रांस	११,१४५	४१०	८·९
यूनान	२४७५	१२३	५·०
आयरलैंड	४११	३०	७·३

१. वही, पृष्ठ ३४
२. वही, पृष्ठ ३५–३६

राज्य	काम में लगे कुल बन्दी	रचनात्मक तथा निर्माण के काम में	प्रतिशत
इटली	१४,०२१	६४६	४·६
लक्ज़ेमबर्ग	१४०	७	५·०
नीदरलैंड्स	२८९०	०	०·०
नार्वे	१००८	७५	७·४
स्वीडन	२४०९	४६४	१९·३
यूनाइटेड किंगडम	२१,७५३	२,५९०	११·९
कनाडा	४४१२	७४४	१६·९
संयुक्त राज्य अमेरिका	१३,६५९	११७०	८·६
दक्षिण अफ्रीका	२४,२१८	२३९५	९·९
बर्मा	४९८५	०	०·०
हिन्देशिया	१७,३४३	०	०·०
जापान	५९,९०७	३५९९	६·०
न्यूजीलैंड	९९७	१४८	१४·८
आस्ट्रेलिया	३९१३	२५८	६·४

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि संसार में १६ ऐसे प्रमुख देश हैं जो सार्वजनिक निर्माण के कार्य में बंदियों का उपयोग करते हैं, पर उनमें से १० ही ऐसे हैं जिनके यहाँ वास्तविक रचनात्मक उपयोग होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि संसार के अधिकांश देश बन्दी का ऐसा उपयोग पसन्द नही करते, उनसे कारागार से सम्बंधित या कारागार का ही काम लेना उचित समझते हैं।

वन्दी का प्रतिद्वन्द्वी

मज़दूर बन्दी का सबसे बड़ा विरोधी स्वतंत्र मजदूर होता है। उसे यह शिकायत हो सकती है कि जेल में मज़दूरी सस्ती है। उत्पादन का साधन सरकारी है अतएव

जेल का माल सस्ता पड़ता है। यूरोप के देशों में ऐसा विरोध सबसे पहले सन् १५९९ में[१] हुआ था। ऐम्सटर्डम के कारागारों को निकट के जंगलों की लकड़ी छीलने का ठेका मिल गया है। दूसरा विरोध सन् १८९५ में दो तीन यूरोपीय देशों में हुआ।[२] १९वीं सदी के मध्य में न्यूयार्क तथा पेनसिलवानिया प्रदेशों के मिकानिक मज़दूर-संघ ने जेलों में कपड़ा, टोपी तथा जूता बनाकर बाज़ार में बेचने का घोर विरोध किया था। इस प्रकार का विरोध बराबर बढ़ता ही गया। विरोधियों का कहना था कि जेलों में उत्पादन का सामान सस्ते दामों पर मिलता है। भूमि, किराया, मकान आदि की कोई लागत नहीं होती और मजदूरी बहुत कम होती है। इसलिए जेल का माल सस्ता पड़ता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस विरोध ने काफ़ी उग्र रूप धारण कर लिया था। फलतः प्रायः सभी देशों में जेल से बननेवाले सामान की बिक्री या उत्पादन पर रोक-थाम की गयी। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के ३८ प्रदेशों में जेल का बना सामान बाहर, बाज़ार में नहीं बिक सकता। पन्द्रह प्रदेशों में जेल की बनी रस्सी या खेती के सामान बाजार मे बिक सकते हैं। २३ प्रदेशों में, सन् १९५० में यह आदेश था कि जेल का बना सामान सरकारी कामों में जरूर लगाया जाय।

यूरोप में आस्ट्रिया में यह विरोध अब भी जारी है। स्वतंत्र मज़दूर जेल के उत्पादन के बड़ा विरुद्ध है। अब वहाँ नियम बन गया है कि जेल का उत्पादन ज़्यादातर जेल के या न्याय-विभाग के काम में लाया जाय। जेल के कर्मचारी भी यथाशक्य जेल का बना सामान खरीदें। बेल्जियम तथा डेनमार्क के छोटे कल-कारखानों के मालिक भी जेल के उत्पादन के विरुद्ध हैं। यूनान, आयरलैंड आदि देशों में जेल का उत्पादन जेल के काम में ही खर्च होता है। नीदरलैंड्स में नियम है कि जेल का बना माल बाज़ार में बाज़ार-भाव पर ही बिके। यूगोस्लाविया में जेल के मज़दूरों को बाहर के मज़दूरों के बराबर पारिश्रमिक मिलता है।[३]

१. वही, पृष्ठ ३८

२. Nurullah Kunter—Le Travail Penal, Paris—1940—Page 137.

३. Prison Labour—Pages 32-39-40-41.

अध्याय ३५

खुली संस्थाएँ

जेल में बन्दी से काम लेना और उसे मज़दूरी देना दंड की भावना से बनाया गया नियम नहीं है। इस प्रणाली का आधार है मानवता। जब यह मान लिया गया कि अधिकांश अपराध क्षणिक आवेग या आवेश का परिणाम हैं तो अपराधी को जीवन में पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करना राज्य का कर्तव्य है। "गत कई पीढ़ियों से अपराधी के उद्धार में रुचि उत्पन्न हो जाने के कारण उसके सुधार, उसकी पुर्नशिक्षा प्रोबेशन पर या पेरोल पर उसे छोड़कर जल्दी स्थिर जीवन बिताने में सहायता तथा अन्य औपचारिक उपायों की ओर भी जनता की रुचि उत्पन्न हो गयी है।"[१] बन्दी-जीवन में सुधार के लिए सबसे बड़ी चीज—आज का सबसे सफल प्रयोग खुला जेल है।

खुला जेल काफ़ी समय से प्रयोग में आ रहा है। यूरोप, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा अफ्रीका और एशिया के कतिपय देशों में इसका सफलतापूर्वक उपयोग हो रहा है। पिछले महायुद्ध के बाद से इस प्रकार की जेल-प्रणाली में अंतर्राष्ट्रीय रुचि उत्पन्न हो गयी है। किन्तु हर एक देश में "खुले" जेल की अपनी अलग-अलग व्याख्या है। कुछ देश क़ैदियों से दिन में खेतों पर काम लेना और रात को उन्हें सीखचों के पीछे बन्द कर देना भी "खुला जेल" समझते हैं। इसी लिए सन् १९५० में हेग सम्मेलन में खुले जेल की व्याख्या भी कर दी गयी थी।[२] आजकल सही माने में खुला जेल (अब हम इसे खुली संस्था कहेंगे) उसे कहते हैं जिसमें कैदियों को आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के अनुसार चिकित्सा के सभी साधन तथा सहूलियतें उपलब्ध हों। इस प्रकार की संस्था के दो उद्देश्य होते हैं—हर एक अप-

१. Walter Reckless—The Crime Problem—Page 3.

२. Twelfth International Penal & Penitentiary Congress, The Hague.

राधी की अलग अलग चिकित्सा करना तथा उसे समाज में पुनः स्थापित कर देना। इस प्रकार की चिकित्सा का प्रबंध जेलविभाग को ही करना होगा। क़ानून में केवल सजा का आदेश है। अमुक अपराध पर अमुक अवधि के लिए दंड देना होगा। अदालत अपराधी को जेल भेज देती है। उसका वर्गीकरण या उसे किस प्रकार के बन्दी जीवन की आवश्यकता है, इससे अदालत का कोई सम्बंध नहीं है। इसलिए जिन देशों में ऐसी संस्थाएँ हैं, वे स्वयं अपना-अपना मापदंड बन कर बन्दी चुन लेते हैं तथा उन्हें खुली संस्थाओं में रखते हैं।

उत्तर प्रदेश में

भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश राज्य में सबसे पहले असली खुली संस्था की नींव पड़ी। १ अक्टूबर १९५२ से ३ अक्टूबर १९५३ तक चन्द्रप्रभा नदी पर बाँध बनाने के लिए सम्पूर्णानन्द शिविर नाम से पहली खुली संस्था की स्थापना तत्कालीन मुख्यमंत्री—पं० गोविंदवल्लभ पन्त के द्वारा हुई। डा० सम्पूर्णानन्द उस समय गृहमंत्री थे। इसमें एक-एक खीमे में २० "मज़दूर" रहते थे—उन्हें "बन्दी" कहने पर एक आना जुर्माना देना पड़ता था—कुल संख्या ४२२८ थी। इन बन्दियों पर मज़दूरी में सरकार का ३,३२,१३५ रुपया खर्च हुआ था। पर इन्होंने बाँध के लिए मिट्टी खोदने का जो कार्य किया था वह ६७,४४, ३८२ क्यूबिक फुट था। बन्दी-मज़दूरों को डेढ़ रुपया रोज से दो रुपये रोज तक की मज़दूरी मिलती थी। उनका भोजन आदि का व्यय सरकार मजदूरी में से काट लेती थी, जो सर्वथा उचित है। जब मज़दूर कमाने लगे तो उसे अपना पेट भरना चाहिए तथा करदाता पर भार नहीं बनना चाहिए। इसलिए चन्द्रप्रभा बाँध पर ३,३२ लाख रुपये की मज़दूरी में से १,८८ लाख रुपया सरकार ने अपना खर्चे का ले लिया और १,४३,४३३ रुयया मजदूरों को मिला। इस प्रकार कैदियों को खुली हवा में, खुले वातावरण में, अपनी जीविका कमाकर इतना पैसा बचाने का अवसर मिला जिससे अपने छूटने के समय वे समाज में निराधार तथा निरवलम्ब न रह जायँ। ४ अक्टूबर १९५३ को विंध्य पर्वतमाला के रमणीक अञ्चल में, कर्मनाशा नदी के तट पर दूसरा बाँध बनाने के लिए नौगढ़ शिविर खुला। इसमें २९०५ "मजदूर" थे जिन्होंने ५,७३,७२६ रुपये मज़दूरी में कमाये जिनमें से सरकारी खर्च काटकर १,७०,८५२ रुपया उनके पास बच गया।

हमने ऊपर खुली संस्था के लिए बन्दी के चुनाव का जिक्र किया हैं तथा बतलाया है कि हर देश में इसका अलग-अलग मापदंड है। उत्तर प्रदेश में किस प्रकार के वर्ग

तथा अपराध के बन्दी खुली संस्था में पाये जाते हैं, इसका पता नीचे दी गयी तालिका से लगेगा—

		नौगढ़ शिविर में
१. एक वर्ष की क़ैद की मीयाद से नीचे	–	१६६
२. १ से ३ वर्ष "	–	२२७८
३. ३ से ५ वर्ष "	–	६६९
४. ५ से १० वर्ष "	–	३३१
५. ११ वर्ष से अधिक, आजन्म कारावास आदि	–	४६१
		३९०५

अपराध की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण होगा—

१. दूसरों को चोट पहुँचाना	–	१०८९
२. सम्पत्ति को हानि पहुँचाना	–	६८५
३. राज्य तथा सार्वजनिक शान्ति में बाधा	–	९९१
४. हत्या सहित डकैती	–	११५
५. अफीम या अन्य आवकारी क़ानून में	–	३८
६. बलात्कार तथा जहर देना छोड़कर मानव शरीर के साथ अन्य अपराध	–	१२
७. राज्य की सुरक्षा के लिए बन्दी	–	९७५
		३९०५

१९ जनवरी १९५५ को, पीलीभीत जिले में शाहगढ़ से ५ मील दूर तीसरा सम्पूर्णानन्द शिविर खुला। १५ नवम्बर १९५६ तक यह शिविर चला। २,३०३ मज़दूर थे जिन्हें कुल ६,७६,७२८ रुपया मज़दूरी मिली, जिसमें से ३,२५,०३० सरकारी व्यय कटा और ३,५१,६९७ रुपया मज़दूरों को बच गया।

सन् १९५६ में वाराणसी के निकट सारनाथ में महाबोधि सोसायटी द्वारा भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २५०० वर्ष पूरे होने का समारोह मनाया गया था। इस अवसर पर सारनाथ का मार्ग सुगम बनाने के लिए वरुणा नदी पर एक पुल

बनाया गया जो चार महीने में यानी फरवरी से जून १९५६ तक पूरा हो गया। इस पुल के निर्माण में सरैया मुहल्ले में, वरुणा के तट पर बन्दियों का चौथा "खुला शिविर" बना जिसमें ४०० "मज़दूर" स्वतंत्र मज़दूरों के साथ, जिनमें लगभग ३०० स्त्रियाँ भी थीं, काम करते थे। सरैया शिविर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से इसलिए बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि संसार में यह पहला प्रयोग था जिसमें बन्दी और स्वतंत्र मज़दूर, स्त्री तथा पुरुष एक साथ मिलकर, शहर की बस्ती में रहकर काम करें और एक भी दुर्घटना न हो, एक भी बन्दी भागे नहीं, वासना का एक भी अपराध न हो।

मिर्जापुर जिले में चुर्क में उ० प्र० सरकार की प्रसिद्ध सीमेन्ट फैक्टरी है। १५ मार्च १९५६ से ८०० मज़दूर (बन्दी) इसमें काम कर रहे हैं। इनका काम है मुख्यतः खदानों से बारूद द्वारा निकाले गये चूना, पत्थर उसका चूरा आदि को ट्रालियों पर लादकर यथास्थान पर पहुँचाना। औसतन ८ घंटा प्रति दिन काम करना पड़ता है। बोझ ढोने का काम वास्तव में ट्राली करती है। १५ मार्च १९५६ से ३० नवम्बर १९५८ तक इन मज़दूरों ने ११,२६,४४४ रुपया मज़दूरी कमायी जिसमें से व्यय काटकर ५,२२,९१८ रुपया इनकी जेब में गया। उधर शाहगढ़ शिविर के समाप्त होते ही नैनीताल जिले में पाँचवाँ सम्पूर्णानन्द शिविर खुला। १६ नवम्बर १९५६ से २३ अक्टूबर १९५८ तक यहाँ पर ४६०१ बन्दी थे, जिन्होंने ७,७६,३६६ रुपया मज़दूरी रूप में कमाया, जिसमें से ३,९६,६१० रुपया बन्दी मज़दूरों के पास रह गया। इस शिविर की विशेषता यह है कि इसकी दुग्धशाला है तथा मुर्गी पालने का भी केन्द्र है। इन शिविरों के अलावा मझौला आदि के उपशिविर भी हैं। उत्तर प्रदेश की समूची जेल–जनसंख्या का पन्द्रह प्रतिशत खुली संस्थाओं में रहता है। ऐसे बंधन-मुक्त जीवन में भागनेवालों का औसत हज़ार पीछे एक क़ैदी से भी कम है। इन शिविरों में शिक्षा पाये तथा धन से सम्पन्न मुक्त बन्दी फिर कारागार में नही आते। वे अपना स्थिर तथा सुव्यवस्थित जीवन बिताने लगते हैं। प्रदेश के इन शिविरो में समूचा प्रबंध बन्दी स्वयं करते हैं। उनकी शिक्षा, दीक्षा, मनोरञ्जन, खेल-कूद नाटक, संगीत, पर्वोत्सव आदि का बड़ा व्यवस्थित प्रबंध है। इन संस्थाओं में रहनेवाले मनुष्य को अपनी मनुष्यता पुनः प्राप्त हो जाती है।

भारतवर्ष में खुली संस्था के मामले में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। इस दिशा में उसकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है। और प्रदेशों में भी खुली संस्थाओं का प्रबंध हुआ है या हो रहा है पर उत्तर प्रदेश ऐसा वैज्ञानिक प्रबंध नही हो पाया है। बिहार में सन् १९५४ में क़ैदियों को सड़क बनाने का काम दिया गया। ३९४ क़ैदियों ने सन् १९५४ में ३ मील लम्बी सड़क बनायी और सन् १९५५ में २ मील लम्बी सड़क

ये बन्दी आठ घंटे रोज़ काम करते हैं। इनको १३,२७६ रुपया मज़दूरी मिली[1] जो काफ़ी कम है। इसके अलावा और किसी खुली संस्था या खुले कार्य की हमें सूचना नहीं है। यह ज़रूर है कि सोनपुर के मेले में हर साल जेल की दूकान पर काम करने के लिए बन्दी भेजे जाते हैं। सन् १९५२ से १९५६ तक ५८६ बन्दी भेजे जा चुके थे और उन्होंने हर साल लगभग २०,००० रुपये का जेल का बना माल बेचा।

बन्द और खुले जेल में भेद

बन्द और खुले जेल में बड़ा अंतर है। सबसे बड़ा अंतर यह है कि खुली संस्था में बन्द जेलों के समान "अधिक से अधिक" हिफ़ाज़त से लेकर "कम से कम देखरेख" तक की तीन श्रेणियाँ नहीं होती। खुले ढंग का कारागार कैसे शुरू हुआ, इसका इतिहास देना आवश्यक नहीं है। पहले क़ैदियों को जेल के काम से ही बाहर भेजते रहे होंगे। जेल के खेतों पर उनको काम करने को भेजा जाता रहा होगा। काम समाप्त करके वे फिर बन्द दीवालों को वापस आ जाते रहे होंगे। इस प्रथा का विरोध भी हुआ होगा। यह आवाज़ उठायी गयी होगी कि मनुष्य के आत्म-सम्मान के विरुद्ध है कि उसे हथकड़ी बेड़ी में जकड़कर बाहर भेजा जाय और उसी तरह से वापस बुलाया जाय। बिना मज़दूरी दिये इतना परिश्रम लेना क्रूरता सिद्ध की गयी होगी। जो हो, आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता तथा कारागार से छूटने के जीवन के लिए तैयारी की प्रारम्भिक भावनाओं के विकास का इतिहास बड़ा रोचक होगा। यूनाइटेड किंगडम में यह नियम था कि १०-२० बन्दियों की टुकड़ियाँ सार्वजनिक विभागों में या ग़ैर-सरकारी लोगों की नौकरी में भेजी जाती थीं। इनकी निगरानी के लिए एक जेल-कर्मचारी दे दिया जाता और काफ़ी दूर देहातों में या जंगलों में काम करने के लिए भेजे जाते थे। कुछ दिनों बाद सड़क या जंगलों के काम के लिए क़ैदियों के छोटे-छोटे शिविर खुलने लगे पर इनसे इतना काम लिया जाता था मानो आदमी काम के लिए बना है, न कि काम आदमी के लिए।[2] इस प्रकार धीरे-धीरे खुले जेल का विकास हुआ। खुली संस्था सिर्फ़ उसी को नहीं कहते जो दीवालों के बंधन से रहित हो। किन्तु इसका प्रबंध ऐसा होना चाहिए कि इसमें रहनेवाला आत्म-संयम सीखे और जिस समुदाय में

१. Probation—India—July, 1957—Page 37.

२. Sri Lionel Fox—"Open Institutions"—U. N. O.—Page 11

रहता है उसके प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करे तथा उसे जिस स्वच्छंद जीवन की सुविधा मिली है, उसका दुरुपयोग न करे।[१]

भिन्न देशों की खुली संस्थाएँ

यहाँ पर इतना स्थान नहीं है कि हर देश की खुली संस्था के रूप-रंग के विषय में पूरी जानकारी करायी जा सके। हर जगह अलग ढंग की संस्थाएँ हैं।

बाल अपराधियों के लिए

आस्ट्रेलिया में विक्टोरिया के निकट ४३००० एकड़ भूमि में एक खुली संस्था है जिसमें २१ वर्ष की उम्र से कम के २०० निवासी हैं। न्यूजीलैंड में वेलिंगटन से कुछ मील दूर पर ७५ लड़कियों के लिए आरोहाता नामक खुली संस्था है। बेल्जियम में ९ महीने से २० वर्ष तक की सजा वाले १२० व्यक्तियों के लिए खुली संस्था है जिसमें २५ वर्ष से कम उम्र के लोग लिये जाते हैं पर ४० वर्ष तक के प्रथम अपराधी भी लिये जा सकते हैं। नीदरलैंड्स में २४ वर्ष की उम्र तक के अपराधियों को ही खुली संस्था में रखते हैं (उत्तर प्रदेश की खुली संस्थाओं में बाल अपराधियों को नहीं लेते, वैसे उम्र की कोई कैद नहीं), सो भी एक से तीन वर्ष तक की सजा वालों को। इंग्लैंड में १४ बोर्स्टल संस्था बाल-अपराधियों के सुधार के लिए हैं जिनमें से १० खुली संस्थाएँ हैं। लड़के तथा लड़कियों की खुली संस्था में कतिपय व्यक्ति किसानों के यहाँ खेतों पर काम करने के लिए भी जाते हैं। दूर पर काम करने के लिए जाने-वाले लड़के साइकिलों से, बिना किसी गार्ड के, जाते हैं।[२] सभी संस्थाओं में धार्मिक तथा अन्य शिक्षा का पूरा प्रबंध है।

वयस्कों के लिए

यूनाइटेड किंगडम में वयस्कों के लिए ५ खुली संस्थाएँ हैं। दो में अल्पकालीन बन्दी भेजे जाते हैं। इनकी सज़ा की मीयाद १८ महीने से ३ वर्ष तक की होती है। लम्बी मीयादवालों के लिए एक खुली संस्था है। महिलाओं के लिए दो हैं।[३]

१. वही, पृष्ठ १३
२. वही, पृष्ठ ३४ से ४६ तक
३. Askam Grange and Hill Hall.

किन्तु इनमें एक भी संस्था में इतनी स्वच्छन्दता तथा कार्यपटुता नहीं है जितनी उत्तर प्रदेश के खुले शिविरों में।

संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रथम तथा सबसे अधिक संगठित खुली संस्था चिनो, कैलिफोर्निया में है। इसके संगठनकर्ता तथा खुली संस्था के विशेषज्ञ श्री स्कडर का हम जिक्र कर आये हैं। चिनो यदि उत्तर प्रदेश की खुली संस्थाओं की तुलना में किसी दृष्टि से कमजोर है तो दो बातों में—उसकी जनसंख्या १५०० है। हमारे किसी भी शिविर में २५०० से कम नहीं है। चिनो में ७८ प्रतिशत "प्रथम अपराधी" हैं। हमारे शिविरों में स्यात् इतने ही प्रतिशत दुबारा अपराधी विराराधी (अभ्यस्त अपराधी) होंगे। कैलिफोर्निया प्रदेश, जिसमें चिनो है, "अनिश्चित काल के लिए दंड देता है। जब भी अपराधी में सुधार हो जाय, वह छोड़ा जा सकता है। इसलिए चिनो में अच्छी से अच्छी शिक्षा, कार्य, सहकारिता आदि से काफी लाभ उठाया जा सकता है। संयुक्त राज्य में इतना सुप्रबंधित तथा नैतिकता की दृष्टि से ऊँचा सुधार-गृह और कोई नही है। सन् १९४५ से १९४८ के बीच में इसके १५१४ निवासियों में से केवल ४ भाग गये।[1]

महिलाओं के लिए लगभग आधी दर्जन संस्थाएँ हैं जिनमें १६-३० वर्ष की उम्र के बीच में तीन वर्ष तक की सज़ा की महिलाएँ रखी जाती हैं। केन्द्रीय सरकार के ऐल्डरसन नामक सुधारगृह में ४४० स्त्रियाँ हैं जिनके रहने के लिए छोटे-छोटे मकान अलग-अलग बने हुए हैं।

न्यूज़ीलैण्ड में १०० तथा ८४ व्यक्तियों के लिए दो शिविर हैं। स्वीडन में खुली संस्था पर बड़ा ज़ोर है। उसके १९४५ के क़ानून के अनुसार खुली संस्थाओं को ही प्राधान्य दिया गया है। उस देश में ५२ कारागार हैं जिनमें सन् १९५४ में ३२०० बंदी थे। इनमें से २७ खुली संस्थाएं हैं जिनमें ९२० पुरुष, स्त्री तथा नवयुवक अपराधी थे। जिन कैदियों को कठोर कारावास का दंड मिलता है वे तीन माह तक सज़ा भोगने के बाद खुले जेलों में भेजे जा सकते हैं। १०-५० बंदियों की टुकड़ियों में २१ से २५ वर्ष की उम्र के बीच के लोगों के लिए ११,००० एकड़ भूमि में १०० बन्दियों के लिए मैकलिपाड ट्रेनिंग सेन्टर नाम से बड़ी अच्छी संस्था है। ८०० व्यक्तियों का एक दूसरा अच्छा शिविर चल रहा था। ३०–९–१९५४ को उसकी जनसंख्या ८०० थी जिसमें से १५ भाग गये थे।

१. Federal Prisons Report, 1948.

फिनलैण्ड में बन्दियों के लिए राज्य की ओर से "मज़दूर बस्तियाँ" बसा या बना दी गयी हैं। इनकी संख्या १९५४ में १७ थी। इनमें खेती आदि का काम होता है। किन्तु दो वर्ष तक की सज़ा के अपराधी ही रखे जाते हैं।[१] फ़िलप्पीन में जेल के बाहर कैदियों से काम लेने का कार्य सन् १९०४ में शुरू हुआ।[२] यह कार्य इवाहिग में अपराधी उपनिवेश में प्रारम्भ किया गया। आज इवाहिग एक आदर्श खुली संस्था बन गया है। दवाओं की खुली संस्था में २,९०० बन्दी हैं। इन दोनों संस्थाओं में शिक्षा, घरेलू व्यवसाय तथा खेती की ट्रेनिंग बहुत अच्छे ढंग से दी जाती है। किसी जेल में अपनी निर्धारित सज़ा का पाँचवाँ अंश भोगने के बाद ही खुली संस्था में भेजा जा सकता है। सज़ा की मीयाद पूरी होने पर भी लोग उपनिवेश में बस सकते हैं। हर बन्दी को दो वर्ष तक अपने लिए निर्धारित भूमि पर ठिकाने से खेती करने पर उस भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो सकता है और वह उसी भूमि पर बस भी सकता है। अच्छा काम करनेवाले को सज़ा में महीने में दस दिन की छूट मिल जाती है।

जापान में खुली संस्थाओं का अच्छा संगठन है। कुछ संस्थाएँ बाल-अपराधियों के लिए, कुछ महिलाओं के लिए भी हैं। किन्तु खुली संस्थाओं में केवल प्रथम अपराधी ही रखे जाते हैं। जुलाई १९५४ में आमागी फार्म ऐसी ७० संस्थाएँ थीं जिनमें ५११३ व्यक्ति रहते थे। प्रति सात व्यक्ति पर एक जेल-कर्मचारी नियुक्त है, यानी प्रति संस्था में ७८० कर्मचारी हैं।[३] इस प्रकार खुली संस्था का समूचा उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।

खुली संस्था का भ्रम

बहुत सी ऐसी संस्थाएँ हैं जो अपने को अनायास "खुली संस्था" कहती हैं। इनमें एक प्रसिद्ध संस्था विट्ज़विल है। इसे देखने के लिए हम १९५५ में, अगस्त के अंतिम सप्ताह में बड़े आदर सहित वहाँ ले जाये गये थे। इसे स्विट्जरलैण्ड का "आदर्श खुला जेल" कहते हैं। किन्तु वास्तव में इसे खुला जेल नहीं कह सकते। इसमें कैदियों को सीख़चों के भीतर बन्द होना पड़ता है। उनसे ११ घण्टे रोज काम

१. Open Institutions in Finland--United Nations, Page 2.

२. Open Institutions in Philippines--United Nations—Page—1 to 9.

३. Open Institutions in Japan, U. N. O. Page 1-3.

लिया जाता है। इतने काम की मजदूरी २५ सेंट यानी चार आना (पच्चीस नया पैसा) रोज है। इतने पैसे से कुछ खरीदा नहीं जा सकता। १० दिन के लिए ४० सिगरेट (तम्बाकू और काग़ज) मिलता है। फिल्म दिखाने का प्रबंध है पर चार-पाँच महीने तक भी कोई खेल नहीं होता। यों कारोबार सिखाने का बड़ा अच्छा प्रबंध है, पर यह खुली संस्था कदापि नहीं है।

अध्याय ३६

स्त्री तथा परिवार से वियोग

जेल के जीवन में सबसे बड़ी पीड़ा होती है पत्नी तथा परिवार से वियोग की। ऐसे वियोग से बन्दी के मन पर इतना बोझ रहता है कि उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। इसी लिए वह सज़ा से छूटने के बाद अपने पुनर्वास की तैयारी भी नहीं कर सकता। मनुष्य के जीवन में विवाह एक बड़ी भारी कमी को पूरा करता है। जेल के जीवन में विवाहित तथा अविवाहित दोनों का मन समान रूप से सहानुभूति का स्रोत पानेके लिए तरसा करता है। संयुक्त राष्ट्र-संघ इस बात पर काफ़ी ज़ोर दे रहा है कि बंदियों को बाहरी दुनिया से—जेल के बाहर की दुनिया से सम्पर्क स्थापित करने तथा बनाये रखने का पूरा अवसर देना चाहिए। उनको अपने घरवालों से मिलने की पूरी सुविधा देनी चाहिए।

यूरोप में बंदियों से मिलने के नियम

यूरोप के १९ देशों में बंदियों से मिलने के लिए नीचे लिखा नियम है—[1]

घण्टों में कितनी देर तक भेंट कर सकते हैं	एक महीने में कितनी बार मिल सकते हैं						
	एक बार से कम	एक बार	दो	तीन	चार	चार से अधिक	कुल
आध घंटे से कम		४	२				६
आध घंटे से एक घंटे तक		४	५		१	१	११
एक से दो घन्टे तक					१		१
कोई उत्तर नहीं मिला	१						१
			कुल				१९

१. Ruth Shonle Cavan and Eugene S. Zamans Marital Relationships of Prisoners in Twentyeight Countries. Reprinted from Journal of Criminal Law, July—Aug., 1958-Pages 133-134.

ये सभी देश पत्नी या प्रेयसी को क़ैद में अपने पति या प्रेमी से मिलने की अनुमति देते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिका में महीने में दो बार एक घंटे तक भेंट हो सकती है। तुर्किस्तान में महीने में दो बार केवल १० मिनट के लिए भेंट हो सकती है, चाहे परिवार का कोई भी सदस्य हो। न्यूज़ीलैंड में प्रति सप्ताह में एक घंटे तक तथा फ्रान्स में सप्ताह में एक या दो बार भी डेढ़ घंटे तक भेंट हो सकती हैं। स्वीडन में खुले जेलों में प्रति रविवार को जितनी देर चाहे मिल सकते हैं। बन्द जेलों में आध घंटे प्रति रविवार को। डेनमार्क में आधे घंटे दो बार प्रति मास। यूगोस्लाविया में महीने में दो या तीन बार, पर कठोर दंडवालों को महीने में केवल एक ही बार।

संयुक्त राज्य अमेरिका में

संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग आधे पुरुष तथा स्त्री बन्दी विवाहित हैं। केन्द्रीय सरकार के जेलों में पुरुष बंदियों की उम्र औसतन २८·७ वर्ष है। प्रादेशिक जेलों में २७·० वर्ष। महिला बंदियों के लिए क्रमशः २८·२ तथा २८·५ वर्ष उम्र है। इन क़ैदियों के अध्ययन से पता चलता है कि विवाह के तीसरे से छठे वर्ष के भीतर ज़्यादातर तलाक़ होते हैं। सवाल यह उठता है कि क्या पति के जेल में बन्द रहने पर भी पत्नी उसका साथ पकड़े रहेगी? भारत ऐसे देशों में तो पति के मर जाने पर भी साथ पकड़े रहती है, अतएव यहाँ वह सवाल प्रायः नहीं उठता। पर संयुक्त राज्य में यह प्रश्न अवश्य है। अमूमन केन्द्रीय कारागारों में ११ महीने तक भीतर रहने का औसत होता है। प्रादेशिक कारागारों में २१ महीने तक। अतएव तलाक़ का उतना डर नहीं रहता जितना इस बात का कि पति चूँकि अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण नहीं कर रहा है अतएव परिवार में उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बन्दी बराबर अपने परिवार के लोगों से मिलकर अपने सम्बन्ध को बिखरने न दे, जब कि समूची सामाजिक परिस्थिति उसके विपरीत है। संयुक्त राज्य में २३ प्रदेश ऐसे हैं जो पति-पत्नी को मिलने देते हैं और महीने में चार मर्त्तबा आध घंटे से लेकर दिन भर मिलने का अवसर देते हैं।

बहुत से यूरोपीय जेलों में क़ैदियों से मिलनेवालों को अपने सामने स्टूल पर बैठकर बातें करने का अवसर मिलता है। कहीं-कहीं पर बीच में शीशे की दीवाल होती है और टेलीफोन रखा रहता है जिससे एक दूसरे से बातें करते हैं। कई देशों में ज़मीन पर पल्ले बिछा दिये जाते हैं। एक पंक्ति में बन्दी बैठता है। सामने की पंक्ति में उससे मिलनेवाला, सौ-पचास बन्दी एक साथ बिठाये जाते हैं। परिणाम

यह होता है कि आमने सामने एक दूसरे का मुख देखते हुए गला फाड़कर चिल्लाना पड़ता है। मिस्र, ईराक आदि में बहुत कुछ यही नियम है। भारतवर्ष में अभी तक ऐसा ही था। अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। संयुक्तराज्य अमेरिका में भिन्न-भिन्न नियम हैं। एक बन्दीगृह में २०० बंदियों को जेल के खेतों में, बाग़ में, आराम से पेड़ों के नीचे बैठकर बातचीत करने की सुविधा है। कैलिफोर्निया के एक जेल में मिलने आनेवाला खाने-पीने का सामान ला सकता है और आराम से पिकनिक पार्टी हो सकती है। वैसे आमने-सामने बीच में एक मेज रखकर मिलने का आम तरीका है।

क़ैदियों को घर जाने की छुट्टी

अमेरिका के जेलों में क़ैदियों को घर जाने देने की अनुमति नहीं दी जाती—यानी इसके लिए छुट्टी नहीं मिलती। छः राज्यों को छोड़कर शेष राज्यों में यह नियम है कि क़ैदी के घर में किसी अति आत्मीय की मृत्यु हो जाने पर या स्वयं उसकी गहरी बीमारी पर छुट्टी दी जाय। इंग्लैंड और वेल्स में सन् १९५१ में कुछ वर्ग के क़ैदियों को परिवार से सम्बन्ध स्थापित करने तथा मुक्ति के बाद अपने जीवन को पुनः स्थापित करने की तैयारी के लिए पाँच दिन की छुट्टी मिल जाती है। उत्तरी आयरलैंड में दो वर्ष की सज़ावालों को बारह महीने की सज़ा पूरी करने पर बड़े दिन तथा गर्मी में छुट्टी मिल सकती है। स्विट्ज़रलैंड में घर जाने के लिए ८ से २४ घंटे की छुट्टी मिलती है। डेनमार्क में बाल या वयस्क अपराधियों को जेल की गारद के साथ कुछ घंटे के लिए घर जाने की छुट्टी मिलती है। स्वीडन इस विषय में सबसे उदार देश है। वहाँ पर ज़रूरत हो चाहे न हो, क़ैदियों को छुट्टी मिलती ही है। यात्रा में जितना समय लगे उसे छोड़कर क़ैदी ४८-७२ घंटे तक की समय-समय पर छुट्टी ले सकता है। एक साल में कई बार छुट्टी मिल जाती है। ऐसे छुट्टी पर गये लोगों में पंद्रह प्रतिशत ऐसे हैं जो या तो देर में वापस आये या नशे की हालत में लौटे, इत्यादि। सन् १९५२ में स्वीडेन में, २,५२७ को छुट्टी मिली। सन् १९५४ में ३,०८५ को। स्त्रियों को छुट्टी प्रायः किसी देश में नहीं मिलती। बहुत से देशों में, जैसे अर्जेंटीन आदि में यदि क़ैदी का चरित्र या जीवन ठीक रहा तो उसे महीने में एक बार १२ से २४ घंटे तक घर जाने की आज्ञा दी जा सकती है। भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश में लम्बी मीयाद के क़ैदी को तीन बरस की सज़ा भोगने के बाद एक महीने तक घर पर रहने की आज्ञा मिल जाती है। महिला बन्दियों को अपने बच्चों से मिलने की पूरी सुविधा दी जाती है। क़ैदी को फ़सल काटने के लिए घर ज़ाने की

छुट्टी दी जा सकती है। जेल में कोई अपराध करने पर उसकी "मुलाकात" नहीं काटी जा सकती।

कामवासना और भेंट

काफ़ी समय से इस समस्या पर विचार हो रहा है कि जेलों में हस्तक्रिया या सहसंभोग, अप्राकृतिक संभोग आदि वासना के अपराध कैसे बंद किये जायें। इस सम्बन्ध में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। संसार में केवल मेक्सिको ही ऐसा देश है जिसने इस बारे में एकदम क्रांतिकारी कदम उठाया है। बहुत से अपराधशास्त्रियों का मत है कि जेलों में वासना के अपराध कम करने का सबसे उचित उपाय है कि निश्चित समय पर विवाहित बन्दी को अपनी पत्नी से एकान्त में मिलने का अवसर दिया जाय। मेक्सिको के ओकसाका नगर के सान्ता कातारिना जेल में २३० बन्दियों के ७० प्रतिशत को काग़ज की दीवाल की छोटी कोठरियों में हर गुरुवार तथा शनिवार को कुछ घंटों के लिए बंदी पति तथा उसकी पत्नी को एक साथ कर देते है। पर बंदी स्त्रियों को यह इजाजत नही है। मेक्सिको नगर के पुरुषों के एक जेल में, जिसमें २,२४६ बन्दी हैं, ५५ बन्दियों को प्रति सप्ताह यही सुविधा देते हैं।

किन्तु अधिक अपराधशास्त्रियों का मत ऐसी सुविधा के विपरीत है। सन् १९५६ में एक महिला ने कोलम्बिया जिले की अदालत में यह दावा किया कि सरकार ने उसके पति को जेल में भेज दिया पर वह उसे वैवाहिक जीवन से वंचित नहीं कर सकती। अतएव उसे अपने पति के साथ जेल में रहने दिया जाय। उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी। अस्तु, इस विषय में एक अनुभवी का मत है—

"कुछ लोगों का ऐसा खयाल है कि यदि जेलों में ऐसा परस्पर सम्बन्ध होने दिया जाय तो अप्राकृतिक संभोग आदि के अपराध बहुत कम हो जायँ। हमारा यह अनुभव है कि जिस व्यक्ति का पारिवारिक जीवन अच्छा रहा है, जिसकी घर-गृहस्थी ठिकाने की है तथा पत्नी स्थिर बुद्धि की है, उसके लिए वासना की ऐसी कोई समस्या नहीं होती। असली समस्या तो अतृप्त कामवासना, अस्थिर, असंयत, बार-बार विवाह करनेवाले व्यक्ति की है. . . .ऐसे व्यक्ति को ऐसे परस्पर सम्बन्ध का अवसर देकर उसे सुधार लेने की बात सोचना मूर्खता है।"

१. वही, पृष्ठ १३७

२. Zamans and Cavan—Marital Relationship of Pri-

ऐसी मूर्खता तो नहीं है जितनी ऊपर कही गयी है, पर हमारा इस सम्बन्ध में अभी तक निश्चित मत नहीं है, अतः हम कोई राय नहीं जाहिर करना चाहते। ऊपर जितने भी विवेचन हैं सबका एक ही निचोड़ है। मनुष्य के साथ, चाहे वह अपराधी हो या साधारण मनुष्य, मनुष्यता का व्यवहार होना चाहिए। उसकी मानवोचित माँगें, महत्त्वाकांक्षाएँ तथा स्वस्थ कामनाएँ पूरी होनी चाहिए। उसे समाज में स्वस्थ नागरिक बनाकर भेजना है। समाज ने उसकी स्वाधीनता को हर लिया, इसके लिए उसके साथ समुचित व्यवहार करना ही समाज का उचित प्रायश्चित्त होगा। अब यह भी कोई नहीं अस्वीकार करता कि अपराध करने पर कारागार की सज़ा बहुत सोच विचार कर देनी चाहिए। अपराधी को यथाशक्य कारागार से बाहर रखने की बुद्धिमत्तापूर्ण नीति[१] का पालन दृढ़ता के साथ होना चाहिए। और जब किसी को जेल भेज ही दिया तो उसकी पूरी ज़िम्मेदारी को निभाना चाहिए।

soners, Reprinted from the Journal of Criminology—May-June, 1958 U. S. A. Page 54.

१. Mental Abnormality and Crime, Cambridge University—Page XXI.

अध्याय ३७

पुनर्वास की समस्या

कारागार में रखने से अधिक कठिन है कारागार से छूटने के बाद बन्दी की उत्तर-रक्षा का भार सँभालना। जिस समय बंदी छूटकर कारागार के बाहर पैर रखता है, उसके जीवन का बड़ा कठिन अवसर होता है। उसका बंधन समाप्त हुआ। उसकी स्वाधीनता शुरू हुई। वह जीवन समाप्त हुआ जिसमें उसकी इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। उसके ऊपर कोई ज़िम्मेदारी नहीं थी। अब वह ऐसे कठिन संसार को लौट रहा है जिसमें हर एक वस्तु के लिए संघर्ष तथा प्रयत्न करना पड़ता है। मुक्त बन्दी का जीवन स्वत: उसके चरित्र तथा कारागार के प्रबंध की कटु परीक्षा है। उत्तर-रक्षा के प्रबंध में कमी अथवा समाज द्वारा अपने बिछुड़े भाई को अपनाने में ही कमी; ऐसा कोई न कोई कारण होगा यदि मुक्त बंदी पुन: अपराध कर बैठे। कारागार की सज़ा से व्यक्ति समाज के सामने नंगा आ जाता है। इसकी उसके मन पर गहरी चोट लगती है। इसी लिए ८० प्रतिशत प्रथम अपराधी फिर अपराध नहीं करते।[१] पर बहुत से ऐसे भी हैं जो अपराध करने के लिए विवश हो जाते हैं। यदि उन्हें समुचित साधन प्राप्त होता तो ऐसा न होता। साथ ही, यदि कारागार के प्रबंधकों ने अपना कर्त्तव्य ठीक से निभाया होता तो बन्दी का चरित्र-निर्माण होता। कुछ बहुत ही असाध्य रोगी हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम है। मुक्त बन्दी की रक्षा तथा सहायता के लिए यह आवश्यक है कि जेल-जीवन में उसे मौलिक शिक्षा, कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त हुआ हो। तभी उसके लिए कुछ हो सकता है। कारागार में ही बन्दी के जीवन का सबसे नाज़ुक ज़माना बीतता है।

प्रयास सफल होकर रहेगा

एक प्रश्न यह होता है कि क्या बन्दी का पुनर्वास, उसे स्वस्थ जीवन में लगा

१. Hugh Clare in Observer, London, May, 1959.

देने का प्रयत्न सफल हुआ है। एक क्षण के लिए मान भी लिया जाय कि नहीं हुआ है, तो उसे सफल वनाना पड़ेगा। बिना इसके और कोई चारा भी नहीं है। सरकार तथा जनता क़ैदियों का बढ़ता हुआ बोझ कहाँ तक उठायेगी। कानपुर नगर में, उसकी ९ लाख की आबादी में, ५ अगस्त १९५९ को ९९५ व्यक्ति ज़िला जेल में बन्द थे। इनमें से ६११ विचाराधीन बंदी थे जिनमें १२६ बच्चे थे। इनमें १२ से १४ वर्ष के बच्चों की संख्या १८ थी। क्या होगा इतने बच्चों का—इतने होनहार नौजवानों का ?

संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रदेश के दक्षिण भाग के विचारपति हैरी सी० वेस्टोवर ने अपने एक लेख में कहा है कि वह ज़माना चला गया जब बन्दी जेलों में वक्त बरबाद किया करता था। आज हर एक स्वस्थ व्यक्ति काम में लगा हुआ है, लगाया गया है। सन् १९३४ में संयुक्त राज्य के कारागारों में उद्योग-धंधा चालू करने के लिए ७,५०,००० डालर (एक डालर का मूल्य पौने पांच रुपया हुआ) मंजूर हुआ था। इस समय इन उद्योग-धंधों की पूँजी १,८०,००,००० डालर है तथा इनके उत्पादन से केन्द्रीय सरकार को ३,२५,००,००० डालर की प्राप्ति हो चुकी है।[१] जेल में काम करनेवाले बन्दी को दुहरा लाभ है। वह अपनी सज़ा की मीयाद में छूट भी प्राप्त कर सकता है और २५० रुपया माहवार तक कमा सकता है। जेलों के भीतर एकदम आदर्श वातावरण स्थापित करने में समय लगेगा, पर उतना ही समय एक मरीज़ को अस्पताल में छुट्टी पाने पर भी स्वास्थ्य सुधार में लगेगा। पर जब चिकित्सा ठीक से हुई है तो रोगी का रोग रह नहीं सकता। यदि जेलों में वर्तमान ढंग की शिक्षा जारी रही तो अपराधी का पुनर्वास निश्चित है।

१: Harry C. Westover, Judge-Guide Post, Manila, 15th July, 1958.

अध्याय ३८

मनुष्य और धर्म

न तो मनुष्य बुरा है और न कोई युग या समय बुरा हुआ करता है। मानव-स्वभाव जैसा कल था, वैसा आज है। जहाँ भी कहीं मानव-प्रकृति का अध्ययन किया जायगा उसमें गुण भी मिलेगा और अवगुण भी।[१] समाज में मौलिक विचार के लोग बहुत ही कम मिलेंगे।[२] रचनात्मक विचारों के जो थोड़े से लोग हैं वे ही समय को चुनौती देते हैं। अन्यथा मानव-जाति की दयनीय कहानी को सुनिए. . .जब तक इसे समझ तथा बुद्धि का कुछ अंश भगवान् ने नहीं दे दिया।[३]

नैतिक ह्रास की शिकायत

कीफर की पुस्तक में सेनेका (छोटे) के वाक्य उद्धृत हैं। वे लिखते हैं—

"हमारे बुज़ुर्गों को यही शिकायत थी, हमें यही शिकायत है और भविष्य की संतान को भी यही शिकायत रहेगी कि लोगों में नैतिकता के बंधन शिथिल हो रहे हैं। दुष्टता का बोलबाला है, मानव-जाति का बराबर ह्रास हो रहा है और हर एक पवित्र वस्तु से श्रद्धा हटती जा रही है।"[४]

आगे चलकर वे ही कहते हैं—[५]

"लूसिलियस, यदि तुम्हारा यह विचार है कि हमारे समय में दुराचार, विलासिता तथा नैतिक मापदंड बहुत दुर्बल हो गया है, तो तुम भूल कर रहे हो। हर एक

१. Charles Frankel—The Case for Modern Man, 1957–Page 161.

२. वही, पृष्ठ १५३

३. वही, पृष्ठ १

४. Kiefer, Page 46

५. Seneca Junior in Epistulae Morales. वही, पृष्ठ ४७.

व्यक्ति अपने समय पर यही दोष लगाता है। ये सब मानव-जाति के दोष हैं। किसी युग के दोष नहीं। इतिहास में पाप-रहित युग कोई रहा ही नहीं है।"

महाभारत में कलियुग का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा।[१]

किन्तु इतिहास में ऐसा कौन सा समाज था जिसमें पिता-पुत्र एक दूसरे की हत्या करते न पाये गये हों। असल में हर युग की अपनी-अपनी माँग होती है जिससे उस युग की समस्याएँ बनतीं और ढलती रहती हैं। आज भी सबसे कठिन समस्या कल की समस्या से भिन्न है।

आज की दो माँगें

प्रसिद्ध लेखक आरनल्ड टोयनबी ने हाल में लिखा है कि आज दो सर्व-व्यापक तथा दृढ़ माँगें हैं। समाज की पुकार है कि हर एक नागरिक को समान अधिकार तथा पद-महत्त्व प्राप्त हो। दूसरी माँग है हर एक का जीवन-निर्वाह का स्तर और अधिक ऊँचा हो।[२] अब, इस समय इन्हीं दोनों माँगों की पूर्ति के लिए समाज का हर एक सदस्य संघर्ष कर रहा है। कोई सीधे तथा न्यायसंगत मार्ग से प्रयास करता है और कोई समाज के नियमों के विपरीत चलकर अपना पद-महत्त्व तथा अपने जीवनस्तर को ऊँचा करना चाहता है।

धर्मभावना की आवश्यकता

अपराध तथा धर्म के सम्बन्ध को, यानी अपराध-निरोध के लिए धर्म-भावना की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए पादरी टॉमस मिचेल ने लिखा है कि समाज-कल्याण के लिए हानिकर वस्तु का नाम अपराध है। शारीरिक व्याधि से शारीरिक अव्यवस्था पैदा होती है। पर अपराध आत्मा का रोग है। इसके कारण सामाजिक अव्यवस्था पैदा होती है और इंसान तथा उसके परमात्मा के बीच में भी गाँठ पड़ने लगती है। डकैती क्या है—लोभ का तर्कबुद्धि को दबा देना। अपराध मानवी प्रकृति की अवज्ञा

१. महाभारत, अरण्य पर्व, मार्कण्डेयसमस्या पर्व, श्लो० २८. अ० १६२

२. Arnold Toynbee–Religion and the Modern Man, Observer, London, July, 1959.

है। स्वभाव के भीतर जो वासना है उसको नियंत्रण के बाहर कर देना ही अपराध है। यदि मनुष्य श्रद्धा तथा आस्था से काम करे, यदि वह अपने, सबके ऊपर ईश्वर की सत्ता मान ले तो जीवन का हर एक काम नयी भावना से युक्त तथा नये मंत्र से प्रेरित प्रतीत होगा। धर्म की बागडोर पकड़कर मनुष्य प्रेम तथा ममता के सहारे संसार के बड़े-बड़े कार्य कर लेता है। आत्मा की सत्ता न मानने से ही मनुष्य अपने को आध्यात्मिक प्राणी के रूप में नहीं देख सकता। सबमें एक आत्मा है। समाज हमारी आपकी आत्मा का प्रतिबिम्ब है। अपराधी हमसे परे या पृथक् कोई प्राणी नहीं है। कर्त्तव्यशास्त्र, न्यायशास्त्र तथा धर्मशास्त्र को एक दूसरे से पृथक् कर देने से ही समाज की स्वाभाविकता नष्ट कर दी गयी है।[१] समाज को ही दैवी वस्तु समझ लेने का परिणाम "ईश्वर" की धारणा है।[२] यदि हमारी दृष्टि में समाज, उसके अनुशासन, उसके आदेशों के प्रति पवित्रता या आस्था की कोई बात न हो, यदि हमारा चित्त समाज की महत्ता को न स्वीकार करता हो तो हम ईश्वर की सत्ता को भी सही माने में नहीं मान सकते। समाज ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। प्रतीक है।

धर्म क्या है—इसका निर्णय केवल निजी विश्वासों के आधार पर नहीं होता। मानव का विश्वास तथा उसकी श्रद्धा शून्य पर आधारित नही है। उसका उपयोग मानव के कल्याण के कार्यों के उपयोग में ही हो सकता है। विश्वास तथा श्रद्धा को न्याय का रूप देना चाहिए। उन्हें कार्य रूप में परिणत करना चाहिए।

मानव के प्रति विश्वास, मानव के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति प्रेम; समाज का यही लक्ष्य, यही मंत्र, यही उद्देश्य होना चाहिए। तभी मनुष्य मनुष्य को, हम स्वयं अपने को, एक प्राणी दूसरे प्राणी को पहचान सकेगा। इस प्रकार की पहचान के लिए ही धर्म तथा कर्त्तव्य का सहारा लेना आवश्यक है।

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उप सम्पदा।
सचित्त परियो दमनं एवं बुद्धानुसासनं॥

धम्मपद पचीसी, श्लोक २१

(सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यह है बुद्धों की शिक्षा।)

१. Raymond Firth–"Human Types"–1957–Page 48.
२. वही, पृष्ठ १७१

सहायक पुस्तकों की सूची

BIBLIOGRAPHY

1. Arthur E. Morgan—The Community of the Future–1958.
2. Albert K. Cohen—Delinquent Boys–1956.
3. Alexander, Statute and Zilboorg—"The Criminal, the Judge and the Public"–1957.
4. Arthur Homes—Conservation of the Child–1912.
5. A. V. Dicey—Law and Public Opinion in England–1952.
6. Benthem—Principles of Morals and Legislations.
7. Brantome—Gallant Ladies.
8. Bronislaw Malinowski—The Sexual Life of Savages.
9. B. S. Haikerwal—A Comparative Study of Penology.
10. C. Darwin—The Descent of Man.
11. Charles Frankel—The Case of Modern Man–1957.
12. Charles Goring—The English Convict and Statistical Study.
13. Charles Merz—Bigger & Better Murders–1928.
14. Charles Loring Brace—Gesta Christi–1882.
15. Cyril Burt—The Young Delinquent–1938.
16. C. Bernaldo de Qurros—The Modern Theories of Criminality–1912.
17. Dayers—A Short History of Women.
18. Dennis Wheatley—The Launching of Roger Brook (Novel)
19. Edward Westermarck—Origin and Development of Moral Ideas–1912.
20. Fung-Yu-Lan—The Spirit of Chinese Philosophy.
21. Flexner—Prostitution in Europe.

22. F. A. E. Craw—Animal Genetics-1925.
23. F.J. Shirley Murphy—The Incidence of Sudden Delinquency.
24. Francis Fenton—The Influence of Newspaper-Presentation upon the Growth of Crime-1911
25. Flexner and Baldwin—Juvenile Courts and Probation-1916.
26. Frederick Howard Wines—Punishment and Reformation.
27. Gibbon—Decline and Fall of Roman Empire.
28. G. M. Calhoun and G. Delamere—"A Working Bibliography of Greek Land."
29. Getting Married—1956-British Medical Association.
30. Gustaw Jaggar—Discovery of the Soul-1884.
31. Gabrial Tarde—Penal Philosophy-1912.
32. Harold Lasky—Introduction to Politics.
33. H. Cutner—A Short History of Sex Worship-1940.
34. Hans Licht—Sexual Life in Ancient Greece-1952.
35. H. R. L. Sheppard—Some of My Religion.
36. Harry Elmer Barnes and Negely K. Teeters—"New Horizons in Criminology"-1959.
37. Ivon Block—Sexual Life in England-1938.
38. Inman—Ancient Faith embodied in Ancient Names.
39. Isaac Roy—"A Treatise on Medical Jurisprudence of Insanity".
40. Jitendra Nath Bannerjee—The Development of Hindu-Iconography-1941.
41. James Legge-Texts of Confucianism.
42. Johann J. Meyer—Sexual Life in Ancient India-1952.
43. J. T. Cunningham—Sexual Dimorphism in the Animal Kingdom-1900.
44. J. Edwards—Mens Rea in Statutory Offences-1955.
45. Jane Addams—The Spirit of Youth and the City Streets-1909
46. James—The Varieties of Religious Experience-1912.

47. John Howard—The State of Prisons.
48. J. C. F. Hall—Boy Crime in Burma–1939.
49. Karl Marx—Critique of Hegel's Philosophy of Law.
50. Keyserling—The Book of Marriage.
51. Lacky—The History of European Morals.
52. L. R. Farnell—Cults of the Greek States.
53. L. E. Widen—Young Criminals in Nebraska State Penitentiary-1957.
54. Lion Fox—Open Institutions–1950.
55. Maine—Ancient Law.
56. Meennan—Primitive Marriage.
57. M. Veerting—The Character of Women in a Masculine State and the Character of Women in a Feminine State–1921.
58. Macneile Dixon—The Human Situation.
59. M. E. Harding—Women's Mysteries–1935.
60. Modern Methods of Penal Treatment—Pub. International–Penal and Penitentiary Foundation–1956.
61. Maria Montessorie—The Discovery of the Child–1948.
62. Morris Ploscove—Sex and the Law Prentice Hall, New York–1951.
63. H. Hamblin Smith—Psychology of the Criminal—1922.
64. Methods of Social Welfare Administration, U. N. O.–1950.
65. Otto Keifer—Sexual Life in Ancient Rome–1951.
66. P. K. Sen—Penology Old & New–1943.
67. Paul Reiwald—Society and Its Criminals (William Heinemaun)–1949.
68. Plato—Republique.
69. Planch—Where is Science going ?
70. Prescot—History of the Conquest of Mexilos.
71. Pinel—Medical & Philosophical Treatise on Mental–Alienation–1801.

72. P. Nacke—Homo-Secuology and Psychosis-1911.
73. Paul Tappen—Juvenile Delinquency in North America.
74. Quetlet—Social Physics-1869.
75. R. E. M. Wheeler—Five Thousand Years of Pakistan-1950.
76. Richard F. Burton—Arabian Nights.
77. Raymond Dodge and Eugene Kahn—The Craving for-Superiority-1937.
78. R. N. Saksena—Social Economy of a Polyandrous People-1955.
79. Refaele Garofalo—Criminology-1884.
80. Raymond Furth—Human Types-1957.
81. Robinson—Penology in the United States—1923.
82. Richard Harrison—The World's Police-1954.
83. Richard L. Halcomb—The Police and the Public-1954.
84. Stekel—Sadism and Masochism.
85. Schardn—Pre-historic Antiquities of the Aryan Peoples.
86. Sexual Offences—Report of the Cambridge University.
87. Sidgwick—Methods of Ethics-1893.
88. Sayre—Public Welfare Offences-1933.
89. Sutherland—Criminology-1924.
90. Sheldon Glueck—Mental Illness and Criminal Responsibility-1956.
91. S. F. Nadel—The Theory of Social Structure-1956.
92. Study of 102 Sex Offences in Sing Sing Prison (report) 1950.
93. Sheldon Glueck—Mental Disorders and Criminal Law.
94. Sheldon Glueck & Cleanor Gluck-500 Criminal Careers.
95. Tarde—Penal Philosophy.
96. William Healy—The Individual Delinquent—1927.
97. W. W. Sanger—The History of Prostitution-1910.
98. William H. Forstern—Sexual Life in England-1938.

99. William Sargeant—Battle for Mind.
100. W. Narwood East and Others—Mental Abnormalities and Crime–1949.
101. W. A. Bonger—Criminology & Economic Conditions–1916.
102. Warden Lewis F. Lawes—Meet the Murderer–1940.
103. Walter Reckliss—The Crime Problem.

REPORTS

1. Administration Report of the Govt. of India and States.
2. English Digest.
3. Federal Bureau of Investigation Report, U. S. A.
4. Film Enquiry Committee Report.
5. Guide Post—Manila, Phillippines.
6. International Child Welfare Review.
7. International Federation of Senior Police Officers' Reports.
8. International Police Review.
9. London—"Times".
10. New York Times.
11. Readers' Digest.
12. Report of the Society for Prevention of Pauperism.
13. Report of the Child Welfare Department, Australia.
14. Reports of the Christian Economic and Social-Research-Foundation.
15. U. N. O. Reports and Publications—Nearly 40.
16. Uniform Crime Reports.
17. World Federation for Mental Health.
18. World Health Organisation Reports.

हिन्दी

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र—१९२५
२. कौशीतकी उपनिषद्

३. संस्कृत साहित्येतिहास—विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज
४. श्वेताश्वतरोपनिषद्
५. मुण्डकोपनिषद्
६. विष्णु पुराण
७. मनुस्मृति—टीकाकार पं० केशवप्रसाद द्विवेदी—१९४८
८. महाभारत—सम्पादक पी० पी० शास्त्री और रामस्वामी शास्त्रुलर
९. सौन्दरानन्द काव्य—अश्वघोष कृत—१९४८
१०. कुट्टनीमतम्—दामोदर गुप्त—१९५४
११. कन्यादान—डा० सम्पूर्णानन्द—१९५४
१२. याज्ञवल्क्य स्मृति
१३. पराशर स्मृति
१४. नारद स्मृति
१५. वाल्मीकि रामायण
१६. वात्स्यायन-कामसूत्रम्
१७. अग्नि पुराण
१८. गरुड़ पुराण
१९. मार्कण्डेय पुराण
२०. प्राणदण्ड—परिपूर्णानन्द

(अध्ययन के समय नोटबुक में अंग्रेजी-हिन्दी के कुछ लेखकों का पूरा नाम तथा उनकी पुस्तक के प्रकाशन का समय देना रह गया था। उपरिलिखित पुस्तकों के अलावा रिपोर्ट, समाचार-पत्र, अनेक मासिक तथा विशिष्ट प्रकाशन आदि भी हैं जिनकी सूची हम नहीं दे रहे हैं। ऐसे कुछ विशिष्ट प्रकाशनों के नाम ऊपर दिये गये हैं।)

अनुक्रमणिका

अग्निदेव ३९
अग्निष्टोम ८९
अग्रिप्पिना ५६, ५७
अनाईतीज देवी ११
अनजान (कन्या) १२४
अनुचित ३४२, ३५३
अपराध १, ६, ३०, ३७, ४२, ४४, ८५, ११०, ११४-१६, १२०, १२२, १२७, १२८, १३१, १३८, १३९, १४२-४४, १४६, १५०, १५३, १६२-६४, १६७, १७०, १७५, १७८, २०१, २०२, २०४-०७, २०९, २१२, २१७, २१८, २२०, २२४, २३५, २३८, ३२१, ३२४, ३३४, ३३७, ३३८, ३४२, ३४५-४७, ३५७, ३५८, ३६१, ३६२, ३६४, ३७१, ३८२, ३८६, ३९९, ४३२, ४३७
'अपरिपक्व-मोहक-विकृतमना' ३२४
अपोलो ५८
अप्राकृतिक प्रसंग ३७, ५६, ३३२
अप्राकृतिक सम्भोग १७, ८३, १०९, ११५, १२०, १२९, १३०, १३५, १३८, २००, ४३२
अफोदोइत देवी ५७
अबू हरेरा २४
अबोध २०९, ३३७
अभागा मस्तिष्क ३३९
अभिभावक २८९
अभियोग २१२
अमानवी ३४८
अरिस्तू १६, ३५९
अलेक्जेंडर तथा स्टाब ३२७, ३३३
अल्पमत ८
अवरोध गृह २६८-६९
अवैध ३३५
अशोक ३६३
अश्वघोष २१, २२, २७
अश्वमेध ८९
अश्लील प्रहार १२३, १२६, १३२, १३७, १४२, १५२
अष्टावक्र गीता १९०
असम्भाष्य ४३
अस्तार्ती देवी ५५
आइन्सटीन २९
आइसिस देवी ५६
आचरण १०५
आत्महत्या १६६, ३२९
आदतन अपराधी या विराराधी १२८, १३२, १३५, १६८, २१८, ३७७
आदमवादी संप्रदाय ६४
आर्नल्ड टोयनवी, लेखक ४३७

आन्वीक्षिकी ४
आशिरा देवी ५४
आसुर विवाह २४
इन्द्रियजय २८
इन्द्रियार्थ ३८
ईश्वर की धारणा ४३८
उत्तंक ३६
उन्माद १६२, ३२६, ३४२, ३५५, ३५७
उर्वशी २३
ऋग्वेद २३, २६
ऋतुकाल २०, २८, ३६, ३७
एजेन्ट १२०
एरिस्तोफेनीज़–लेखक १६
एस्किमो जाति १०५
कटनर–लेखक ६, ५५, ६४
कन्फ्यूसियस १५, २४, २९, ५१, १०४
कर्ण का जन्म ३९
कल्माषपाद की कथा ३७
कांट ३६२
काकवर्न १४९
कामदेवी ७, १०, ३४, ५२, ५५, ५६
कामवासना १३, १५४-५६, १६०, १८७, ३४३
कामवासना का नियंत्रण २८, ४०, ४१, १०९, १११
कामशास्त्र ४५, ४६
कामसूत्र ३४
कायता ७४
कारागार ३६२-६३, ३७१, ३७६
कार्लमार्क्स २
कीफर–लेखक ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ४३६
कुंती ३९
कुट्टनीमत २२, ३२, ३३
कुमारी कन्या ३९, ४०
केटो ६१
केसरलिंग–लेखक ७४
कैदी से काम लेना ४, ११, १३
कोड़े लगाना २७३-७४
कौटिल्य ४, ५, २२, २७, २९, ३०, ३२, ३६२
क्विंटिलियन, शारीरिक दंड का विरोधी ९८
क्वेटलेट–लेखक ३६१, ३६२
क्लिमेंट ११वाँ ३६३, ३७४
क्लियो पेटरा ५५
क्लेयर हग ३५१-५४
क्लैरेंस डैरो (वकील) ४०१
क्षमा ५
खतना का रिवाज १२, ५४
खुली संस्था ४२०, ४२४, ४२७
खुले ढंग के जेल ३८१, ४१०, ४१७, ४२०-२४
खुले शिविर ४२३
गंदा साहित्य २३०
गणिका ३०, ३१, ३४
गर्भवती ४०
गांधर्व विवाह २४
गार्गी २५
गुतनर १४८
गेरोफालो–लेखक १४५, १४६

गोरिंग ३४७
गोविन्दवल्लभ पंत ३९८, ४२१
ग्लानि १५५
ग्लूक १६८, ३४९, ३५३, ४०३
घुमन्तू बच्चे २४८-४९
चरित्र की मर्यादा १११
चर्चिल १५०
चार्ल्स डीकेन्स ३९६
चलचित्र १९७, १९९, २००, २९४-९५
चीत्कार ६८
चुम्बन ४८, १६९-७१
चोरबाजारी ६
छूट (तलाक) ९९
जंतु नामक लड़का १०४
जस्टिस डार्लिंग १५१
जातकपारिजात १७२-७३
जान हावर्ड २१५, ३७२, ३७५
जायज उम्र ४८, १२३, १२४
जार्ज बर्नर्ड शा १३
जीतेंद्रनाथ बैनर्जी १८५
जुआ ३२२, ४०२-०४
जूलियस सीज़र १०
जेलजीवन का प्रभाव १५३-५४, २१३, ३७६
जैन तथा जिन १५
जैम्स विलियम्स ११
जोनसार भाबर ९८, ९९
टप्पन १३७, २०२
टिन्डल–न्यायाधीश ३४१, ३४२, ३५१, ३५२
टीटर्स ३१७, ३१८, ३१९
टेलर–लेखक १८७, १८८
डरहम–अभियुक्त ३५१, ३५२, ३५३
डारविन १७८, १७९
डार्टमूर जेल ३७९
डेली मिरर (अखबार) ३९२
डेवन ३७६
तंत्र शास्त्र ५७
तर्क का महत्त्व १, ३
तलाक ९६, ११०, १७३
तानाशाही २३९
ताहिती लोगों में नरबलि १०४
तिकोपिया जाति १०५
तिरस्कृत बच्चे २५१-५५
तोब्रियांद जाति ४०, ६२, ११०
तिलक ३
त्रयी ४
थर्नवाल्ड–लेखक ७८
थियोगानिस १०९
दंड १, ४,७, ३१, ३२, ८६, ८७, ८८, ९०, ९१, ९६, ९८, १०७, १११, ११३, ११४, ११६, १२२, १२३, १३३, १३७, १४२, १४६, १४७, १५०, १६४, १६८, १९२, २१२, २१८, २२०, २२६, ३२९, ३३५-४१, ३४५, ३५१-५३, ३५७, ३७२, ३७४, ३७७, ३७८, ३८७, ३९६, ४०१-४, ४०६-१५, ४४७
दंडनीति ४, ५
दंडविधान (भारतीय) ११२-१६
दंडविधान (ब्रिटिश) ११६-१२४

दरिद्रता २२८, २३५, ३०२, ३१६, ३१७
दांडक्य की कथा २८
दायोदोरस-लेखक १०७
दायोनिसियस—लेखक ९५
दायोनीसियस की पूजा ५८
दीर्घतमस की कथा ४१
दुहरा प्रवेश १४६
दूल्हा-दूल्हन १७५
देवदासी प्रथा १०, ११५
दोगले बच्चे १०१, १०२
द्रौपदी २३, २५
धर्म ६, ७, ८, १२
धार्मिक आदेश १, ४
धौम्य ऋषि ३६
नंदिकेश्वर ४६
नन(ईसाई संन्यासिनी) ६५
नरबलि १०१, १०३, १०४
नशेबाजी २२३, ३१६
नाजायज विवाह १५२
नाट्यशास्त्र ३४
नारउड—लेखक १५९-६०, १६१-६२
नारदस्मृति ३८
निकटसंबंधी विवाह १७८-७९
निरुक्त १
निर्मम भाव १५०
नीगरे जाति में नरबलि १०४
नीग्रो १५५
नीयत १५१
नीरो की कथा ५६
नैतिक दुर्बलता ३३९
नैतिक भावना ३३९
नैतिक विक्षिप्त ३३९
न्यायसंगत ९
पंचायतें ११३
पण्यांगना ८६
पतन १, ४, १२, २९, १८४
पतित १, ३, ५, ६, ७, १२, ४०८
पतिव्रता २६
पद्मपुराण ३३
परपुरुषसेवन ११
परस्पर संभोग १०, १२९, १५८
(दे० समयोनि प्रसंग)
पराकाष्ठा ५९
पराशर १८, ४९
परिवार १८३-८४, १९९, २२५, २३६, २३९, २४८, २५२, ३१०
परिष्कार ६२
पवित्रता-अपवित्रता ९, १०, १२
पशुप्रसंग १७, ४५, ४७, ५९, ११५, १२०, १३३
पागल ११९, १४४, १५६, ३३७-३९, ३४०, ३४२, ३४४, ३५०
पान देवता ५९
पाप १, ३, ४, ८, २९, ३८, ५२, १८४, २००, ३३८, ३६२, ३६४, ३६५, ३६९, ४४२
पिनेल १४४
पीडा का महत्त्व ३६०, ३६१
पीडासुख १६४-६५
पुण्य ३३८, ३६२
पुनर्वास ४३४
पुरुष-पुरुष संभोग १०, ५६, १२२,

१२६, १३१, १३३, १४०, ३३२
पुरोडाश १८
पुलिस ४०८-९
पेंटोलबिले जेल ३७५
पेशाब, दवा के रूप में ६१
पोप क्लिमेंट ३७४
प्रतिशोध ३, २१३, ३५९
प्रसंगचित्र ५९
प्राणदंड १२, १८७, ३५८, ३६७-६९, ३७२-७४, ३७८, ३८०, ३९१-९३
प्रियापस ११, ५८
प्रेम १८८, ३३५
प्रेसकोट १०४
प्रोबेशन १४०, २०१
प्रोबेशन या परिवीक्षण २१२, २६५, २७४-८६, ३६६
प्लुटार्क ७२, १०७
प्लेटो—लेखक १५, ६१, १०१, १९०, ३५९
फाँसी का पर्व ३९५
फान हामेल १४६, १४७
फ़ातिसियस ५८
फ़ारेल—लेखक १६२
फेरी १४५
फेलसियानो १९७-९८
फ्रायड—लेखक १३, १६, १७, ५६, १४७, १५८, ३२८, ३३० ३३३,
फ्रेडरिक महान् १०
बकुमातुला ७४
बक्कारिया १४७, ३६०
बर्टन ३०
बर्ट्रेंड रसेल ७४
बलात्कार २४, ४८, ४९, ११४, ११५, ११७, ११८, १३१, १३४, १३८-४०, १४२, १६२, १६४, ३९१, ३९८
बहुपतित्व २५, ९९
बहुपत्नी प्रथा ७७
बाकाम्बा जाति ४०
बार्नेस और टीटर्स—लेखक ३१७, ३१८, ३१९, ३२१
बाल २०६-७
बाल-अधिनियम २५५-५६, २६१-६७, २७३
बाल अपराधी २०६-८, २१९-२०, २६०, २८८, २९५
बालकल्याण अधिनियम २०९-११
बालपीयूर देवी ५४
बुरी संगति २२६
बोधायन ३६, ३७
ब्लेक ९
भय ३३६, ३३७, ३५२
भर्तृहरि २०, २३, २७, २८
भविष्य पुराण ३३
भागवत १८
भुजिष्या ८६
भ्रष्टाचार ११, १८४
मंत्रद्रष्टा ३
मद्रा जाति ४१
मन की चिकित्सा १५८
मनस्ताप ३२६, ३२७, ३३३
मनस्तापी ३२६, ३२८, ३२९, ३५५

मनाटेन–अभियुक्त ३४१-२, ३४५-६, ३४८, ३५१
मनिकान संप्रदाय १७
मनु १९, २४, २६, २८, २९, ३६३
मनुस्मृति ५, ३६, ३६३, ३६४
मर्दानी स्त्री ५६, ३१५
महाभारत १९, २२, २८, ३६, ३७, ३८, ३६७, ३७०, ४३७
महिला पुलिस १२८, २९२
महिष्मती ४०
महेंजोदड़ो २६
मांटेजुमा ६४
माता-पित १०५, १०६, २४१-२, ३३५
माता-पिता से संभोग १३०, १३९, १४१, १६४
माधवाचार्य ४९
मानव के अधिकार १४७, १४८
मानसिक रोगी १३३, १३५
माया १४, १५, १७
माया जाति १०४
मार्कर्स अरेलियस–सम्राट् ९४
मार्को पोलो ६४
मार्गन–लेखक १८२
मिलवेंक जेल ३७५
मिलिता देवी ११
मुखप्रसंग ३७
मूढ, मूर्ख ३३८-४०, ३४८
मूर ३३९
मूसा ५१
मेकनील डिक्सन–लेखक १८५
मेन–लेखक २५
मेरी मांटेस्सरी २२१
मेरी स्टोप्स १८१
मैंटेलस–लेखक ९३
मैलिनोवस्की ६३, ७४, ८५, ११०
मोहक–विकृतमना-अपराधी ३२५
याज्ञवल्क्य ६, ३६४-६६
यास्क १, २, ३
युधिष्ठिर १९, ३६, ४०
यूनान की सभ्यता ५७, ५८, ६१
यूनान में दण्ड १०७
रक्तचाप ३३०
रजस्वला ३६, ६१, १७३
रजामन्दी १२३, १२५, १२६, १४०
राक्षस विवाह २४
राममोहन राय १०४
राल्फ ब्रैकेल डा० २४०
राशोमाफिल १८९
रिचर्ड डगडेल ३२१
रिचर्ड हेरीसन ३७८
रेप (बलात्कार) २४
रेमंड फर्थ १९१, ४३८
रोकथाम और चिकित्सा ३०५-६
रोमन कैथोलिक ६३
रोमन लोग ५७, ९७, १०२
रोमिली ३९५
रोमुलस १०२
रोलैंड को फाँसी ३९२
ललितविस्तर ३४
लार्ड हिवर्ट २१३
लार्ड हेल ३५०

लिडवर्ग ३१३
लिविंग्स्टन ३७३-७४
लुई पवित्र ३५, ३७६
लेडेस्का १९७
लैकी—लेखक २२
लोम्ब्रोजो—लेखक १४३, १४४, १४७, ४०३, ४०४,
लोरिंग ३१६
वयस्क अपराधी ३३१
वर्गीकरण २४६
वाग्भट ४९
वाटसन २३४, २३५, २३६
वात्स्यायन ३४, ४५, ४९
वाममार्ग ५७
वार्ता ४
विकृतमना ३२३, ३२५, ३३३
विप्रदुष्टा ८९
विवाह १७२, १८१
विष्णुपुराण १८
वेश्या १०, १४, १९, २१, २७, ३०, ३२, ३३, ३४, ३५, ४०, ५०, ५१, ५२, ६०
वेश्यालय ३५
वेस्टर मार्क ८४, ९०, १०४, १०६, १८६
व्यभिचार ५१, १०९, ११५, १३२, १३९, १४०, १६३
व्यभिचारिणी पुत्री १५९
शास्त्रीय विवाह २४
शाश्वती पत्नी की कथा २३
शेपर्ड—लेखक ६५
शेल्डन ग्लूक—लेखक १६८, ४०३, ४१४ (दे० ग्लूक)
शोख अपराधी ३३२
संतान की हत्या १०१, १०२
सक्सेना डा० ९९, १००
सखीभाव १०
सतीप्रथा १०४
सदाचार ८, १८४-५
सप्रू ३९८
सफेदपोश अपराधी ३२१
समयोनि प्रसंग ४७, १४०, १४१, १५५, १५८, २००, ३१५
सम्पूर्णानन्द २४, १७६, १८०, ३८४, ४२१
सम्पूर्णानन्द शिविर ४१७, ४२२, ४२३
सम्मानित व्यवसाय ३२२
सहोदर भ्राता ३९
साधु मिथायल का अस्पताल ३६३, ३७४
सालस्त ९३
सिनेमा (दे० चलचित्र)
सिंगसिंग जेल ३१५, ३८०, ३९३, ३९४
सिम्पसन मार १३
सुकरात १०, १६
सुधारगृह २१४, २६०-६१, २८७, ३००
सुरैतिन ७८
सुश्रुत आचार्य ४९
सैमुयेल लार्ड २०१, २३२, २३४, २३७
सोमक राजा १०४

सोमाली जाति १६२
सौन्दरानन्द काव्य २७
स्कडर ३८१, ३८३
स्टाक वेल १३०
स्टार (बन्दी) ३७९
स्टेकेल–लेखक ९७
स्टेफन ३४४, ३४५
स्त्री का पद १८, २२, २४, २५, ३८, ३९, ४२, ६४
स्त्री की हत्या १०२, १०३
स्नाइडर ३९३
स्पर्म (वीर्य) ८०
स्पिनोजा १९०
स्वायर १८०, १८१
स्वीकार ३२२
स्वीकृति (कन्या की) १२३, १२५
स्वैरिणी ८८
हर्चिसन २४३
हत्या १२, ३२९, ३९३
हम्फ्रेज, न्यायाधीश ११७
हरप्पा २६
हर्माफ्रोदाइतोस ५९
हस्तक्रिया १०, ६१, १३३, १०९, १५७, १६९, ४२२
हांस–लेखक ५७, ५८
हालकोम्ब–लेखक ३८३, ३८५
हाल मिल्स ३१३
हाल्डेन १५०
हियासिंथस ५८, ५९
हिस्टीरिया ३२७
हीली–लेखक ६, १२६, १५४, १५७, १६९, १७५, १९२, २१७, २२२, २२३, २२५, ३१८, ३१९
हेरोडेटस–लेखक १८९
हेलवातियस–लेखक १९०
हैकडवाल २५४
हैण्डरसन १६७
हैन्स हाफ २३२
हैने–लेखक १२
हैवलाक एलिस–लेखक १३, ७६, १५६, १६४
होम्स ३७६